श्रीरामकृष्ण वचनामृत

"श्रीरामकृष्ण तीस कोटि भारतीयों के उस अखण्ड आध्यात्मिक जीवन के पूर्णप्रकाशस्वरूप थे, जिसकी पावन धारा विगत दो सहस्र वर्षों से सतत प्रवाहित होती आ रही है। इतना ही नहीं, उनके जीवनसंगीत से संसार के सहस्रों धर्मपन्थों एवं उपपन्थों के विभिन्न, परस्परविरोधी दिखनेवाले स्वरों में समरसता लानेवाली मंजुल ध्वनि निकली है।"

— रोमाँ रोलाँ

"श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे सम्मुख न केवल स्वयं उन्हीं के विचारों को प्रकट करते हैं, वरन् वे करोड़ों मानवों की आशा और विश्वास के भी प्रतीक हैं। यह सत्य कि मानवात्मा ईश्वरस्वरूप है, सभी लोगों द्वारा ग्रहण किया गया है — उनके द्वारा भी, जो मूर्तिपूजक माने जाते हैं। वास्तव में, परमात्मा के अस्तित्व का अविच्छिन्न अनुभव ही एक ऐसा साधारण आधार है, जिस पर अनतिदूर भविष्य में हम उस एक विराट् मन्दिर के निर्माण की आशा कर सकते हैं, जहाँ हिन्दू और इतरेतर धर्मावलम्बीगण उसी एक परमात्मा की उपासना के लिए एकहृदय हो सम्मिलित हो सकेंगे — जो हमसे दूर नहीं है। कारण, हम उसी में वास करते हैं। हम उसी में चलते-फिरते हैं और हमारा अस्तित्व भी उसी में है।"

— प्राध्यापक मैक्स मूलर

श्रीरामकृष्णवचनामृत

प्रथम भाग

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
(श्री 'म')

(नवम संस्करण)

रामकृष्ण मठ
नागपुर

वक्तव्य

'श्रीरामकृष्णवचनामृत' के प्रथम भाग का यह नवम संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है।

भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का अपने शिष्यगण, भक्त तथा दर्शनार्थियों के साथ जो वार्तालापादि होता था वह उनके एक प्रख्यात गृहस्थ भक्त श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री 'म') के द्वारा दैनन्दिनी के रूप में लिपिबद्ध कर लिया गया था। बाद में यह बँगला भाषा में 'श्रीरामकृष्णकथामृत' ग्रन्थ के रूप में पाँच भागों में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ में ई० स० १८८२ से ई० स० १८८६ तक के वार्तालाप समाविष्ट हैं। यही सम्पूर्ण ग्रन्थ हिन्दी में तीन भागों में प्रकाशित हुआ है, जिसका प्रथम भाग आपके हाथ में है। इसमें ई० स० १८८२ और १८८३ का वार्तालाप आया है। दूसरे भाग में ई० स० १८८४ तथा तीसरे भाग में ई० स० १८८५ एवं १८८६ का वार्तालाप समाविष्ट है।

श्रीरामकृष्ण का जीवन नितान्त आध्यात्मिक था। ईश्वरीय भाव उनके लिए ऐसा ही सहज एवं स्वाभाविक था जैसा किसी प्राणी के लिए श्वास लेना। कहना न होगा, मनुष्यमात्र के लिए उनका जीवन आदर्श-स्वरूप है। उनके उपदेश, जो विशेष रूप से अध्यात्मगर्भित हैं, सार्वलौकिक होते हुए मानवजीवन पर अपना प्रभाव डालने में अद्वितीय हैं।

'श्रीरामकृष्णकथामृत' के हिन्दी अनुवाद का श्रेय हिन्दी संसार के लब्धप्रतिष्ठ लेखक एवं विख्यात छायावादी कवि पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को है। बँगला भाषा का पूर्ण ज्ञान रखने के कारण श्री निरालाजी के अनुवाद में मूल के केन्द्रीय भाव के अतिरिक्त शैली भी ज्यों की त्यों रखी है। साहित्यिक दृष्टि से भी ग्रन्थ का स्तर उच्च है।

पिछले संस्करण में परिच्छेदों की रचना तथा शीर्षकों में यत्रतत्र कुछ परिवर्तन किया गया है, जो मूल ग्रन्थ के अनुसार ही है। ग्रन्थ के दैनन्दिनीमय रूप को ध्यान में रखते हुए किसी एक विशिष्ट दिन की घटना, वार्तालाप आदि को एक ही परिच्छेद में निबद्ध करने का प्रयास किया गया है। इससे परिच्छेदों का आकार घटकर उनकी संख्या कुछ बढ़ गयी है।

विश्वास है, यह पुस्तक पाठकों का सभी दृष्टि से हित करने में सफल होगी।

नागपुर —प्रकाशक

१-१-१९८८

तव कथामृतं तप्तजीवनं

कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।

श्रवणमंगलं श्रीमदाततं

भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ।।

—प्रभो, तुम्हारी लीलाकथा अमृतस्वरूप है । तापतप्त जीवों के लिए तो वह जीवनस्वरूप है । ज्ञानी महात्माओं ने उसका गुणगान किया है । वह पापपुंज को हरनेवाली है । उसके श्रवणमात्र से परम कल्याण होता है । वह परम मधुर तथा सुविस्तृत है । जो तुम्हारी इस प्रकार की लीलाकथा का गान करते हैं, वास्तव में इस भूतल में वे ही सर्वश्रेष्ठ दाता हैं ।

(श्रीमद्भागवत, १०।३१।९)

श्रीमाताजी का आशीर्वाद

भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी परमआराध्या श्रीमाँ सारदादेवी ने 'श्रीरामकृष्णकथामृत' के सम्बन्ध में उसके रचयिता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री 'म') को निम्नलिखित पत्र लिखा था:—

"बेटा,

उनके (श्रीरामकृष्णदेव के) निकट तुमने जो बातें सुनी थीं वही बातें सत्य हैं। इस विषय में तुम्हें कोई भय नहीं। किसी समय उन्होंने ही तुम्हारे निकट इन बातों को रख छोड़ा था। अब आवश्यकतानुसार वेही इन्हें प्रकट करा रहे हैं। जान रखो कि इन बातों को व्यक्त किये बिना लोगों का चैतन्य जागृत नहीं होगा। तुम्हारे पास उनकी जो बातें संचित हैं वे सभी सत्य हैं। एक दिन तुम्हारे मुँह से उन्हें सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे स्वयं ही ये सब बातें कह रहे हैं।"

भगवान् श्रीरामकृष्णदेव

की

संक्षिप्त जीवनी

हम यह देखते हैं कि श्रीरामचन्द्र तथा भगवान् बुद्ध को छोड़कर बहुधा अन्य सभी अवतारी महापुरुषों का जन्म संकट-ग्रस्त परिस्थितियों में ही हुआ है, और यह कहा जा सकता है कि भगवान् श्रीरामकृष्ण भी किसी विशेष प्रकार के सुखद वाता-वरण में इस संसार में अवतरित नहीं हुए।

श्रीरामकृष्ण का जन्म हुगली प्रान्त के कामारपुकुर गाँव में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण परिवार में शकाब्द १७५७ फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष द्वितीया तदनुसार बुधवार ता० १७ फरवरी १८३६ ई० को हुआ। कामारपुकुर गाँव बर्दवान से लगभग चौबीस-पचीस मील दक्षिण तथा जहानाबाद (आरामबाग) से लगभग आठ मील पश्चिम में है।

श्रीरामकृष्ण के पिता श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय परम सन्तोषी, सत्यनिष्ठ एवं त्यागी पुरुष थे, और उनकी माता श्री चन्द्रमणि देवी सरलता तथा दयालुता की मूर्ति थीं। यह आदर्श दम्पति पहले देरे नामक गाँव में रहते थे, परन्तु वहाँ के अन्यायी जमींदार की कुछ जबरदस्तियों के कारण इन्हें वह गाँव छोड़कर करीब तीन मील की दूरी पर इसी कामारपुकुर गाँव में आ बसना पड़ा।

बचपन में श्रीरामकृष्ण का नाम गदाधर था। अन्य बालकों की भाँति वे भी पाठशाला भेजे गये, परन्तु एक ईश्वरी अवतार

एवं संसार के पथ-प्रदर्शक को उस 'अ, आ, इ, ई' की पाठशाला में चैन कहाँ ? बस, जी उचटने लगा, और मन लगा घर में स्थापित आनन्दकन्द सच्चिदानंन्द भगवान् श्रीरामजी की मूर्ति में—स्वयं वे फूल तोड़ लाते और इच्छानुसार मनमानी उनकी पूजा करते ।

कहते हैं कि अवतारी पुरुषों में कितने ही ऐसे गुण छिपे रहते हैं कि उनका अनुमान करना कठिन होता है । श्री गदाधर की स्मरण-शक्ति विशेष तीव्र थी । साथ ही उन्हें गाने की भी रुचि थी और विशेषतः भक्तिपूर्ण गानों के प्रति ।

साधु-संन्यासियों के जत्थों के दर्शन तो मानो इनकी जीवनी में संजीवनी का कार्य करते थे । अपने घर के पास लाहा की अतिथिशाला में जहाँ बहुधा संन्यासी उतरा करते थे, इनका काफी समय जाता था । मुहल्ले के बालक, वृद्ध, सभी ने न जाने इनमें कौनसा दैवी गुण परखा था कि वे सब इनसे बड़े प्रसन्न रहते थे । रामायण, महाभारत, गीता आदि के श्लोक ये केवल बड़ी भक्ति से सुनते ही नहीं थे, वरन् उनमें से बहुतसे इन्हें सहजरूप कण्ठस्थ भी हो जाया करते थे ।

यह दैवी बालक अपनी करतूतें शुरू से ही दिखाते रहा और कह नहीं सकते कि उसके बचपन से ही कितनों ने उसे ताड़ा होगा ।

छिपे हुए दैवी गुणों का विकास पहले-पहल उस बार हुआ जब यह बालक अपने गाँव के समीपवर्ती आनुड़ गाँव को जा रहा था । एकाएक इस बालक को एक विचित्र प्रकार की ज्योति का दर्शन हुआ और वह बाह्यज्ञानशून्य हो गया । कहना न होगा कि मायाग्रस्त सांसारिकों ने जाना कि गर्मी के कारण वह मूर्च्छा

थी, परन्तु वास्तव में वह थी भावसमाधि ।

अपने पिता की मृत्यु के बाद श्रीरामकृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ, जो एक बड़े विद्वान् पुरुष थे, कलकत्ता आये । उस समय वे लगभग १७-१८ वर्ष के थे । कलकत्ते में उन्होंने एक-दो स्थानों पर पूजन का कार्य किया । इसी अवसर पर रानी रासमणि ने कलकत्ते से लगभग पाँच मील पर दक्षिणेश्वर में एक मन्दिर बनवाया और श्रीकालीदेवी की स्थापना की । ता० ३१ मई १८५५ को इसी मन्दिर में श्रीरामकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता श्री रामकुमारजी कालीमन्दिर के पुजारीपद पर नियुक्त हुए, परन्तु यह कार्यभार शीघ्र ही श्रीरामकृष्ण पर आ पड़ा । श्रीरामकृष्ण उक्त मन्दिर में पूजा करते थे, परन्तु अन्य साधारण पुजारियों की भाँति वे कोरी पूजा नहीं करते थे, परन्तु पूजा करते समय ऐसे मग्न हो जाते थे कि उस प्रकार की अलौकिक मग्नता 'देखा सुना कबहुं नहिं कोई'—और यह अक्षरशः सत्य भी क्यों न हो ? ईश्वर ही ईश्वर की पूजा कर रहे थे ! उस भाव का वर्णन कौन कर सकता है जिससे श्रीरामकृष्ण प्रेरित हो, ध्यानावस्थित हो श्री-कालीदेवी पर फूल चढ़ाते थे ! आँखों में अश्रुधारा बह रही है, तन-मन की सुध नहीं, हाथ काँप रहे हैं, हृदय उल्लास से भरा है, मुख से शब्द नहीं निकलते हैं, पैर भूमि पर स्थिर नहीं रहते हैं और घण्टी, आरती आदि तो सब किनारे ही पड़ी रही—श्री-कालीजी पर पुष्प चढ़ा रहे हैं और थोड़ी ही देर में उन्हें ही उन्हें देखते हैं—स्वयं में भी उन्हीं को देख रहे हैं और कम्पित कर से अपने ही ऊपर फूल चढ़ाने लगते हैं, कहते हैं—माँ-माँ-तुम-मैं-मैं-तुम . . . और ध्यानमग्न हो समाधिस्थ हो जाते हैं । देखनेवाले समझते हैं कुछ का कुछ, परन्तु ईश्वर मुसकराते हैं, बड़े ध्यान से

सब देखते हैं और विचारते होंगे कि यह रामकृष्ण हूँ तो मैं ही!'

उनके हृदय की व्याकुलता की पराकाष्ठा उस दिन हो गयी जब व्यथित होकर माँ के दर्शन के लिए एक दिन मन्दिर में लटकती हुई तलवार उन्होंने उठा ली और ज्योंही उससे वे अपना शरीरान्त करना चाहते थे कि उन्हें जगन्माता का अपूर्व अद्भुत दर्शन हुआ और देहभाव भूलकर वे बेसुध हो जमीन पर गिर पड़े। तदुपरान्त बाहर क्या हुआ और वह दिन तथा उसके बाद का दिन कैसे व्यतीत हुआ, यह उन्हें कुछ भी नहीं मालूम पड़ा। अन्तःकरण में केवल एक प्रकार के अननुभूत आनन्द का प्रवाह बहने लगा।

बेचारा मायाग्रस्त पुरुष यह सब कैसे समझ सकता है? उसके लिए तो दिव्य चक्षु की आवश्यकता होती है। बस श्रीरामकृष्ण के घर के लोग समझ गये कि इनके मस्तिष्क में कुछ फेरफार हो गया है और विचार करने लगे उसके उपचार का। किसी ने सलाह दी कि इनका विवाह कर दिया जाय तो शायद मानसिक विकार (?) दूर हो जाय। विवाह का प्रबन्ध होने लगा और कामारपुकुर से दो कोस पर जयरामवाटी ग्राम में रहनेवाले श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या श्रीसारदामणि से इनका विवाह करा दिया गया।

परन्तु इस बालिका के दक्षिणेश्वर में आने पर भी श्रीरामकृष्ण के जीवन में कोई अन्तर नहीं हुआ और श्रीरामकृष्ण ने उस बालिका में प्रत्यक्ष देखा उन्हीं श्रीकालीदेवी को। एक सांसारिक बन्धन सन्मुख आया और वह था पति का कर्तव्य। बालिका को बुलाकर शान्ति से पूछा, "क्या तुम मुझे सांसारिक जीवन की ओर खींचना चाहती हो?" परन्तु उस बालिका ने

तुरन्त उत्तर दिया, "मेरी यह बिलकुल इच्छा नहीं कि आप सांसारिक जीवन व्यतीत करें, पर हाँ, आपसे मेरी यह प्रार्थना अवश्य है कि आप मुझे अपने ही पास रहने दें, अपनी सेवा करने दें तथा योग्य मार्ग बतलावें।"

कहा जा सकता है कि उस बालिका ने एक आदर्श अर्धांगिनी का धर्म पूर्ण रूप से निबाहा। अपने सर्वस्व पति को ईश्वर मानकर उनके सुख में अपना सुख देखा और उनके आदर्श जीवन की साथिन बनकर उनकी सहायता करने लगी। श्रीरामकृष्ण को तो श्रीसारदादेवी और श्रीकालीदेवी एक ही प्रतीत होने लगीं और इस भाव की चरम सीमा उस दिन हुई जब उन्होंने श्रीसारदादेवी का साक्षात् श्रीजगदम्बाज्ञान से षोड़शोपचार पूजन किया। पूजाविधि पूर्ण होते ही श्रीसारदादेवी को समाधि लग गयी। अर्ध-बाह्यदशा में मन्त्रोच्चार करते-करते श्रीराम-कृष्ण भी समाधिमग्न हो गये। देवी और उसके पुजारी दोनों ही एकरूप हो गये। कैसा उच्च भाव है---अनेकता में एकता झलकने लगी!

हीरे का परखनेवाला जौहरी निकल ही आता है। रानी रासमणि के जामाता श्री मथुरबाबू ने यह भाव कुछ ताड़ लिया और श्रीरामकृष्ण को परखकर शीघ्र ही उन्होंने उनकी सेवा-शुश्रूषा का उचित प्रबन्ध कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि पुजारीपद पर एक दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त कर उन्हें अपने भाव में मग्न रहने का पूरा-पूरा अवकाश दे दिया। साथ ही श्रीराम-कृष्ण के भानजे श्री हृदयराम को उनकी सेवा आदि का कार्य सौंप दिया।

फिर श्रीरामकृष्ण ने विशेष पूजा नहीं की। दिनरात 'मा

काली' 'माँ काली' ही पुकारा करते थे; कभी जड़वत् हो मूर्ति की ओर देखते, कभी हँसते, कभी बालकों की तरह फूट-फूटकर रोते और कभी कभी तो इतने व्याकुल हो जाते कि भूमि पर लोटते-पोटते अपना मुँह तक रगड़ डालते थे।

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने भिन्न भिन्न साधनाएँ कीं और कई प्रकार के दर्शन प्राप्त कर लिये। कालीमन्दिर में एक बड़े वेदान्ती श्री तोतापुरीजी पधारे थे। वे वहाँ लगभग ग्यारह महीने रहे ओर उन्होंने श्रीरामकृष्ण से वेदान्त-साधना करायी। श्री तोतापुरीजी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने के लिए उन्हें चालीस वर्ष तक सतत प्रयत्न करना पड़ा था, उसे श्रीरामकृष्ण ने तीन ही दिन में सिद्ध कर डाला। इसके कुछ समय पूर्व ही वहाँ एक भैरवी ब्राह्मणी पधारी थीं। उन्होंने भी श्रीरामकृष्ण से अनेक प्रकार की तन्त्रोक्त साधनाएँ करायी थीं।

श्री वैष्णवचरण जो एक वैष्णव पण्डित थे, श्रीरामकृष्ण के पास बहुधा आया करते थे। वैष्णवचरण ने मथुरबाबू से कहा था यह उन्माद साधारण नहीं वरन् दैवी है। एक बार श्रीरामकृष्ण कलुटोला की हरिसभा में गये थे। वहाँ वे समाधिस्थ हो गये और चैतन्यदेव के आसन पर जा विराजे। श्रीचैतन्य की भाँति श्रीरामकृष्ण की कभी 'अन्तर्दशा', कभी 'अर्धबाह्य' और कभी 'बाह्य दशा' हो जाया करती थी। वे कहते थे कि अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म और माँ सब एक ही हैं।

उन्होंने कामिनी-कांचन का पूर्ण रूप से त्याग किया था। अपने भक्तगणों को, जो सैकड़ों की संख्या में उनके पास आते थे, वे कहा करते थे कि ये दोनों चीजें ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में

विशेष रूप से बाधक हैं। बुरे आचरणवाली नारी में भी वे जगन्माता का साक्षात् स्वरूप देखते थे और उसी भाव से आदर करते थे। उनका कांचनत्याग इतना पूर्ण था कि यदि वे पैसे या रुपये को छू लेते तो उनकी उँगलिया ही टेढ़ीमेढ़ी होने लगती थीं। कभी कभी वे गिन्नियों और मिट्टी को एक साथ अंजुली में लेकर गंगाजी के किनारे बैठ जाते थे और 'मिट्टी पैसा, पैसा मिट्टी' कहते हुए दोनों चीजों को मलते मलते श्रीगंगाजी की धार में बहा देते थे।

माता चन्द्रमणि को श्रीरामकृष्ण जगज्जननी का स्वरूप मानते थे। अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री रामकुमार के स्वर्गलाभ के बाद श्रीरामकृष्ण उन्हें अपने ही पास रखते थे और उनकी पूजा करते थे।

मथुरबाबु तथा उनकी पत्नी जगदम्बा दासी के साथ वे एक बार वाराणसी, प्रयाग तथा वृन्दावन भी गये थे। उस समय हृदयराम भी साथ में थे। वाराणसी में उन्होंने मणिकर्णिका में समाधिस्थ होकर भगवान् शंकर के दर्शन किये और मौनव्रतधारी त्रैलंग स्वामी से भेंट की। मथुरा में तो उन्होंने साक्षात् भगवान् आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द, अन्तर्यामी श्रीकृष्ण के दर्शन किये। कैसी उच्च भावदशा रही होगी!

'सेस, महेस, गनेस, दिनेस,
सुरेशहुँ जाहि निरन्तर गावें,
जाहि अनादि, अनन्त, अखण्ड,
अछेद, अभेद सुवेद बतावें।'

(—श्रीरसखानि)

उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण को उन्होंने यमुना पार करते हुए गौओं को गोधूलि समय वापस लाते देखा और ध्रुवघाट पर से वसुदेव की गोद में भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन किये।

श्रीरामकृष्ण तो कभी कभी समाधिस्थ हो कहते थे, 'जो राम थे और जो कृष्ण थे वही अब रामकृष्ण होकर आये हैं।'

सन् १८७९-८० में श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त उनके पास आने लगे थे। उस समय उनकी उन्माद-अवस्था प्रायः चली-सी गयी थी और अब शान्त, सदानन्द और समाधि की अवस्था थी। बहुधा वे समाधिस्थ रहते थे और समाधि भंग होने पर भावराज्य में विचरण किया करते थे।

शिष्यों में उनके मुख्य शिष्य नरेन्द्र (बाद में स्वामी विवेकानन्द) थे। जब से श्री नरेन्द्र उनके पास आने लगे थे तभी से उन्हें नरेन्द्र के प्रति एक विशेष प्रेम हो गया था और वे कहते थे कि नरेन्द्र साधारण जीव नहीं है। कभी कभी तो नरेन्द्र के न आने से उन्हें व्याकुलता होती थी; क्योंकि वे यह अवश्य जानते रहे होंगे कि उनका कार्य भविष्य में मुख्यतः नरेन्द्र द्वारा ही संचालित होगा। अन्य भक्तगण राखाल, भवनाथ, बलराम, मास्टर महाशय आदि थे। ये भक्तगण १८८२ के लगभग आये और इसके उपरान्त दो-तीन वर्ष तक अनेक अन्य भक्त भी आये। इन सब भक्तों ने श्रीरामकृष्ण तथा उनके कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, डा० महेन्द्रलाल सरकार, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, अमेरिका के कुक साहब, पं. पद्मलोचन तथा आर्यसमाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने भी उनके दर्शन किये थे।

ब्राह्मसमाज के अनेक लोग उनके पास आया जाया करते थे। श्रीरामकृष्ण केशवचन्द्र सेन के ब्राह्ममन्दिर में भी गये थे।

श्रीरामकृष्ण ने अन्य धर्मों की भी साधनाएँ कीं। उन्होंने कुछ दिनों तक इस्लाम धर्म का पालन किया और 'अल्लाह' मन्त्र का जप करते करते उन्होंने उस धर्म का अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार उसके उपरान्त उन्होंने ईसाई धर्म की साधना की और ईसामसीह के दर्शन किये। जिन दिनों वे जिस धर्म की साधना में लगे रहते थे, उन दिनों उसी धर्म के अनुसार रहते, खाते, पीते, बैठते-उठते तथा बातचीत करते थे। इन सब साधनाओं से उन्होंने यह दिखा दिया कि सब धर्म अन्त में एक ही ध्येय में पहुँचते हैं। और उनमें आपस में विरोध-भाव रखना मूर्खता हैं। ऐसा महान् कार्य करनेवाले ईश्वरी अवतार श्रीराम-कृष्ण ही थे।

इस प्रकार ईश्वरप्राप्ति के लिए कामिनी-कांचन का सर्वथा त्याग तथा भिन्न भिन्न धर्मों में एकता की दृष्टि रखना इन्होंने अपने सभी भक्तों को सिखाया और उनसे उनका अभ्यास कराया। इनके कतिपय शिष्य आगे चलकर भारतवर्ष के अतिरिक्त अमेरिका आदि अन्य देशों में भी गये और वहाँ उन्होंने श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार किया।

१५ अगस्त सन् १८८६ की रात को गले के रोग से पीड़ित हो श्रीरामकृष्ण ने महासमाधि ले ली; परन्तु महासमाधि में गया केवल उनका पांचभौतिक शरीर। उनके उपदेश आज संसार भर में श्रीरामकृष्ण मिशन के द्वारा कोने कोने में गूँज रहे हैं और उनसे असंख्य जनों का कल्याण हो रहा है।

—विद्याभास्कर शुक्ल

अनुक्रमणिका

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ

भगवान श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्णवचनामृत

(प्रथम भाग)

परिच्छेद १

प्रथम दर्शन

तव कथामृतं तप्तजीवन कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ।।
(श्रीमद्भागवत, १०।३१।९)

श्रीगंगाजी के पूर्वतट पर कलकत्ते से कोई छः मील दूर दक्षिणेश्वर में श्रीकालीजी का मन्दिर है। यहीं भगवान् श्रीरामकृष्णदेव रहते हैं। वसन्त ऋतु है। १८८२ ईसवीं का फरवरी माह। श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव के बाद कुछ दिन बीत चुके हैं। श्री केशवचन्द्र सेन और जोसेफ कुक के साथ २३ फरवरी, बृहस्पतिवार के दिन श्रीरामकृष्ण जहाज में बैठकर घूमने गये थे। इसके कुछ ही दिन बाद (२६ फरवरी) की घटना है।

सन्ध्या का समय था। मास्टर ने श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रवेश किया। इसी समय उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव के प्रथम बार दर्शन किये। उन्होंने देखा, कमरा लोगों से भरा हुआ है; सब लोग चुपचाप बैठे उनके वचनामृत का पान कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण तखत पर पूर्व की ओर मुंह किये बैठे हुए प्रसन्नवदन हो ईश्वरीय चर्चा कर रहे हैं। भक्तगण फर्श पर बैठे हुए हैं।

कर्मत्याग कब होता है ?

मास्टर खड़े खड़े आश्चर्यमुग्ध होकर देखने लगे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो साक्षात् शुकदेव भगवत्-प्रसंग कर रहे हैं तथा उस स्थान पर सभी तीर्थों का समागम हुआ है; अथवा मानो श्रीचैतन्यदेव पुरीधाम में रामानन्द, स्वरूप आदि भक्तों के साथ बैठकर भगवान् का नामगुणगान कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे थे—"जब एक बार हरिनाम या रामनाम लेते ही रोमांच होता है, आँसुओं की धारा बहने लगती है, तब निश्चित समझो कि सन्ध्यादि कर्मों की आवश्यकता नहीं रह जाती। तब कर्म-त्याग का अधिकार पैदा हो जाता है—कर्म आप ही आप छूट जाते हैं। उस अवस्था में केवल रामनाम, हरिनाम, या केवल ओंकार का जप करना ही पर्याप्त है।" आपने फिर कहा—"सन्ध्यावन्दन का लय गायत्री में होता है और गायत्री का ओंकार में।"

मास्टर सिधू* के साथ वराहनगर से निकलकर एक बाग से दूसरे बाग में घूमते हुए यहाँ आ पहुँचे थे। रविवार का दिन था—छुट्टी थी, इसलिए घूमने निकले थे। थोड़ी देर पहले श्री प्रसन्न बनर्जी के बाग में घूम रहे थे। उस समय सिधू ने कहा, "गंगाजी के किनारे एक सुन्दर बगीचा है, देखने चलियेगा ? वहाँ एक परमहंस रहा करते हैं।"

बगीचे के सामनेवाले फाटक से प्रवेश कर मास्टर और सिधू सीधे श्रीरामकृष्णदेव के कमरे में आये। मास्टर विस्मित होकर देखते हुए सोचने लगे—'वाह, कैसा सुन्दर स्थान है ! कितने अच्छे महात्मा हैं ! कैसी सुन्दर वाणी है ! यहाँ से हिलने तक

* श्री सिद्धेश्वर मजुमदार—ये उत्तर वराहनगर में रहते थे।

की इच्छा नहीं होती।' थोड़ी देर बाद उन्होंने मन में विचार किया, 'एक बार देख आऊँ, कहाँ आया हूँ। फिर यहाँ आकर बैठूँगा।'

मास्टर सिधू के साथ कमरे के बाहर निकले। ठीक उसी समय आरती की मधुर ध्वनि आरम्भ हुई। एक साथ घण्टे, घड़ियाल, झाँझ, मृदंग आदि बज उठे। उद्यान की दक्षिण सीमा से नौबत की मधुर ध्वनि गूँज उठी। वह ध्वनि मानो भागीरथी के वक्ष पर से संचार करती हुई कहीं दूर जाकर विलीन होने लगी। वसन्तसमीर पुष्पों की सुगन्ध लिये मन्द मन्द बह रहा था। चारों ओर ज्योत्स्ना छा गयी। प्रकृति में सर्वत्र मानो देवताओं की आरती का आयोजन हो रहा था। बारह शिव-मन्दिर, श्रीराधाकान्त-मन्दिर और श्रीभवतारिणी के मन्दिर में आरती देखकर मास्टर को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सिधू ने बताया, "यह रासमणि का देवस्थान है। यहाँ देवताओं की नित्य सेवापूजा होती है। रोज कई लोग आते हैं, कई साधु-सन्त, ब्राह्मण, भिखारी यहाँ प्रसाद पाते हैं।"

भवतारिणी के मन्दिर से निकलकर दोनों बातचीत करते करते पक्के विस्तीर्ण आँगन पर से चलते हुए पुनः श्रीरामकृष्ण के कमरे के सामने आ पहुँचे। उन्होंने देखा, कमरे का दरवाजा अब भिड़ा लिया गया है।

कमरे के भीतर अभी धूप दिखाया गया है। मास्टर अंग्रेजी पढ़े-लिखे आदमी हैं। सहसा घर में घुस न सकते थे। द्वार पर वृन्दा (कहारिन) खड़ी थी। मास्टर ने पूछा, "साधु महाराज क्या इस समय कमरे के भीतर हैं?" उसने कहा, "हाँ, वे भीतर हैं।"

मास्टर– ये यहाँ कब से हैं ?

वृन्दा– ये ? बहुत दिनों से हैं ।

मास्टर– अच्छा, तो पुस्तकें खूब पढ़ते होंगे ?

वृन्दा– पुस्तकें ? उनके मुँह में सब कुछ है ।

मास्टर हाल ही में पढ़ाई-लिखाई पूरी कर आये थे । श्रीरामकृष्ण पुस्तकें नहीं पढ़ते, यह सुनकर उन्हें और भी आश्चर्य हुआ ।

मास्टर–अब तो ये शायद सन्ध्या करेंगे ! क्या हम भीतर जा सकते हैं ? एक बार खबर दे दो न ।

वृन्दा–तुम लोग जाते क्यों नहीं ? —जाओ, भीतर बैठो ।

तब दोनों ने कमरे में प्रवेश किया । देखा, कमरे में और कोई नहीं है । श्रीरामकृष्ण अकेले तखत पर बैठे हैं । कमरे में धूप की सुगन्ध भर रही है । सभी दरवाज बन्द हैं । मास्टर ने अन्दर आते ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया । श्रीरामकृष्ण द्वारा बैठने की आज्ञा पाकर वे और सिधू फर्श पर बैठ गये । श्रीरामकृष्ण ने पूछा, कहाँ रहते हो, क्या करते हो, वराहनगर क्यों आये इत्यादि । मास्टर ने कुल परिचय दिया । वे देखने लगे कि श्रीरामकृष्ण का मन बीच बीच में मानो दूसरी ओर खिंच रहा है । उन्हें बाद में मालूम हुआ कि इसी को 'भाव' कहते हैं । मानो कोई बंसी डालकर मछली पकड़ने बैठा है; जब मछली आकर काँटे में लगे चारे को खाने लगती है ओर बंसी का शोला हिलने लगता है, उस समय वह आदमी किस प्रकार व्यस्त होकर बंसी को पकड़े हुए एकाग्र चित्त से शोले की ओर टक लगाकर देखने लगता है, —किसी से बातचीत नहीं करता; यह भी ठीक उसी प्रकार का भाव था। बाद में मास्टर ने सुना और देखा कि

सन्ध्या के बाद श्रीरामकृष्ण को इस प्रकार का भावान्तर प्रायः प्रतिदिन हुआ करता है, कभी कभी तो वे पूरी तरह बाह्यज्ञान-शून्य हो जाते हैं।

मास्टर– आप तो अब सन्ध्या करेंगे, हम अब चलें।

श्रीरामकृष्ण (भावस्थ)—नहीं,—सन्ध्या—ऐसा कुछ नहीं।

और कुछ देर बातचीत होने के बाद मास्टर ने प्रणाम किया और चलना चाहा। श्रीरामकृष्ण ने कहा, "फिर आना।"

मास्टर लौटते समय सोचने लगे—"ये सौम्यदर्शन पुरुष कौन हैं? —इनके पास फिर लौट जाने की इच्छा हो रही है! क्या बिना पुस्तकों के पढ़े भी मनुष्य महान् बन सकता है? कितना आश्चर्य है, मुझे यहाँ फिर आने की इच्छा हो रही है! इन्होंने भी कहा, 'फिर आना'! कल या परसों सबेरे फिर आऊँगा।"

———

परिच्छेद २

द्वितीय दर्शन

(१)

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

द्वितीय दर्शन का प्रसंग । सुबह का समय था, —आठ बजे होंगे । श्रीरामकृष्ण उस समय दाढ़ी बनवाने की तैयारी में थे । तब भी थोड़ी ठण्डी थी । इसलिए वे शरीर पर गरम किनारीदार शाल ओढ़े हुए थे । मास्टर को देखकर उन्होंने कहा, "तुम आये हो ? अच्छा, यहाँ बैठो ।"

यह वार्तालाप श्रीरामकृष्ण के कमरे के दक्षिण-पूर्व बरामदे में हो रहा था । नाई आया हुआ था । श्रीरामकृष्ण उसी बरामदें में बैठकर दाढ़ी बनवाने लगे । बीच बीच में वे मास्टर के साथ बातचीत कर रहे थे । शरीर पर शाल थी, पैर में जूतियाँ । सहास्यवदन थे । बात करते समय कुछ तुतलाते थे ।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—क्यों जी, तुम्हारा घर कहाँ है ?

मास्टर—जी कलकत्ते में ।

श्रीरामकृष्ण—यहाँ कहाँ आये हो ?

मास्टर—यहाँ वराहनगर में बड़ी दीदी के घर आया हूँ,—ईशान कविराज के यहाँ ।

श्रीरामकृष्ण—ओहो, ईशान के यहाँ ।

श्री केशवचन्द्र सेन के लिए श्रीरामकृष्ण का जगन्माता के पास रोना

श्रीरामकृष्ण—क्यों जी, केशव अब कैसा है—बहुत बीमार था ।

मास्टर—जी हाँ, मैंने भी सुना था कि बीमार हैं, पर अब शायद अच्छे हैं ।

श्रीरामकृष्ण—मैंने तो केशव के लिए माँ के निकट नारियल और चीनी की पूजा मानी थी। रात को जब नींद उचट जाती थी, तब माँ के पास रोता और कहता था,—'माँ, केशव की बीमारी अच्छी कर दे। केशव अगर न रहा तो मैं कलकत्ते जाकर बातचीत किससे करूँगा?' इसी से तो नारियल-चीनी मानी थी।

"क्यों जी, क्या कोई कुक साहब आया है? सुना वह लेक्चर (व्याख्यान) देता है। मुझे केशव जहाज पर चढ़ाकर ले गया था। कुक साहब भी साथ था।"

मास्टर—जी हाँ, ऐसा ही कुछ मैंने भी सुना था। परन्तु मैंने उनका लेक्चर नहीं सुना। उनके विषय में ज्यादा कुछ मैं नहीं जानता।

गृहस्थ तथा पिता का कर्तव्य

श्रीरामकृष्ण—प्रताप का भाई आया था। कुछ दिन यहाँ रहा। काम-काज कुछ है नहीं। कहता है, मैं यहाँ रहूँगा। सुनते हैं, जोरू-जाता सब को ससुराल भेज दिया है। कच्चे-बच्चे कई हैं। मैंने खूब डाँटा। भला देखो तो, लड़के-बच्चे हुए हैं, उनकी देख-रेख, उनका पालपोष तुम न करोगे तो क्या कोई गाँववाला करेगा? शर्म नहीं आती, बीवी-बच्चों को ससुर के यहाँ रख दिया है, उन्हें कोई और पाल रहा है। बहुत डाँटा और काम-काज खोज लेने को कहा, तब यहाँ से गया।

(२)

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

मास्टर का तिरस्कार तथा उनका अहंकार चूर्ण करना

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—क्या तुम्हारा विवाह हो गया है?

मास्टर–जी हाँ ।

श्रीरामकृष्ण (चौंककर)–अरे रामलाल, अरे अपना विवाह तो इसने कर डाला ।

रामलाल श्रीरामकृष्ण के भतीजे और कालीजी के पुजारी हैं ।

मास्टर घोर अपराधी जैसे सिर नीचा किये चुपचाप बैठे रहे। सोचने लगे, विवाह करना क्या इतना वड़ा अपराध है ?

श्रीरामकृष्ण ने फिर पूछा—"क्या तुम्हारे लड़के-बच्चे भी हैं ?"

मास्टर का कलेजा काँप उठा । डरते हुए बोले—"जी हाँ, लड़के-बच्चे हुए हैं ।" श्रीरामकृष्ण ने फिर दुःख के साथ कहा—"अरे लड़के भी हो गये !"

इस तरह तिरस्कृत होकर मास्टर चुपचाप बैठे रहे । उनका अहंकार चूर्ण होने लगा । कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण सस्नेह कहने लगे, "देखो, तुम्हारे लक्षण अच्छे हैं, यह सब मैं किसी के कपाल, आँखें आदि को देखते ही जान लेता हूँ । अच्छा, तुम्हारी स्त्री कैसी है ? विद्या-शक्ति है या अविद्या-शक्ति ?

ज्ञान क्या है ?

मास्टर–जी अच्छी है, पर अज्ञान है ।

श्रीरामकृष्ण (अप्रसन्न होकर)–और तुम ज्ञानी हो ?

मास्टर नहीं जानते, ज्ञान किसे कहते हैं और अज्ञान किसे । अभी तो उनकी धारणा यही है कि कोई लिख-पढ़ ले तो मानो ज्ञानी हो गया । उनका यह भ्रम दूर तब हुआ जव उन्होंने सुना कि ईश्वर को जान लेना ज्ञान है और न जानना अज्ञान । श्रीरामकृष्ण की इस बात से कि 'तुम ज्ञानी हो' मास्टर के अहंकार पर फिर धक्का लगा ।

मूर्तिपूजा

श्रीरामकृष्ण–अच्छा, तुम्हारा विश्वास 'साकार' पर है या 'निराकार' पर ?

मास्टर मन ही मन सोचने लगे, 'यदि साकार पर विश्वास हो तो क्या निराकार पर भी विश्वास हो सकता है ? ईश्वर निराकार है––यदि ऐसा विश्वास हो तो ईश्वर साकार है ऐसा भी विश्वास कभी हो सकता है ? ये दोनों विरोधी भाव किस प्रकार सत्य हो सकते हैं ? सफेद दूध क्या कभी काला हो सकता है ?'

मास्टर–निराकार मुझे अधिक पसन्द है ।

श्रीरामकृष्ण–अच्छी बात है । किसी एक पर विश्वास रखने से काम हो जायगा । निराकार पर विश्वास करते हो, अच्छा है । पर यह न कहना कि यही सत्य है, और सब झूठ । यह समझना कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है । जिस पर तुम्हारा विश्वास हो उसी को पकड़े रहो ।

दोनों सत्य हैं, यह सुनकर मास्टर चकित हो गये । यह बात उनके किताबी ज्ञान में तो थी ही नहीं ! तीसरी बार धक्का खाकर उनका अहंकार चूर्ण हुआ, पर अभी कुछ रह गया था; इसलिए फिर वे तर्क करने को आगे बढ़े ।

मास्टर–अच्छा, वे साकार हैं, यह विश्वास मानो हुआ । पर मिट्टी की या पत्थर की मूर्ति तो वे हैं नहीं ।

श्रीरामकृष्ण–मिट्टी की मूर्ति वे क्यों होने लगे ? पत्थर या मिट्टी नहीं, चिन्मयी मूर्ति ।

चिन्मयी मूर्ति, यह बात मास्टर न समझ सके । उन्होंने कहा–– "अच्छा, जो मिट्टी की मूर्ति पूजते हैं, उन्हें समझाना भी तो चाहिए कि मिट्टी की मूर्ति ईश्वर नहीं है और मूर्ति के सामने ईश्वर की ही पूजा करना ठीक है, किन्तु मूर्ति की नहीं !"

लेक्चर तथा श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण (अप्रसन्न होकर)—तुम्हारे कलकत्ते के आदमियों में यही एक धुन सवार है,—सिर्फ लेक्चर देना और दूसरों को समझाना ! अपने को कौन समझाये, इसका ठिकाना नहीं । अजी समझानेवाले तुम हो कौन ? जिनका संसार है वे समझायेंगे । जिन्होंने सृष्टि रची है, सूर्य-चन्द्र, मनुष्य, जीव-जन्तु बनाये हैं, जीव-जन्तुओं के भोजन के उपाय सोचे हैं, उनका पालन करने के लिए माता-पिता बनाये हैं, माता-पिता में स्नेह का संचार किया है—वे समझायेंगे । इतने उपाय तो उन्होंने किये और यह उपाय वे न करेंगे ? अगर समझाने की जरूरत होगी तो वे समझायेंगे, क्योंकि वे अन्तर्यामी हैं । यदि मिट्टी की मूर्ति पूजने में कोई भूल होगी तो क्या वे नहीं जानते कि पूजा उन्हीं की हो रही है ? वे उसी पूजा से सन्तुष्ट होते हैं । इसके लिए तुम्हारा सिर क्यों धमक रहा है ? तुम यह चेष्टा करो जिससे तुम्हें ज्ञान हो—भक्ति हो ।

अब शायद मास्टर का अहंकार बिलकुल चूर्ण हो गया ।

वे सोचने लगे, 'ये जो कह रहे हैं वह ठीक ही तो है । मुझे दूसरों को समझाने की क्या जरूरत ? क्या मैंने ईश्वर को जान लिया है, या मुझमें उनके प्रति विशुद्ध भक्ति उत्पन्न हुई है ? स्वयं के सोने के लिए जगह नहीं है, और लोगों को न्यौता दे रहे हैं! स्वयं को कुछ ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं, और दूसरों को समझाने चले हैं ! वास्तव में कितनी लज्जा की बात है, कितनी हीन बुद्धि का काम है । क्या यह गणित, इतिहास या साहित्य है कि दूसरों को समझा दे ? यह ईश्वरीय ज्ञान है । ये जो बातें कह रहे हैं, वे कैसे हृदय को स्पर्श कर रही हैं !'

श्रीरामकृष्ण के साथ मास्टर का यही प्रथम और यही अन्तिम तर्कवाद था।

श्रीरामकृष्ण–तुम मिट्टी की मूर्ति की पूजा की बात कहते थे। यदि मिट्टी ही की हो तो भी उस पूजा की जरूरत है। देखो, सब प्रकार की पूजाओं की योजना ईश्वर ने ही की है। जिनका यह संसार है, उन्होंने ही यह सब किया है। जो जैसा अधिकारी है उसके लिए वैसा ही अनुष्ठान ईश्वर ने किया है। लड़के को जो भोजन रुचता है और जो उसे सह्य है, वही भोजन उसके लिए माँ पकाती है, समझे ?

मास्टर–जी हाँ।

(३)

संसारार्णवघोरे यः कर्णधारस्वरूपकः ।
नमोऽस्तु रामकृष्णाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

भक्ति का उपाय

मास्टर (विनीत भाव से)–ईश्वर में मन किस तरह लगे ?

श्रीरामकृष्ण–सर्वदा ईश्वर का नाम-गुणगान करना चाहिए, सत्संग करना चाहिए—बीच बीच में भक्तों और साधुओं से मिलना चाहिए। संसार में दिनरात विषय के भीतर पड़े रहने से मन ईश्वर में नहीं लगता। कभी कभी निर्जन स्थान में जाकर ईश्वर की चिन्ता करना बहुत जरूरी है। प्रथम अवस्था में बीच बीच में एकान्तवास किये बिना ईश्वर में मन लगाना बड़ा कठिन है।

"पौधे को चारों ओर से रूँधना पड़ता है, नहीं तो बकरी चर लेगी।

"ध्यान करना चाहिए मन में, कोने में और वन में। और सर्वदा सत्-असत् विचार करना चाहिए। ईश्वर ही सत् अथवा

नित्य वस्तु है, और सब असत्, अनित्य। बारम्बार इस प्रकार विचार करते हुए मन से अनित्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिए।

मास्टर (विनीत भाव से)—संसार में किस तरह रहना चाहिए ?

गृहस्थ तथा संन्यास। उपाय—निर्जन में साधना

श्रीरामकृष्ण—सब काम करना चाहिए परन्तु मन ईश्वर में रखना चाहिए। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सब के साथ रहते हुए सब की सेवा करनी चाहिए परन्तु मन में इस ज्ञान को दृढ़ रखना चाहिए की ये हमारे कोई नहीं हैं।

"किसी धनी के घर की दासी उसके घर का कुल काम करती है, किन्तु उसका मन अपने गाँव के घर पर लगा रहता है। मालिक के लड़कों का वह अपने लड़कों की तरह लालन-पालन करती है, उन्हें 'मेरा मुन्ना', 'मेरा राजा' कहती है, पर मन ही मन खूब जानती है कि ये मेरे कोई नहीं हैं।"

"कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर जहाँ उसके अण्डे रखे हैं। संसार का काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।

"बिना भगवद्-भक्ति पाये यदि संसार में रहोगे तो दिनोंदिन उलझनों में फँसते जाओगे और यहाँ तक फँस जाओगे कि फिर पिण्ड छुड़ाना कठिन होगा। रोग, शोक, तापादि से अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना ही करोगे, आसक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

"हाथों में तेल लगाकर कटहल काटना चाहिए। नहीं तो, हाथों में उसका दूध चिपक जाता है। भगवद्-भक्तिरूपी तेल हाथों में लगाकर संसाररूपी कटहल के लिए हाथ बढ़ाओ।

"परन्तु यदि भक्ति पाने की इच्छा हो तो निर्जन में रहना होगा। मक्खन खाने की इच्छा हो, तो दही निर्जन में ही जमाया जाता है। हिलाने-डुलाने से दही नहीं जमता। इसके बाद निर्जन में ही सब काम छोड़कर दही मथा जाता है, तभी मक्खन निकलता है।

"देखो, निर्जन में ही ईश्वर का चिन्तन करने से यह मन भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का अधिकारी होता है। इस मन को यदि संसार में डाल रखोगे तो यह नीच हो जायगा। संसार में कामिनी-कांचन के चिन्तन के सिवा और है ही क्या ?

"संसार जल है और मन मानो दूध। यदि पानी में डाल दोगे तो दूध पानी में मिल जायगा, पर उसी दूध का निर्जन में मक्खन बनाकर यदि पानी में छोड़ोगे तो मक्खन पानी में उतराता रहेगा। इस प्रकार निर्जन में साधना द्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके यदि संसार में रहोगे भी तो संसार से निर्लिप्त रहोगे।

"साथ ही साथ विचार भी खूब करना चाहिए। कामिनी और कांचन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है ? रोटी, दाल, कपड़े, रहने की जगह—बस यहीं तक। रुपये से ईश्वर नहीं मिलते। तो रुपया जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। इसी को विचार कहते हैं—समझे ?"

मास्टर—जी हाँ, अभी अभी मैंने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक पढ़ा है। उसमें 'वस्तु-विचार' है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वस्तु-विचार! देखो, रुपये में ही क्या है और सुन्दरी की देह में भी क्या है। विचार करो, सुन्दरी की देह में केवल हाड़, मांस, चरबी, मल, मूत्र—यही सब है। ईश्वर को छोड़ इन्हीं वस्तुओं में मनुष्य मन क्यों लगाता है? क्यों वह ईश्वर को भूल जाता है?

ईश्वर-दर्शन के उपाय

मास्टर—क्या ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, हो सकते हैं। बीच बीच में एकान्तवास, उनका नाम-गुणगान और वस्तु-विचार करने से ईश्वर के दर्शन होते हैं।

मास्टर—कैसी अवस्था हो तो ईश्वर के दर्शन हों?

श्रीरामकृष्ण—खूब व्याकुल होकर रोने से उनके दर्शन होते हैं। स्त्री या लड़के के लिए लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, रुपये के लिए रोते हुए आँखें लाल कर लेते हैं, पर ईश्वर के लिए कोई कब रोता है? ईश्वर को व्याकुल होकर पुकारना चाहिए।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण गाने लगे—

(भावार्थ)—"मन, तू सच्ची व्याकुलता के साथ पुकारकर तो देख। भला देखें, वह श्यामा बिना सुने कैसे रह सकती हैं! तुझे यदि माँ काली के दर्शन की अत्यन्त तीव्र इच्छा हो तो जवापुष्प और बिल्वपत्र लेकर उन्हें भक्तिचन्दन से लिप्त कर माँ के चरणों में पुष्पांजलि दे।"

"व्याकुलता हुई कि मानो आसमान पर सुबह की ललाई छा गयी। शीघ्र ही सूर्य भगवान् निकलते हैं, व्याकुलता के बाद ही भगवद्दर्शन होते हैं।

"विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की और पति पर सती की—यह तीन प्रकार की चाह एकत्रित होकर जब ईश्वर की ओर मुड़ती है तभी ईश्वर मिलते हैं।

"बात यह है कि ईश्वर को प्यार करना चाहिए। विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की और पति पर सती की जो प्रीति है, उसे एकत्रित करने से जितनी प्रीति होती है, उतनी ही प्रीति से

ईश्वर को बुलाने से उस प्रेम का महा आकर्षण ईश्वर को खींच लाता है।

"व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। बिल्ली का बच्चा 'मिऊँ-मिऊँ' करके माँ को पुकारता भर है। उसकी माँ जहाँ उसे रखती, वहीं वह रहता है ---कभी राख की ढेरी पर कभी जमीन पर, तो कभी बिछौने पर। यदि उसे कष्ट होता है तो बस वह "मिऊँ-मिऊँ' करता है और कुछ नहीं जानता। माँ चाहे जहाँ रहे "मिऊँ-मिऊँ' सुनकर आ जाती है।"

परिच्छेद ३

तृतीय दर्शन

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।। (गीता, ६।२९)

नरेन्द्र, भवनाथ तथा मास्टर

मास्टर उस समय वराहनगर में अपनी बहन के यहाँ ठहरे थे। जब से श्रीरामकृष्ण के दर्शन हुए तब से मन में सब समय उन्हीं का चिन्तन चल रहा है। मानो आँखों के सामने सदा वही आनन्दमय रूप दिखायी दे रहा हो, कानों में वही अमृतमयी वाणी सुनायी दे रही हो। मास्टर सोचने लगे, इस निर्धन ब्राह्मण ने इन गम्भीर आध्यात्मिक तत्त्वों को कैसे खोज निकाला, किस प्रकार उनका ज्ञान प्राप्त किया? इसके पहले उन्होंने इतनी सरलता से इन गूढ़ तत्त्वों को समझाते हुए कभी किसी को नहीं देखा था। मास्टर दिनरात यही विचार करने लगे कि कब उनके पास जाऊँ और उन्हें देखूँ।

देखते ही देखते रविवार (५ मार्च) आ गया। वराहनगर के नेपालबाबू के साथ दोपहर को तीन-चार बजे के लगभग वे दक्षिणेश्वर में आ पहुँचे। देखा, श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटे तखत के ऊपर विराजमान हैं। कमरा भक्तों से ठसाठस भरा हुआ है। रविवार के कारण अवसर पाकर कई भक्त दर्शन के लिए आये हैं। उस समय मास्टर का किसी के साथ परिचय नहीं हुआ था; वे भीड़ में एक ओर जाकर बैठ गये। देखा, श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ प्रसन्नमुख हो वार्तालाप कर रहे हैं।

एक उन्नीस साल के लड़के की ओर देखते हुए श्रीरामकृष्ण

बड़े आनन्द के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। लड़के का नाम है नरेन्द्र‡ । अभी ये कालेज में पढ़ते हैं और साधारण ब्राह्मसमाज में कभी कभी जाते हैं। इनकी आँखें पानीदार और बातें जोशीली हैं। चेहरे पर भक्तिभाव है।

मास्टर को अनुमान से मालूम हुआ कि विषयासक्त संसारियों की बातें चल रही हैं। ये लोग ईश्वरभक्त, धर्मपरायण व्यक्तियों की निन्दा किया करते हैं। फिर संसार में कितने दुर्जन व्यक्ति हैं, उनके साथ किस प्रकार बर्ताव करना चाहिए—ये सब बातें होने लगीं।

श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्र से)– क्यों नरेन्द्र, भला तू क्या कहेगा ? संसारी मनुष्य तो न ज़ाने क्या क्या कहते हैं। पर याद रहे कि हाथी जब जाता है, तब उसके पीछे पीछे कितने ही जानवर बेतरह चिल्लाते हैं। पर हाथी लौटकर देखता तक नहीं। तेरी कोई निन्दा करे तो तू क्या समझेगा ?

नरेन्द्र—मैं तो यह समझूंगा कि कुत्ते भौंकते हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—अरे नहीं, यहाँ तक नहीं। (सब का हास्य।) सर्वभूतों में परमात्मा का ही वास है। पर मेल-मिलाप करना हो तो भले आदमियों से ही करना चाहिए, बुरे आदमियों से अलग ही रहना चाहिए। बाघ में भी परमात्मा का वास है, इसलिए क्या बाघ को भी गले लगाना चाहिए ? (लोग हँस पड़े।) यदि कहो कि बाघ भी तो नारायण है, इसलिए क्यों भागें ? इसका उत्तर यह है कि जो लोग कहते हैं कि भाग चलो, वे भी तो नारायण हैं, उनकी बात क्यों न मानो ?

‡बाद में ये ही स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

"एक कहानी सुनो। किसी जंगल में एक महात्मा थे। उनके कई शिष्य थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि सर्वभूतों में नारायण का वास है, यह जानकर सभी को नमस्कार करो। एक दिन एक शिष्य हवन के लिए जंगल में लकड़ी लेने गया। उस समय जंगल में यह शोरगुल मचा था कि कोई कहीं हो तो भागो, पागल हाथी जा रहा है। सभी भाग गये, पर शिष्य न भागा। उसे तो यह विश्वास था कि हाथी भी नारायण है, इसलिए भागने का क्या काम? वह खड़ा ही रहा। हाथी को नमस्कार किया और उसकी स्तुति करने लगा। इधर महावत के ऊँची आवाज लगाने पर भी कि भागो भागो, उसने पैर न उठाये। पास पहुँचकर हाथी ने उसे सूँड़ से लपेटकर एक ओर फेंक दिया और अपना रास्ता लिया। शिष्य घायल हो गया और बेहोश पड़ा रहा।

"यह खबर गुरु के कान तक पहुँची। वे अन्य शिष्यों को साथ लेकर वहाँ गये और उसे आश्रम में उठा लाये। वहाँ उसकी दवा-दारू की, तब वह होश में आया। कुछ देर बाद किसी ने उससे पूछा, हाथी को आते सुनकर तुम वहाँ से हट क्यों न गये? उसने कहा कि गुरुजी ने कह तो दिया था कि जीव, जन्तु आदि सब में परमात्मा का ही वास है, नारायण ही सब कुछ हुए हैं, इसी से हाथी नारायण को आते देख मैं नहीं भागा। गुरुजी पास ही थे। उन्होंने कहा—बेटा, हाथी नारायण आ रहे थे, ठीक है; पर महावत नारायण ने तो तुम्हें मना किया था। यदि सभी नारायण हैं तो उस महावत की बात पर विश्वास क्यों न किया? महावत नारायण की भी बात मान लेनी चाहिए थी। (सब हँस पड़े।)

"शास्त्रों में है 'आपो नारायण:'—जल नारायण है। परन्तु किसी जल से देवता की सेवा होती है और किसी से लोग मुँह-हाथ धोते हैं, कपड़े धोते हैं और बर्तन माँजते हैं; किन्तु वह जल न पीते हैं, न ठाकुरजी की सेवा में ही लगाते हैं। इसी प्रकार साधु-असाधु, भक्त-अभक्त सभी के हृदय में नारायण का वास है; किन्तु असाधुओं, अभक्तों से व्यवहार या अधिक हेल-मेल नहीं चल सकता। किसी से सिर्फ बातचीत भर कर लेनी चाहिए और किसी से वह भी नहीं। ऐसे आदमियों से अलग रहना चाहिए।"

गृहस्थ तथा तमोगुण

एक भक्त—महाराज, यदि दुष्ट जन अनिष्ट करने पर उतारू हों या कर डालें तो क्या चुपचाप बैठे रहना चाहिए ?

श्रीरामकृष्ण—दुष्ट जनों के बीच रहने से उनसे अपना जी बचाने के लिए कुछ तमोगुण दिखाना चाहिए; परन्तु कोई अनर्थ कर सकता है, यह सोचकर उलटा उसी का अनर्थ न करना चाहिए।

"किसी जगल में कुछ चरवाहे गौएँ चराते थे। वहाँ एक बड़ा विषधर सर्प रहता था। उसके डर से लोग बड़ी सावधानी से आया-जाया करते थे। किसी दिन एक ब्रह्मचारीजी उसी रास्ते से आ रहे थे। चरवाहे दौड़ते हुए उनके पास आये और उनसे कहा—'महाराज, इस रास्ते से न जाइये; यहाँ एक साँप रहता है, बड़ा विषधर है।' ब्रह्मचारीजी ने कहा—'तो क्या हुआ, बेटा, मुझे कोई डर नहीं, मैं मन्त्र जानता हूँ।' यह कहकर ब्रह्मचारीजी उसी ओर चले गये। डर के मारे चरवाहे उनके साथ न गये। इधर साँप फन उठाये झपटता चला आ रहा था, परन्तु पास पहुँचने के पहले ही ब्रह्मचारीजी ने मन्त्र पढ़ा। साँप आकर

उनके पैरों पर लोटने लगा। ब्रह्मचारीजी ने कहा—'तू भला हिंसा क्यों करता है ? ले, मैं तुझे मन्त्र देता हूँ। इस मन्त्र को जपेगा तो ईश्वर पर भक्ति होगी, तुझे ईश्वर के दर्शन होंगे; फिर यह हिंसावृत्ति न रह जायगी।' यह कहकर ब्रह्मचारीजी ने साँप को मन्त्र दिया। मन्त्र पाकर साँप ने गुरु को प्रणाम किया, और पूछा—'भगवन्, मैं क्या साधना करूँ ?' गुरु ने कहा—'इस मन्त्र को जप और हिंसा छोड़ दे।' चलते समय ब्रह्मचारीजी फिर आने का वचन दे गये।

"इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। चरवाहों ने देखा कि साँप अब काटता नहीं, ढेला मारने पर भी गुस्सा नहीं होता, केंचुए की तरह हो गया है। एक दिन चरवाहों ने उसके पास जाकर पूँछ पकड़कर उसे घुमाया और वहीं पटक दिया। साँप के मुँह से खून बह चला, वह बेहोश पड़ा रहा; हिल-डुल तक न सकता था। चरवाहों ने सोचा कि साँप मर गया और यह सोचकर वहाँ से वे चले गये।

"जब बहुत रात बीती तब साँप होश में आया और धीरे धीरे अपने बिल के भीतर गया। देह चूर चूर हो गयी थी, हिलने तक की शक्ति नहीं रह गयी थी। बहुत दिनों के बाद जब चोट कुछ अच्छी हुई तब भोजन की खोज में बाहर निकला। जब से मारा गया तब से सिर्फ रात को ही बाहर निकलता था। हिंसा करता ही न था। सिर्फ घास-फूस, फल-फूल खाकर रह जाता था।

"सालभर बाद ब्रह्मचारी फिर आये। आते ही साँप की खोज करने लगे। चरवाहों ने कहा, 'वह तो मर गया है,' पर ब्रह्मचारीजी को इस बात पर विश्वास न आया। वे जानते थे कि जो मन्त्र वे दे गये हैं, वह जब तक सिद्ध न होगा तब तक

उसकी देह छूट नहीं सकती। ढूंढ़ते हुए उसी ओर वे अपने दिये हुए नाम से साँप को पुकारने लगे। बिल से गुरुदेव की आवाज सुनकर साँप निकल आया और बड़े भक्तिभाव से प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी ने पूछा, 'क्यों, कैसा है?' उसने कहा, 'जी अच्छा हूँ।' ब्रह्मचारीजी—'तो तू इतना दुबला क्यों हो गया?' साँप ने कहा—'महाराज, जब से आप आज्ञा दे गये, तब से मैं हिंसा नहीं करता; फल-फूल, घास-पात खाकर पेट भर लेता हूँ; इसीलिए शायद दुवला हो गया हूँ।' सतोगुण बढ़ जाने के कारण किसी पर वह क्रोध न कर सकता था। इसी से मार की बात भी वह भूल गया था। ब्रह्मचारीजी ने कहा, 'सिर्फ न खाने ही से किसी की यह दशा नहीं होती, कोई दूसरा कारण अवश्य होगा, तू अच्छी तरह सोच तो।' साँप को चरवाहों की मार याद आ गयी। उसने कहा— 'हाँ महाराज, अब याद आयी, चरवाहों ने एक दिन मुझे पटक-पटककर मारा था। उन अज्ञानियों को तो मेरे मन की अवस्था मालूम थी नहीं। वे क्या जानें कि मैंने हिंसा करना छोड़ दिया है!' ब्रह्मचारीजी बोले—'राम राम, तू ऐसा मूर्ख है? अपनी रक्षा करना भी तू नहीं जानता? मैंने तो तुझे काटने ही को मना किया था, पर फुफकारने से तुझे कब रोका था? फुफकार मारकर उन्हें भय क्यों नहीं दिखाया?'

"इस तरह दुष्टों के पास फुफकार मारना चाहिए, भय दिखाना चाहिए, जिससे कि वे अनिष्ट न कर बैठें; पर उनमें विष न डालना चाहिए, उनका अनिष्ट न करना चाहिए।"

भिन्न भिन्न स्वभाव। क्या सब आदमी बराबर हैं?

श्रीरामकृष्ण—परमात्मा की सृष्टि में नाना प्रकार के जीव-जन्तु और पेड़-पौधे है। पशुओं में अच्छे हैं और बुरे भी। उनमें

बाघ जैसा हिंस्र प्राणी भी है। पेड़ों में अमृत जैसे फल लगें ऐसे भी पेड़ हैं और विष जैसे फल हों ऐसे भी हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में भी भले-बुरे और साधु-असाधु हैं। उनमें संसारी जीव भी हैं और भक्त भी।

"जीव चार प्रकार के होते हैं। बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य।

"नारदादि नित्यजीव हैं। ऐसे जीव औरों के हित के लिए उन्हें शिक्षा देने के लिए संसार में रहते हैं।

"बद्ध जीव विषय में फँसा रहता है। वह ईश्वर को भूल जाता है, भगवच्चिन्तन वह कभी नहीं करता।

"मुमुक्षु जीव वह है जो मुक्ति की इच्छा रखता है। मुमुक्षुओं में से कोई कोई मुक्त हो जाते हैं, कोई कोई नहीं हो सकते।

"मुक्त जीव संसार के कामिनी-कांचन में नहीं फँसते, जैसे साधु-महात्मा। इनके मन में विषय-बुद्धि नहीं रहती। ये सदा ईश्वर के ही पादपद्मों की चिन्ता करते हैं।

"जब जाल तालाब में फेंका जाता है, तब जो दो-चार होशियार मछलियाँ होती हैं, वे जाल में नहीं आतीं। यह नित्य जीवों की उपमा है। किन्तु अनेक मछलियाँ जाल में फँस जाती हैं। इनमें से कुछ निकल भागने की भी चेष्टा करती हैं। यह मुमुक्षुओं की उपमा है। परन्तु सब मछलियाँ नहीं भाग सकतीं। केवल दो चार उछल-उछलकर जाल से बाहर हो जाती हैं। तब मछुआ कहता है, अरे एक बड़ी मछली बह गयी। किन्तु जो जाल में पडी हैं, उनमें से अधिकांश मछलियाँ निकल नहीं सकतीं। वे भागने की चेष्टा भी नहीं करतीं, जाल को मुँह में फाँसकर मिट्टी के नीचे सिर घुसेड़कर चुपचाप पड़ी रहती हैं और सोचती हैं, अब कोई भय की बात नहीं, बड़े आनन्द में हैं। पर वे नहीं जानतीं कि

मछुआ घसीटकर उन्हें ले जायगा। यह बद्ध जीवों की उपमा है।

संसारी मनुष्य—बद्ध जीव

"बद्ध जीव संसार के कामिनी-कांचन में फँसे हैं। उनके हाथ पैर बँधे हैं; किन्तु फिर भी वे सोचते हैं कि संसार में कामिनी-कांचन में ही सुख है और यहाँ हम निर्भय हैं। वे नहीं जानते, इन्हीं में उनकी मृत्यु होगी। बद्ध जीव जब मरता है, तब उसकी स्त्री कहती है, 'तुम तो चले, पर मेरे लिए क्या कर गये?' माया भी ऐसी होती है कि बद्ध जीव पड़ा तो है मृत्यशय्या पर, पर चिराग में ज्यादा बत्ती जलती हुई देखकर कहता है, 'तेल बहुत जल रहा है, बत्ती कम करो!'

"बद्ध जीव ईश्वर का स्मरण नहीं करता। यदि अवकाश मिला तो या तो गप करता है या फालतू काम करता है। पूछने पर कहता है, 'क्या करूँ, चुपचाप बैठ नहीं सकता, इसी से घेरा बाँध रहा हूँ।' कभी ताश ही खेलकर समय काटता है।" (सब स्तब्ध होकर सुन रहे हैं।)

(२)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ (गीता, १०।३)

उपाय—विश्वास

एक भक्त — महाराज, इस प्रकार के संसारी जीवों के लिए क्या कोई उपाय नहीं है?

श्रीरामकृष्ण — उपाय अवश्य है। कभी कभी साधुओं का संग करना चाहिए और कभी कभी निर्जन स्थान में ईश्वर का स्मरण और विचार। परमात्मा से भक्ति और विश्वास की प्रार्थना करनी चाहिए।

"विश्वास हुआ कि सफलता मिली। विश्वास से बढ़कर और कुछ नहीं है।

"(केदार के प्रति) विश्वास में कितना बल है, यह तो तुमने सुना है न? पुराणों में लिखा है कि रामचन्द्र को, जो साक्षात् पूर्णब्रह्म नारायण हैं, लंका जाने के लिए सेतु बाँधना पड़ा था, परन्तु हनुमान रामनाम के विश्वास ही से कूदकर समुद्र के पार चले गये, उन्होंने सेतु की परवाह नहीं की। (सब हँसते हैं।)

"किसी को समुद्र के पार जाना था। विभीषण ने एक पत्ते पर रामनाम लिखकर उसके कपड़े के खूँट में बाँधकर कहा कि तुम्हें अब कोई भय नहीं, विश्वास करके पानी के ऊपर से चले जाओ, किन्तु यदि तुम्हें अविश्वास हुआ तो तुम डूब जाओगे। वह मनुष्य बड़े मज़े में समुद्र के ऊपर से चला जा रहा था। उसी समय उसकी यह इच्छा हुई कि गाँठ को खोलकर देखूँ तो इसमें क्या बँधा है। गाँठ खोलकर उसने देखा तो एक पत्ते पर रामनाम लिखा था। ज्योंही उसने सोचा कि अरे इसमें तो सिर्फ रामनाम लिखा है—अविश्वास हुआ कि वह डूब गया।

"जिसका ईश्वर पर विश्वास है, वह यदि महापातक करे—गो-ब्राह्मण-स्त्री-हत्या भी करे—तो भी इस विश्वास के बल से वह बड़े बड़े पापों से मुक्त हो सकता है। वह यदि कहे कि ऐसा काम कभी न करूँगा तो उसे फिर किसी बात का भय नहीं।" यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने इस मर्म का बँगला गीत गाया—

"दुर्गा दुर्गा अगर जपूं मैं, जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखूं कैसे नहीं तारती, कैसे हो करुणा की खान॥
गो-ब्राह्मण की हत्या करके, करके भी मदिरा का पान।
जरा नहीं परवा पापों की, लूंगा निश्चय पद निर्वाण॥"

नरेन्द्र—हंसपक्षी

नरेन्द्र की बात चली। श्रीरामकृष्ण भक्तों से कहने लगे, "इस लड़के को यहाँ एक प्रकार देखते हो। चुलबुला लड़का जब बाप के पास बैठता है, तब चुपचाप बैठा रहता है और जब चाँदनी पर खेलता है, तब उसकी और ही मूर्ति हो जाती है। ये लड़के नित्यसिद्ध हैं। ये कभी संसार में नहीं बँधते। थोड़ी ही उम्र में इन्हें चैतन्य होता है, और ये ईश्वर की ओर चले जाते हैं। ये संसार में जीवों को शिक्षा देने के लिए आते हैं। संसार की कोई वस्तु इन्हें अच्छी नहीं लगती; कामिनी-कांचन में ये कभी नहीं पड़ते।

"वेदों में 'होमा' पक्षी की कथा है। यह चिड़िया आकाश में बहुत ऊँचे पर रहती है। वहीं यह अण्डे देती है। अण्डा देते ही वह गिरने लगता है; परन्तु इतने ऊँचे से वह गिरता है कि गिरते गिरते बीच ही में फूट जाता है। तब बच्चा गिरने लगता है। गिरते ही गिरते उसकी आँखें खुलती और पंख निकल आते हैं। आँखें खुलने से जब वह बच्चा देखता है कि मैं गिर रहा हूँ और जमीन पर गिरकर चूर चूर हो जाऊँगा, तब वह एकदम अपनी माँ की ओर फिर ऊँचे चढ़ जाता है।"

नरेन्द्र उठ गये।

सभा में केदार, प्राणकृष्ण, मास्टर आदि और भी कई सज्जन थे।

श्रीरामकृष्ण—देखो, नरेन्द्र गाने में, बजाने में, पढ़ने-लिखने में—सब विषयों में अच्छा है। उस दिन केदार के साथ उसने तर्क किया था। केदार की बातों को खटाखट काटता गया। (श्रीरामकृष्ण और सब लोग हँस पड़े।)—(मास्टर से) अंग्रेजी में क्या कोई तर्क की किताब है?

मास्टर—जी हाँ है, अंग्रेजी में इसको न्यायशास्त्र (Logic) कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, कैसा है कुछ सुनाओ तो !

मास्टर अब मुश्किल में पड़े। आखिर कहने लगे—एक बात यह है कि साधारण सिद्धान्त से विशेष सिद्धान्त पर पहुँचना; जैसे, सब मनुष्य मरेंगे, पण्डित भी मनुष्य हैं, इसलिए वे भी मरेंगे।

"और एक बात यह है कि विशेष दृष्टान्त या घटना को देखकर साधारण सिद्धान्त पर पहुँचना। जैसे यह कौआ काला है, वह कौआ काला है और जितने कौए दीख पड़ते हैं, वे भी काले हैं, इसलिए सब कौए काले हैं।

"किन्तु उस प्रकार के सिद्धान्त से भूल भी हो सकती है; क्योंकि सम्भव है ढूँढ़-तलाश करने से किसी देश में सफेद कौआ मिल जाय। एक और दृष्टान्त—जहाँ वृष्टि है, वहाँ मेघ भी है, अतएव यह साधारण सिद्धान्त हुआ कि मेघ से वृष्टि होती है। और भी एक दृष्टान्त—इस मनुष्य के बत्तीस दाँत हैं, उस मनुष्य के बत्तीस दाँत हैं, और जिस मनुष्य को देखते हैं, उसी के बत्तीस दाँत हैं, अतएव सब मनुष्यों के बत्तीस दाँत हैं।

"इस प्रकार के साधारण सिद्धान्त की बातें अंग्रेजी न्यायशास्त्र में हैं।"

श्रीरामकृष्ण ने इन बातों को सुन भर लिया। फिर वें अन्यमनस्क हो गये इसलिए यह प्रसंग और आगे न बढ़ा।

(३)

श्रुतिविप्र तपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥ (गीता, २।५३)

समाधि में

सभा भंग हुई। भक्त सब इधर-उधर घूमने लगे। मास्टर भी

पंचवटी आदि स्थानों में घूम रहे थे। समय पाँच के लगभग होगा। कुछ देर बाद वे श्रीरामकृष्ण के कमरे में आये और देखा उसके उत्तर की ओर छोटे बरामदे में अद्‌भुत घटना हो रही है।

श्रीरामकृष्ण स्थिर भाव से खड़े हैं और नरेन्द्र गा रहे हैं। दो-चार भक्त भी खड़े हैं। मास्टर आकर गाना सुनने लगे। गाना सुनते हुए वे मुग्ध हो गये। श्रीरामकृष्ण के गाने को छोड़कर ऐसा मधुर गाना उन्होंने कभी कहीं नहीं सुना था। अकस्मात् श्रीरामकृष्ण की ओर देखकर वे स्तब्ध हो गये। श्रीरामकृष्ण की देह निःस्पन्द हो गयी थी और नेत्र निर्निमेष। श्वासोच्छ्‌वास चल रहा था या नहीं—बताना कठिन है। पूछने पर एक भक्त ने कहा, यह 'समाधि' है। मास्टर ने ऐसा न कभी देखा था, न सुना था। वे विस्मित होकर सोचने लगे, भगवच्चिन्तन करते हुए मनुष्यों का बाह्यज्ञान क्या यहाँ तक चला जाता है? न जाने कितनी भक्ति और विश्वास हो तो मनुष्यों की यह अवस्था होती है!

नरेन्द्र जो गीत गा रहे थे, उसका भाव यह है—

"ऐ मन, तू चिद्‌घन हरि का चिन्तन कर। उसकी मोहन-मूर्ति की कैसी अनुपम छटा है, जो भक्तों का मन हर लेती है! वह रूप नये नये वर्णों से मनोहर है, कोटि चन्द्रमाओं को लजाने-वाला है,—उसकी छटा क्या है मानो बिजली चमकती है! उसे देख आनन्द से जी भर जाता है।"

गीत के इस चरण को गाते समय श्रीरामकृष्ण चौंकने लगे। देह पुलकायमान हुई। आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। बीच बीच में मानो कुछ देखकर मुसकराते हैं। कोटि चन्द्रमाओं को लजानेवाले उस अनुपम रूप का वे अवश्य दर्शन करते होंगे।

क्या यही ईश्वर-दर्शन है ? कितनी साधना, कितनी तपस्या, कितनी भक्ति और विश्वास से ईश्वर का ऐसा दर्शन होता है ?

फिर गाना होने लगा ।

(भावार्थ)—"हृदय-रूपी कमलासन पर उनके चरणों का भजन कर, शान्त मन और प्रेमभरे नेत्रों से उस अपूर्व मनोहर दृश्य को देख ले ।"

फिर वही जगत् को मोहनेवाली मुसकराहट ! शरीर वैसा ही निश्चल हो गया । आँखें बन्द हो गयीं—मानो कुछ अलौकिक रूप देख रहे हैं, और देखकर आनन्द से भरपूर हो रहे हैं ।

अब गीत समाप्त हुआ । नरेन्द्र ने गाया—

(भावार्थ)—"चिदानन्द-रस में—प्रेमानन्द-रस में—परम भक्ति से चिरदिन के लिए मग्न हो जा ।"

समाधि और प्रेमानन्द की इस अद्भुत छबि को हृदय में रखते हुए मास्टर घर लौटने लगे । बीच बीच में दिल को मतवाला करनेवाला वह मधुर गीत याद आता रहा ।

परिच्छेद ४

चतुर्थ दर्शन

(१)

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।। (गीता, ६।२२)

नरेन्द्र, भवनाथ आदि के संग आनन्द

उसके दूसरे दिन (६ मार्च को) भी छुट्टी थी। दिन के तीन बजे मास्टर फिर आये। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में बैठे हैं। फर्श पर चटाई बिछी है। नरेन्द्र, भवनाथ तथा और भी दो एक लोग बैठे हैं। सभी अभी लड़के हैं, उम्र उन्नीस-बीस के लगभग होगी। प्रफुल्लमुख श्रीरामकृष्ण तखत पर बैठे हुए लड़कों से सानन्द वार्तालाप कर रहे हैं।

मास्टर को कमरे में घुसते देख श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा, "यह देखो, फिर आया।" सब हँसने लगे। मास्टर ने भूमिष्ठ हो प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। पहले वे खड़े खड़े हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे—जैसा अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग करते हैं। पर आज उन्होंने भूमिष्ठ होकर प्रणाम करना सीखा। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्रादि भक्तों से कहने लगे, "देखो, एक मोर को किसी ने चार बजे अफीम खिला दी। दूसरे दिन से वह अफीमची मोर ठीक चार बजे आ जाता था! यह भी अपने समय पर आया है।" सब लोग हँसने लगे।

मास्टर सोचने लगे, ये ठीक तो कहते हैं। घर जाता हूँ, पर मन दिनरात यहीं पड़ा रहता है। कब जाऊँ कब उन्हें देखूँ इसी विचार में रहता हूँ। यहाँ मानो कोई खींच ले आता है! इच्छा

होने पर भी दूसरी जगह जा नहीं पाता, यहीं आना पड़ता है। इधर श्रीरामकृष्ण लड़कों से हँसी-मजाक करने लगे। मालूम होता था कि वे सब मानो एक ही उम्र के हैं। हँसी की लहरें उठने लगीं। मानो आनन्द की हाट लगी हो।

मास्टर यह अद्भुत चरित्र देखते हुए सोचते हैं कि पिछले दिन क्या इन्हीं को समाधि और अपूर्व प्रेमानन्द में मग्न देखा था? क्या ये वे ही मनुष्य हैं, जो आज प्राकृत मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे हैं? क्या इन्हीं ने मुझे पहले दिन उपदेश देते हुए धिक्कारा था? इन्हीं ने मुझे 'तुम ज्ञानी हो' कहा था? इन्हीं ने साकार और निराकार दोनों सत्य हैं, कहा था? इन्हीं ने मुझे कहा था कि ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य? इन्हीं ने मुझे संसार में दासी की भाँति रहने का उपदेश दिया था?

श्रीरामकृष्ण आनन्द कर रहे हैं और बीच बीच में मास्टर को देख रहे हैं। मास्टर को सविस्मय बैठे हुए देखकर उन्होंने रामलाल से कहा—"इसकी उम्र कुछ ज्यादा हो गयी है न, इसी से कुछ गम्भीर है। ये सब हँस रहे हैं, पर यह चुपचाप बैठा है।"

मास्टर की उम्र उस समय सत्ताईस साल की होगी।

बात ही बात में परम भक्त हनुमान की बात चली। हनुमान का एक चित्र श्रीरामकृष्ण के कमरे की दीवार पर टँगा था। श्रीरामकृष्ण ने कहा, "देखो तो, हनुमान का भाव कैसा है! धन, मान, शरीरसुख कुछ भी नहीं चाहते, केवल भगवान् को चाहते हैं। जब स्फटिक-स्तम्भ के भीतर से ब्रह्मास्त्र निकालकर भागे, तब मन्दोदरी नाना प्रकार के फल लेकर लोभ दिखाने लगी। उसने सोचा कि फल के लोभ से उतरकर शायद ये ब्रह्मास्त्र फेंक दें; पर हनुमान इस भुलावे में कब पड़ने लगे? उन्होंने

कहा—मुझे फलों का अभाव नहीं है। मुझे जो फल मिला है, उससे मेरा जन्म सफल हो गया है। मेरे हृदय में मोक्षफल के वृक्ष श्रीरामचन्द्रजी हैं। श्रीराम-कल्पतरु के नीचे बैठा रहता हूँ; जब जिस फल की इच्छा होती है, वही फल खाता हूँ। फल के बारे में कहता हूँ कि तेरा फल मैं नहीं चाहता हूँ। तू मुझे फल न दिखा, मैं इसका प्रतिफल दे जाऊँगा।"

इसी भाव का एक गीत श्रीरामकृष्ण गा रहे हैं। फिर वही समाधि; देह निश्चल, नेत्र स्थिर। बैठे हैं, जैसी मूर्ति फोटोग्राफ में देखने को मिलती है। भक्तगण अभी इतना हँस रहे थे पर अब सब एक दृष्टि से श्रीरामकृष्ण की इस अद्भुत अवस्था का दर्शन करने लगे। मास्टर दूसरी बार यह समाधि-अवस्था देख रहे थे।

बड़ी देर बाद अवस्था का परिवर्तन हो रहा है। देह शिथिल हो गयी, मुख सहास्य हो गया, इन्द्रियाँ फिर अपना अपना काम करने लगीं। नेत्रों से आनन्दाश्रु बहाते हुए 'राम राम' उच्चारण कर रहे हैं।

मास्टर सोचने लगे, क्या ये ही महापुरुष लड़कों के साथ दिल्लगी कर रहे थे? तब तो यह जान पड़ता था कि मानो पाँच वर्ष के बालक हैं।

श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ होकर फिर प्राकृत मनुष्यों जैसा व्यवहार कर रहे हैं। मास्टर और नरेन्द्र से कहने लगे कि तुम दोनों अंग्रेजी में बातचीत करो, मैं सुनूँगा।

यह सुनकर मास्टर और नरेन्द्र हँस रहे हैं। दोनों परस्पर कुछ बातचीत करने लगे, पर बँगला में। श्रीरामकृष्ण के सामने मास्टर का तर्क करना सम्भव न था; क्योंकि तर्क का तो घर उन्होंने बन्द कर दिया है। अतएव मास्टर अब तर्क कैसे कर

सकते हैं ! श्रीरामकृष्ण ने फिर कहा, पर मास्टर के मुँह से अंग्रेजी तर्क न निकला ।

(२)

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।।
(गीता, ११।१८)

अन्तरंग भक्तों के संग में । 'मैं कौन हूँ ?'

पाँच बजे हैं । भक्त लोग अपने अपने घर चले गये । सिर्फ मास्टर और नरेन्द्र रह गये । नरेन्द्र मुँह-हाथ धोने के लिए गये । मास्टर भी बगीचे में इधर-उधर घूमते रहे । थोड़ी देर बाद कोठी की बगल से 'हंस तालाब' की ओर आते हुए उन्होंने देखा कि तालाब की दक्षिण तरफवाली सीढ़ी के चबूतरे पर श्रीरामकृष्ण खड़े हैं और नरेन्द्र भी हाथ में गड़ुआ लिये खड़े हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, " देख, और जरा ज्यादा आया-जाया करना—तूने हाल ही में आना शुरू किया है न ? पहली जान-पहचान के बाद सभी लोग कुछ ज्यादा आया करते हैं, जैसे नया पति । (नरेन्द्र और मास्टर हँसे ।) क्यों, आयगा नहीं ?" नरेन्द्र ब्राह्मसमाजी लड़के हैं, हँसते हुए कहा, "हाँ, कोशिश करूँगा ।"

फिर सभी कोठी की राह से श्रीरामकृष्ण के कमरे की ओर आने लगे । कोठी के पास श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से कहा, "देखो, किसान बाजार से बैल खरीदते हैं । वे जानते हैं कि कौनसा बैल अच्छा है और कौनसा बुरा। वे पूँछ के नीचे हाथ लगाकर परखते हैं । कोई कोई बैल पूँछ पर हाथ लगाने से लेट जाते हैं । वे ऐसे बैल नहीं खरीदते । पर जो बैल पूँछ पर हाथ रखते ही बड़ी तेजी से कूद पड़ता है, उसी बैल को वे चुन लेते हैं । नरेन्द्र इसी बैल

की जाति का है। भीतर खूब तेज है।" यह कहकर श्रीरामकृष्ण मुसकराने लगे। "फिर कोई कोई ऐसे होते हैं कि मानो उनमें जान ही नहीं है——न जोर है, न दृढ़ता।"

सन्ध्या हुई। श्रीरामकृष्ण ईश्वर-चिन्तन करने लगे। उन्होंने मास्टर से कहा, "तुम जाकर नरेन्द्र से बातचीत करो, और फिर मुझे बताना कि वह कैसा लड़का है।"

आरती हो चुकी। मास्टर ने बड़ी देर में नरेन्द्र को चाँदनी के पश्चिम की तरफ पाया। आपस में बातचीत होने लगी। नरेन्द्र ने कहा कि मैं साधारण ब्राह्मसमाजी हूँ, कालेज में पढ़ता हूँ, इत्यादि।

रात हो गयी। अब मास्टर घर जायेंगे, पर जाने को ज़ी नहीं चाहता; इसलिए नरेन्द्र से बिदा होकर वे फिर श्रीरामकृष्ण को ढूँढ़ने लगे। उनका गीत सुनकर मास्टर मुग्ध हो गये हैं। जी चाहता है कि फिर उनके श्रीमुख से गीत सुनें। ढूँढ़ते हुए देखा कि कालीमाता के मन्दिर के सामने जो नाटयमण्डप है, उसी में श्रीरामकृष्ण अकेले टहल रहे हैं। मन्दिर में मूर्ति के दोनों तरफ दीपक जल रहे थे। विस्तृत नाटयमण्डप में एक लालटेन जल रही थी। रोशनी धीमी थी। प्रकाश और अँधेरे का मिश्रण-सा दीख पड़ता था।

मास्टर श्रीरामकृष्ण का गीत सुनकर मुग्ध हो गये हैं, जैसे साँप मन्त्रमुग्ध हो जाता है। अब बड़े संकोच से उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव से पूछा, "क्या आज फिर गाना होगा?" श्रीरामकृष्ण ने जरा सोचकर कहा, "नहीं, आज अब न होगा।" यह कहते ही मानो उन्हें फिर याद आयी और उन्होंने कहा, "हाँ, एक काम

करना। मैं कलकत्ते में बलराम के घर जाऊँगा, तुम भी आना, वहाँ गाना होगा।"

मास्टर–आपकी जैसी आज्ञा।

श्रीरामकृष्ण–तुम जानते हो बलराम बसु को?

मास्टर–जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण–बलराम बसु—बोसपाड़ा में उनका घर है।

मास्टर– जी मैं पूछ लूंगा।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के साथ टहलते हुए)–अच्छा, तुमसे एक बात पूछता हूँ—मुझे तुम क्या समझते हो?

मास्टर चुप रहे। श्रीरामकृष्ण ने फिर से पूछा, "तुम्हें क्या मालूम होता है? मुझे कितने आने ज्ञान हुआ है?"

मास्टर– 'आने' की बात तो मैं नहीं जानता पर ऐसा ज्ञान, या प्रेमभक्ति, या विश्वास, या वैराग्य, या उदार भाव मैंने और कहीं कभी नहीं देखा।

श्रीरामकृष्ण हँसने लगे।

इस बातचीत के बाद मास्टर प्रणाम करके विदा हुए। फाटक तक जाकर फिर कुछ याद आयी, उल्टे पाँव लौटकर फिर श्रीरामकृष्णदेव के पास नाटचमण्डप में हाजिर हुए।

उस धीमी रोशनी में श्रीरामकृष्ण अकेले टहल रहे थे—निःसंग—जैसे सिंह वन में अकेला अपनी मौज में फिरता रहता है। आत्माराम, और किसी की अपेक्षा नहीं!

विस्मित होकर मास्टर उन महापुरुष को देखने लगे।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–क्यों जी, फिर क्यों लौटे?

मास्टर–जी, वे अमीर आदमी होंगे—शायद मुझे भीतर न जाने दें—इसीलिए सोच रहा हूँ कि वहाँ न जाऊँगा, यहीं आकर

आपसे मिलूँगा ।

श्रीरामकृष्ण—नहीं जी, तुम मेरा नाम लेना । कहना कि मैं उनके पास जाऊँगा, बस कोई भी तुम्हें मेरे पास ले आयगा ।

"जैसी आपकी आज्ञा"—कहकर मास्टर ने फिर प्रणाम किया और वहाँ से विदा हुए ।

परिच्छेद ५

बलराम के मकान पर श्रीरामकृष्ण

(१)

रात के आठ-नौ बजे का समय होगा—होली के सात दिन बाद। राम, मनोमोहन, राखाल, नृत्यगोपाल आदि भक्तगण श्रीरामकृष्ण को घेरकर खड़े हैं। सभी लोग हरिनाम का संकीर्तन करते करते तन्मय हो गये हैं। कुछ भक्तों की भावावस्था हुई है। भावावस्था में नृत्यगोपाल का वक्षःस्थल लाल हो गया है। सब के बैठने पर मास्टर ने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने देखा राखाल सोये हैं, भावमग्न, बाह्यज्ञान-विहीन। वे उनकी छाती पर हाथ रखकर कह रहे हैं—'शान्त हो, शान्त हो।' राखाल की यह दूसरी बार भावावस्था थी। वे कलकत्ते में अपने पिता के साथ रहते हैं; बीच बीच में श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने आ जाते हैं। इसके पूर्व उन्होंने श्यामपुकुर में विद्यासागर महाशय के स्कूल में कुछ दिन अध्ययन किया था।

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से दक्षिणेश्वर में कहा था, 'मैं कलकत्ते में बलराम के घर जाऊँगा, तुम भी आना। इसीलिए वे उनका दर्शन करने आये हैं। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी, शनिवार, ११ मार्च १८८२ ई.। श्रीयुत बलराम श्रीरामकृष्ण को निमन्त्रण देकर लाये हैं।

अब भक्तगण बरामदे में बैठे प्रसाद पा रहे हैं। दासवत् बलराम खड़े हैं। देखने से समझा नहीं जाता कि वे इस मकान के मालिक हैं।

मास्टर श्रीरामकृष्ण के पास कुछ दिनों से आने लगे हैं। उनका अभी तक भक्तों के साथ परिचय नहीं हुआ है। केवल दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र के साथ परिचय हुआ था।

(२)

सर्वधर्मसमन्वय

कुछ दिनों बाद श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में शिव-मन्दिर की सीढ़ी पर भावाविष्ट होकर बैठे हैं। दिन के चार-पाँच बजे का समय होगा। मास्टर भी पास ही बैठे हैं।

थोड़ी देर पहले श्रीरामकृष्ण, उनके कमरे के फर्श पर जो बिस्तर बिछाया गया है, उस पर विश्राम कर रहे थे। अभी उनकी सेवा के लिए सदैव उनके पास कोई नहीं रहता था। हृदय के चले जाने के बाद से उनको कष्ट हो रहा है। कलकत्ते से मास्टर के आने पर वे उनके साथ बात करते करते श्रीराधाकान्त के मन्दिर के सामनेवाले शिव-मन्दिर की सीढ़ी पर आकर बैठे। मन्दिर देखते ही वे एकाएक भावाविष्ट हो गये हैं।

वे जगन्माता के साथ बातचीत कर रहे हैं। कह रहे हैं, "माँ, सभी कहते हैं, मेरी घड़ी ठीक चल रही है। ईसाई, हिन्दू, मुसलमान सभी कहते हैं मेरा धर्म ठीक है, परन्तु माँ, किसी की भी तो घड़ी ठीक नहीं चल रही है। तुम्हे ठीक ठीक कौन समझ सकेगा, परन्तु व्याकुल होकर पुकारने पर, तुम्हारी कृपा होने पर सभी पथों से तुम्हारे पास पहुँचा जा सकता है। माँ, ईसाई लोग गिर्जाघरों में तुम्हें कैसे पुकारते हैं, एक बार दिखा देना। परन्तु माँ, भीतर जाने पर लोग क्या कहेंगे? यदि कुछ गड़बड़ हो जाय तो? फिर लोग कालीमन्दिर में यदि न जाने दें तो फिर गिर्जाघर के दरवाजे के पास से दिखा देना।"

(३)

भक्तों के साथ भजनानन्द में —'प्रेम की सुरा'

एक दूसरे दिन श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटी खाट पर बैठे हैं। आनन्दमयी मूर्ति है। सहास्य वदन। श्रीयुत कालीकृष्ण के साथ मास्टर आ पहुँचे।

कालीकृष्ण जानते न थे कि उन के मित्र उन्हें कहाँ ला रहे हैं। मित्र ने कहा था, कलार की दूकान पर जाओगे तो मेरे साथ आओ। वहाँ पर एक मटकी शराब है। मास्टर ने अपने मित्र से जो कुछ कहा था, प्रणाम करने के बाद श्रीरामकृष्ण को सब कह सुनाया। वे सभी हँसने लगे।

वे बोले, "भजनानन्द, ब्रह्मानन्द, यह आनन्द ही सुरा है, प्रेम की सुरा। मानवजीवन का उद्देश्य है ईश्वर से प्रेम, ईश्वर से प्यार करना। भक्ति ही सार है। ज्ञान-विचार करके ईश्वर को जानना बहुत ही कठिन है।" यह कहकर श्रीरामकृष्ण गाना गाने लगे जिसका आशय इस प्रकार है—

"कौन जाने काली कैसी हैं? षड्दर्शन उन्हें देख नहीं सकते। इच्छामयी वे अपनी इच्छा के अनुसार घट घट में विराज-मान हैं। यह विराट् ब्रह्माण्डरूपी भाण्ड जो काली के उदर में है उसे कैसा समझते हो? शिव ने काली का मर्म जैसा समझा वैसा दूसरा कौन जानता है? योगी सदा सहस्रार, मूलाधार में मनन करते हैं। काली पद्म-वन में हंस के साथ हंसी के रूप में रमण करती हैं। 'प्रसाद' कहता है, लोग हँसते हैं। मेरा मन समझता है, पर प्राण नहीं समझता—वामन होकर चन्द्रमा पकड़ना चाहता है।"

श्रीरामकृष्ण फिर कहते हैं, "ईश्वर से प्यार करना ही जीवन

का उद्देश्य है। जिस प्रकार वृन्दावन में गोपगोपीगण, राखालगण श्रीकृष्ण से प्यार करते थे। जब श्रीकृष्ण मथुरा चले गये, राखाल-गण उनके विरह में रो-रोकर घूमते थे।"

इतना कहकर वे ऊपर की ओर ताकते हुए गाना गाने लगे—

(भावार्थ)—"एक नये राखाल को देख आया जो नये पेड़ की टहनी पकड़े छोटे बछड़े को गोद में लिये कह रहा है, 'कहाँ हो रे भाई कन्हैया!' फिर 'क' कहकर ही रह जाता है, पूरा कन्हैया मुँह से नहीं निकलता। कह रहा है, 'कहाँ हो रे भाई' और आँखों से आँसू की धाराएँ निकल रही हैं।"

श्रीरामकृष्ण का प्रेमभरा गाना सुनकर मास्टर की आँखों में आँसू भर आये।

परिच्छेद ६

प्राणकृष्ण के मकान पर श्रीरामकृष्ण

(१)

श्रीरामकृष्ण ने आज कलकत्ते में शुभागमन किया है। श्रीयुत प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय के श्यामपुकुरवाले मकान के दुमँजले पर बैठक-घर में भक्तों के साथ बैठे हैं। अभी अभी भक्तों के साथ बैठकर प्रसाद पा चुके हैं। आज २ अप्रैल, रविवार १८८२ ई., चैत्र शुक्ला चतुर्दशी है। इस समय दिन के एक-दो बजे होंगे। कप्तान उसी मुहल्ले में रहते हैं। श्रीरामकृष्ण की इच्छा है कि इस मकान में विश्राम करने के बाद कप्तान के घर होकर उनसे मिलकर 'कमलकुटीर' नामक मकान में श्री केशव सेन को देखने जायँ। प्राणकृष्ण बैठक-घर में बैठे हैं। राम, मनोहर, केदार, सुरेन्द्र, गिरीन्द्र (सुरेन्द्र के भाई), राखाल, बलराम, मास्टर आदि भक्तगण उपस्थित हैं।

मुहल्ले के कुछ सज्जन तथा अन्य दूसरे निमन्त्रित व्यक्ति भी आये हैं। श्रीरामकृष्ण क्या कहते हैं—यह सुनने के लिए सभी उत्सुक होकर बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "ईश्वर और उनका ऐश्वर्य। यह जगत् उनका ऐश्वर्य है। परन्तु ऐश्वर्य देखकर ही सब लोग भूल जाते हैं, जिनका ऐश्वर्य है उनकी खोज नहीं करते। कामिनी-कांचन का भोग करने सभी जाते हैं। परन्तु उसमें दुःख और अशान्ति ही अधिक है। संसार मानो विशालाक्षी नदी का भँवर है। नाव भँवर में पड़ने पर फिर उसका बचना कठिन है। गुखरू काँटे की तरह एक छूटता है तो दूसरा जकड़ जाता है। गोरखधन्धे में एक बार घुसने पर निकलना कठिन है। मनुष्य मानो जल-सा जाता है।

एक भक्त— महाराज, तो उपाय ?

उपाय—साधुसंग और प्रार्थना

श्रीरामकृष्ण — उपाय—साधुसंग और प्रार्थना। वैद्य के पास गये बिना रोग ठीक नहीं होता। साधुसंग एक ही दिन करने से कुछ नहीं होता। सदा ही आवश्यक है। रोग लगा ही है। फिर वैद्य के पास बिना रहे नाड़ीज्ञान नहीं होता। साथ साथ घूमना पड़ता है, तब समझ में आता है कि कौन कफ की नाड़ी है और कौन पित्त की नाड़ी।

भक्त— साधुसंग से क्या उपकार होता है ?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर पर अनुराग होता है। उनसे प्रेम होता है। व्याकुलता न आने से कुछ भी नहीं होता। साधुसंग करते करते ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होता है—जिस प्रकार घर में कोई अस्वस्थ होने पर मन सदा ही चिन्तित रहता है और यदि किसी की नौकरी छूट जाती है तो वह जिस प्रकार आफिस आफिस में घूमता रहता है, व्याकुल होता रहता है, उसी प्रकार। यदि किसी आफिस में उसे जवाब मिलता है कि कोई काम नहीं है तो फिर दूसरे दिन आकर पूछता है, 'क्या आज कोई जगह खाली हुई ?'

"एक और उपाय है—व्याकुल होकर प्रार्थना करना। ईश्वर अपने हैं, उनसे कहना पड़ता है, 'तुम कैसे हो, दर्शन दो—दर्शन देना ही होगा—तुमने मुझे पैदा क्यों किया ?' सिक्खों ने कहा था, 'ईश्वर दयामय हैं।' मैंने उनसे कहा था, 'दयामय क्यों कहूँ ? उन्होंने हमें पैदा किया है, यदि वे ऐसा करें जिससे हमारा मंगल हो, तो इसमें आश्चर्य क्या है ? माँ-बाप बच्चों का पालन करेंगे ही, इसमें फिर दया की क्या बात है ? यह तो करना ही होगा।' इसीलिए उन पर जबरदस्ती करके उनसे प्रार्थना स्वीकार करानी होगी।

वे हमारी माँ, और हमारे बाप जो हैं। लड़का यदि खाना-पीना छोड़ दे तो माँ-बाप उसके बालिग होने के तीन वर्ष पहले ही उसका हिस्सा उसे दे देते हैं। फिर जब लड़का पैसा माँगता और बार बार कहता है, 'माँ, तेरे पैरों पड़ता हूँ, मुझे दो पैसे दे दे' तो माँ हैरान होकर उसकी व्याकुलता देख पैसा फेंक ही देती है।

"साधुसंग करने पर एक और उपकार होता है,—सत् और असत् का विचार। सत् नित्यपदार्थ अर्थात् ईश्वर, असत् अर्थात् अनित्य। असत् पथ पर मन जाते ही विचार करना पड़ता है। हाथी जब दूसरों के केले के पेड़ खाने के लिए सूँड़ बढ़ाता है तो उसी समय महावत उसे अंकुश मारता है।"

पड़ोसी—महाराज, पापबुद्धि क्यों होती है?

श्रीरामकृष्ण—उनके जगत् में सभी प्रकार हैं। साधु लोग भी उन्होंने बनाये हैं, दुष्ट लोगों को भी उन्होंने ही बनाया है। सद्बुद्धि भी वे देते हैं और असद्बुद्धि भी।

पाप की जिम्मेदारी और कर्मफल

पड़ोसी— तो क्या पाप करने पर हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं है?

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर का नियम है कि पाप करने पर उसका फल भोगना पड़ेगा। मिर्च खाने पर क्या तीखा न लगेगा? सेजो बाबू ने अपनी जवानी में बहुत-कुछ किया था, इसलिए मरते समय उन्हें अनेक प्रकार के रोग हुए। कम उम्र में इतना पता नहीं चलता। कालीबाड़ी में भोजन पकाने के लिए सुन्दरबन की लकड़ी रहती है। वह गीली लकड़ी पहले-पहल अच्छी जलती है। उस समय मालूम भी नहीं होता कि इसके अन्दर जल है। लकड़ी का जलना समाप्त होते समय सारा जल पीछे की ओर आ जाता

है और फँच-फाँच करके चूल्हे की आग बुझा देता है। इसीलिए काम, क्रोध, लोभ—इन सब से सावधान रहना चाहिए। देखो न, हनुमान ने क्रोध में लंका जला दी थी। अन्त में ख्याल आया, अशोकवन में सीता हैं। तब सटपटाने लगे कि कहीं सीताजी का कुछ न हो जाय।

पड़ोसी—तो ईश्वर ने दुष्ट लोगों को बनाया ही क्यों?

श्रीरामकृष्ण—उनकी इच्छा, उनकी लीला। उनकी माया में विद्या भी है, अविद्या भी। अन्धकार की भी आवश्यकता है। अन्धकार रहने पर प्रकाश की महिमा और भी अधिक प्रकट होती है। काम क्रोध, लोभादि खराब चीज तो अवश्य हैं, परन्तु उन्होंने ये दिये क्यों? दिये महान् व्यक्तियों को तैयार करने के लिए। मनुष्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने से महान् होता है। जितेन्द्रिय क्या नहीं कर सकता? उनकी कृपा से उसे ईश्वरप्राप्ति तक हो सकती है। फिर दूसरी ओर देखो, काम से उनकी सृष्टि की लीला चल रही है।

"दुष्ट लोगों की भी आवश्यकता है। एक गाँव के लोग बहुत उद्दण्ड हो गये थे। उस समय वहाँ गोलोक चौधरी को भेज दिया गया। उसके नाम से लोग काँपने लगे—इतना कठोर शासन था उसका। अतएव अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग चाहिए। सीताजी बोलीं, 'राम, अयोध्या में यदि सभी सुन्दर महल होते तो कैसा अच्छा होता! मैं देख रही हूँ अनेक मकान टूट गये हैं, कुछ पुराने हो गये हैं।' श्रीराम बोले, 'सीता, यदि सभी मकान सुन्दर हों तो मिस्त्री लोग क्या करेंगे?' (सभी हँस पड़े।) ईश्वर ने सभी प्रकार के पदार्थ बनाये हैं—अच्छे पेड़, विषैले पेड़ और व्यर्थ के पौधे भी। जानवरों में भले-बुरे सभी हैं—बाघ, शेर, साँप—सभी हैं।"

संसार में भी ईश्वरप्राप्ति होती है । सभी की मुक्ति होगी ।

पड़ोसी– महाराज, संसार में रहकर क्या भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है ?

श्रीरामकृष्ण–अवश्य किया जा सकता है । परन्तु जैसा कहा, साधुसंग और सदा प्रार्थना करनी पड़ती है । उनके पास रोना चाहिए । मन का सभी मैल धुल जाने पर उनका दर्शन होता है । मन मानो मिट्टी से लिपटी हुई एक लोहे की सुई है––ईश्वर हैं चुम्बक । मिट्टी रहते चुम्बक के साथ संयोग नहीं होता । रोते रोते सुई की मिट्टी धुल जाती है । सुई की मिट्टी अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, पापबुद्धि, विषयबुद्धि आदि । मिट्टी धुल जाने पर सुई को चुम्बक खींच लेगा अर्थात् ईश्वरदर्शन होगा । चित्तशुद्धि होने पर हीं उनकी प्राप्ति होती है । ज्वर चढ़ा है, शरीर मानो भुन रहा है, इसमें कुनैन से क्या काम होगा ?

"संसार में ईश्वरलाभ होगा क्यों नहीं? वही साधुसंग, रो-रोकर प्रार्थना, बीच बीच में निर्जनवास; चारों ओर कटघरा लगाये बिना रास्ते के पौधों को गाय-बकरियाँ खा जाती हैं ।"

पड़ोसी–तो फिर जो लोग संसार में हैं उनकी भी मुक्ति होगी?

श्रीरामकृष्ण–सभी की मुक्ति होगी । परन्तु गुरु के उपदेश के अनुसार चलना पड़ता है, टेढ़े रास्ते से जाने पर फिर सीधे रास्ते पर आने में कष्ट होगा । मुक्ति बहुत देर में होती है । शायद इस जन्म में न भी हो । फिर सम्भव है अनेक जन्मों के पश्चात् हो । जनक आदि ने संसार में भी कर्म किया था । ईश्वर को सिर पर रखकर काम करते थे । नाचनेवाली जिस प्रकार सिर पर बर्तन रखकर नाचती है । और पश्चिम की औरतों को नहीं देखा, सिर पर जल का घड़ा लेकर हँस-हँसकर बातें करती हुई जाती हैं?

पड़ोसी—आपने गुरूपदेश के बारे में बताया, पर गुरु कैसे प्राप्त करूँ ?

श्रीरामकृष्ण—हरएक गुरु नहीं हो सकता। कीमती शहतीर पानी में स्वयं भी बहता हुआ चला जाता है और अनेक जीव-जन्तु भी उस पर चढ़कर जा सकते हैं। पर मामूली लकड़ी पर चढ़ने से लकड़ी भी डूब जाती है और जो चढ़ता है वह भी डूब जाता है। इसलिए ईश्वर युग युग में लोकशिक्षा के लिए गुरु-रूप में स्वयं अवतीर्ण होते हैं। सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।

"ज्ञान किसे कहते हैं; और मैं कौन हूँ? 'ईश्वर ही कर्ता हैं और सब अकर्ता' इसी का नाम ज्ञान है। मैं अकर्ता, उनके हाथ का यन्त्र हूँ। इसीलिए मैं कहता हूँ, माँ, तुम यन्त्री हो, मैं यन्त्र हूँ; तुम घरवाली हो, मैं घर हूँ; मैं गाड़ी हूँ, तुम इंजीनियर हो। जैसा चलाती हो वैसा चलता हूँ, जैसा कराती हो वैसा करता हूँ; जैसा बुलवाती हो, वैसा बोलता हूँ; नाहं, नाहं, तू है तू है।"

(२)

'कमलकुटीर' में श्रीरामकृष्ण और श्री केशव सेन

श्रीरामकृष्ण कप्तान के घर होकर श्रीयुत केशव सेन के 'कमल-कुटीर' नामक मकान पर आये हैं। साथ हैं राम, मनोमोहन, सुरेन्द्र, मास्टर आदि अनेक भक्त लोग। सब दुमँजले के हाल में बैठे हैं। श्री प्रताप मजुमदार, श्री त्रैलोक्य आदि ब्राह्मभक्त भी उपस्थित हैं।

श्रीरामकृष्ण केशव को बहुत प्यार करते हैं। जिन दिनों बेल-घर के बगीचे में वे शिष्यों के साथ साधन-भजन कर रहे थे तब, अर्थात् १८७५ ई. के माघोत्सव के बाद कुछ दिनों के अन्दर ही, एक दिन श्रीरामकृष्ण ने बगीचे में जाकर उनके साथ साक्षा-त्कार किया था। साथ था उनका भानजा हृदयराम। बेलघर के

इस बगीचे में उन्होंने केशव से कहा था, "तुम्हारी दुम झड़ गयी है, अर्थात् तुम सब कुछ छोड़कर संसार के बाहर भी रह सकते हो और फिर संसार में भी रह सकते हो। जिस प्रकार मेढक के बच्चे की दुम झड़ जाने पर वह पानी में भी रह सकता है और फिर जमीन पर भी।" इसके बाद दक्षिणेश्वर में, कमलकुटीर में, ब्राह्म-समाज आदि स्थानों में अनेक बार श्रीरामकृष्ण ने वार्तालाप के सिलसिले में उन्हें उपदेश दिया था। "अनेक पन्थों से तथा अनेक धर्मों द्वारा ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है। बीच बीच में निर्जन में साधन-भजन करके भक्तिलाभ करते हुए संसार में रहा जा सकता है। जनक आदि ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके संसार में रहे थे। व्याकुल होकर उन्हें पुकारना पड़ता है तब वे दर्शन देते हैं। तुम लोग जो कुछ करते हो, निराकार का साधन, वह बहुत अच्छा है। ब्रह्मज्ञान होने पर ठीक अनुभव करोगे कि ईश्वर सत्य है और सब अनित्य; ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है। सनातन हिन्दू धर्म में साकार निराकार दोनों ही माने गये हैं। अनेक भावों से ईश्वर की पूजा होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर। शहनाई बजाते समय एक आदमी केवल पोंऽऽ ही बजाता है, परन्तु उसके बाजे में सात छेद रहते हैं। और दूसरा व्यक्ति, जिसके बाजे में सात छेद हैं, वह अनेक राग-रागिनियाँ बजाता है।

"तुम लोग साकार को नहीं मानते इसमें कोई हानि नहीं; निराकार में निष्ठा रहने से भी हो सकता है। परन्तु साकारवादियों के केवल प्रेम के आकर्षण को लेना। माँ कहकर उन्हें पुकारने से भक्तिप्रेम और भी बढ़ जायगा। कभी दास्य, कभी सख्य, कभी वात्सल्य, कभी मधुर भाव। 'कोई कामना नहीं है, उन्हें प्यार करता हूँ,' यह बहुत अच्छा भाव है। इसका नाम है अहेतुक

भक्ति। रुपया-पैसा, मान-इज्जत कुछ भी नहीं चाहता हूँ, चाहता हूँ केवल तुम्हारे चरण-कमलों में भक्ति। वेद, पुराण, तन्त्र में एक ईश्वर ही की बात है और उनकी लीला की बात। ज्ञान भक्ति दोनों ही हैं। संसार में दासी की तरह रहो। दासी सब काम करती है, पर उसका मन रहता है अपने घर में। मालिक के बच्चों को पालती-पोसती है; कहती है 'मेरा हरि, मेरा राम।' परन्तु खूब जानती है, लड़का उसका नहीं है। तुम लोग जो निर्जन में साधना करते हो यह बहुत अच्छा है। उनकी कृपा होगी। जनक राजा ने निर्जन में कितनी साधना की थी! साधना करने पर ही तो संसार में निर्लिप्त होना सम्भव है।

"तुम लोग भाषण देते हो, सभी के उपकार के लिए; परन्तु ईश्वर को प्राप्त करने के बाद तथा उनके दर्शन प्राप्त कर चुकने के बाद ही भाषण देने से उपकार होता है। उनका आदेश न पाकर दूसरों को शिक्षा देने से उपकार नहीं होता। ईश्वर को प्राप्त किये बिना उनका आदेश नहीं मिलता। ईश्वर के प्राप्त होने का लक्षण है—मनुष्य बालक की तरह, जड़ की तरह, उन्माद-वाले की तरह, पिशाच की तरह हो जाता है; जैसे शुकदेव आदि। चैतन्यदेव कभी बालक की तरह, कभी उन्मत्त की तरह नृत्य करते थे। हँसते थे, रोते थे, नाचते थे, गाते थे। पुरीधाम में जब थे तब बहुधा जड़ समाधि में रहते थे।"

श्री केशव की हिन्दू धर्म पर उत्तरोत्तर अधिकाधिक श्रद्धा

इस प्रकार अनेक स्थानों में श्रीरामकृष्ण ने वार्तालाप के सिल-सिले में श्री केशवचन्द्र सेन को अनेक प्रकार के उपदेश दिये थे। बेलघर के बगीचे में प्रथम दर्शन के बाद केशव ने २८ मार्च १८७५ ई. के रविवारवाले 'मिरर' समाचार-पत्र में लिखा था:—

"हमने थोड़े दिन हुए दक्षिणेश्वर के परमहंस श्रीरामकृष्ण का बेलघर के बगीचे में दर्शन किया है। उनकी गम्भीरता, अन्तर्दृष्टि, बालस्वभाव देख हम मुग्ध हुए हैं। वे शान्तस्वभाव तथा कोमल प्रकृति के हैं और देखने से ऐसे लगते हैं मानो सदा योग में रहते हैं। इस समय हमारा ऐसा अनुमान हो रहा है कि हिन्दू धर्म के गम्भीरतम स्थलों का अनुसन्धान करने पर कितनी सुन्दरता, सत्यता तथा साधुता देखने को मिल सकती है! यदि ऐसा न होता तो परमहंस की तरह ईश्वरी भाव में भावित योगी पुरुष देखने में कैसे आते ?"‡ १८७६ ई. के जनवरी में फिर माघोत्सव आया। उन्होंने टाउनहाल में भाषण दिया। विषय था—ब्राह्म धर्म और हमारा अनुभव (Our Faith and Experiences)। इसमें भी उन्होंने हिन्दू धर्म की सुन्दरता के सम्बन्ध में अनेक बातें कही थीं।*

---

‡ We met not long ago Paramhansa of Dakshineswar, and were charmed by the depth, penetration and simplicity of his spirit. The never-ceasing metaphors and analogies in which he indulged, are most of them as apt as they are beautiful. The characteristics of his mind are the very opposite to those of Pandit Dayananda Saraswati, the former being so gentle, tender and contemplative as the latter is sturdy, masculine and polemical.

—*Indian Mirror, 28th March 1875*

Hinduism must have in it a deep source of beauty, truth and goodness to inspire such men as these.

—*Sunday Mirror, 28 March 1875*

* "If the ancient Vedic Aryan is gratefully honoured

श्रीरामकृष्ण उन पर जैसा स्नेह रखते थे, केशव की भी उनके प्रति वैसी ही भक्ति थी। प्रायः प्रतिवर्ष ब्राह्मोत्सव के समय तथा अन्य समय भी केशव दक्षिणेश्वर में जाते थे और उन्हें कमलकुटीर में ले आते थे। कभी कभी अकेले कमलकुटीर के दूसरे मँजले पर उपासनागृह में उन्हें परम अन्तरंग मानते हुए भक्ति के साथ ले जाते तथा एकान्त में ईश्वर की पूजा करते और आनन्द मनाते थे।

१८७९ ई. के भाद्रोत्सव के समय केशव श्रीरामकृष्ण को फिर निमन्त्रण देकर बेलघर के तपोवन में ले गये थे—१५ सितम्बर सोमवार और फिर २१ सितम्बर को कमलकुटीर के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए ले गये। इस समय श्रीरामकृष्ण के समाधिस्थ होने पर ब्राह्मभक्तों के साथ उनका फोटो लिया गया। श्रीरामकृष्ण खड़े खड़े समाधिस्थ थे। हृदय उन्हें पकड़कर खड़ा

---

today for having taught us the deep truth of the Nirakar or the bodiless spirit, the same loyal homage is due to the later Puranic Hindu for having taught us religious feelings in all their breadth and depth.

"In the days of the Vedas and the Vedanta, India was all Communion (Yoga). In the days of the Puranas India was all Emotion (Bhakti). The highest and the best feelings of religion have been cultivated under the guardianship of specific divinities."

'Our Faith and Experiences'
—Lecture delivered in January 1877

था । २२ अक्टूबर को महाष्टमी-नवमी के दिन केशव ने दक्षिणेश्वर में जाकर उनका दर्शन किया ।

२९ अक्टूबर १८७९ बुधवार को शरद पूर्णिमा के दिन के एक बजे के समय केशव फिर भक्तों के साथ दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने गये थे । स्टीमर के साथ सजी-सजायी एक बड़ी नौका, छः अन्य नौकाएँ, और दो छोटी नावें भी थीं । करीब अस्सी भक्तगण थे; साथ में झण्डा, फूल-पत्ते, मृदंग-करताल, भेरी भी थे । हृदय अभ्यर्थना करके केशव को स्टीमर से उतार लाया—गाना गाते गाते । गाने का मर्म इस प्रकार है—'सुरधुनी के तट पर कौन हरि का नाम लेता है, सम्भवतः प्रेम देनेवाले निताई आये हैं ।' ब्राह्मभक्तगण भी पंचवटी से कीर्तन करते करते उनके साथ आने लगे, 'सच्चिदानन्दविग्रहरूपानन्दघन ।' उनके बीच में थे श्रीरामकृष्ण—बीच बीच में समाधिमग्न हो रहे थे । इस दिन सन्ध्या के बाद गंगाजी के घाट पर पूर्णचन्द्र के प्रकाश में केशव ने उपासना की थी ।

उपासना के बाद श्रीरामकृष्ण कहने लगे, "तुम सब बोलो, 'ब्रह्म-आत्मा-भगवान्,' 'ब्रह्म-माया-जीव-जगत्', 'भागवत-भक्त-भगवान्' ।" केशव आदि ब्राह्मभक्तगण उस चन्द्रकिरण में भागीरथी के तट पर एक स्वर से श्रीरामकृष्ण के साथ साथ उन सब मन्त्रों का भक्ति के साथ उच्चारण करने लगे । श्रीरामकृष्ण फिर जब बोले, "बोलो, 'गुरु-कृष्ण-वैष्णव' ", तो केशव ने आनन्द से हँसते हँसते कहा, "महाराज, इस समय इतनी दूर नहीं । यदि हम 'गुरु-कृष्ण-वैष्णव' कहें तो लोग हमें कट्टरपन्थी कहेंगे!" श्रीरामकृष्ण भी हँसने लगे और बोले, "अच्छा, तुम (ब्राह्म) लोग जहाँ तक कह सको उतना ही कहो ।"

कुछ दिनों बाद १३ नवम्बर १८७९ ई. को श्रीकालीपूजा के बाद राम, मनोमोहन और गोपाल मित्र ने दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का प्रथम दर्शन किया।

१८८० ई. में एक दिन ग्रीष्मकाल में राम और मनोमोहन कमलकुटीर में केशव के साथ साक्षात्कार करने आये थे। उनकी यह जानने की प्रबल इच्छा हुई कि केशवबाबू की श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में क्या राय है। उन्होंने केशवबाबू से जब यह प्रश्न किया तो उन्होंने उत्तर दिया, "दक्षिणेश्वर के परमहंस साधारण व्यक्ति नहीं हैं, इस समय पृथ्वी भर में इतना महान् व्यक्ति दूसरा कोई नहीं है। वे इतने सुन्दर, इतने असाधारण व्यक्ति हैं कि उन्हें बड़ी सावधानी के साथ रखना चाहिए। देखभाल न करने पर उनका शरीर अधिक टिक नहीं सकेगा। इस प्रकार की सुन्दर मूल्यवान वस्तु को काँच की आलमारी में रखना चाहिए।"

इसके कुछ दिनों बाद १८८१ ई. के माघोत्सव के समय पर जनवरी के महीने में केशव श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर में गये थे। उस समय वहाँ पर राम, मनोमोहन, जयगोपाल सेन आदि अनेक व्यक्ति उपस्थित थे।

१५ जुलाई १८८१ ई. को केशव फिर श्रीरामकृष्ण को दक्षिणेश्वर से स्टीमर में ले गये।

१८८१ ई. के नवम्बर मास में मनोमोहन के मकान पर जिस समय श्रीरामकृष्ण का शुभागमन तथा उत्सव हुआ था उस समय भी आमन्त्रित होकर केशव उत्सव में सम्मिलित हुए थे। श्री त्रैलोक्य आदि ने भजन गाया था।

१८८१ ई. के दिसम्बर मास में श्रीरामकृष्ण आमन्त्रित होकर राजेन्द्र मित्र के मकान पर गये थे। श्री केशव भी गये थे। यह

मकान ठनठनिया के बेचू चटर्जी स्ट्रीट में है। राजेन्द्र थे राम तथा मनोमोहन के मौसा। राम, मनोमोहन, ब्राह्मभक्त राजमोहन तथा राजेन्द्र ने केशव को समाचार देकर निमन्त्रित किया था।

केशव को जिस समय समाचार दिया गया उस समय वे भाई अघोरनाथ के शोक में अशौच अवस्था में थे। प्रचारक भाई अघोर ने ८ दिसम्बर बृहस्पतिवार को लखनऊ शहर में देहत्याग किया था। सभी ने अनुमान किया कि केशव न आ सकेंगे। समाचार पाकर केशव बोले, "यह कैसे! परमहंस महाशय आयेंगे और मैं न जाऊँ? अवश्य जाऊँगा! अशौच में हूँ इसलिए मैं अलग स्थान पर बैठकर खाऊँगा।"

मनोमोहन की माता परम भक्तिमती श्यामासुन्दरी देवी ने श्रीरामकृष्ण को भोजन परोसा था। राम भोजन के समय पास खड़े थे। जिस दिन राजेन्द्र के घर पर श्रीरामकृष्ण ने शुभागमन किया उस दिन तीसरे पहर सुरेन्द्र ने उन्हें चीनाबाजार में ले जाकर उनका फोटो उतरवाया था। श्रीरामकृष्ण खड़े खड़े समाधिमग्न थे।

उत्सव के दिन महेन्द्र गोस्वामी ने भागवत की कथा की।

जनवरी १८८२ ई.—माघोत्सव के उपलक्ष्य में, शिमुलिया ब्राह्मसमाज के उत्सव में ज्ञान चौधरी के मकान पर श्रीरामकृष्ण और केशव आमन्त्रित होकर उपस्थित थे। आँगन में कीर्तन हुआ। इसी स्थान में श्रीरामकृष्ण ने पहले-पहल नरेन्द्र का गाना सुना और उन्हें दक्षिणेश्वर आने के लिए कहा।

२३ फरवरी १८८२ ई., बृहस्पतिवार को केशव ने दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण का फिर से दर्शन किया। उनके साथ थे अमेरिकन पादरी जोसेफ कुक तथा कुमारी पिगाट। ब्राह्म-

भक्तों के साथ केशव ने श्रीरामकृष्ण को स्टीमर पर बैठाया। कुक साहब ने श्रीरामकृष्ण की समाधि-स्थिति देखी थी। इस घटना के तीन दिन के अन्दर मास्टर ने दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का प्रथम दर्शन किया।

दो मास बाद—अप्रैल मास में—श्रीरामकृष्ण कमलकुटीर में केशव को देखने आये। उसी का थोड़ासा विवरण निम्नलिखित परिच्छेद में दिया गया है।

श्रीरामकृष्ण का केशव के प्रति स्नेह। जगन्माता के पास नारियल-शक्कर की मन्नत

आज कमलकुटीर के उसी बैठक-घर में श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हैं। २ अप्रैल १८८२ ई., रविवार, दिन के पाँच बजे का समय। केशव भीतर के कमरे में थे। उन्हें समाचार दिया गया। कमीज पहनकर और चद्दर ओढ़कर उन्होंने आकर प्रणाम किया। उनके भक्त मित्र कालीनाथ बसु रुग्ण हैं, वे उन्हें देखने जा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण आये हैं, इसलिए केशव नहीं जा सके। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "तुम्हें बहुत काम रहता है, फिर अखबार में भी लिखना पड़ता है, वहाँ (दक्षिणेश्वर) जाने का अवसर नहीं रहता। इसलिए मैं ही तुम्हें देखने आ गया हूँ। तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, यह जानकर नारियल-शक्कर की मन्नत मानी थी। माँ से कहा, माँ, यदि केशव को कुछ हो जाय तो फिर कलकत्ता जाकर किसके साथ बात करूँगा?"

श्री प्रताप आदि ब्राह्मभक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण वार्तालाप कर रहे हैं। पास ही मास्टर को बैठे देख वे केशव से कहते हैं, "वे वहाँ पर (दक्षिणेश्वर में) क्यों नहीं जाते हैं, पूछो तो! इतना ये कहते हैं कि स्त्री-बच्चों पर मन नहीं है।" एक मास से कुछ

अधिक समय हुआ, मास्टर श्रीरामकृष्ण के पास आया जाया करते हैं। बाद में जाने में कुछ दिनों का विलम्ब हुआ। इसीलिए श्रीरामकृष्ण इस प्रकार कह रहे हैं। उन्होंने कह दिया था, 'आने में देरी होने पर मुझे पत्र देना।'

ब्राह्मभक्तगण श्री सामाध्यायी को दिखाकर श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं, "आप विद्वान् हैं। वेद शास्त्रादि का आपने अच्छा अध्ययन किया है।" श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "हाँ, इनकी आँखों में से इनका भीतरी भाग दिखायी दे रहा है। ठीक जैसे खिड़की की काँच में से घर के भीतर की चीजें दिखायी देती हैं।"

श्री त्रैलोक्य गाना गा रहे हैं। गाना हो रहा है। इतने में ही सन्ध्या का दिया जलाया गया। गाना सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण एकाएक खड़े हो गये, और 'माँ' का नाम लेते लेते समाधिमग्न हो गये। कुछ स्वस्थ होकर स्वयं ही नृत्य करते करते गाना गाने लगे जिसका आशय इस प्रकार है :—

"मैं सुरापान नहीं करता, 'जय काली' कहता हुआ सुधा का पान करता हूँ। वह सुधा मुझे इतना मतवाला बना देती है कि लोग मुझे नशाखोर कहते हैं। गुरुजी का दिया हुआ गुड़ लेकर उसमें प्रवृत्ति का मसाला मिलाकार ज्ञानरूपी कलार उससे शराब बनाता है और मेरा मतवाला मन उसे मूलमन्त्ररूपी बोतल में से पीता है। पीने के पहले 'तारा' कहकर मैं उसे शुद्ध कर लेता हूँ। 'रामप्रसाद' कहता है कि ऐसी शराब पीने पर धर्म-अर्थादि चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है।"

श्री केशव को श्रीरामकृष्ण स्नेहपूर्ण नेत्रों से देख रहे हैं, मानो अपने निजी हैं। और मानो भयभीत हो रहे हैं कि कहीं केशव किसी दूसरे के अर्थात् संसार के न बन जायें। उनकी ओर ताकते

हुए श्रीरामकृष्ण ने फिर गाना प्रारम्भ किया, जिसका भावार्थ इस प्रकार का है—

"बात करने से भी डरती हूँ, न करने से भी डरती हूँ। हे राधे, मन में सन्देह होता है कि कहीं तुम जैसी निधि को गवाँ न बैठूं। हम तुम्हें वह मन्त्र बतलाती हैं जिससे हम विपत्ति से पार हो गयी हैं और जो लोगों को भी विपत्ति से पार कर देता है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा।" अर्थात् सब कुछ छोड़ भगवान् को पुकारो, वे ही सत्य हैं और सब अनित्य है। उन्हें प्राप्त किये बिना कुछ भी न होगा—यही महामन्त्र है।

फिर बैठकर भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

उनके लिए जलपान की तैयारी हो रही है। हाल के एक कोने में एक ब्राह्मभक्त पियानो बजा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण प्रसन्नवदन हो बालक की तरह पियानो के पास खड़े होकर देख रहे हैं। थोड़ी देर बाद उन्हें अन्तःपुर में ले जाया गया,— वहाँ वे जलपान करेंगे और महिलाएँ उन्हें प्रणाम करेंगी।

श्रीरामकृष्ण का जलपान समाप्त हुआ। अब वे गाड़ी में बैठे ब्राह्मभक्तगण सभी गाड़ी के पास खड़े हैं। कमलकुटीर से गाड़ी दक्षिणेश्वर की ओर चली।

परिच्छेद ७

श्रीरामकृष्ण तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

(१)

श्री विद्यासागर का मकान

आज शनिवार है, श्रावण कृष्णा षष्ठी, ५ अगस्त १८८२ ई.। दिन के चार बजे होंगे।

श्रीरामकृष्ण किराये की गाड़ी पर कलकत्ते के रास्ते बादुड़-बागान की तरफ जा रहे हैं। भवनाथ, हाजरा और मास्टर साथ में हैं। आप पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के घर जायेंगे।

श्रीरामकृष्ण की जन्मभूमि जिला हुगली के अन्तर्गत कामार-पुकुर गाँव है, जो पण्डित विद्यासागर की जन्मभूमि वीरसिंह गाँव के पास है। श्रीरामकृष्णदेव बाल्यकाल से ही विद्यासागर की दया की चर्चा सुनते आते हैं। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में प्रायः उनके पाण्डित्य और दया की बातें सुना करते हैं। यह सुनकर कि मास्टर विद्यासागर के स्कूल में पढ़ाते हैं, आपने उनसे पूछा, "क्या मुझे विद्यासागर के पास ले चलोगे? मुझे उन्हें देखने की बड़ी इच्छा होती है।" मास्टर ने जब विद्यासागर से यह बात कही तो उन्होंने हर्ष के साथ किसी शनिवार को चार बजे उन्हें साथ लाने को कहा। केवल यही पूछा—"कैसे परमहंस हैं? क्या वे गेरुए कपड़े पहनते हैं?" मास्टर ने कहा—"जी नहीं, वे एक अद्-भुत पुरुष हैं; लाल किनारीदार धोती पहनते हैं, कुरता पहनते हैं, पालिश किये हुए स्लीपर पहनते हैं, रानी रासमणि के कालीमन्दिर की एक कोठरी में रहते हैं, जिसमें एक तखत है और उस पर

बिस्तर और मच्छरदानी, उस बिस्तर पर लेटते हैं। कोई बाहरी भेष तो नहीं है, पर सिवाय ईश्वर के और कुछ नहीं जानते, अहर्निश उन्ही का चिन्तन किया करते हैं।"

गाड़ी दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर से चलकर श्यामबाजार होते हुए अब अमहर्स्ट स्ट्रीट में आयी है। भक्त लोग कह रहे हैं कि अब बादुड़बागान के पास आयी है। श्रीरामकृष्ण बालक की भाँति आनन्द से बातचीत करते हुए आ रहे हैं। अमहर्स्ट स्ट्रीट में आकर एकाएक उनका भावान्तर हुआ—मानो ईश्वरावेश होना चाहता है।

गाड़ी राममोहन राय के बाग की बगल से आ रही है। मास्टर ने श्रीरामकृष्ण का भावान्तर नहीं देखा, झट कह दिया—'यह राममोहन राय का बाग है।' श्रीरामकृष्ण नाराज हुए, कहा, 'अब ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।' आप भावाविष्ट हो रहे हैं।

विद्यासागर के मकान के सामने गाड़ी खड़ी हुई। मकान दुमंजिला है, साहबी ढंग से सजा हुआ है। मकान के चारों ओर खुली जगह है जो दीवार से घिरी हुई है। मकान के पश्चिम की ओर फाटक है। आँगन में बीच बीच में पुष्पवृक्ष लगे हुए हैं। नीचे पश्चिमवाले कमरे में ऊपर चढ़ने के लिए जीना है। विद्यासागर ऊपर रहते हैं। जीने से चढ़कर ऊपर जाते ही उत्तर की ओर एक कमरा है, उसके पूर्व की ओर एक हाल है। हाल के दक्षिण-पूर्ववाले कमरे में विद्यासागर सोया करते हैं। दक्षिण की ओर और एक कमरा है। ये सारे कमरे कीमती पुस्तकों से भरे हैं। पुस्तकों पर सुन्दर जिल्द लगवाकर उन्हें अच्छी तरह सजाकर रखा गया है। हाल के पूर्व की ओर मेज और कुर्सी है। यहीं बैठकर विद्यासागर काम किया करते हैं। जो लोग उनसे

मिलने आते हैं वे मेज के तीनों ओर रखी हुई कुर्सियों पर बैठा करते हैं। मेज पर कागज, कलम, स्याही आदि लिखने की वस्तुएँ, बहुतसी चिट्ठियाँ, और कुछ पुस्तकें रखी हुई हैं।

मेज पर जो चिट्ठियाँ रखी हुई हैं उनमें क्या लिखा है? शायद किसी विधवा ने लिखा है, 'मेरा नाबालिग बच्चा अनाथ है, उसकी ओर देखनेवाला कोई नहीं, आप ही को उसकी ओर देखना होगा।' किसी ने लिखा है, 'आप कहीं चले गये थे, इस लिए हमें इस माह का पैसा समय पर नहीं मिला, बड़ी तकलीफ हुई।' किसी गरीब छात्र ने लिखा है, 'आपके स्कूल में निःशुल्क भरती तो हो गया हूँ, पर मुझमें पुस्तकें खरीदने की भी सामर्थ्य नहीं है।' किसी ने लिखा है, 'मेरे परिवार के लोगों को खाने को नहीं मिल रहा है—मुझे एक नौकरी लगवा देनी होगी।' उनके स्कूल के किसी शिक्षक ने लिखा है, 'मेरी बहन विधवा हो गयी है, उसका सारा भार मुझ पर आ पड़ा है, इतनी तनख्वाह में मेरा गुजर नहीं हो पायगा।' शायद किसी ने विलायत से पत्र लिखा है, 'मैं यहाँ विपत्ति में पड़ा हूँ; आप दीनबन्धु हैं, कुछ मदद भेजकर इस संकट से मेरी रक्षा करें।' किसी ने लिखा है, 'अमुक तारीख को हमारे फैसले का दिन निश्चित हुआ है, उस दिन आप आकर हमारा झगड़ा मिटा दें।'

श्रीरामकृष्णदेव गाड़ी से उतरे। मास्टर राह बताते हुए आपको मकान के भीतर ले जा रहे हैं। आँगन में फूलों के पेड़ हैं। उनके बीच में से जाते हुए श्रीरामकृष्ण बालक की तरह बटन में हाथ लगाकर मास्टर से पूछ रहे हैं, "कुरते के बटन खुले हुए हैं—इसमें कुछ हानि तो न होगी?" बदन पर एक सूती कुरता है और लाल किनारे की धोती पहने हुए हैं, जिसका एक

छोर कन्धे पर पड़ा हुआ है। पैरों में स्लीपर है। मास्टर ने कहा—"आप इस सब के लिए चिन्ता न कीजिये, आपकी कहीं कुछ त्रुटि न होगी। आपको बटन नहीं लगाना पड़ेगा।" समझाने पर लड़का जैसे शान्त हो जाता है, आप भी वैसे शान्त हो गये।

विद्यासागर

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ जीने से चढ़कर पहले कमरे में (जो उत्तर की तरफ था) गये। कमरे में विद्यासागर बैठे हैं। सामने एक चौकोर लम्बी चिकनी मेज है। इसी के पास एक बेंच है। मेज के आसपास कुछ कुर्सियाँ हैं। विद्यासागर दो एक मित्रों से बातचीत कर रहे थे।

श्रीरामकृष्ण के प्रवेश करते ही विद्यासागर ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। श्रीरामकृष्ण मेज के पूर्व की ओर खड़े हैं—बायाँ हाथ मेज पर है; पीछे वह बेंच है। विद्यासागर को पूर्वपरिचित की भाँति एकटक देखते हैं और भावावेश में हँसते हैं।

विद्यासागर की उम्र तिरसठ के लगभग होगी। श्रीरामकृष्ण से वे सोलह-सत्तरह वर्ष बड़े होंगे। मोटी धोती पहने हुए हैं, पैरों में स्लीपर, और बदन में एक आधी आस्तीन का फलालैन का कुरता। सिर का निचला हिस्सा चारों तरफ उड़िया लोगों की तरह मुँड़ा हुआ है। बोलने के समय उज्ज्वल दाँत नजर आते हैं—सभी दाँत नकली हैं। सिर खूब बड़ा है, ललाट ऊँचा है और कद कुछ छोटा। ब्राह्मण हैं, इसलिए गले में जनेऊ है।

विद्यासागर में अनेक गुण हैं। पहला गुण—विद्यानुराग। एक दिन मास्टर से यह कहते हुए सचमुच ही रो पड़े थे कि मेरी तो तीव्र इच्छा थी कि खूब विद्या-अध्ययन करूँ, पर कुछ न हो सका; संसार में पड़ जाने के कारण बिलकुल समय नहीं मिला।

दूसरा गुण—सर्व जीवों पर दया। विद्यासागर दया के सागर हैं। बछड़ों को माँ का दूध नहीं मिलता यह देखकर दूध पीना छोड़ ही दिया था; आखिर कई साल बाद स्वास्थ्य बहुत अधिक बिगड़ जाने के कारण फिर दूध शुरू करना पड़ा था। गाड़ी में नहीं चढ़ते थे—घोड़ा बेचारा अपना कष्ट जता नहीं सकता, चुपचाप सहता जाता है। एक दिन आपने देखा, एक बोझ ढोनेवाले हम्माल को हैजा हो गया है, वह रास्ते पर पड़ा हुआ है, पास ही उसकी टोकरी पड़ी है। देखते ही आप स्वयं उसे उठाकर अपने घर ले आये और उसकी सेवाशुश्रूषा करने लगे। तीसरा गुण—स्वाधीनताप्रीति। अधिकारियों के साथ एक-मत न होने के कारण संस्कृत कालेज के प्रधानाध्यापक (प्रिन्सिपल) का पद छोड़ दिया। चौथा गुण—लोगों की निन्दास्तुति की परवाह नहीं थी। एक शिक्षक पर आपका स्नेह था, उनकी बेटी के विवाह के समय बगल में उसे उपहार देने के लिए नया वस्त्र दाबकर आ खड़े हुए। पाँचवाँ गुण—मातृभक्ति तथा मानसिक वल। माँ ने कहा था, 'ईश्वर, तुम यदि इस विवाह में (भाई के विवाह में) नहीं आओगे तो मेरे मन में बड़ा दुख होगा।' इस-लिए कलकत्ते से पैदल ही निकल पड़े। राह में दामोदर नदी थी। नाव नहीं थी,—तैरकर ही उस पार चले गये। विवाह की रात्रि को गीले कपड़ों में माँ के सामने जा पहुँचे, कहा, 'माँ, मैं आ गया।'

विद्यासागर के साथ श्रीरामकृष्ण का वार्तालाप

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो रहे हैं और थोड़ी देर के लिए उसी दशा में खड़े हैं। भाव सम्हालने के लिए बीच बीच में कहते हैं कि पानी पीऊँगा। इस बीच में घर के लड़के और आत्मीय बन्धु भी आकर खड़े हो गये।

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर बेंच पर बैठते हैं। एक सत्तरह-अठारह वर्ष का लड़का उस पर बैठा है—विद्यासागर के पास सहायता माँगने आया है। श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हैं—ऋषि की अन्तर्दृष्टि लड़के के सब मनोभाव ताड़ गयी। आप कुछ सरककर बैठे और भावावेश में कहने लगे, "माँ इस लड़के की संसार में बड़ी आसक्ति है, और तुम्हारे अविद्या के संसार पर ! यह अविद्या का लड़का है।"

जो ब्रह्मविद्या के लिए व्याकुल नहीं है, केवल अर्थकरी विद्या का उपार्जन करना उसके लिए व्यर्थ है—कदाचित् आप यही कह रहे हैं।

विद्यासागर ने व्यग्र होकर किसी से पानी लाने को कहा और मास्टर से पूछा, "कुछ मिठाई लाऊँ, क्या ये खायेंगे ?" मास्टर ने कहा, "जी हाँ, ले आइये।" विद्यासागर जल्दी से भीतर जाकर कुछ मिठाइयाँ ले आये और कहा कि ये बर्दवान से आयी हैं। श्रीरामकृष्ण को कुछ खाने को दी गयी; हाजरा और भवनाथ ने भी कुछ पायी। जब मास्टर की पारी आयी तो विद्यासागर ने कहा, "वह तो घर ही का लड़का है, उसके लिए चिन्ता नहीं।" श्रीरामकृष्ण एक भक्त लड़के के बारे में विद्यासागर से कह रहे हैं, जो सामने ही बैठा था। आपने कहा, "यह लड़का बड़ा अच्छा है, और इसके भीतर सार है, जैसे फल्गु नदी; ऊपर तो रेत है, पर थोड़ा खोदने से ही भीतर पानी बहता दिखायी देता है।"

मिठाई पा चुकने के बाद आप हँसते हुए विद्यासागर से बात-चीत कर रहे हैं। देखते ही देखते कमरा दर्शकों से भर गया; कोई बैठा है, कोई खड़ा है।

श्रीरामकृष्ण—आज सागर से आ मिला। इतने दिन खाई,

सोता और अधिक से अधिक हुआ तो नदी देखी, पर अब सागर देख रहा हूं ।(सब हंसते हैं ।)

विद्यासागर–तो थोड़ा खारा पानी लेते जाइये। (हास्य)

श्रीरामकृष्ण–नहीं जी, खारा पानी क्यों? तुम तो अविद्या के सागर नहीं, विद्या के सागर हो! (सब हंसे ।) तुम क्षीरसमुद्र हो! (सब हंसे ।)

विद्यासागर–आप जो चाहें कह सकते हैं ।

सात्त्विक कर्म । दया और सिद्धपुरुष

विद्यासागर चुप रहे । श्रीरामकृष्ण फिर कहने लगे––

"तुम्हारा कर्म सात्त्विक कर्म है । यह सत्त्व का रजस् है । सत्त्वगुण से दया होती है । दया से जो कर्म किया जाता है, वह है तो राजसिक कर्म सही, पर यह रजोगुण सत्त्व का रजोगुण है, इसमें दोष नहीं है । शुकदेव आदि ने लोकशिक्षा के लिए दया रख ली थी––ईश्वर के विषय में शिक्षा देने के लिए । तुम विद्यादान और अन्नदान कर रहे हो––यह भी अच्छा है । निष्काम रीति से कर सको तो इससे ईश्वर-लाभ होगा । कोई करता है नाम के लिए, कोई पुण्य के लिए––उनका कर्म निष्काम नहीं ।

"फिर सिद्ध तो तुम हो ही ।"

विद्यासागर–महाराज, यह कैसे?

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)–आलू-परवल सिद्ध होने से (पक जाने से) नरम हो जाते हैं––सो तुम भी बहुत नर्म हो । तुम्हारी ऐसी दया! (हास्य)

विद्यासागर (सहास्य)–पीसा उरद तो सिद्ध होने पर सख्त हो जाता है । (सब हंसे ।)

श्रीरामकृष्ण–तुम वैसे क्यों होने लगे? खाली पण्डित कैसे

हैं—मानो एक पके फल का अंश जो अन्त तक कठिन ही रह जाता है। वे न इधर के हैं न उधर के। गीध खूब ऊंचा उड़ता है, पर उसकी नजर हड़ावर पर ही रहती है। जो खाली पण्डित हैं, वे सुनने के ही हैं, पर उनकी कामिनी-कांचन पर आसक्ति होती है—गीध की तरह वे सड़ी लाशें ढूंढ़ते हैं। आसक्ति का घर अविद्या के संसार में है।दया, भक्ति, वैराग्य—ये विद्या के ऐश्वर्य हैं।

विद्यासागर चुपचाप सुन रहे हैं। सभी टकटकी बाँधे इस आनन्दमय पुरुष को देख रहे हैं, उनका वचनामृत पान कर रहे हैं।

(३)

श्रीरामकृष्ण : ज्ञानयोग अथवा वेदान्त-विचार

विद्यासागर बड़े विद्वान् हैं। जब संस्कृत कालेज में पढ़ते थे तब अपनी श्रेणी के सब से अच्छे छात्र थे। हरएक परीक्षा में प्रथम होते और स्वर्णपदक आदि अथवा छात्रवृत्तियाँ पाते थे। होते होते वे संस्कृत कालेज के प्रधान अध्यापक तक हुए थे। संस्कृत व्याकरण तथा काव्य में उन्होंने विशेष ज्ञान प्राप्त किया था। स्वयं के प्रयत्न से अंग्रेजी सीखी थी।

विद्यासागर किसी को धर्मशिक्षा नहीं देते थे। वे दर्शनादि ग्रन्थ पढ़ चुके थे। मास्टर ने एक दिन उनसे पूछा, "आपको हिन्दू दर्शन कैसे लगते हैं?" उन्होंने जवाब दिया, "मुझे यही मालूम होता है कि वे जो चीज समझाने गये उसे समझा न सके।" वे हिन्दुओं की भाँति श्राद्धादि सब धर्मानुष्ठान करते थे, गले में जनेऊ धारण करते थे, अपनी भाषा में जो पत्र लिखते थे, उनमें सब से पहले "श्रीश्रीहरिः शरणम्" यह ईश्वरवन्दनात्मक वाक्य लिखते थे।

मास्टर ने और एक दिन उनको ईश्वर के विषय में यह कहते सुना, "ईश्वर को कोई जान तो सकता नहीं। फिर करना क्या

चाहिए? मेरी समझ में, हम लोगों को ऐसा होना चाहिए कि यदि सब कोई वैसे हों तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाय। हरएक को ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि जिससे जगत् का भला हो।"

विद्या और अविद्या की चर्चा करते हुए श्रीरामकृष्ण ब्रह्मज्ञान की बात कह रहे हैं। विद्यासागर बड़े पण्डित हैं—शायद षड्-दर्शन पढ़कर उन्होंने देखा है कि ईश्वर के विषय में कुछ भी जानना सम्भव नहीं।

श्रीरामकृष्ण—ब्रह्म विद्या और अविद्या दोनों के परे है, वह मायातीत है।

ब्रह्म निर्लिप्त है — दुःखादि का सम्बन्ध जीव से ही है।

"इस जगत् में विद्यामाया और अविद्यामाया दोनों हैं, ज्ञान-भक्ति भी हैं, और साथ ही कामिनी-कांचन भी हैं, सत् भी है और असत् भी, भला भी है और बुरा भी, परन्तु ब्रह्म निर्लिप्त है। भला-बुरा जीवों के लिए है, सत्-असत् जीवों के लिए। वह ब्रह्म को स्पर्श नहीं कर सकता।

"जैसे, दीप के सामने कोई भागवत पढ़ रहा है और कोई जाल रच रहा है, पर दीप निर्लिप्त है।

"सूर्य शिष्ट पर भी प्रकाश डालता है और दुष्ट पर भी।

"यदि कहो कि दुःख, पाप, आशान्ति ये सब फिर क्या हैं,—तो उसका जवाब यह है कि वे सब जीवों के लिए हैं, ब्रह्म निर्लिप्त है। साँप में विष है; औरों को डसने से वे मर जाते हैं, पर साँप को उससे कोई हानि नहीं होती।

ब्रह्म अनिर्वचनीय, 'अव्यपदेश्यम्' है।

"ब्रह्म क्या है सो मुंह से नहीं कहा जा सकता। सभी चीजें जूठी हो गयी हैं; वेद, पुराण, तन्त्र, षड्दर्शन सब जूठे हो गये हैं।

मुँह से पढ़े गये हैं, मुँह से उच्चारित हुए हैं—इसी से जूठे हो गये। पर केवल एक वस्तु जूठी नहीं हुई है—वह वस्तु ब्रह्म है। ब्रह्म क्या है यह आज तक कोई मुँह से नहीं कह सका।"

विद्यासागर (मित्रों से)—वाह ! यह तो बड़ी सुन्दर बात हुई! आज मैंने एक नयी बात सीखी ।

श्रीरामकृष्ण—एक पिता के दो लड़के थे। ब्रह्मविद्या सीखने के लिए पिता ने लड़कों को आचार्य को सौंपा । कुछ वर्ष बाद वे गुरुगृह से लौटे, आकर पिता को प्रणाम किया। पिता की इच्छा हुई कि देखें इन्हें कैसा ब्रह्मज्ञान हुआ। बड़े बेटे से उन्होंने पूछा, 'बेटा, तुमने तो सब कुछ पढ़ा है, अब बताओ ब्रह्म कैसा है।' बड़ा लड़का वेदों से बहुतसे श्लोकों की आवृत्ति करते हुए ब्रह्म का स्वरूप समझाने लगा; पिता चुप रहे। जब उन्होंने छोटे लड़के से पूछा तो वह सिर झुकाये चुप रहा, मुँह से बात न निकली; तब पिता ने प्रसन्न होकर छोटे लड़के से कहा, 'बेटा, तुम्हीं ने कुछ समझा है। ब्रह्म क्या है यह मुँह से नहीं कहा जा सकता।'

"मनुष्य सोचता है कि हम ईश्वर को जान गये। एक चींटी चीनी के पहाड़ के पास गयी थी। एक दाना खाकर उसका पेट भर गया, एक दूसरा दाना मुँह में लिये अपने डेरे को जाने लगी, जाते समय सोच रही है कि अब की बार आकर समूचे पहाड़ को ले जाऊँगी। क्षुद्र जीव यही सब सोचते हैं—वे नहीं जानते कि ब्रह्म वाक्य-मन के अतीत है।

"कोई भी हो—वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, ईश्वर को जान थोड़े ही सकता है ! शुकदेव आदि मानो बड़े चींटे हैं—चीनी के आठ-दस दाने मुँह में ले लें—और क्या ?

ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है

"वेद-पुराणों में जो ब्रह्म के विषय में कहा गया है, वह किस ढंग का कथन है सो सुनो। एक आदमी के समुद्र देखकर लौटने पर यदि कोई उससे पूछे कि समुद्र कैसा देखा, तो वह जैसे मुँह बाये कहता है, 'आह! क्या देखा! कैसी लहरें! कैसी आवाज!' बस, ब्रह्म का वर्णन भी वैसा ही है। वेदों में लिखा है—वह आनन्दस्वरूप है—सच्चिदानन्द। शुकदेव आदि ने यह ब्रह्मसागर किनारे पर खड़े होकर देखा और छुआ था। किसी के मतानुसार वे इस सागर में उतरे नहीं। इस सागर में उतरने से फिर कोई लौट नहीं सकता।

निर्विकल्प समाधि तथा ब्रह्मज्ञान

"समाधिस्थ होने से ब्रह्मज्ञान होता है—ब्रह्मदर्शन होता है—उस दशा में विचार बिलकुल बन्द हो जाता है, आदमी चुप हो जाता है। ब्रह्म कैसी वस्तु है, यह मुँह से बताने की सामर्थ्य नहीं रहती।

"एक नमक का पुतला समुद्र नापने गया! (सब हँसे।) पानी कितना गहरा है, उसकी खबर देना चाहता था! पर खबर देना उसे नसीब न हुआ। वह पानी में उतरा कि गल गया! बस फिर खबर कौन दे!"

किसी ने प्रश्न किया, "क्या समाधिस्थ पुरुष जिनको ब्रह्मज्ञान हुआ है, फिर बोलते नहीं?"

श्रीरामकृष्ण (विद्यासागर आदि से)– लोकशिक्षा के लिए शंकराचार्य ने विद्या का 'अहं' रखा था। ब्रह्मदर्शन होने से मनुष्य चुप हो जाता है। जब तक दर्शन न हो, तभी तक विचार होता है। घी जब तक पक न जाय, तभी तक आवाज करता है। पके

घी से शब्द नहीं निकलता। पर पके घी में कच्ची पूरी छोड़ी जाती है, तो फिर एक बार वैसा ही शब्द निकलता है। जब कच्ची पूरी को पका डाला, तब वह फिर चुप हो जाता है। वैसे ही समाधिस्थ पुरुष लोकशिक्षण के लिए फिर नीचे उतरता है, फिर बोलता है।

"जब तक मधुमक्खी फूल पर नहीं बैठती, तब तक भनभनाती रहती है। फूल पर बैठकर मधु पीना शुरू करने के बाद वह चुप हो जाती है। हाँ, मधुपान के उपरान्त मस्त होकर फिर कभी कभी भनभनाती है।

"तालाव में घड़ा भरते समय भक् भक् आवाज होती है। घड़ा भर जाने के वाद फिर आवाज नहीं होती। (सब हँसे।) हाँ, यदि एक घड़े से पानी दूसरे में डाला जाय, तो फिर शब्द होता है।" (हास्य)

(४)

ज्ञान एवं विज्ञान। अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा द्वैतवाद का समन्वय

श्रीरामकृष्ण—ऋषियों को ब्रह्मज्ञान हुआ था—विषयबुद्धि का लेशमात्र रहते यह ब्रह्मज्ञान नहीं होता। ऋषि लोग कितना परिश्रम करते थे! सबेरे आश्रम से चले जाते थे। दिनभर अकेले ध्यान-चिन्तन करते और रात को आश्रम में लौटकर कुछ फलमूल खाते थे। देखना, सुनना, छूना इन सब विषयों से मन को अलग रखते थे; तब कहीं उन्हें ब्रह्म का बोध होता था।

"कलियुग में लोगों के प्राण अन्न पर निर्भर हैं, देहात्मबुद्धि जाती नहीं। इस दशा में 'सोऽहम्'—मैं ब्रह्म हूँ—कहना अच्छा नहीं। सभी काम किये जाते हैं, फिर 'मैं ही ब्रह्म हूँ' यह कहना

ठीक नहीं। जो विषय का त्याग नहीं कर सकते, जिनका अहंभाव किसी तरह जाता नहीं, उनके लिए 'मैं दास हूँ', 'मैं भक्त हूँ' यह अभिमान अच्छा है। भक्तिपथ में रहने से भी ईश्वर का लाभ होता है।

"ज्ञानी 'नेति नेति'—ब्रह्म यह नहीं, वह नहीं, अर्थात् कोई भी ससीम वस्तु नहीं—यह विचार करके सब विषयबुद्धि छोड़े तब ब्रह्म को जान सकता है। जैसे कोई जीने की एक एक सीढ़ी पार करते हुए छत पर पहुँच सकता है। पर विज्ञानी—जिसने विशेष रूप से ईश्वर से मेल-मिलाप किया है—और भी कुछ दर्शन करता है; वह देखता है कि जिन चीजों से छत बनी है—उन ईंटों, चूने, सुर्खी से जीना भी बना है। 'नेति नेति' करके जिस ब्रह्मवस्तु का ज्ञान होता है, वही जीव और जगत् होती है। विज्ञानी देखता है कि जो निर्गुण है, वही सगुण भी है।

"छत पर बहुत देर तक लोग ठहर नहीं सकते; फिर उतर आते हैं। जिन्होंने समाधिस्थ होकर ब्रह्मदर्शन किया है वे भी नीचे उतरकर देखते हैं कि वही जीव-जगत् हुआ है। सा, रे, ग, म, प, ध, नि। 'नि' में—चरमभूमि में—बहुत देर तक रहा नहीं जाता। 'अहं' नहीं मिटता; तब मनुष्य देखता है कि ब्रह्म ही 'मैं', जीव, जगत्—सब कुछ हुआ है। इसी का नाम विज्ञान है।

"ज्ञानी की राह भी राह है, ज्ञान-भक्ति की राह भी राह है, फिर भक्ति की भी राह एक राह है। ज्ञानयोग भी सत्य है, और भक्तिपथ भी सत्य है; सभी रास्ते से ईश्वर के समीप जाया जा सकता है। ईश्वर जब तक जीवों में 'मैं' बोध रखता है, तब तक भक्तिपथ ही सरल है।

"विज्ञानी देखता है कि ब्रह्म अटल, निष्क्रिय, सुमेरुवत् है। यह

संसार उसके सत्त्व, रज और तम——इन तीन गुणों से बना है, पर वह निर्लिप्त है।

"विज्ञानी देखता है कि जो ब्रह्म है वही भगवान् है,——जो गुणातीत है वही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् है। ये जीव और जगत्, मन और बुद्धि, भक्ति, वैराग्य और ज्ञान——सब उसके ऐश्वर्य हैं। (सहास्य) जिस बाबू के घरद्वार नहीं है——या तो बिक गया——वह बाबू कैसा! (सब हँसे।) ईश्वर षडैश्वर्यपूर्ण है। यदि उसके ऐश्वर्य न होता तो कौन उसकी परवाह करता ? (सब हँसे।)

शक्तिविशेष

"देखो न, यह जगत् कैसा विचित्र है! कितने प्रकार की वस्तुएँ——चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र——कितने प्रकार के जीव इसमें हैं! बड़ा-छोटा, अच्छा-बुरा; किसी में शक्ति अधिक है, किसी में कम।"

विद्यासागर—क्या ईश्वर ने किसी को अधिक शक्ति दी है और किसी को कम ?

श्रीरामकृष्ण—वह विभु के रूप में सब प्राणियों में है——चींटियों तक में है। पर शक्ति का तारतम्य होता है; नहीं तो क्यों कोई दस आदमियों को हरा देता है, और कोई एक ही आदमी से भागता है ? और ऐसा न हो तो भला तुम्हें ही सब कोई क्यों मानते हैं ? क्या तुम्हारे दो सींग निकले हैं? (हास्य।) औरों की अपेक्षा तुममें अधिक दया है,——विद्या है, इसीलिए तुमको लोग मानते हैं और देखने आते हैं। क्या तुम यह बात नहीं मानते हो ?

विद्यासागर मुसकराते हैं।

केवल पाण्डित्य या पुस्तकी विद्या असार है

श्रीरामकृष्ण—केवल पण्डिताई में कुछ नहीं है। लोग किताबें इसलिए पढ़ते हैं कि वे ईश्वरलाभ में सहायता करेंगी——उनसे

ईश्वर का पता लगेगा। 'आपकी पोथी में क्या है ?'––किसी ने एक साधु से पूछा। साधु ने उसे खोलकर दिखाया। हरएक पन्ने में 'ॐ रामः' लिखा था, और कुछ नहीं।

"गीता का अर्थ क्या है ? उसे दस बार कहने से जो होता है वही। दस बार 'गीता' 'गीता' कहने से 'त्यागी' 'त्यागी' निकल आता है। गीता यह शिक्षा दे रही है कि हे जीव, तू सब छोड़कर ईश्वर-लाभ की चेष्टा कर। कोई साधु हो चाहे गृहस्थ, मन से सारी आसक्ति दूर करनी चाहिए।

"जब चैतन्यदेव दक्षिण में तीर्थ-भ्रमण कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक आदमी गीता पढ़ रहा है। एक दूसरा आदमी थोड़ी दूर बैठ उसे सुन रहा है और सुनकर रो रहा है––आँखों से आँसू बह रहे हैं। चैतन्यदेव ने पूछा, 'क्या तुम यह सब समझ रहे हो ?' उसने कहा, 'प्रभु, इन श्लोकों का अर्थ तो मैं नहीं समझता हूँ।' उन्होंने पूछा, 'तो रोते क्यों हो ?' भक्त ने जवाब दिया, 'मैं देखता हूँ कि अर्जुन का रथ है और उसके सामने भगवान् और अर्जुन बातचीत कर रहे हैं। बस, यही देखकर मैं रो रहा हूँ।'"

(५)

भक्तियोग का रहस्य

श्रीरामकृष्ण––विज्ञानी क्यों भक्ति लिये रहते हैं ? इसका उत्तर यह है कि 'मैं' नहीं दूर होता। समाधि-अवस्था में दूर तो होता है, परन्तु फिर आ जाता है। साधारण जीवों का 'अहम्' नहीं जाता। पीपल का पेड़ काट डालो, फिर उसके दूसरे दिन अंकुर निकल आता है। (सब हँसे।)

"ज्ञानलाभ के बाद भी, न जाने कहाँ से 'मैं' फिर आ जाता है। स्वप्न में तुमने वाघ देखा; इसके बाद जागे, तो भी तुम्हारी

छाती धड़कती है। जीवों को जो दुःख होता है, 'मैं' से ही होता है। बैल 'हम्बा, हम्बा' (हम, हम) करता है, इसी से तो इतनी यातना मिलती है। हल में जोता जाता है, वर्षा और धूप सहनी पड़ती है और फिर कसाई लोग काटते हैं, चमड़े से जूते बनते हैं, ढोल बनता है,—तब खूब पिटता है। (हास्य)

"फिर भी निस्तार नहीं। अन्त में आँतों से ताँत बनती है और उसे धुनिया अपने धनुहे में लगाता है। तब वह 'मैं' नहीं कहता, तब कहता है 'तू–ऊँ, तू–ऊँ' (अर्थात् तुम, तुम)। जब 'तुम' 'तुम' कहता है तब निस्तार होता है। हे ईश्वर! मैं दास हूँ, तुम प्रभु हो; मैं सन्तान हूँ, तुम माँ हो।

"राम ने पूछा, हनुमान, तुम मुझे किस भाव से देखते हो? हनुमान ने कहा, राम! जब मुझे 'मैं' का बोध रहता है, तब देखता हूँ, तुम पूर्ण हो, मैं अंश हूँ, तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ; और राम! जब तत्त्वज्ञान होता है तब देखता हूँ, तुम्हीं 'मैं' हो और मैं ही 'तुम' हूँ।

"सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है। 'मैं' जब कि हटने का ही नहीं तो बना रहने दो साले को 'दास मैं'।

'मैं' और 'मेरा' अज्ञान है

"मैं और मेरा—ये दोनों अज्ञान हैं। यह भाव कि मेरा घर है, मेरे रुपये हैं, मेरी विद्या है, मेरा यह सब ऐश्वर्य है—अज्ञान से पैदा होता है और यह भाव ज्ञान से कि हे ईश्वर, तुम कर्ता हो और ये सब तुम्हारी चीजें हैं—घर-परिवार, लड़के-बच्चे स्वजनवर्ग, बन्धु-बान्धव—ये सब तुम्हारी वस्तुएँ हैं।

"मृत्यु का सर्वदा स्मरण रखना चाहिए। मरने के बाद कुछ भी न रह जायगा। यहाँ कुछ कर्म करने के लिए आना हुआ है।

जैसे कि देहात में घर है, परन्तु काम करने के लिए कलकत्ते आया जाता है। यदि कोई दर्शक बगीचा देखने को आता है तो धनी मनुष्यों के बगीचे का कर्मचारी कहता है—यह बगीचा हमारा है, यह तालाब हमारा है; परन्तु किसी कसूर पर जब वह नौकरी से अलग कर दिया जाता है, तब आम की लकड़ी के बने हुए सन्दूक को ले जाने का भी उसे अधिकार नहीं रह जाता, सन्दूक दरवान के हाथ भेज दिया जाता है। (हास्य)

"भगवान् दो बातों पर हँसते हैं। एक तो जब वैद्य रोगी की माँ से कहता है—माँ, क्या भय है? मैं तुम्हारे लड़के को अच्छा कर दूँगा। उस समय भगवान् यह सोचकर हँसते हैं कि मैं मार रहा हूँ और यह कहता है, मैं बचाऊँगा। वैद्य सोचता है—मैं कर्ता हूँ। ईश्वर कर्ता है—यह वह भूल गया है। दूसरा अवसर वह होता है जब दो भाई रस्सी लेकर जमीन नापते हैं और कहते हैं—इधर की मेरी है, उधर की तुम्हारी। तब ईश्वर और एक बार हँसते हैं; यह सोचकर हँसते हैं कि जगत्-ब्रह्माण्ड मेरा है, पर ये कहते हैं, यह जगह मेरी है और वह तुम्हारी।"

उपाय—विश्वास और भक्ति

श्रीरामकृष्ण—उन्हें क्या कोई विचार द्वारा जान सकता है? दास होकर—शरणागत होकर उन्हें पुकारो।

(विद्यासागर के प्रति, हँसते हुए)— "अच्छा, तुम्हारा भाव क्या है?"

विद्यासागर मुसकरा रहे हैं। कहते हैं, "अच्छा, यह बात आपसे किसी दिन निर्जन में कहूँगा।" (सब हँसे।)

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—उन्हें पाण्डित्य द्वारा विचार करके कोई जान नहीं सकता।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण प्रेम से मतवाले होकर गाने लगे। संगीत का मर्म है—

"'कौन जानता है कि काली कैसी है? षड्दर्शनों ने उसका दर्शन नहीं पाया। मूलाधार और सहस्रार में योगी लोग सदा उसका ध्यान करते हैं। वह पद्मवन में हंस के साथ हंसी जैसे रमण करती है। वह आत्माराम की आत्मा है, प्रणव का प्रमाण है। वह इच्छामयी अपनी इच्छा के अनुसार घट घट में विराजमान है। माता के जिस उदर में यह ब्रह्माण्ड समाया हुआ है, समझो कि वह कितना बड़ा हो सकता है। काली का माहात्म्य महाकाल ही जानते हैं। वैसा और कोई नहीं समझ सकता। उसको जानने का लोगों का प्रयास देखकर 'प्रसाद' हँसता है। अपार सागर क्या कोई तैरकर पार कर सकता है? यह मेरा मन समझ रहा है, परन्तु फिर भी जी नहीं मानता, वामन होकर चन्द्रमा की ओर हाथ बढ़ाता है।'

"सुना? कहते हैं—'माता के जिस उदर में ब्रह्माण्ड समाया हुआ है समझो कि वह कितना बड़ा है' और यह भी कहा है कि षड्दर्शनों ने उसका दर्शन नहीं पाया। पाण्डित्य द्वारा उसे प्राप्त करना असम्भव है।

विश्वास का बल

"विश्वास और भक्ति चाहिए। विश्वास कितना बलवान् है, सुनो। किसी मनुष्य को लंका से समुद्र के पार जाना था। विभीषण ने कहा—इस वस्तु को कपड़े के छोर में बाँध लो तो बिना किसी बाधा के पार हो जाओगे, जल के ऊपर से चल कर जा सकोगे; परन्तु खोलकर न देखना, खोलकर देखोगे तो डूब जाओगे। वह मनुष्य आनन्दपूर्वक समुद्र के ऊपर से चला जा रहा था, विश्वास

की ऐसी शक्ति है। कुछ रास्ता पार कर वह सोचने लगा कि विभीषण ने ऐसा क्या बाँध दिया, जिसके बल से मैं पानी के ऊपर से चला जा रहा हूँ ! यह सोचकर उसने गाँठ खोली और देखा तो एक पत्ते पर केवल 'रामनाम' लिखा था ! तब वह मन ही मन कहने लगा—अरे, वस यही है ! ज्योंही यह सोचा कि डूब गया।

"यह कहावत प्रसिद्ध है कि रामनाम पर हनुमान का इतना विश्वास था कि विश्वास ही के बल से वे समुद्र लाँघ गये, परन्तु स्वयं राम को सेतु बाँधना पड़ा था।

"यदि उन पर विश्वास हो तो चाहे पाप करे और चाहे महापातक ही करे, किन्तु किसी से भय नहीं होता।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण भक्त के भावों से मस्त होकर विश्वास का माहात्म्य गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"दुर्गा दुर्गा अगर जपूँ मैं, जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखूँ कैसे नहीं तारती, कैसे हो करुणा की खान ॥"

(६)

जीवन का उद्देश्य—ईश्वरप्रेम

"विश्वास और भक्ति। भक्ति से वे सहज ही में मिलते हैं। वे भाव के विषय हैं।"

यह कहते हुए श्रीरामकृष्ण ने फिर भजन आरम्भ किया। भाव यह है—

"मन तू अँधेरे घर में पागल जैसा उसकी खोज क्यों कर रहा है ? वह तो भाव का विषय है। बिना भाव के, अभाव द्वारा क्या कोई उसे पकड़ सकता है ? पहले अपनी शक्ति द्वारा काम-क्रोधादि को अपने वश में करो। उसका दर्शन न तो षड्दर्शनों ने पाया, न निगमागम-तन्त्रों ने। वह भक्तिरस का रसिक है,

सदा आनन्दपूर्वक हृदय में विराजमान है। उस भक्तिभाव को पाने के लिए बड़े बड़े योगी युग-युगान्तर से योग कर रहे हैं। जब भाव का उदय होता है, तब भक्त को वह अपनी ओर खींच लेता है। जैसे लोहे को चुम्बक। 'प्रसाद' कहता है कि मैं मातृभाव से जिसकी खोज कर रहा हूँ, उसके तत्त्व का भण्डा क्या मुझे चौराहे पर फोड़ना होगा ? मन, इशारे से ही समझ लो।"

गाते हुए श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये, हाथों की अंजलि बँध गयी——देह उन्नत और स्थिर,——नेत्र स्पन्दहीन हो गये। पश्चिम की ओर मुँह किये उसी बेंच पर पैर लटकाये बैठे रहे। सभी लोग गर्दन ऊँची करके यह अद्भुत अवस्था देखने लगे। पण्डित विद्यासागर भी चुपचाप एकटक देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हुए। लम्बी साँस छोड़कर फिर हँसते हुए बातें कर रहे हैं——"भाव भक्ति, इसके माने उन्हें प्यार करना। जो ब्रह्म हैं, उन्हीं को माँ कहकर पुकारते हैं।

"'प्रसाद कहता है कि मैं मातृभाव से जिसकी खोज कर रहा हूँ उसके तत्त्व का भण्डा क्या मुझे चौराहे पर फोड़ना होगा ? मन, इशारे ही से समझ लो।'

"रामप्रसाद मन को इशारे ही से समझने के लिए उपदेश करते हैं। यह समझने को कहते हैं कि वेदों ने जिन्हें ब्रह्म कहा है उन्हीं को मैं माँ कहकर पुकारता हूँ। जो निर्गुण हैं वे ही सगुण हैं; जो ब्रह्म हैं वे ही शक्ति हैं। जब यह बोध होता है कि वे निष्क्रिय हैं तब उन्हें ब्रह्म कहता हूँ और जब यह सोचता हूँ कि वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं,तब उन्हें आद्याशक्ति काली कहता हूँ।

"ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं, जैसे कि अग्नि और उसकी दाहिकाशक्ति। अग्नि कहते ही दाहिकाशक्ति का ज्ञान होता

है और दाहिकाशक्ति कहने से अग्नि का ज्ञान। एक को मानिये तो दूसरा भी साथ मान लिया जाता है।

"उन्हीं को भक्तजन माँ कहकर पुकारते हैं। माँ बड़े प्यार की वस्तु है न। ईश्वर को प्यार करने से वे प्राप्त होते हैं; भाव, भक्ति, प्रीति और विश्वास चाहिए। एक गाना और सुनो—

भाव और विश्वास

(भावार्थ)—" 'चिन्तन करने से भाव का उदय होता है। जैसा भाव होगा, लाभ भी वैसा होगा, मूल है प्रत्यय। काली के चरण-सुधासागर में यदि चित्त डूब जाय तो पूजा-होम, याग-यज्ञ —कुछ भी आवश्यक नहीं।'

"चित्त को उन पर लगाना चाहिए, उन्हें प्यार करना चाहिए। वे सुधासागर हैं; अमृतसिन्धु हैं; इसमें डूबने से मनुष्य मरता नहीं, अमर हो जाता है। किसी किसी का यह विचार है कि ईश्वर को ज्यादा पुकारने से मस्तिष्क विगड़ जाता है, पर बात ऐसी नहीं। यह तो सुधासमुद्र है, अमृतसिन्धु है। वेदों में इसे अमृत कहा है। इसमें डूब जाने से कोई मरता नहीं, अमर हो जाता है।

निष्काम कर्म तथा जगत्कल्याण

"पूजा, होम, याग, यज्ञ—ये कुछ नहीं हैं। यदि ईश्वर पर प्रीति पैदा हो जाय तो इन कर्मों की अधिक आवश्यकता नहीं। जब तक हवा नहीं बहती तभी तक पंखे की जरूरत होती है। यदि दक्षिणी हवा आप ही आने लगे तो पंखा रख देना पड़ता है। फिर पंखे का क्या काम ?

"तुम जो काम कर रहे हो, ये सब अच्छे कर्म हैं। यदि 'मैं कर्ता हूँ' इस भाव को छोड़कर निष्काम भाव से कर्म कर सको तो और भी अच्छा है। यह कर्म करते करते ईश्वर पर भक्ति

और प्रीति होगी। इस प्रकार निष्काम कर्म करते जाओ तो ईश्वर-लाभ भी होगा।

"उन पर जितनी ही भक्ति-प्रीति होगी, उतने ही तुम्हारे काम घटते जायेंगे। गृहस्थ की बहू जब गर्भिणी होती है, तब उसकी सास उसका काम कम कर देती है। दस महीने पूरे होने पर बिलकुल काम छूने नहीं देती। उसे डर रहता है कि कहीं बच्चे को कोई हानि न पहुँचे, सन्तान-प्रसव में कोई विपत्ति न हो। (हास्य) तुम जो काम कर रहे हो, उससे तुम्हारा ही उपकार है। निष्काम भाव से कर्म कर सकोगे तो चित्त की शुद्धि होगी, ईश्वर पर तुम्हारा प्रेम होगा। प्रेम होते ही तुम उन्हें प्राप्त कर लोगे। संसार का उपकार मनुष्य नहीं करता, वे ही करते हैं जिन्होंने चन्द्र-सूर्य की सृष्टि की, माता-पिता को स्नेह दिया, सत्पुरुषों में दया का संचार किया और साधु-भक्तों को भक्ति दी। जो मनुष्य कामनाशून्य होकर कर्म करेगा वह अपना ही हित करेगा।

निष्काम कर्म का उद्देश्य—ईश्वरदर्शन

"भीतर सुवर्ण है, अभी तक तुम्हें पता नहीं चला। ऊपर कुछ मिट्टी पड़ी है। यदि एक बार पता चला जाय तो अन्य काम घट जायेंगे। गृहस्थ की बहू के लड़का होने से वह लड़के ही को लिये रहती है, उसी को उठाती बैठाती है। फिर उसकी सास उसे घर के काम में हाथ नहीं लगाने देती। (सब हँसे।)

"और भी 'आगे बढ़ो।' लकड़हारा लकड़ी काटने गया था; ब्रह्मचारी ने कहा—आगे बढ़ जाओ। उसने आगे बढ़कर देखा तो चन्दन के पेड़ थे! फिर कुछ दिन बाद उसने सोचा कि ब्रह्मचारी ने बढ़ जाने को कहा था, सिर्फ चन्दन के पेड़ तक तो जाने को कहा नहीं। आगे चलकर देखा तो चाँदी की खान थी।

फिर कुछ दिन बीतने पर और आगे बढ़ा और देखा तो सोने की खान मिली। फिर क्रमशः हीरे की—मणियों की। वह सब लेकर वह मालामाल हो गया।

"निष्काम कर्म कर सकने से ईश्वर पर प्रेम होता है। क्रमशः उनकी कृपा से उन्हें लोग पाते भी हैं। ईश्वर के दर्शन होते हैं, उनसे बातचीत होती है जैसे कि मैं तुमसे वार्तालाप कर रहा हूँ।" (सब निःशब्द हैं।)

(७)

अहेतुक कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण

सब की जबान बन्द हैं। लोग चुपचाप बैठे ये बातें सुन रहे हैं। श्रीरामकृष्ण की जिह्वा पर मानो साक्षात् वाग्वादिनी बैठी हुई जीवों के हित के लिए विद्यासागर से बातें कर रही हैं। रात हो रही है—नौ बजने को है। श्रीरामकृष्ण अब चलनेवाले हैं।

श्रीरामकृष्ण (विद्यासागर से, सहास्य)—यह सब जो कहा, वह तो ऐसे ही कहा। आप सब जानते हैं, किन्तु अभी आपको इसकी खबर नहीं। (सब हँसे।) वरुण के भण्डार में कितने ही रत्न पड़े हैं, परन्तु वरुण महराज को कोई खबर नहीं।

विद्यासागर (हँसते हुए)– यह आप कह सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)– हाँ जी, अनेक बाबू नौकरों के नाम तक नहीं जानते ! (सब हँसते हैं।) घर में कहाँ कौनसी कीमती चीज पड़ी है, वे नहीं जानते।

वार्तालाप सुनकर लोग आनन्दित हो रहे हैं। श्रीरामकृष्ण विद्यासागर से फिर प्रसंग उठाते हैं।

श्रीरामकृष्ण (हँसमुख)– एक बार बगीचा देखने जाइये, रासमणि का बगीचा। बड़ी अच्छी जगह है।

विद्यासागर–जरूर जाऊँगा। आप आये और मैं न जाऊँगा?

श्रीरामकृष्ण–मेरे पास? राम राम!

विद्यासागर–यह क्या! ऐसी बात आपने क्यों कही? मुझे समझाइये।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)– हम लोग छोटी छोटी किश्तियाँ हैं जो खाई, नाले और बड़ी नदियों में भी जा सकती हैं। परन्तु आप हैं जहाज; कौन जानता है, जाते समय रेत में लग जाय! (सब हँसते हैं।)

विद्यासागर प्रफुल्लमुख किन्तु चुपचाप बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण– पर हाँ, इस समय जहाज भी जा सकता है।

विद्यासागर (हँसते हुए)– हाँ, ठीक है, यह वर्षाकाल है। (लोग हँसे।)

श्रीरामकृष्ण उठे। भक्तजन भी उठे। विद्यासागर आत्मीयों के साथ खड़े हैं, श्रीरामकृष्ण को गाड़ी पर चढ़ाने जायेंगे।

श्रीरामकृष्ण अब भी खड़े हैं। करजाप कर रहे हैं। जपते हुए भाव के आवेश में आ गये, मानो विद्यासागर के आत्मिक हित के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हों।

भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण उतर रहे हैं। एक भक्त हाथ पकड़े हुए हैं। विद्यासागर स्वजन-बन्धुओं के साथ आगे आगे जा रहे हैं, हाथ में बत्ती लिये रास्ता दिखाते हुए। सावन की कृष्णपक्ष की षष्ठी है, अभी चन्द्रोदय नहीं हुआ है। अँधेरे से ढकी हुई उद्यान-भूमि को बत्ती के मन्द प्रकाश के सहारे किसी तरह पार कर लोग फाटक की ओर आ रहे हैं।

भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण फाटक के पास ज्योंही पहुँचे त्योंही

एक सुन्दर दृश्य ने सब को चकित कर दिया। सामने एक दाढ़ी-वाले, गौरवर्ण पुरुष खड़े थे। उम्र छत्तीस-सैंतीस वर्ष की होगी। बंगालियों की तरह पोशाक थी पर सिर पर सिक्खों की तरह शुभ्र साफा बँधा था। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को देखते ही भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। उनके उठ खड़े होने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "बलराम! तुम हो? इतनी रात को?"

बलराम (हँसकर)—मैं बड़ी देर से आया हूँ।

श्रीरामकृष्ण—भीतर क्यों नहीं गये?

बलराम—जी, लोग आपका वार्तालाप सुन रहे थे। बीच में पहुँचकर क्यों शान्ति भंग करूँ, यह सोचकर नहीं गया।

यह कहकर बलराम हँसने लगे।

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ गाड़ी पर बैठ गये।

विद्यासागर (मास्टर से धीमी आवाज में)—गाड़ी का किराया क्या दे दें?

मास्टर—जी नहीं, दे दिया गया है।

विद्यासागर और अन्यान्य लोगों ने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

गाड़ी उत्तर की ओर चलने लगी, दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर को जायगी। सब लोग गाड़ी की ओर देखते हुए खड़े हैं। सोच रहे हैं—ये महापुरुष कौन हैं? ये ईश्वर पर कितना प्रेम करते हैं! फिर जीवों के घर घर जाकर कहते हैं कि ईश्वर पर प्रेम करना ही जीवन का उद्देश्य है।

परिच्छेद ८

दक्षिणेश्वर में उत्सव

दक्षिणेश्वर के मन्दिर में श्रीरामकृष्ण केदार आदि भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। आज रविवार, अमावस्या, १३ अगस्त १८८२ ई. है, समय दिन के पाँच बजे का होगा।

श्री केदार चटर्जी का मकान हालीशहर में है। ये सरकारी अकाउन्टेन्ट का काम करते थे। बहुत दिन ढाका में रहे। उस समय श्री विजय गोस्वामी उनके साथ सदा श्रीरामकृष्ण के विषय में वार्तालाप करते थे। ईश्वर की बात सुनते ही उनकी आँखों में आँसू भर आते थे। वे पहले ब्राह्मसमाज में थे।

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के दक्षिणवाले बरामदे में भक्तों के साथ बैठे हैं। राम, मनोमोहन, सुरेन्द्र, राखाल, भवनाथ, मास्टर आदि अनेक भक्त उपस्थित हैं। केदार ने आज उत्सव किया है; सारा दिन आनन्द से बीत रहा है। राम ने एक गायक बुलाया है। उन्होंने गाना गाया। गाने के समय श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न होकर कमरे में छोटी खाट पर बैठे हैं। मास्टर तथा अन्य भक्त-गण उनके पैरों के पास बैठे हैं।

समाधितत्त्व तथा सर्वधर्मसमन्वय

श्रीरामकृष्ण वार्तालाप करते करते समाधितत्त्व समझा रहे हैं। कह रहे हैं, "सच्चिदानन्द की प्राप्ति होने पर समाधि होती है, उस समय कर्म का त्याग हो जाता है। मैं गायक का नाम ले रहा हूँ, ऐसे समय यदि वे आकर उपस्थित होते हैं तो फिर उनका

नाम लेने की क्या आवश्यकता ? मधुमक्खी गुनगुन करती है कब तक ?—जब तक फूल पर नहीं बैठती । कर्म का त्याग करने से साधक का न बनेगा; पूजा, जप, तप, ध्यान, सन्ध्या, कवच, तीर्थ आदि सभी करना होगा ।

"ईश्वरप्राप्ति के बाद यदि कोई विचार करता है तो वह वैसा ही है जैसा मधुमक्खी मधु का पान करती हुई अस्फुट स्वर से गुनगुनाती रहे।"

गायक ने अच्छा गाना गाया था। श्रीरामकृष्ण प्रसन्न हो गये। उससे कह रहे हैं, "जिस मनुष्य में कोई एक बड़ा गुण है, जैसे संगीत-विद्या, उसमें ईश्वर की शक्ति विशेष रूप से वर्तमान है।"

गायक–महाराज, किस उपाय से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है ?

श्रीरामकृष्ण–भक्ति ही सार है। ईश्वर तो सर्वभूतों में विराजमान हैं। तो फिर भक्त किसे कहूँ—जिसका मन सदा ईश्वर में है। अहंकार, अभिमान रहने पर कुछ नहीं होता। 'मैं'-रूपी टीले पर ईश्वरकृपारूपी जल नहीं ठहरता; लुढ़क जाता है। मैं यन्त्र हूँ।

(केदार आदि भक्तों के प्रति) "सब मार्गों से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। सभी धर्म सत्य हैं। छत पर चढ़ने से मतलब है, सो तुम पक्की सीढ़ी से भी चढ़ सकते हो, लकड़ी की सीढ़ी से भी चढ़ सकते हो, बाँस की सीढ़ी से भी चढ़ सकते हो, रस्सी के सहारे भी चढ़ सकते हो और फिर एक गाँठदार बाँस के जरिये भी चढ़ सकते हो।

"यदि कहो, दूसरों के धर्म में अनेक भूल, कुसंस्कार हैं, तो मैं कहता हूँ, हैं तो रहें, भूल सभी धर्मों में है। सभी समझते हैं मेरी

घड़ी ठीक चल रही है। व्याकुलता होने से ही हुआ। उनसे प्रेम आकर्षण रहना चाहिए। वे अन्तर्यामी जो हैं। वे अन्तर की व्याकुलता, आकर्षण को देख सकते हैं। मानो एक मनुष्य के कुछ बच्चे हैं। उनमें से जो बड़े हैं वे 'बाबा' या 'पापा' इन शब्दों को स्पष्ट रूप से कहकर, उन्हें पुकारते हैं। और जो बहुत छोटे हैं वे बहुत हुआ तो 'बा' या 'पा' कहकर पुकारते हैं। जो लोग सिर्फ 'बा' या 'पा' कह सकते हैं, क्या पिता उनसे असन्तुष्ट होंगे? पिता जानते हैं कि वे उन्हें ही बुला रहे हैं, परन्तु वे अच्छी तरह उच्चारण नहीं कर सकते। पिता की दृष्टि में सभी बच्चे बराबर हैं।

"फिर भक्तगण उन्हें ही अनेक नामों से पुकार रहे हैं। एक ही व्यक्ति को बुला रहे हैं। एक तालाब के चार घाट हैं। हिन्दू लोग एक घाट में जल पी रहे हैं और कहते हैं जल। मुसलमान लोग दूसरे घाट में पी रहे हैं—कहते हैं पानी। अंग्रेज लोग तीसरे घाट में पी रहे हैं और कह रहे हैं वाटर (water) और कुछ लोग चौथे घाट में पी रहे हैं और कहते हैं अकुवा (aqua)। एक ईश्वर, उनके अनेक नाम हैं।"

परिच्छेद ९

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ विराजमान हैं। दिन बृहस्पतिवार है, सावन शुक्ला दशमी, २४ अगस्त १८८२ ई.।

आजकल श्रीरामकृष्ण के पास हाजरा महाशय, रामलाल, राखाल आदि रहते हैं। श्रीयुत रामलाल श्रीरामकृष्ण के भतीजे हैं; कालीमन्दिर में पूजा करते हैं। मास्टर ने आकर देखा, उत्तर-पूर्व के लम्बे बरामदे में श्रीरामकृष्ण हाजरा के पास खड़े हुए बातें कर रहे हैं। मास्टर ने भूमिष्ठ हो श्रीरामकृष्ण की चरण-वन्दना की।

श्रीरामकृष्ण का मुख सहास्य है। मास्टर से कहने लगे—"विद्यासागर से और भी दो एक बार मिलना चाहिए। चित्रकार पहले नक्शा खींच लेता है, फिर उस पर रंग चढ़ाता रहता है। प्रतिमा पर पहले दो तीन बार मिट्टी चढ़ायी जाती है, फिर सफेद रंग चढ़ाया जाता है, फिर वह ढंग से रँगी जाती है।—विद्यासागर का सब कुछ ठीक है, सिर्फ ऊपर कुछ मिट्टी पड़ी हुई है। कुछ अच्छे काम करता है; परन्तु हृदय में क्या है उसकी खबर नहीं। हृदय में सोना दबा पड़ा है। हृदय में ईश्वर है,—यह समझने पर सब कुछ छोड़कर व्याकुल हो उसे पुकारने की इच्छा होती है।"

श्रीरामकृष्ण मास्टर से खड़े खड़े वार्तालाप कर रहे हैं, कभी बरामदे में टहल रहे हैं।

साधना—कामिनी-कांचनरूपी तूफान से पार होने के लिए

श्रीरामकृष्ण—हृदय में क्या है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ साधना आवश्यक है।

मास्टर—साधना क्या बराबर करते ही जाना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण—नहीं, पहले कुछ कमर कसकर करनी चाहिए। फिर ज्यादा मेहनत नहीं उठानी पड़ती। जब तक तरंग, आँधी, तूफान और नदी की मोड़ से नौका जाती है तभी तक मल्लाह को मजबूती से पतवार पकड़नी पड़ती है; उतने से पार हो जाने पर फिर नहीं। जब वह मोड़ से बाहर हो गया और अनुकूल हवा चली तब वह आराम से बैठा रहता है, पतवार में हाथ भर लगाये रहता है। फिर तो पाल टाँगने का बन्दोबस्त करके आराम से चिलम भरता है। कामिनी और कांचन की आँधी, तूफान से निकल जाने पर शान्ति मिलती है।

श्रीरामकृष्ण तथा योगतत्त्व

"किसी किसी में योगियों के लक्षण दीखते हैं परन्तु उन लोगों को भी सावधानी से रहना चाहिए। कामिनी और कांचन ही योग में विघ्न डालते हैं। योगभ्रष्ट होकर साधक फिर संसार में आता है,—भोग की कुछ इच्छा रही होगी। इच्छा पूरी होने पर वह फिर ईश्वर की ओर जायगा—फिर वही योग की अवस्था होगी। 'सटका' कल जानते हो?"

मास्टर—जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण—उस देश* में है। बाँस को झुका देते हैं। उसमें बंसी और डोर लगी रहती है। काँटे में मछलियों के खाने का चारा बेंध दिया जाता है। ज्योंही मछली उसे निगल जाती है,

* श्रीरामकृष्ण अपनी जन्मभूमि को बहुधा 'वह देश' कहते थे।

त्योंही वह बाँस झटके के साथ ऊपर उठ जाता है। जिस प्रकार उसका सिर ऊँचा था वैसा ही हो जाता है।

"तराजू में किसी ओर कुछ रख देने से नीचे की सुई और ऊपर की सुई दोनों बराबर नहीं रहतीं। नीचे की सुई मन है और ऊपर की सुई ईश्वर। नीचे की सुई का ऊपर की सुई से एक होना ही योग है।

"मन के स्थिर हुए बिना योग नहीं होता। संसार की हवा मनरूपी दीपशिखा को सदा ही चंचल किया करती है। वह शिखा यदि जरा भी न हिले तो योग की अवस्था हो जाती है।

"कामिनी और कांचन योग के विघ्न हैं। वस्तुविचार करना चाहिए। स्त्रियों के शरीर में क्या है—रक्त, मांस, आँतें, कृमि, मूत्र, विष्ठा—यही सब। उस शरीर पर प्यार क्यों?

"त्याग के लिए मैं अपने में राजसी भाव भरता था। साध हुई थी कि जरी की पोशाक पहनूँगा, अँगूठी पहनूँगा, लम्बी नलीवाले हुक्के में तम्बाकू पिऊँगा। जरी की पोशाक पहनी। ये लोग (रानी रासमणि के दामाद मथुरबाबू आदि) ले आये थे। कुछ देर बाद मन से कहा—यही शाल है, यही अँगूठी है, यही हुक्के में तम्बाकू पीना है। सब फेंक दिया, तब से फिर मन नहीं चला।"

शाम हो रही है। कमरे के दक्षिण-पूर्व की ओर के बरामदे में द्वार के पास ही, अकेले में श्रीरामकृष्ण मणि‡ से बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– योगियों का मन सदा ईश्वर में लगा रहता है—सदा आत्मस्थ रहता है। शून्य दृष्टि, देखते ही उनकी अवस्था सूचित हो जाती है। समझ में आ जाता है कि चिड़िया अण्डे को

‡ मणि और मास्टर एक ही व्यक्ति हैं।

से रही है । सारा मन अण्डे ही की ओर है, ऊपर दृष्टि तो नाम-मात्र की है । अच्छा, ऐसा चित्र क्या मुझे दिखा सकते हो ?

मणि– जैसी आज्ञा । चेष्टा करूँगा यदि कहीं मिल जाय ।

(२)

गुरुशिष्य-संवाद

शाम हो गयी । कालीमन्दिर, राधाकान्तजी के मन्दिर और अन्यान्य कमरों में बत्तियाँ जला दी गयीं । श्रीरामकृष्ण अपनी छोटी खाट पर बैठे हुए जगन्माता का स्मरण कर रहे हैं । तद-नन्तर वे ईश्वर का नाम जपने लगे । घर में धूनी दी गयी है । एक ओर दीवट पर दिया जल रहा है । कुछ देर बाद शंख घण्टा आदि बजने लगे । कालीमन्दिर में आरती होने लगी । तिथि शुक्ला दशमी है; चारों ओर चाँदनी छिटक रही है ।

आरती हो जाने पर कुछ क्षण बाद श्रीरामकृष्ण मणि के साथ अकेले अनेक विषयों पर बातें करने लगे । मणि फर्श पर बैठे हैं ।

निष्काम कर्म तथा विद्या का संसार

श्रीरामकृष्ण– कर्म निष्काम करना चाहिए । ईश्वरचन्द्र विद्या-सागर जो कर्म करता है वे अच्छे हैं; वह निष्काम कर्म करने की चेष्टा करता है ।

मणि– जी हाँ । अच्छा; जहाँ कर्म है वहाँ क्या ईश्वर मिलते हैं ? राम और काम क्या एक ही साथ रहते हैं ? हिन्दी में मैंने पढ़ा है कि 'जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।'

श्रीरामकृष्ण– कर्म सभी करते हैं । उनका नाम लेना कर्म है—साँस लेना और छोड़ना भी कर्म है । क्या मजाल है कि कोई कर्म छोड़ दे ! इसलिए कर्म करना चाहिए, किन्तु फल ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए ।

मणि– तो क्या ऐसी चेष्टा की जा सकती है कि जिससे अधिक धन मिले?

श्रीरामकृष्ण– हाँ, की जा सकती है किन्तु यदि विद्या का परिवार हो, तो। अधिक धन कमाने का प्रयत्न करो, परन्तु सदुपाय से। उद्देश्य उपार्जन नहीं, ईश्वर की सेवा है। धन से यदि ईश्वर की सेवा होती है तो उस धन में दोष नहीं है।

मणि– घरवालों के प्रति कर्तव्य कब तक रहता है?

श्रीरामकृष्ण– उन्हें भोजन-वस्त्र का अभाव न हो। सन्तान जब स्वयं समर्थ होगी, तब भार-ग्रहण की आवश्यकता नहीं। चिड़ियों के बच्चे जब खुद चुगने लगते हैं तब माँ के पास यदि खाने के लिए आते हैं तो माँ चोंच मारती है।

मणि– कर्म कब तक करना होगा?

श्रीरामकृष्ण– फल होने पर फूल नहीं रह जाता। ईश्वरलाभ हो जाने से कर्म नहीं करना पड़ता, मन भी नहीं लगता।

"ज्यादा शराब पी लेने से मतवाला होश नहीं सम्हाल सकता–– दुअन्नीभर पीने से कामकाज कर सकता है। ईश्वर की ओर जितना ही बढ़ोगे उतना ही वे कर्म घटाते रहेंगे। डरो मत। गृहस्थ की बहू के जब लड़का होनेवाला होता है तब उसकी सास धीरे धीरे काम घटाती जाती है। दसवें महीने में काम छूने भी नहीं देती। लड़का होने पर वह उसी को लिये रहती है।

"जो कुछ कर्म है, जहाँ वे समाप्त हो गये कि चिन्ता दूर हो गयी। गृहिणी घर का सारा कामकाज समाप्त करके जब कहीं बाहर निकलती है, तब जल्दी नहीं लौटती, बुलाने पर भी नहीं आती।"

ईश्वरलाभ तथा ईश्वरदर्शन का अर्थ

मणि–अच्छा, ईश्वरलाभ के क्या माने हैं? ईश्वरदर्शन

किसे कहते हैं और किस तरह होते हैं ?

श्रीरामकृष्ण–वैष्णव कहते हैं कि ईश्वरमार्ग के पथिक चार प्रकार के होते हैं—प्रवर्तक, साधक, सिद्ध और सिद्धों में सिद्ध। जो पहले ही पहल मार्ग पर आया है वह प्रवर्तक है। जो भजन-पूजन, जप-ध्यान, नाम-गुणकीर्तनादि करता है वह साधक है। जिसे ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव मात्र हुआ है वह सिद्ध है। उसकी वेदान्त में एक उपमा है,—वह यह कि अँधेरे घर में बाबूजी सो रहे हैं। कोई टटोलकर उन्हें खोज रहा है। कोच पर हाथ जाता है, तो वह मन ही मन कह उठता है—यह नहीं है; झरोखा छू जाता है तो भी कह उठता है—यह नहीं है; दरवाजे में हाथ लगता है तो यह भी नहीं है,—नेति नेति नेति। अन्त में जब बाबूजी की देह पर हाथ लगा तो कहा—यह—बाबूजी यह हैं; अर्थात् अस्ति का बोध हुआ। बाबूजी को प्राप्त तो किया किन्तु भलीभाँति जान-पहचान नहीं हुई।

"एक दर्जे के और लोग हैं, जो सिद्धों में सिद्ध कहलाते हैं। बाबूजी के साथ यदि विशेष वार्तालाप हो तो वह एक और ही अवस्था है, यदि ईश्वर के साथ प्रेम-भक्ति द्वारा विशेष परिचय हो जाय तो दूसरी ही अवस्था हो जाती है। जो सिद्ध है उसने ईश्वर को पाया तो है, किन्तु जो सिद्धों में सिद्ध है उसका ईश्वर के साथ विशेष परिचय हो गया है।

"परन्तु उनको प्राप्त करने की इच्छा हो तो एक न एक भाव का सहारा लेना पड़ता है, जैसे—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य या मधुर।

"शान्त भाव ऋषियों का था। उनमें भोग की कोई वासना न थी; ईश्वरनिष्ठा थी जैसी पति पर स्त्री की होती है; वह यह

समझती है कि मेरे पति कन्दर्प हैं।

'दास्य--जैसे हनुमान का; रामकाज करते समय सिंहतुल्य। स्त्रियों का भी दास्य भाव होता है,--पति की हृदय खोलकर सेवा करती है। माता में भी यह भाव कुछ कुछ रहता है,--यशोदा में था।

"सख्य--मित्रभाव। आओ, पास बैठो। सुदामा आदि श्रीकृष्ण को कभी जूठे फल खिलाते थे, कभी कन्धे पर चढ़ते थे।

"वात्सल्य--जैसे यशोदा का। स्त्रियों में भी कुछ कुछ होता है,--स्वामी को खिलाते समय मानो जी काढ़कर रख देती हैं। लड़का जब भरपेट भोजन कर लेता है, तभी माँ को सन्तोष होता है। यशोदा कृष्ण को खिलाने के लिए मक्खन हाथ में लिये घूमती फिरती थीं।

"मधुर--जैसे श्रीराधिका का। स्त्रियों का भी मधुर भाव है। इस भाव में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य सब भाव हैं।"

मणि--क्या ईश्वर के दर्शन इन्हीं नेत्रों से होते हैं?

श्रीरामकृष्ण--चर्मचक्षु से उन्हें कोई नहीं देख सकता। साधना करते करते शरीर प्रेम का हो जाता है। आँखें प्रेम की, कान प्रेम के। उन्हीं आँखों से वे दीख पड़ते हैं, उन्हीं कानों से उनकी वाणी सुन पड़ती है। और प्रेम का लिंग और योनि भी होती है।

यह सुनकर मणि खिलखिलाकर हँस पड़े। श्रीरामकृष्ण जरा भी नाराज न होकर फिर कहने लगे।

श्रीरामकृष्ण--इस प्रेम के शरीर में आत्मा के साथ रमण होता है।

मणि फिर गम्भीर हो गये।

श्रीरामकृष्ण--"ईश्वर को बिना खूब प्यार किये दर्शन नहीं होते।

खूब प्यार करने से चारों ओर ईश्वर ही ईश्वर दीखते हैं। जिसे पीलिया हो जाता है उसे चारों ओर पीला दिखायी पड़ता है।

"तब 'मैं वही हूँ' यह बोध भी हो जाता है। मतवाले का नशा जब खूब चढ़ जाता है तब वह कहता है, 'मैं ही काली हूँ'।

"गोपियाँ प्रेमोन्मत्त होकर कहने लगीं--'मैं ही कृष्ण हूँ'।

"दिनरात उन्हीं की चिन्ता करने से चारों ओर वे ही दीख पड़ते हैं। जैसे थोड़ी देर दीपशिखा की ओर ताकते रहो, तो फिर चारों ओर सब कुछ शिखामय ही दिखायी देता है।"

क्या ईश्वरदर्शन मस्तिष्क का भ्रम है ?

मणि सोचते हैं कि वह शिखा तो सत्य शिखा है नहीं।

अन्तर्यामी श्रीरामकृष्ण कहने लगे--"चैतन्य की चिन्ता करने से कोई अचेत नहीं हो जाता। शिवनाथ ने कहा था, 'ईश्वर की बार बार चिन्ता करने से लोग पागल हो जाते हैं।' मैंने उससे कहा, 'चैतन्य की चिन्ता करने से क्या कभी कोई चैतन्यहीन होता है ?' "

मणि--जी, समझा। यह तो किसी अनित्य विषय की चिन्ता है नहीं; जो नित्य और चेतन हैं उनमें मन लगाने से मनुष्य अचेतन क्यों होने लगा ?

श्रीरामकृष्ण (प्रसन्न होकर)--यह उनकी कृपा है। बिना उनकी कृपा के सन्देह-भंजन नहीं होता।

"आत्मदर्शन के बिना सन्देह दूर नहीं होता।

"उनकी कृपा होने पर फिर कोई भय की बात नहीं रह जाती। पुत्र यदि पिता का हाथ पकड़कर चले तो गिर भी सकता है परन्तु यदि पिता पुत्र का हाथ पकड़े तो फिर गिरने का कोई भय नहीं। वे यदि कृपा करके संशय दूर कर दें और दर्शन दें तो फिर

कोई दुःख नहीं। परन्तु उन्हें पाने के लिए खूब व्याकुल होकर पुकारना चाहिए—साधना करनी चाहिए—तब उनकी कृपा होती है। पुत्र को दौड़ते हाँफते देखकर माता को दया आ जाती है। माँ छिपी थी। सामने प्रकट हो जाती है।"

मणि सोच रहे हैं, ईश्वर दौड़धूप क्यों कराते हैं? श्रीरामकृष्ण तुरन्त कहने लगे—"उनकी इच्छा कि कुछ देर दौड़धूप हो तो आनन्द मिले। लीला से उन्होंने इस संसार की रचना की है। इसी का नाम महामाया है। अतएव उस शक्तिरूपिणी महामाया की शरण लेनी पड़ती है। माया के पाशों ने बाँध लिया है, फाँस काटने पर ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।"

आद्याशक्ति महामाया तथा शक्तिसाधना

श्रीरामकृष्ण—कोई ईश्वर की कृपा प्राप्त करना चाहे तो उसे पहले आद्याशक्तिरूपिणी महामाया को प्रसन्न करना चाहिए। वे संसार को मुग्ध करके सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर रही हैं। उन्होंने सब को अज्ञानी बना डाला है। वे जब द्वार से हट जायेंगी तभी जीव भीतर जा सकता है। बाहर पड़े रहने से केवल बाहरी वस्तुएँ देखने को मिलती हैं, नित्य सच्चिदानन्द पुरुष नहीं मिलते। इसीलिए पुराणों में है—सप्तशती में—मधुकैटभ का वध करते समय ब्रह्मादि देवता महामाया की स्तुति कर रहे हैं।*

"संसार का मूल आधार शक्ति ही है। उस आद्याशक्ति के भीतर विद्या और अविद्या दोनों हैं—अविद्या मोहमुग्ध करती है। अविद्या वह है जिससे कामिनी और कांचन उत्पन्न हुए हैं, वह

---

* ब्रह्मोवाच। त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता॥

—सप्तशती, मधुकैटभवध

मुग्ध करती है; और विद्या वह है जिससे भक्ति, दया, ज्ञान और प्रेम की उत्पत्ति हुई है; वह ईश्वरमार्ग पर ले जाती है।

"उस अविद्या को प्रसन्न करना होगा। इसीलिए शक्ति की पूजापद्धति हुई।

"उन्हें प्रसन्न करने के लिए नाना भावों से पूजन किया जाता है। जैसे दासीभाव, वीरभाव, सन्तानभाव। वीरभाव अर्थात् उन्हें रमण द्वारा प्रसन्न करना।

"शक्तिसाधना—सब बड़ी विकट साधनाएँ थीं, दिल्लगी नहीं।

"मैं माँ के दासीभाव से और सखीभाव से दो वर्ष तक रहा। परन्तु मेरा सन्तानभाव है। स्त्रियों के स्तनों को मातृस्तन समझता हूँ।

"लड़कियाँ शक्ति की एक एक मूर्ति हैं। पश्चिम में विवाह के समय वर के हाथ में छुरी रहती है, बंगाल में सरौता—अर्थात् उस शक्तिरूपिणी कन्या की सहायता से वर मायापाश काट सकेगा। यह वीरभाव है। मैंने वीरभाव से पूजा नहीं की। मेरा सन्तानभाव था।

"कन्या शक्तिस्वरूपा है। विवाह के समय तुमने नहीं देखा—वर अहमक की तरह पीछे बैठा रहता है; परन्तु कन्या निःशंक रहती है!

ईश्वरदर्शन तथा ऐहिक ज्ञान या अपरा विद्या

"ईश्वरलाभ करने पर उनके बाहरी ऐश्वर्य, संसार के ऐश्वर्य को भक्त भूल जाता है। उन्हें देखने से उनके ऐश्वर्य की बात याद नहीं आती। दर्शनानन्द में मग्न हो जाने पर भक्त का हिसाब-किताब नहीं रह जाता। नरेन्द्र को देखने पर तेरा नाम क्या है, तेरा घर कहाँ है यह कुछ पूछने की जरूरत नहीं रहती। पूछने

का अवसर ही कहाँ है ? हनुमान से किसी ने पूछा, आज कौनसी तिथि है ? हनुमान ने कहा, भाई, मैं दिन, तिथि, नक्षत्र—कुछ नहीं जानता, मैं केवल श्रीराम का स्मरण किया करता हूँ।"

परिच्छेद १०

दक्षिणेश्वर में अन्तरंग भक्तों के साथ

(१)

श्रीरामकृष्ण की प्रथम प्रेमोन्माद अवस्था

आज श्रीरामकृष्ण बड़े आनन्द में हैं। दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में नरेन्द्र आये हैं। और भी कुछ अन्तरंग भक्त हैं। नरेन्द्र ने यहाँ आकर स्नान किया और प्रसाद पाया।

आज आश्विन की शुक्ला चतुर्थी है—१६ अक्टूबर १८८२, सोमवार। आगामी गुरुवार को सप्तमी है, दुर्गापूजा होगी।

श्रीरामकृष्ण के पास राखाल, रामलाल और हाजरा हैं। नरेन्द्र के साथ एक-दो और ब्राह्म लड़के आये हैं। आज मास्टर भी आये हैं।

नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण के पास ही भोजन किया। भोजन हो जाने पर श्रीरामकृष्ण ने अपने कमरे में विस्तर लगा देने को कहा, जिस पर नरेन्द्र आदि भक्त—विशेषकर नरेन्द्र—आराम करेंगे। चटाई के ऊपर रजाई और तकिये लगाये गये हैं। श्रीरामकृष्ण भी बालक की भाँति नरेन्द्र के पास बिस्तर पर आ बैठे। भक्तों से, विशेषकर नरेन्द्र से, और उन्हीं की ओर मुँह करके, हँसते हुए बड़े आनन्द से बातचीत कर रहे हैं। अपनी अवस्था और अपने चरित्र का बातों बातों में वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्र आदि भक्तों से)—मेरी इस अवस्था के बाद मुझे केवल ईश्वरी बातें सुनने की व्याकुलता होती थी। भागवत, अध्यात्मरामायण, महाभारत—कहाँ इनका पाठ हो

रहा है, यही सब ढूँढ़ता फिरता था। आरियादह के कृष्णकिशोर के पास अध्यात्मरामायण सुनते जाया करता था।

"कृष्णकिशोर का कैसा विश्वास है! वह वृन्दावन गया था, वहाँ एक दिन उसे प्यास लगी। कुएँ के पास जाकर उसने देखा कि एक आदमी खड़ा है। पूछने पर उसने जवाब दिया, 'मैं नीच जाति का हूँ और आप ब्राह्मण हैं; मैं कैसे आपको पानी निकाल दूँ?' कृष्णकिशोर ने कहा, 'तू कह शिव। शिव शिव कहने से ही तू शुद्ध हो जायगा।' उसने शिव शिव कहकर पानी ऊपर निकाला। वैसा निष्ठावान् ब्राह्मण होकर भी उसने वही जल पिया। कैसा विश्वास है!

"आरियादह के घाट पर एक साधु आया था। हमने सोचा कि एक दिन देखने जायेंगे। कालीमन्दिर में मैंने हलधारी से कहा, 'कृष्णकिशोर और हम साधु-दर्शन को जायेंगे। तुम चलोगे?' हलधारी ने कहा, 'एक मिट्टी का पिंजरा देखने जाने से क्या होगा?' हलधारी गीता और वेदान्त पढ़ता था न? इसी से उसने साधु-शरीर को 'मिट्टी का पिंजरा' बताया! मैंने जाकर कृष्ण-किशोर से वह बात कही तो वह बड़े क्रोध में आ गया। उसने कहा, 'क्या! हलधारी ने ऐसी बात कही है? जो ईश्वर-चिन्तन करता है, राम-चिन्तन करता है, और जिसने उसी उद्देश्य से सर्व-त्याग किया है, क्या उसका शरीर मिट्टी का पिंजरा ठहरा? हलधारी नहीं जानता कि भक्त का शरीर चिन्मय होता है!' उसे इतना क्रोध आ गया था कि, कालीमन्दिर में फूल तोड़ने आया करता था, पर हलधारी से भेंट होने पर मुँह फेर लेता था। उससे बोलता तक न था।

"उसने मुझसे कहा था, 'तुमने जनेऊ क्यों फेंक दिया?' जब

मेरी यह अवस्था हुई तब आश्विन की आँधी की तरह एक भाव आकर वह सब कुछ न जाने कहाँ उड़ा ले गया, कुछ पता ही न चला ! पहले की एक भी निशानी न रही। होश नहीं थे। जब कपड़ा ही खिसक जाता था, तो जनेऊ कैसे रहे ? मैंने कहा, 'एक बार तुम्हें भी उन्माद हो जाय तो तुम समझो !'

"फिर हुआ भी वैसा ! उसे उन्माद हो गया। तब वह केवल 'ॐ ॐ' कहा करता और एक कोठरी में चुपचाप बैठा रहता था। यह समझकर कि वह पागल हो गया है, लोगों ने वैद्य बुलाया। नाटागढ़ का राम कविराज आया, कृष्णकिशोर ने उससे कहा, 'मेरी बीमारी तो अच्छी कर दो, पर देखो मेरे ॐकार को मत छुड़ाना !' (सब हँसे।)

"एक दिन मैंने जाकर देखा कि वह बैठा सोच रहा है। पूछा 'क्या हुआ है ?' उसने कहा, 'टैक्सवाले आये थे, इसीलिए सोच में पड़ा हूँ। उन्होंने कहा है रुपया न देने से घर का माल बेच लेंगे।' मैंने कहा, 'तो सोचकर क्या होगा ? अगर सब उठा ले जायँ तो ले जाने दो। अगर बाँधकर ही ले जायँ तो तुम्हें थोड़े ही ले जा सकेंगे। तुम तो 'ख' (आकाश) हो !' (नरेन्द्र आदि हँसे।) कृष्णकिशोर कहा करता था कि मैं आकाशवत् हूँ। वह अध्यात्मरामायण पढ़ता था न ! बीच बीच में उसे 'तुम ख हो' कहकर दिल्लगी करता था। सो हँसते हुए मैंने कहा, 'तुम ख हो; टैक्स तुम्हें तो खींचकर नहीं ले जा सकेगा।'

"उन्माद की दशा में मैं लोगों से सच सच बातें—स्पष्ट बातें कह देता था। किसी की परवाह न करता था। अमीरों को देखकर मुझे डर नहीं लगता था।

"यदु मल्लिक के बाग में यतीन्द्र आया था। मैं भी वहीं था। मैंने उससे पूछा, 'कर्तव्य क्या है? क्या ईश्वर का चिन्तन करना ही हमारा कर्तव्य नहीं है?' यतीन्द्र ने कहा, 'हम संसारी आदमी हैं। हमारे लिए मुक्ति कैसी! राजा युधिष्ठिर को भी नरक-दर्शन करना पड़ा था!' तब मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने कहा, 'तुम भला कैसे आदमी हो, युधिष्ठिर का सिर्फ नरकदर्शन ही तुमने याद रखा है? युधिष्ठिर का सत्यवचन, क्षमा, धैर्य, विवेक, वैराग्य, ईश्वर की भक्ति---यह सब बिलकुल याद नहीं आता!' और भी बहुत कुछ कहने जाता था, पर हृदय ने मेरा मुँह दबा लिया। थोड़ी देर बाद यतीन्द्र यह कहकर कि जरा काम है, चला गया।

"बहुत दिनों बाद मैं कप्तान के साथ सौरीन्द्र ठाकुर के घर गया था। उसे देखकर मैंने कहा, 'तुम्हें राजा-वाजा कह नहीं सकूँगा, क्योंकि वह झूठ बात होगी।' उसने मुझसे थोड़ी बातचीत की। फिर मैंने देखा कि साहब लोग आने-जाने लगे। वह रजोगुणी आदमी है, बहुत कामों में लगा रहता है। यतीन्द्र को खबर भेजी गयी। उसने जवाब दिया, 'मेरे गले में दर्द हुआ है।'

"उस उन्माद की दशा में एक दूसरे दिन वराहनगर के घाट पर मैंने देखा कि जय मुकर्जी जप कर रहा है, पर अनमना होकर। तब मैंने पास जाकर दो थप्पड़ लगा दिये।

"एक दिन रासमणि दक्षिणेश्वर में आयी। कालीमाता के मन्दिर में आयी। वह पूजा के समय आया करती और मुझसे एक-दो गीत गाने को कहती थी। मैं गीत गा रहा था, देखा कि वह अनमनी होकर फूल चुन रही है। बस, दो थप्पड़ जमा दिये। तब होश सम्हालकर हाथ बाँधे रही।

"हलधारी से मैंने कहा, 'भैया, यह कैसा स्वभाव हो गया ! क्या उपाय करूँ ?' फिर माँ को पुकारते पुकारते वह स्वभाव दूर हुआ ।

काशी में विषयसम्बन्धी चर्चा सुनकर श्रीरामकृष्ण का रुदन

"उस अवस्था में ईश्वरीय प्रसंग के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता था । वैषयिक चर्चा होते सुनकर मैं बैठा रोया करता था । जब मथुरबाबू मुझे अपने साथ तीर्थों को ले गये, तब थोड़े दिन हम वाराणसी में राजाबाबू के मकान पर रहे । मथुरबाबू के साथ बैठकखाने में मैं बैठा था और राजाबाबू भी थे । मैंने देखा कि वे सांसारिक बातें कह रहे हैं । 'इतने रुपये का नुकसान हुआ है'—ऐसी ऐसी बातें । मैं रोने लगा—कहा, 'माँ, मुझे यह कहाँ लायी ! मैं रासमणि के मन्दिर में कहीं अच्छा था । तीर्थ करने को आते हुए भी वे ही कामिनी-कांचन की बातें ! पर वहाँ (दक्षिणेश्वर में) तो विषय-चर्चा सुननी नहीं पड़ती थी ।' "

श्रीरामकृष्ण ने भक्तों से, विशेषकर नरेन्द्र से, जरा आराम लेने के लिए कहा, और आप भी छोटे तखत पर थोड़ा आराम करने चले गये ।

(२)

नरेन्द्र आदि के साथ कीर्तनानन्द । नरेन्द्र का प्रेमालिंगन

तीसरा प्रहर हुआ है । नरेन्द्र गाना गा रहे हैं । राखाल, लाटू, मास्टर, नरेन्द्र के ब्राह्म मित्र प्रिय, हाजरा आदि सब हैं ।

नरेन्द्र ने कीर्तन गाया, मृदंग बजने लगा—

(भावार्थ)—"ऐ मन, तू चिद्घन हरि का चिन्तन कर । उनकी मोहनमूर्ति की कैसी अनुपम छटा है ! . . ."

नरेन्द्र ने फिर गाया—

(भावार्थ)—"सत्य-शिव-सुन्दर का रूप हृदय-मन्दिर में शोभायमान है, जिसे नित्य देखकर हम उस रूप के समुद्र में डूब जायेंगे। वह दिन कब आयगा? हे प्रभु, मुझ दीन के भाग्य में यह कब होगा? हे नाथ, कब अनन्त ज्ञान के रूप में तुम हमारे हृदय में विराजोगे और हमारा चंचल मन निर्वाक् होकर तुम्हारी शरण लेगा? कब अविनाशी आनन्द के रूप में तुम हृदयाकाश में उदित होगे? चन्द्रमा के उदय होने पर चकोर जैसे उल्लसित होता है, वैसे हम भी तुम्हारे प्रकट होने पर मस्त हो जायेंगे। तुम शान्त, शिव, अद्वितीय और राजराज हो। हे प्राणसखा, तुम्हारे चरणों में हम बिक जायेंगे और अपने जीवन को सफल करेंगे। ऐसा अधिकार और ऐसा जीते जी स्वर्गभोग हमें और कहाँ मिलेगा? तुम्हारा शुद्ध और अपापविद्ध रूप हम देखेंगे। जिस तरह प्रकाश को देखकर अँधेरा जल्द भाग जाता है, उसी तरह तुम्हारे प्रकट होने से पापरूपी अन्धकार भाग जायगा। तुम ध्रुवतारा हो, हे दीनबन्धो, हमारे हृदय में ज्वलन्त विश्वास का संचार कर मन की आशाएँ पूरी कर दो। तुम्हें प्राप्त कर हम अहर्निश प्रेमानन्द में डूबे रहेंगे और अपने आपको भूल जायेंगे। वह दिन कब आयगा, प्रभो?"

(भावार्थ)—"आनन्द से मधुर ब्रह्मनाम का उच्चारण करो। नाम से सुधा का सिन्धु उमड़ आयगा।— उसे लगातार पीते रहो। आप पीते रहो और दूसरों को पिलाते रहो। विषयरूपी मृगजल में पड़कर यदि कभी हृदय शुष्क हो जाय तो नामगान करना। प्रेम से हृदय सरस हो उठेगा। देखना, वह महामन्त्र नहीं भूलना। संकट के समय उसे दयालु पिता कहकर पुकारना। हुंकार से पाप का बन्धन तोड़ डालो। जय ब्रह्म कहकर आओ, सब मिलकर ब्रह्म-

नन्द में मस्त होवें और सब कामनाओं को मिटा दें। प्रेमयोग के योगी बनें।"

मृदंग और करताल के साथ कीर्तन हो रहा है। नरेन्द्र आदि भक्त श्रीरामकृष्ण को घेरकर कीर्तन कर रहे हैं। कभी गाते हैं—'प्रेमानन्द-रस में चिरदिन के लिए मग्न हो जा।' फिर कभी गाते हैं—'सत्य-शिव-सुन्दर का रूप हृदय-मन्दिर में शोभायमान है।'

अन्त में नरेन्द्र ने स्वयं मृदंग उठा लिया और मतवाले होकर श्रीरामकृष्ण के साथ गाने लगे—'आनन्द से मधुर ब्रह्मनाम का उच्चारण करो।'

कीर्तन समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को बार बार छाती से लगाया और कहा—"अहा, आज तुमने मुझे कैसा आनन्द दिया!"

आज श्रीरामकृष्ण के हृदय में प्रेम का स्रोत उमड़ रहा है। रात के आठ बजे होंगे, तो भी प्रेमोन्मत्त होकर बरामदे में अकेले टहल रहे हैं। उत्तरवाले लम्बे बरामदे में आये हैं और अकेले एक छोर से दूसरे छोर तक जल्दी जल्दी टहल रहे हैं। बीच बीच में जगन्माता के साथ कुछ बातचीत कर रहे हैं। एकाएक उन्मत्त की भाँति बोल उठे, "तू मेरा क्या बिगाड़ेगी?"

क्या आप यही कह रहे हैं कि जगन्माता जिसे सहारा दे रही है, माया उसका क्या बिगाड़ सकती है?

नरेन्द्र, प्रिय और मास्टर रात को रहेंगे। नरेन्द्र रहेंगे—बस, श्रीरामकृष्ण फूले नहीं समाते। रात का भोजन तैयार हुआ। श्रीमाताजी* नौबतखाने में हैं—आपने अपने भक्तों के लिए रोटी,

*श्रीरामकृष्णदेव की धर्मपत्नी श्रीसारदादेवी

दाल आदि बनाकर भेज दिया है। भक्त लोग बीच बीच में रहा करते हैं; सुरेन्द्र प्रतिमास कुछ खर्च देते हैं।

कमरे के दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में भोजन के चौके लगाये जा रहे हैं। पूर्ववाले दरवाजे के पास नरेन्द्र आदि बातचीत कर रहे हैं।

नरेन्द्र—आजकल के लड़कों को कैसा देख रहे हैं ?

मास्टर—बुरे नहीं, पर धर्म के उपदेश कुछ नहीं पाते हैं।

नरेन्द्र—मैंने खुद जो देखा है उससे तो जान पड़ता है कि सब बिगड़ रहे हैं। चुरुट पीना, ठट्ठेबाजी, ठाटबाट, स्कूल से भागना—ये सब हरदम होते देखे जाते हैं; यहाँ तक कि खराब जगहों में भी जाया करते हैं।

मास्टर—जब हम पढ़ते थे तब तो ऐसा न देखा, न सुना।

नरेन्द्र—शायद आप उतना मिलते-जुलते नहीं थे। मैंने यह भी देखा कि खराब लोग उन्हें नाम से पुकारते हैं। कब उनसे मिले हैं, कौन जाने !

मास्टर—क्या आश्चर्य की बात !

नरेन्द्र—मैं जानता हूँ कि बहुतों का चरित्र बिगड़ गया है। स्कूल के संचालक और लड़कों के अभिभावक इस विषय पर ध्यान दें तो अच्छा हो।

"आत्मानं वा विजानीथ अन्यां वाचं विमुञ्चथ।"

इस तरह बातें हो रही थीं कि श्रीरामकृष्ण कोठरी के भीतर से उनके पास आये और हँसते हुए कहते हैं, "भला तुम्हारी क्या बातचीत हो रही है ?" नरेन्द्र ने कहा, "इनसे स्कूल की चर्चा हो रही थी। लड़कों का चरित्र ठीक नहीं रहता।" श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर तक उन बातों को सुनकर मास्टर से गम्भीर भाव से

कहते हैं, "ऐसी बातचीत अच्छी नहीं। ईश्वर की बातों को छोड़ दूसरी बातें अच्छी नहीं। तुम इनसे उम्र में बड़े हो, तुम सयाने हुए हो, तुम्हें ये सब बातें उठने देना उचित न था।"

उस समय नरेन्द्र की उम्र उन्नीस-बीस रही होगी और मास्टर की सत्ताईस-अट्ठाईस।

मास्टर लज्जित हुए, नरेन्द्र आदि भक्त चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण खड़े होकर हँसते हुए नरेन्द्र आदि भक्तों को भोजन कराते हैं। आज उनको बड़ा आनन्द हुआ है।

भोजन के बाद नरेन्द्र आदि भक्त श्रीरामकृष्ण के कमरे में फर्श पर बैठे विश्राम कर रहे हैं और श्रीरामकृष्ण से बातें कर रहे हैं। आनन्द का मेला-सा लग गया है। बातों बातों में श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से कहते हैं—'चिदाकाश में पूर्ण प्रेमचन्द्र का उदय हुआ' जरा इस गाने को तो गा।

नरेन्द्र ने गाना शुरू किया। साथ ही साथ अन्य भक्त मृदग और करताल बजाने लगे। गीत का आशय इस प्रकार था—

"चिदाकाश में पूर्ण प्रेमचन्द्र का उदय हुआ। क्या ही आनन्द-पूर्ण प्रेमसिन्धु उमड़ आया! जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय! चारों ओर भक्तरूपी ग्रह जगमगाते हैं। भक्तसखा भगवान् भक्तों के संग लीलारसमय हो रहे हैं। जय दयामय! स्वर्ग का द्वार खोल, आनन्द का तूफान उठाते हुए नवविधान-* रूपी वसन्त-समीर चल रहा है। उससे लीलारस और प्रेमगन्ध-वाले कितने ही फूल खिल जाते हैं जिनकी महक से योगीवृन्द योगानन्द में मतवाले हो जाते हैं। जय दयामय! संसार-ह्रद के जल पर नवविधान-रूपी कमल में आनन्दमयी माँ विराजती

* श्री केशव सेन द्वारा स्थापित ब्राह्मसमाज का नाम

हैं, और भावावेश से आकुल भक्तरूपी भौंरे उसमें सुधापान कर रहे हैं। वह देखो माता का प्रसन्न वदन—जिसे देखकर चित्त खिल उठता है और जगत् मुग्ध हो जाता है। और देखो—माँ के श्रीचरणों के पास साधुओं का समूह, वे मस्त होकर नाच-गा रहे हैं। अहा, कैसा अनुपम रूप है —जिसे देखकर प्राण शीतल हो गये। 'प्रेमदास' सब के चरण पकड़कर कहता है कि भाई, सब मिलकर माँ की जय गाओ।"

कीर्तन करते करते श्रीरामकृष्ण नृत्य कर रहे हैं। भक्त भी उन्हें घेरकर नाच रहे हैं।

कीर्तन समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण उत्तर-पूर्ववाले बरामदे में टहल रहे हैं। श्रीयुत हाजरा उसी के उत्तर भाग में बैठे हैं। श्रीराम-कृष्ण जाकर वहाँ बैठे। मास्टर भी वहीं बैठे हैं और हाजरा से बातचीत कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने एक भक्त से पूछा, "क्या तुम कोई स्वप्न भी देखते हो?"

भक्त—एक अद्भुत स्वप्न मैंने देखा हैं—यह जगत् जलमय हो गया है। अनन्त जलराशि! कुछ एक नावें तैर रही थीं, एकाएक बाढ़ से डूब गयीं। मैं और कुछ और आदमी एक जहाज पर चढ़े हैं कि इतने में उस अकूल समुद्र के ऊपर से चलते हुए एक ब्राह्मण दिखायी पड़े। मैंने पूछा, 'आप कैसे जा रहे हैं?' ब्राह्मण ने जरा हँसकर कहा, 'यहाँ कोई तकलीफ नहीं है; जल के नीचे बराबर पुल है।' मैंने पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' उन्होंने कहा, 'भवानीपुर जा रहा हूँ।' मैंने कहा, 'जरा ठहर जाइये; मैं भी आपके साथ चलूँगा।'

श्रीरामकृष्ण—यह सब सुनकर मुझे रोमांच हो रहा है!

भक्त—ब्राह्मण ने कहा, 'मुझे अब फुरसत नहीं है; तुम्हें उतरने

में देर लगेगी। अब मैं चलता हूँ। यह रास्ता देख लो, तुम पीछे आना।'

श्रीरामकृष्ण—मुझे रोमांच हो रहा है! तुम जल्दी मन्त्रदीक्षा ले लो।

रात के ग्यारह बज गये हैं। नरेन्द्र आदि भक्त श्रीरामकृष्ण के कमरे में फर्श पर बिस्तर लगाकर लेट गये।

(३)

नींद खुलने पर भक्तों में से कोई कोई देखते हैं कि सबेरा हुआ है। श्रीरामकृष्ण बालक की भाँति दिगम्बर हैं, और देव-देवियों के नाम उच्चारण करते हुए कमरे में टहल रहे हैं। आप कभी गंगा-दर्शन करते हैं, कभी देव-देवियों के चित्रों के पास जाकर प्रणाम करते हैं, और कभी मधुर स्वर में नामकीर्तन करते हैं। कभी कहते हैं—'वेद, पुराण, तन्त्र, गीता, गायत्री, भागवत, भक्त, भगवान्। गीता को लक्ष्य करके अनेक बार कहते हैं—'त्यागी, त्यागी, त्यागी' त्यागी।' फिर कभी—'तुम्हीं ब्रह्म हो, तुम्हीं शक्ति; तुम्हीं पुरुष हो, तुम्हीं प्रकृति; तुम्हीं विराट हो, तुम्हीं स्वराट् (स्वतन्त्र अद्वितीय सत्ता)—तुम्हीं नित्य हो, तुम्हीं लीलामयी; तुम्हीं (सांख्य के) चौबीस तत्त्व हो।'

इधर कालीमन्दिर और राधाकान्त के मन्दिर में मंगलारती हो रही है और शंख-घण्टे बज रहे हैं। भक्त उठकर देखते हैं कि मन्दिर की फुलवाड़ी में देव-देवियों की पूजा के लिए फूल तोड़े जा रहे हैं, और प्रभाती रागों की लहरें फैलाती हुई नौबत बज रही है।

नरेन्द्र आदि भक्त प्रातःक्रिया से निपटकर श्रीरामकृष्ण के पास आये। श्रीरामकृष्ण सहास्यमुख हो उत्तर-पूर्ववाले बरामदे में पश्चिम की ओर खड़े हैं।

नरेन्द्र—मैंने देखा कि पंचवटी में कुछ नानकपन्थी साधु बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, वे कल आये थे। (नरेन्द्र से) तुम सब एक साथ चटाई पर बैठो, मैं देखूँ।

सब भक्तों के चटाई पर बैठने के बाद श्रीरामकृष्ण आनन्द से देखने और उनसे बातचीत करने लगे। नरेन्द्र ने साधना की बात छेड़ी।

वीरभाव की साधना कठिन है। सन्तानभाव अतिशुद्ध है।

श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्र आदि से)—भक्ति ही सार वस्तु है। ईश्वर को प्यार करने से विवेक-वैराग्य आप ही आप आ जाते हैं।

नरेन्द्र—एक बात पूछूँ—क्या औरतों से मिलकर साधना करना तन्त्रों में कहा गया है ?

श्रीरामकृष्ण—वे सब अच्छे रास्ते नहीं; बड़े कठिन हैं, और उनसे प्रायः पतन हुआ करता है। तीन प्रकार की साधनाएँ हैं—वीर-भाव, दासीभाव और मातृभाव। मेरी मातृभाव की साधना है। दासी-भाव भी अच्छा है। वीरभाव की साधना बड़ी कठिन है। सन्तान-भाव बड़ा शुद्ध भाव है।

नानकपन्थी साधुओं ने आकर श्रीरामकृष्ण को 'नमो नारायण' कहकर अभिवादन किया। श्रीरामकृष्ण ने उनसे बैठने को कहा।

ईश्वर के लिए सभी कुछ सम्भव है

श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"ईश्वर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। उनका यथार्थ स्वरूप कोई नहीं बता सकता। सभी सम्भव है। दो योगी थे, ईश्वर की साधना करते थे। नारद ऋषि जा रहे थे। उनका परिचय पाकर एक ने कहा 'तुम नारायण के पास से आते हो ? वे क्या कर रहे हैं ?' नारदजी ने कहा, 'मैं देख आया कि वे एक सुई के छेद में ऊँट-हाथी घुसाते हैं और फिर निकालते हैं।' उस पर एक ने कहा, 'इसमें आश्चर्य ही क्या है ? उनके

लिए सभी सम्भव है।' पर दूसरे ने कहा, 'भला ऐसा कभी हो सकता है ? तुम वहाँ गये ही नहीं।'

दिन के नौ बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में बैठे हैं। कोन्नगर से मनोमोहन सपरिवार आये हैं। उन्होंने प्रणाम करके कहा, "इन्हें कलकत्ते ले जा रहा हूँ !" कुशल प्रश्न पूछने के बाद श्रीरामकृष्ण ने कहा, "आज माह का पहला दिन है और तुम तो कलकत्ते जा रहे हो;—क्या जाने कहीं कुछ खराबी न हो !" यह कहकर जरा हँसे और दूसरी बात कहने लगे।

नरेन्द्र को मग्न होकर ध्यान करने का उपदेश

नरेन्द्र और उनके मित्र स्नान करके आये। श्रीरामकृष्ण ने व्यग्र होकर नरेन्द्र से कहा, "जाओ, वट के नीचे जाकर ध्यान करो। आसन दूँ ?"

नरेन्द्र और उनके कुछ ब्राह्म मित्र पंचवटी के नीचे ध्यान कर रहे हैं। करीब साढ़े दस बजे होंगे। थोड़ी देर में श्रीरामकृष्ण वहाँ आये; मास्टर भी साथ हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं—

(ब्राह्म भक्तों से)—"ध्यान करते समय ईश्वर में डूब जाना चाहिए, ऊपर ऊपर तैरने से क्या पानी के नीचेवाले लाल मिल सकते हैं ?"

फिर आपने रामप्रसाद का एक गीत गाया जिसका आशय इस प्रकार है—"ऐ मन, काली कहकर हृदयरूपी रत्नाकर के अथाह जल में डुबकी लगा। यदि दो ही चार डुबकियों में धन हाथ न लगा, तो भी रत्नाकर शून्य नहीं हो सकता। पूरा दम लेकर एक ऐसी डुबकी लगा कि तू कुलकुण्डलिनी के पास पहुँच जाय। ऐ मन, ज्ञानसमुद्र में शक्तिरूपी मुक्ताएँ पैदा होती हैं। यदि तू शिव की युक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक ढूंढ़ेगा तो तू

उन्हें पा सकेगा। उस समुद्र में काम आदि छः घड़ियाल हैं, जो खाने के लोभ से सदा ही घूमते रहते हैं। तो तू विवेकरूपी हल्दी बदन में चुपड़ ले—उसकी बू से वे तुझे छुएँगे नहीं। कितने ही लाल और माणिक उस जल में पड़े हैं। रामप्रसाद का कहना है कि यदि तू कूद पड़ेगा तो तुझे वे सब के सब मिल जायेंगे।"

पहले ईश्वरलाभ, उसके बाद लोकशिक्षा

नरेन्द्र और उनके मित्र पंचवटी के चबूतरे से उतरे और श्रीरामकृष्ण के पास खड़े हुए। श्रीरामकृष्ण दक्षिणमुख होकर उनसे बातचीत करते करते अपने कमरे की तरफ आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—गोता लगाने से तुम्हें घड़ियाल पकड़ सकते हैं, पर हल्दी चुपड़ने से वे नहीं छू सकते। हृदयरूपी रत्नाकर के अथाह जल में काम आदि छः घड़ियाल रहते हैं, पर विवेक-वैराग्यरूपी हल्दी चुपड़ने से वे फिर तुम्हें नहीं छुएँगे।

"केवल पण्डिताई या लेक्चर से क्या होगा यदि विवेक-वैराग्य न हुआ? ईश्वर सत्य हैं और सब कुछ अनित्य; वे ही वस्तु हैं, शेष सब अवस्तु—इसी का नाम विवेक है।

"पहले हृदय-मन्दिर में उनकी प्रतिष्ठा करो। वक्तृता, लेक्चर आदि, जी चाहे तो उसके बाद करना। खाली 'ब्रह्म ब्रह्म' कहने से क्या होगा, यदि विवेक-वैराग्य न रहा? वह तो नाहक शंख फूंकना हुआ!

"किसी गाँव में पद्मलोचन नाम का एक लड़का था। लोग उसे पदुआ कहकर पुकारते थे। उसी गाँव में एक जीर्ण मन्दिर था। अन्दर देवता का कोई विग्रह न था—मन्दिर की दीवारों पर पीपल और अन्य प्रकार के पेड़-पौधे उग आये थे। मन्दिर के भीतर चमगीदड़ अड्डा जमाये हुए थे। फर्श पर गर्द और चम-

गीदड़ों की विष्ठा पड़ी रहती थी। मन्दिर में लोगों का समागम नहीं होता था।

"एक दिन सन्ध्या के थोड़ी देर बाद गाँववालों ने शंख की आवाज सुनी। मन्दिर की तरफ से भों भों शंख बज रहा है। गाँववालों ने सोचा कि किसी ने देवता-प्रतिष्ठा की होगी, और सन्ध्या के बाद आरती हो रही है। लड़के, बूढ़े, औरत, मर्द, सब दौड़ते हुए मन्दिर के सामने हाजिर हुए—देवता के दर्शन करेंगे और आरती देखेंगे। उनमें से एक ने मन्दिर का दरवाजा धीरे से खोलकर देखा कि पद्मलोचन एक बगल में खड़ा होकर भों भों शंख बजा रहा है। देवता की प्रतिष्ठा नहीं हुई—मन्दिर में झाड़ू तक नहीं लगाया गया—चमगीदड़ों की विष्ठा पड़ी हुई है। तब वह चिल्लाकर कहता है— 'तेरे मन्दिर में माधव कहाँ! पदुआ, तूने तो नाहक शंख फूँककर हुल्लड़ मचा दिया है। उसमें ग्यारह चमगीदड़ रातदिन गश्त लगा रहे हैं—'

"यदि हृदय-मन्दिर में माधव-प्रतिष्ठा की इच्छा हो, यदि ईश्वर का लाभ करना चाहो तो, सिर्फ भों भों शंख फूँकने से क्या होगा! पहले चित्तशुद्धि चाहिए। मन शुद्ध हुआ तो भगवान् उस पवित्र आसन पर आ विराजेंगे। चमगीदड़ की विष्ठा रहने से माधव नहीं लाये जा सकते। ग्यारह चमगीदड़ का अर्थ है ग्यारह इन्द्रियाँ—पाँच ज्ञान की इन्द्रियाँ, पाँच कर्म की इन्द्रियाँ और मन। पहले माधव-प्रतिष्ठा, बाद को इच्छा हो तो वक्तृता, लेक्चर आदि देना।

"पहले डुबकी लगाओ। गोता लगाकर लाल उठाओ, फिर दूसरे काम करो।

"कोई गोता लगाना नहीं चाहता! न साधन, न भजन, न

विवेक-वैराग्य—दो-चार शब्द सीख लिये, बस लगे लेक्चर देने! शिक्षा देना कठिन काम है। ईश्वर-दर्शन के बाद यदि कोई उनका आदेश पाये, तो वह लोगों को शिक्षा दे सकता है।"

सच्ची भक्ति हो तो सभी वश में आ जाते हैं

बातें करते हुए श्रीरामकृष्ण उत्तरवाले बरामदे के पश्चिम भाग में आ खड़े हुए। मणि पास खड़े हैं। श्रीरामकृष्ण बारम्बार कह रहे हैं, 'बिना विवेक-वैराग्य के भगवान् नहीं मिलेंगे।' मणि विवाह कर चुके हैं इसीलिए व्याकुल होकर सोच रहे हैं कि क्या उपाय होगा। उनकी उम्र अट्ठाईस वर्ष की है, कालेज में पढ़कर उन्होंने कुछ अंग्रेजी शिक्षा पायी है। वे सोच रहे हैं—क्या विवेक-वैराग्य का अर्थ कामिनी-कांचन का त्याग है?

मणि (श्रीरामकृष्ण से)—यदि स्त्री कहे कि आप मेरी देखभाल नहीं करते हैं, मैं आत्महत्या करूँगी, तो कैसा होगा?

श्रीरामकृष्ण (गम्भीर स्वर से)—ऐसी स्त्री को त्यागना चाहिए, जो ईश्वर की राह में विघ्न डालती हो, चाहे वह आत्महत्या करे, चाहे और कुछ।

"जो स्त्री ईश्वर की राह में विघ्न डालती है, वह अविद्या स्त्री है।"

गहरी चिन्ता में डूबे हुए मणि दीवार से टेककर एक तरफ खड़े रहे। नरेन्द्र आदि भक्त भी थोड़ी देर निर्वाक् हो रहे।

श्रीरामकृष्ण उनसे जरा बातचीत कर रहे हैं। एकाएक मणि के पास आकर एकान्त में मृदु स्वर से कहते हैं, "परन्तु जिसकी ईश्वर पर सच्ची भक्ति है, उसके वश में सभी आ जाते हैं—राजा, बुरे आदमी, स्त्री—सब। यदि किसी की भक्ति सच्ची हो तो स्त्री भी क्रम से ईश्वर की राह पर जा सकती है। आप अच्छे

हुए तो ईश्वर की इच्छा से वह भी अच्छी हो सकती है।"

मणि की चिन्ताग्नि पर पानी बरसा। वे अब तक सोच रहे थे—स्त्री आत्महत्या कर ले तो करने दो, मैं क्या कर सकता हूँ?

मणि (श्रीरामकृष्ण से)—संसार में बड़ा डर रहता है।

श्रीरामकृष्ण (मणि और नरेन्द्र आदि से)—इसी से तो चैतन्यदेव ने कहा था, 'सुनो भाई नित्यानन्द, संसारी जीवों के लिए कोई उपाय नहीं।'

(मणि से, एकान्त में)—"यदि ईश्वर पर शुद्धा भक्ति न हुई तो कोई उपाय नहीं। यदि कोई ईश्वर का लाभ करके संसार में रहे तो उसे कुछ डर नहीं। यदि बीच बीच में एकान्त में साधना करके कोई शुद्धा भक्ति प्राप्त कर सके तो संसार में रहते हुए भी उसे कोई डर नहीं। चैतन्यदेव के संसारी भक्त भी थे। वे तो कहने भर के लिए संसारी थे। वे अनासक्त होकर रहते थे।"

देव-देवियों की भोग-आरती हो चुकी, वैसे ही नौबत बजने लगी। अब उनके विश्राम का समय हुआ। श्रीरामकृष्ण भोजन करने बैठे। नरेन्द्र आदि भक्त आज भी आपके पास प्रसाद पायेंगे।

परिच्छेद ११

दक्षिणेश्वर में भक्तों से वार्तालाप

(१)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में विराजमान हैं। दिन के नौ बजे होंगे। अपनी छोटी खाट पर वे विश्राम कर रहे हैं। फर्श पर मणि बैठे हैं। उनसे श्रीरामकृष्ण वार्तालाप कर रहे हैं।

आज विजया दशमी है; रविवार, २२ अक्टूबर १८८२। आजकल राखाल श्रीरामकृष्ण के पास रहते हैं। नरेन्द्र और भवनाथ कभी कभी आया करते हैं। श्रीरामकृष्ण के साथ उनके भतीजे रामलाल और हाजरा महाशय रहते हैं। राम, मनोमोहन, सुरेश, मास्टर और बलराम प्राय: हर हफ्ते श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर जाते हैं। बाबूराम अभी एक-दो ही बार दर्शन कर गये हैं।

श्रीरामकृष्ण–तुम्हारी पूजा की छुट्टी हो गयी ?

मणि–जी हाँ। मैं सप्तमी, अष्टमी और नवमी को प्रतिदिन केशव सेन के घर गया था।

श्रीरामकृष्ण–क्या कहते हो ?

मणि–दुर्गापूजा की अच्छी व्याख्या सुनी।

श्रीरामकृष्ण–कैसी, कहो तो।

मणि–केशव सेन के घर में रोज सुबह को उपासना होती है;—दस-ग्यारह बजे तक। उसी उपासना के समय उन्होंने दुर्गापूजा की व्याख्या की थी। उन्होंने कहा, यदि माता दुर्गा को कोई प्राप्त कर सके—यदि माता को कोई हृदय-मन्दिर में ला सके, तो लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक, गणेश स्वयं आते हैं। लक्ष्मी

अर्थात् ऐश्वर्य; सरस्वती—ज्ञान; कार्तिक—विक्रम; गणेश—सिद्धि; ये सब आप ही मिल जाते हैं—यदि माँ आ जायँ तो।

श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त

श्रीरामकृष्ण सारा वर्णन सुन गये। बीच बीच में केशव की उपासना के सम्बन्ध में प्रश्न करने लगे। अन्त में कहा—"तुम यहाँ-वहाँ न जाया करो, यहीं आना।

"जो अन्तरंग हैं वे केवल यहीं आयेंगे। नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल हमारे अन्तरंग भक्त हैं, सामान्य नहीं। तुम एक दिन इन्हें भोजन कराना। नरेन्द्र को तुम कैसा समझते हो?"

मणि—जी, बहुत अच्छा।

श्रीरामकृष्ण—देखो नरेन्द्र में कितने गुण हैं,—गाता है, बजाता है, विद्वान् है और जितेन्द्रिय है, कहता है—विवाह न करूँगा; बचपन से ही ईश्वर में मन है।

साकार अथवा निराकार

श्रीरामकृष्ण (मणि से)—आजकल तुम्हारे ईश्वर-स्मरण का क्या हाल है? मन साकार पर जाता है या निराकार पर?

मणि—जी, अभी तो मन साकार पर नहीं जाता। और इधर निराकार में मन को स्थिर नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण—देखो, निराकार में तत्काल मन स्थिर नहीं होता। पहले पहले तो साकार अच्छा है।

मणि—मिट्टी की इन सब मूर्तियों की चिन्ता करना?

श्रीरामकृष्ण—नहीं नहीं, चिन्मयी मूर्ति की।

मणि—तो भी हाथ-पैर तो सोचने ही पड़ेंगे। परन्तु यह भी सोचता हूँ कि पहली अवस्था में किसी रूप की चिन्ता किये बिना

प्र. ८

मन स्थिर न होगा, यह आपने कह भी दिया है। अच्छा, वे तो अनेक रूप धारण कर सकते हैं; तो क्या अपनी माता के स्वरूप का ध्यान किया जा सकता है ?

श्रीरामकृष्ण—हाँ । वे (माँ) गुरु तथा ब्रह्ममयी हैं।

मणि चुप बैठे रहे। कुछ देर बाद फिर श्रीरामकृष्ण से पूछने लगे।

मणि—अच्छा, निराकार में क्या दिखता है ? क्या इसका वर्णन नहीं किया जा सकता ?

श्रीरामकृष्ण (कुछ सोचकर)—वह कैसा है बताऊँ ? —

यह कहकर श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप बैठे रहे। फिर साकार और निराकार दर्शन में कैसा अनुभव होता है, इस सम्बन्ध की एक बात कह दी और फिर चुप हो रहे।

श्रीरामकृष्ण—देखो, इसको ठीक ठीक समझने के लिए साधना चाहिए। यदि घर के भीतर के रत्न देखना चाहते हो और लेना चाहते हो, तो मेहनत करके कुंजी लाकर दरवाजे का ताला खोलो और रत्न निकालो। नहीं तो घर में ताला लगा हुआ है और द्वार पर खड़े हुए सोच रहे हैं,—'लो, हमने दरवाजा खोला, सन्दूक का ताला तोड़ा, अब यह रत्न निकाल रहे हैं।' सिर्फ खड़े खड़े सोचने से काम न चलेगा। साधना करनी चाहिए।

(२)

ज्ञानी तथा अवतारवाद

श्रीरामकृष्ण—ज्ञानी निराकार का चिन्तन करते हैं। वे अवतार नहीं मानते। अर्जुन ने श्रीकृष्ण की स्तुति में कहा, तुम पूर्णब्रह्म हो। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि आओ, देखो, हम पूर्णब्रह्म हैं या नहीं। यह कहकर श्रीकृष्ण अर्जुन को एक जगह ले गये और पूछा, तुम क्या देखते हो ? अर्जुन बोला, मैं एक बड़ा पेड़ देख रहा हूँ जिसमें

जामुन के से गुच्छे के गुच्छे फल लगे हैं। श्रीकृष्ण ने कहा कि और भी पास आकर देखो; वे काले फल नहीं, गुच्छे के गुच्छे अनगिनती कृष्ण फले हुए हैं—मुझ जैसे। अर्थात् उस पूर्णब्रह्मरूपी वृक्ष से करोड़ों अवतार होते हैं और चले जाते हैं।

"कबीरदास का रुख निराकार की ओर था। श्रीकृष्ण की चर्चा होती तो कबीरदास कहते, 'उसे क्या भजूं ? —गोपियाँ तालियाँ पीटती थीं और वह बन्दर की तरह नाचता था।' (हँसते हुए) मैं साकारवादियों के निकट साकार हूं और निराकारवादियों के निकट निराकार।"

मणि (हंसकर)–जिनकी बात हो रही है वे (ईश्वर) जैसे अनन्त हैं आप भी वैसे ही अनन्त हैं! —आपका अन्त ही नहीं मिलता।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)–वाह रे, तुम तो समझ गये ! सुनो एक बार सब धर्म कर लेने चाहिए; सब मार्गों से आना चाहिए। खेलने की गोटी सब घर बिना पार किये कहीं लाल होती है ? गोटी जब लाल होती है, तब कोई उसे नहीं छू पाता।

मणि—जी हाँ।

कुटीचक। तीर्थयात्रा का उद्देश्य

श्रीरामकृष्ण—योगी दो प्रकार के हैं—बहूदक और कुटीचक। जो साधु तीर्थों में घूम रहा है, जिसके मन को अभी तक शान्ति नहीं मिली, उसे बहूदक कहते हैं, और जिसने चारों ओर घूमकर मन को स्थिर कर लिया है—जिसे शान्ति मिल गयी है—वह किसी एक जगह आसन जमा देता है, फिर नहीं हिलता। उसी एक ही जगह बैठे उसे आनन्द मिलता है। उसे तीर्थ जाने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि वह तीर्थ जाय तो केवल उद्दीपना के लिए जाता है।

"मुझे एक बार सब धर्म करने पड़े थे,—हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान,—इधर शाक्त, वैष्णव, वेदान्त, इन सब रास्तों से भी आना पड़ा है। ईश्वर वही एक हैं—उन्हीं की ओर सब चल रहे हैं, भिन्न भिन्न मार्गों से।

"तीर्थ करने गया तो कभी कभी बड़ी तकलीफ होती थी। काशी में मथुरबाबू आदि के साथ राजाबाबुओं की बैठक में गया। वहाँ देखा —सभी लोग विषयों की बातों में लगे हैं! रुपया, जमीन, यही सब बातें। उनकी बातें सुनकर मैं रो पड़ा। माँ से कहा—माँ! तू मुझे कहाँ लायी? दक्षिणेश्वर में तो मैं बहुत अच्छा था। प्रयाग में देखा,—वही तालाब, वही दूब, वही पेड़, वही इमली के पत्ते!

"परन्तु तीर्थ में उद्दीपन अवश्य होता है। मथुरबाबू के साथ वृन्दावन गया। मथुरबाबू के घर की स्त्रियाँ भी थीं; हृदय भी था। कालीयदमन घाट देखते ही उद्दीपना होती थी,—मैं विह्वल हो जाता था! हृदय मुझे यमुना के घाट में बालक की तरह नहलाता था।

"सन्ध्या को यमुना के तट पर घूमने जाया करता था। यमुना के कछार से उस समय गायें चरकर लौटती थीं। देखते ही मुझे कृष्ण की उद्दीपना हुई, पागल की तरह दौड़ने लगा, 'कहाँ कृष्ण, कृष्ण कहाँ' कहते हुए।

"पालकी पर चढ़कर श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड के रास्ते जा रहा था, गोवर्धन देखने के लिए उतरा, गोवर्धन देखते ही बिलकुल विह्वल हो गया, दौड़कर गोवर्धन पर चढ़ गया; बाह्य ज्ञान जाता रहा। तब व्रजवासी जाकर मुझे उतार लाये। श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड के मार्ग का मैदान, पेड़-पौधे, हरिण और पक्षियों को देख विकल हो गया था; आसुओं से कपड़े भीग गये थे; मन में यह आता था कि ऐ कृष्ण, यहाँ सभी कुछ है, केवल तू ही नहीं दिखायी

पड़ता। पालकी के भीतर बैठा था, परन्तु एक बात कहने की भी शक्ति नहीं थी, चुपचाप बैठा था। हृदय पालकी के पीछे आ रहा था। कहारों से उसने कह दिया था, खूब होशियार रहना।

"गंगामाई मेरी खूब देखभाल करती थी। उम्र बहुत थीं। निधुवन के पास एक कुटी में अकेली रहती थी। मेरी अवस्था और भाव देखकर कहती थी, ये साक्षात् राधिका हैं—शरीर धारण करके आये हैं! मुझे दुलारी कहकर बुलाती थी। उसे पाते ही मैं खाना-पीना, घर लौटना सब भूल जाता था। कभी कभी हृदय वहीं भोजन ले जाकर मुझे खिला आता था। वह भी खाना पकाकर खिलाती थी।

"गंगामाई को भावावेश होता था। उसका भाव देखने के लिए लोगों की भीड़ जम जाती थी। भावावेश में एक दिन हृदय के कन्धे पर चढ़ी थी।

"गंगामाई के पास से देश लौटने की मेरी इच्छा न थी। वहाँ सब ठीक हो गया; मैं सिद्ध (भुँजिया) चावल का भात खाऊँगा, गंगामाई का बिस्तरा घर में एक ओर लगेगा, मेरा दूसरी ओर। सब ठीक हो गया। तब हृदय बोला, तुम्हें पेट की शिकायत है, कौन देखेगा? गंगामाई बोली, क्यों, मैं देखूँगी, मैं सेवा करूँगी। एक हाथ पकड़कर हृदय खींचने लगा और दूसरा हाथ पकड़करगंगामाई। ऐसे समय माँ की याद आ गयी! माँ अकेली कालीमन्दिर के नौबतखाने में है। फिर न रहा गया, तब कहा—नहीं, मुझे जाना होगा।

"वृन्दावन का भाव बड़ा सुन्दर है। नये यात्री जाते हैं तो व्रज कें लड़के कहा करते हैं, 'हरि बोलो, गठरी खोलो'।"

दिन के ग्यारह बजे बाद श्रीरामकृष्ण ने काली का प्रसाद पाया। दोपहर को कुछ आराम करके धूप ढलने पर फिर भक्तों के साथ वार्तालाप करने लगे। बीच बीच में रह-रहकर प्रणव-नाद

या 'हा चैतन्य' उच्चारण कर रहे हैं।

कालीमन्दिर में सन्ध्यारती होने लगी। आज विजया दशमी है, श्रीरामकृष्ण कालीघर में आये हैं। कालीमाता को प्रणाम करके भक्तजन श्रीरामकृष्ण की पदधूलि ग्रहण करने लगे। रामलाल ने कालीजी की आरती की है। श्रीरामकृष्ण रामलाल को बुलाने लगे—"कहाँ हो रामलाल !"

कालीजी को 'विजया' निवेदित की गयी है। श्रीरामकृष्ण उस प्रसाद को छूकर उसे देने के लिए ही रामलाल को बुला रहे हैं। अन्य भक्तों को भी कुछ कुछ देने को कह रहे हैं।

परिच्छेद १२

दक्षिणेश्वर मन्दिर में बलराम आदि के साथ

आज मंगलवार है, दिन का पिछला पहर, २४ अक्टूबर। तीन-चार बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण मिठाई के ताक के पास खड़े हैं। बलराम और मास्टर कलकत्ते से एक ही गाड़ी पर चढ़कर आये हैं और प्रणाम कर रहे हैं। प्रणाम करके बैठने पर श्रीरामकृष्ण हँसते हुए कहने लगे, "ताक पर से कुछ मिठाई लेने गया था, मिठाई पर हाथ रखा ही था कि एक छिपकली बोल उठी, तुरन्त हाथ हटा लिया!" (सब हँसे।)

लक्षण। सत्यभाषण। कामिनी-कांचन ही माया है।

श्रीरामकृष्ण—यह सब मानना चाहिए। देखो न, राखाल बीमार पड़ गया; मेरे भी हाथ-पैर में दर्द हो रहा है। क्या हुआ, सुनो। सुबह को मैंने उठते ही राखाल आ रहा है सोचकर अमुक का मुख देख लिया था। (सब हंसते हैं।) हाँ जी, लक्षण भी देखना चाहिए। उस दिन नरेन्द्र एक काने लड़के को लाया था,—उसका मित्र है; आँख बिलकुल कानी नहीं थी; जो हो, मैंने सोचा,—नरेन्द्र यह आफत का पुतला कहाँ से लाया!

"और एक आदमी आता है; मैं उसके हाथ की कोई चीज नहीं खा सकता। वह आफिस में काम करता है, बीस रुपया महीना पाता है और बीस रुपया न जाने कैसा झूठा बिल लिखकर पाता है। वह झूठ बोलता है, इसलिए आने पर उससे बहुत नहीं बोलता। कभी तो दो-दो चार-चार दिन आफिस जाता ही नहीं, यहीं पड़ा रहता है। किस मतलब से, जानते हो?—मतलब यह कि किसी

से कह-सुन दूँ तो दूसरी जगह नौकरी हो जाय।"

बलराम का वंश परम वैष्णवों का वंश है। बलराम के पिता वृद्ध होगये हैं,—परम वैष्णव हैं। सिर पर शिखा है, गले में तुलसी की माला है, हाथ में सदा ही माला लिये जप करते रहते हैं। उड़ीसा में इनकी बहुत बड़ी जमींदारी है और कोठार, श्रीवृन्दावन तथा और भी कई जगह श्रीराधाकृष्ण-विग्रह की सेवा होती है और धर्मशाला भी है। बलराम अभी पहले-पहल आने लगे हैं। श्रीरामकृष्ण बातों बातों में उन्हें उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—उस दिन अमुक आया था। सुना है, उस काली-कलूटी स्त्री का गुलाम है।—ईश्वर-दर्शन क्यों नहीं होते? क्योंकि बीच में कामिनी-कांचन की आड़ जो है।

"अच्छा, कहो तो मेरी क्या अवस्था है? उस देश को जा रहा था, बर्दवान से उतरकर; बैलगाड़ी पर बैठा था—ऐसे समय जोर की आँधी चली और पानी बरसने लगा। इधर न जाने कहाँ से गाड़ी के पीछे कुछ आदमी आ गये। मेरे साथी कहने लगे, ये डाकू हैं। तब मैं ईश्वर का नाम जपने लगा, परन्तु कभी तो राम राम जपता और कभी काली काली, कभी हनुमान हनुमान,—सब तरह से जपने लगा; कहो तो यह क्या है?

(बलराम से)—"कामिनी-कांचन ही माया है। इसके भीतर अधिक दिन तक रहने से होश चला जाता है,—ऐसा जान पड़ता है कि खूब मजे में है। मेहतर विष्ठा का भार ढोता है; ढोते ढोते फिर घृणा नहीं होती। भगवन्नामगुण-कीर्तन का अभ्यास करने ही से भक्ति होती है। (मास्टर से) इसमें लजाना नहीं चाहिए। लज्जा, घृणा और भय इन तीनों के रहते ईश्वर नहीं मिलता।

"उस देश में बड़ा अच्छा कीर्तन करते हैं,—खोल (मृदंग)

लेकर कीर्तन करते हैं। नकुड़ आचार्य का गाना बड़ा अच्छा है। वृन्दावन में तुम्हारी ओर से सेवा होती है ?"

बलराम—जी हाँ, एक कुंज है—श्यामसुन्दर की सेवा होती है।

श्रीरामकृष्ण—मैं वृन्दावन गया था। निधुवन बड़ा सुन्दर स्थान है।

परिच्छेद १३

केशवचन्द्र सेन के साथ

(१)

समाधि में

आज शरत्-पूर्णिमा है। लक्ष्मीजी की पूजा है। शुक्रवार, २७ अक्टूबर १८८२। श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर के उसी पूर्व-परिचित कमरे में बैठे हैं। विजय गोस्वामी और हरलाल से बातचीत कर रहे हैं। एक आदमी ने आकर कहा, 'केशव सेन जहाज पर चढ़कर घाट पर आये हैं।' केशव के शिष्यों ने प्रणाम करके कहा, 'महाराज, जहाज आया है। आपको चलना होगा; चलिये, जरा घूम आइयेगा। केशवबाबू जहाज में हैं, हमें भेजा है।'

शाम के चार बज गये हैं। श्रीरामकृष्ण नाव पर होते हुए जहाज पर चढ़ रहे हैं। साथ विजय हैं। नाव पर चढ़ते ही बाह्यज्ञानरहित समाधिमग्न हो गये।

मास्टर जहाज में खड़े खड़े यह समाधिचित्र देख रहे हैं। वे दिन के तीन बजे केशव के साथ जहाज पर चढ़कर कलकत्ते से आये हैं। बड़ी इच्छा है, श्रीरामकृष्ण और केशव का मिलन, उनका आनन्द देखेंगे और उनकी बातें सुनेंगे। केशव ने अपने साधुचरित्र और वक्तृता के बल से मास्टर जैसे अनेक वंगीय युवकों का मन हर लिया है। अनेकों ने उन्हें अपना परम आत्मीय जानकर अपने हृदय का प्रेम समर्पित कर दिया है। केशव अंग्रेजी जानते हैं, अंग्रेजी दर्शन और साहित्य जानते हैं, फिर बहुत बार देव-देवियों की पूजा

को पौत्तलिकता भी कहते हैं। इस प्रकार के मनुष्य श्रीरामकृष्ण को भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, और बीच बीच में दर्शन करने आते हैं, यह बात अवश्य विस्मयजनक है। उनके मन में मेल कहाँ और किस प्रकार हुआ, यह रहस्य-भेद करने के लिए मास्टर आदि अनेकों को कौतूहल हुआ है। श्रीरामकृष्ण निराकार-वादी तो हैं, किन्तु साकारवादी भी हैं। ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, और फिर देव-देवियों के सामने पुष्प-चन्दन से पूजा और प्रेम से मतवाले होकर नृत्यगीत भी करते हैं। खाट और बिछौने पर बैठते हैं, लाल धारीदार धोती, कुर्ता, मोजा, जूता पहनते हैं; परन्तु संसार से स्वतन्त्र हैं। सारे भाव संन्यासियों के से हैं, इसी-लिए लोग परमहंस कहते हैं। इधर केशव निराकारवादी हैं; स्त्री-पुत्रवाले गृही हैं; अंग्रेजी में व्याख्यान देते हैं; अखबार लिखते हैं; विषयकर्मों की देखरेख भी करते हैं।

केशव आदि ब्राह्मभक्त जहाज पर से मन्दिर की शोभा देख रहे हैं। जहाज के पूर्व ओर पास ही बँधा घाट और मन्दिर का चाँदनीमण्डप है। बायीं ओर——चाँदनीमण्डप के उत्तर, बारह शिव-मन्दिर में से छः मन्दिर हैं; दक्षिण की ओर भी छः मन्दिर हैं। शरद् के नील आकाश की पृष्ठभूमि पर भवतारिणी के मन्दिर का कलश तथा उत्तर की ओर पंचवटी और देवदार वृक्षों के शिरोभाग दीखतें हैं। एक नौबतखाना बकुलतला के पास है और कालीमन्दिर के दक्षिण प्रान्त में एक और नौबतखाना है। दोनों नौबतखानों के बीच में बगीचे का रास्ता है जिसके दोनों ओर कतार के कतार फूलों के पेड़ लगे हैं। शरत्-काल के आकाश की नीलिमा श्रीगंगा के वक्ष पर पड़कर अपूर्व शोभा दे रही है। बाहरी संसार में भी कोमल भाव है और ब्राह्मभक्तों के हृदय में

भी कोमल भाव है। ऊपर सुन्द नीलर अनन्त आकाश है, सामने सुन्दर ठाकुरबाड़ी है, नीचे पवित्रसलिला गंगा हैं जिनके किनारे आर्यऋषियों ने परमात्मा का स्मरण-मनन किया है। फिर एक महापुरुष आये हैं, जो साक्षात् सनातन् धर्म हैं! इस प्रकार के दर्शन मनुष्यों को सर्वदा नहीं होते। ऐसे समाधिमग्न महापुरुष पर किसकी भक्ति नहीं होगी, ऐसा कौन कठोर मनुष्य है जो द्रवीभूत न होगा?

(२)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(गीता, २-२२)

समाधि में। आत्मा अविनश्वर है। पवहारी बाबा

नाव आकर जहाज से लगी। सभी श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। अच्छी भीड़ है। श्रीरामकृष्ण को निर्विघ्न उतारने के लिए केशव आदि व्यग्र हो रहे हैं। बड़ी मुश्किल से उन्हें होश में लाकर कमरे के भीतर ले गये। अभी तक भावस्थ हैं, एक भक्त का सहारा लेकर चल रहे हैं। सिर्फ पैर हिल रहे हैं। कैबिन-घर में आपने प्रवेश किया। केशव आदि भक्तों ने प्रणाम किया किन्तु आपको होश नहीं। कमरे के भीतर एक मेज और कुछ कुर्सियाँ हैं। एक कुर्सी पर श्रीरामकृष्ण बैठाये गये, एक पर केशव बैठे। विजय बैठे। दूसरे भक्त फर्श पर जहाँ जगह मिली वहीं बैठ गये। अनेक मनुष्यों को जगह नहीं मिली। वे सब बाहर से झाँक-झाँककर देखने लगे। श्रीरामकृष्ण बैठे हुए फिर समाधिस्थ हो गये,—सम्पूर्ण बाह्यज्ञानशून्य। सभी एक नजर से देख रहे हैं।

केशव ने देखा कि कमरे भीतर बहुत आदमी हैं और श्रीरामकृष्ण को तकलीफ हो रही है। विजय केशव को छोड़कर साधारण ब्राह्मसमाज में चले गये हैं और उनकी कन्या के विवाह आदि के विरुद्ध उन्होंने कितनी वक्तृताएँ दी हैं; इसलिए विजय को देखकर केशव कुछ अप्रतिभ हो गये। वे आसन छोड़कर उठे, कमरे के झरोखे खोल देने के लिए।

ब्राह्मभक्त टकटकी लगाये श्रीरामकृष्ण को देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण की समाधि छूटी, परन्तु अभी तक भाव पूरी मात्रा में वर्तमान है। श्रीरामकृष्ण आप ही आप अस्फुट स्वरों में कहते हैं—'माँ, मुझे यहाँ क्यों लायी? मैं क्या इन लोगों की घेरे के भीतर से रक्षा कर सकूँगा?'

श्रीरामकृष्ण शायद देख रहे हैं कि संसारी जीव घेरे के भीतर बन्द हैं, बाहर नहीं आ सकते, बाहर का उजेला भी नहीं देख पाते, सब के हाथ-पैर सांसारिक कामों से बँधे हैं। केवल घर के भीतर की वस्तु उन्हें देखने को मिलती है। वे सोचते हैं कि जीवन का उद्देश्य केवल शरीर-सुख और विषय-कर्म—काम और कांचन—है। क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'माँ, मुझे यहाँ क्यों लायी? मैं क्या इन लोगों की घेरे के भीतर से रक्षा कर सकूँगा?'

धीरे धीरे श्रीरामकृष्ण को बाह्यज्ञान हुआ। गाजीपुर के नील-माधव बाबू और एक ब्राह्मभक्त ने पवहारी बाबा की बात चलायी।

ब्राह्मभक्त—महाराज, इन लोगों ने पवहारी बाबा को देखा है। वे गाजीपुर में रहते हैं, आपकी तरह एक और हैं।

श्रीरामकृष्ण अभी तक बातचीत नहीं कर पा रहे हैं, सुनकर सिर्फ मुसकराये।

ब्राह्मभक्त (श्रीरामकृष्ण से) —महाराज, पवहारी बाबा ने अपने

कमरे में आपका फोटोग्राफ रखा है।

श्रीरामकृष्ण जरा हँसकर अपनी देह की ओर उँगली दिखाकर बोले—"यह गिलाफ !"

(३)

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।। (गीता, ५।५)

ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोग का समन्वय

'तकिया और उसका गिलाफ।' देही और देह। क्या श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि देह नश्वर है, नहीं रहेगी ? देह के भीतर जो देही है वह अविनाशी है, अतएव देह का फोटोग्राफ लेकर क्या होगा ? देह अनित्य वस्तु है, इसके आदर से क्या होगा ? बल्कि जो भगवान् अन्तर्यामी हैं, मनुष्य के हृदय में विराजमान हैं, उन्हीं की पूजा करनी चाहिए ।

श्रीरामकृष्ण कुछ प्रकृतिस्थ हुए। वे कह रहे हैं—"परन्तु एक बात है। भक्तों का हृदय उनका निवासस्थान है। भक्तों के हृदय में वे विशेष रूप से रहते हैं। जैसे कोई जमींदार अपनी जमींदारी में सभी जगह रह सकता है, परन्तु वे अमुक बैठक में प्रायः रहते हैं, यही लोग कहा करते हैं। भक्तों का हृदय भगवान् का बैठक-घर है। (सब लोग आनन्दित हुए।)

"जिन्हें ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, योगी उन्हीं को आत्मा कहते हैं और भक्त उन्हें भगवान् कहते हैं।

"एक ही ब्राह्मण है। जब पूजा करता है, तब उसका नाम पुजारी है, जब भोजन पकाता है, तब उसे रसोइया कहते हैं। जो ज्ञानी है, ज्ञानयोग जिसका अवलम्बन है, वह 'नेति नेति' विचार करता है,—ब्रह्म न यह है, न वह; न जीव है, न जगत्। विचार

करते करते जब मन स्थिर होता है, मन का नाश होता है, समाधि होती है, तब ब्रह्मज्ञान होता है। ब्रह्मज्ञानी की सत्य धारणा है कि ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या; नामरूप स्वप्नतुल्य हैं; ब्रह्म क्या है यह मुँह से नहीं कहा जा सकता; वे व्यक्ति (Personal God) हैं यह भी नहीं कहा जा सकता।

"ज्ञानी इसी प्रकार कहते हैं—जैसे वेदान्तवादी। परन्तु भक्तगण सभी अवस्थाओं को लेते हैं। वे जाग्रत् अवस्था को भी सत्य कहते हैं; जगत् को स्वप्नवत् नहीं कहते। भक्त कहते हैं, यह संसार भगवान् का ऐश्वर्य है; आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, पर्वत, समुद्र, जीव-जन्तु आदि सभी भगवान् की सृष्टि है, उन्हीं का ऐश्वर्य है। वे हृदय के भीतर हैं और बाहर भी। उत्तम भक्त कहता है, वे स्वयं ही ये चौबीस तत्त्व—जीवजगत्—बने हैं। भक्त की इच्छा चीनी खाने की है, चीनी होने की नहीं। (सब हँसते हैं।)

"भक्त का भाव कैसा है, जानते हो? 'हे भगवन्, तुम प्रभु हो, मैं तुम्हारा दास हूँ', 'तुम माता हो, मैं तुम्हारी सन्तान हूँ'; और यह भी कि 'तुम मेरे पिता या माता हो', 'तुम पूर्ण हो, मैं तुम्हारा अंश हूँ'। भक्त यह कहने की इच्छा नहीं करता कि मैं ब्रह्म हूँ।

"योगी भी परमात्मा के दर्शन करने की चेष्टा करता है। उद्देश्य जीवात्मा और परमात्मा का योग है। योगी विषयों से मन को खींच लेता है और परमात्मा में मन लगाने की चेष्टा करता है। इसीलिए पहले-पहल निर्जन में स्थिर आसन साधकर अनन्य मन से ध्यान-चिन्तन करता है।

"परन्तु वस्तु एक ही है। केवल नाम का भेद है। जो ब्रह्म है, वही आत्मा है, वही भगवान् है। ब्रह्मज्ञानियों के लिए ब्रह्म,

योगियों के लिए परमात्मा और भक्तों के लिए भगवान्।"

(४)

त्वमेव सूक्ष्मा त्वं स्थूला व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
निराकारापि साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति ॥

(महानिर्वाणतन्त्र, ४।१५)

वेद तथा तन्त्र का समन्वय । आद्याशक्ति का ऐश्वर्य

इधर जहाज कलकत्ते की ओर जा रहा है, उधर कमरे के भीतर जो लोग श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर रहे हैं और उनकी अमृतमयी वाणी सुन रहे हैं, उन्हें सुध नहीं कि जहाज चल रहा है या नहीं । भौंरा फूल पर बैठने पर फिर क्या भनभनाता है ?

धीरे धीरे जहाज दक्षिणेश्वर छोड़कर देवालयों के चित्ताकर्षक दृश्यों के बाहर हो गया । चलते हुए जहाज से मथा हुआ गंगाजल फेनमय तरंगों से भर गया और उससे आवाज होने लगी । परन्तु यह आवाज भक्तों के कानों तक नहीं पहुँची । वे तो मुग्ध होकर देखते हैं केवल हँसमुख, आनन्दमय, प्रेमरंजित नेत्रवाले एक अपूर्व प्रियदर्शन योगी को ! वे मुग्ध होकर देखते हैं सर्वत्यागी एक प्रेमी विरागी को,जो ईश्वर को छोड़ और कुछ नहीं जानते । श्रीरामकृष्ण वार्तालाप कर रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण—वेदान्तवादी ब्रह्मज्ञानी कहते हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय, जीव, जगत् यह सब शक्ति का खेल है । विचार करने पर यह सब स्वप्नवत् जान पड़ता है; ब्रह्म ही वस्तु है और सब अवस्तु; शक्ति भी स्वप्नवत् अवस्तु है ।

"परन्तु चाहे लाख विचार करो, बिना समाधि में लीन हुए शक्ति के इलाके के बाहर जाने की सामर्थ्य नहीं । मैं ध्यान कर रहा हूँ, मैं चिन्तन कर रहा हूँ,—यह सब शक्ति के इलाके के

अन्दर है—शक्ति के ऐश्वर्य के भीतर है।

"इसलिए ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। एक को मानो तो दूसरे को भी मानना पड़ता है। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि को मानो तो दाहिका शक्ति को भी मानना पड़ेगा। बिना दाहिका शक्ति के अग्नि का विचार नहीं किया जा सकता, फिर अग्नि को छोड़कर दाहिका शक्ति का विचार नहीं किया जा सकता। सूर्य को अलग करके उसकी किरणों की कल्पना नहीं की जा सकती, न किरणों को छोड़कर कोई सूर्य को ही सोच सकता है।

"दूध कैसा है? सफेद। दूध को छोड़कर दूध की धवलता नहीं सोची जा सकती और न बिना धवलता के दूध ही सोचा जा सकता है।

"इसीलिए ब्रह्म को छोड़कर न शक्ति को कोई सोच सकता है और न शक्ति को छोड़ ब्रह्म को। उसी प्रकार नित्य को छोड़कर न लीला को कोई सोच सकता है और न लीला को छोड़कर नित्य को।

"आद्याशक्ति लीलामयी हैं। वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती हैं। उन्हीं का नाम काली है। काली ही ब्रह्म हैं, ब्रह्म ही काली हैं। एक ही वस्तु है। वे निष्क्रिय हैं, सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कोई काम नहीं करते, यह बात जब सोचता हूं तब उन्हें ब्रह्म कहता हूं और जब वे ये सब काम करते हैं, तब उन्हें काली कहता हूं—शक्ति कहता हूं। एक ही व्यक्ति है, भेद सिर्फ नाम और रूप में है।

"जिस प्रकार 'जल' 'वाटर', और 'पानी'। एक तालाब में तीन-चार घाट हैं। एक घाट में हिन्दू पानी पीते हैं, वे 'जल' कहते हैं; और एक घाट में मुसलमान पानी पीते हैं, वे 'पानी' कहते हैं; और

एक घाट में अंग्रेज पानी पीते हैं, वे 'वाटर' कहते हैं। तीनों एक हैं, भेद केवल नामों में है। उन्हें कोई 'अल्लाह' कहता है, कोई 'गाड', कोई 'ब्रह्म' कहता है, कोई 'काली'; कोई राम, हरि, ईसा, दुर्गा आदि।"

केशव (सहास्य)—यह कहिये कि काली कितने भावों से लीला कर रही हैं।

महाकाली तथा सृष्टिप्रकरण

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—वे नाना भावों से लीला कर रही हैं। वे ही महाकाली, नित्यकाली, श्मशानकाली, रक्षाकाली और श्यामाकाली हैं। महाकाली और नित्यकाली की बात तन्त्रों में है। जब सृष्टि हुई नहीं थी, सूर्य-चन्द्र, ग्रह-पृथ्वी आदि नहीं थे,—घोर अन्धकार था, तब केवल निराकार महाकाली महाकाल के साथ अभेद रूप से विराज रही थीं।

"श्यामाकाली का बहुत कुछ कोमल भाव है,—वराभयदायिनी हैं। गृहस्थों के घर उन्हीं की पूजा होती है। जब अकाल, महामारी, भूकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि होती है, तब रक्षाकाली की पूजा की जाती है। श्मशानकाली की संहारमूर्ति है, शव-शिवा-डाकिनी-योगिनियों के बीच, श्मशान में रहती हैं। रुधिरधारा, गले में मुण्डमाला, कटि में नरहस्तों का कमरबन्द। जब संसार का नाश होता है, महाप्रलय होता है तब माँ सृष्टि के बीज इकट्ठे कर लेती हैं। घर की गृहिणी के पास जिस प्रकार एक हण्डी रहती है और उसमें तरह तरह की चीजें रखी रहती हैं।" (केशव तथा और लोग हंसते हैं।)

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—हाँ जी, गृहिणियों के पास इस तरह की हण्डी रहती है। उसमें वे समुद्रफेन, नील का डला, खीरे, कोहड़े आदि के बीज छोटी छोटी गठरियों में बाँधकर रख

देती हैं और जरूरत पड़ने पर निकालती हैं। माँ ब्रह्ममयी सृष्टि-नाश के बाद इसी प्रकार सब बीज इकट्ठे कर लेती हैं। सृष्टि के बाद आद्याशक्ति संसार के भीतर ही रहती हैं। वे संसार प्रसव करती हैं; फिर संसार के भीतर रहती हैं। वेदों में 'ऊर्णनाभ' की बात है; मकड़ी और उसका जाला। मकड़ी अपने भीतर से जाला निकालती है और उसी के ऊपर रहती भी है। ईश्वर संसार के आधार और आधेय दोनों हैं।

"काली का रंग काला थोड़े ही है! दूर है, इसी से काला जान पड़ता है; समझ लेने पर काला नहीं रहता।

"आकाश दूर से नीला दिखायी पड़ता है। पास जाकर देखो तो कोई रंग नहीं। समुद्र का पानी दूर से नीला जान पड़ता है, पास जाकर चुल्लू में लेकर देखो, कोई रंग नहीं।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण प्रेम से मतवाले होकर गाने लगे। भाव यह है—"मेरी माँ क्या काली है? दिगम्बरी का काला रूप हृदय-पद्म को प्रकाशपूर्ण करता है।"

(५)

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥ (गीता, ७।१३)

यह संसार क्यों है?

श्रीरामकृष्ण (केशव आदि से)—बन्धन और मुक्ति दोनों ही की कर्त्री वे हैं। उनकी माया से संसारी जीव काम-कांचन में बंधा है और फिर उनकी दया होते ही वह छूट जाता है। वे 'भवबन्धन की फाँस काटनेवाली तारिणी' हैं।

यह कहकर गन्धर्वकण्ठ से भक्त रामप्रसाद का गीत गाने लगे जिसका आशय यह है:—

" 'श्यामा माँ, संसार-रूपी बाजार के बीच तू पतंग उड़ा रही है। यह आशा-वायु के सहारे उड़ती है। इसमें माया की डोर लगी हुई है। विषयों के माँझे से यह कर्री हो गयी है। लाखों में से दो ही एक (पतंगें) कटती हैं और तब तू हँसकर तालियाँ पीटती है।...'

"वे लीलामयी हैं। यह संसार उनकी लीला है। वे इच्छामयी, आनन्दमयी हैं, लाख आदमियों में कहीं एक को मुक्त करती हैं।"

ब्राह्मभक्त—महाराज, वे चाहें तो सभी को मुक्त कर सकती हैं, तो फिर क्यों हम लोगों को संसार में बाँध रखा है?

श्रीरामकृष्ण—उनकी इच्छा! उनकी इच्छा कि वे यह सब लेकर खेल करें। छुई-छुऔअल खेलनेवाले सभी लड़के अगर ढाई को दौड़कर छू लें तो खेल ही बन्द हो जाय! और यदि सभी छू लें तो ढाई नाराज भी होतीहै। खेल चलता है तो ढाई खुश रहती हैं। इसीलिए कहते हैं—लाखों में से दो ही एक कटते हैं और तब तू हँसकर तालियाँ पीटती है। (सब प्रसन्न होते हैं।)

"उन्होंने मन को आँखों के इशारे कह दिया है—'जा, संसार में विचर।' मन का क्या कसूर है? वे यदि फिर कृपा करके मन को फेर दें तो विषय-बुद्धि से छुटकारा मिले; तब फिर उनके पादपद्मों में मन लगे।"

श्रीरामकृष्ण संसारियों के भाव में माँ के प्रति अभिमान करके गाने लगे—

(भावार्थ)—" 'मैं यह खेद करता हूँ कि तुम जैसी माँ के रहते, मेरे जागते हुए भी, घर में चोरी हो! मन में होता है कि तुम्हारा नाम लूँ, परन्तु समय टल जाता है। मैंने समझा है, जाना है और मुझे आशय भी मिला है कि यह सब तुम्हारी ही चातुरी है। तुमने न कुछ दिया, न पाया; न लिया, न खाया; यह क्या मेरा ही

कसूर है? यदि देतीं तो पातीं, लेतीं और खातीं, मैं भी तुम्हारा ही तुम्हें देता और खिलाता। यश अपयश, सुरस कुरस, सभी रस तुम्हारे हैं। रसेश्वरी! रस में रहकर यह रसभंग क्यों? 'प्रसाद' कहता है—तुम्हीं ने मन को पैदा करते समय इशारा कर दिया है। तुम्हारी यह सृष्टि किसी की कुदृष्टि से जल गयी है, पर हम उसे मीठी समझकर भटक रहे हैं।'

"उन्हीं की माया से भूलकर मनुष्य संसारी हुआ है। 'प्रसाद' कहता है, तुम्हीं ने मन को पैदा करते समय इशारा कर दिया है।'"

कर्मयोग। संसार तथा निष्काम कर्म

ब्राह्मभक्त–महाराज, बिना सब त्याग किये क्या ईश्वर नहीं मिलते?

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)–नहीं जी, तुम लोगों को सब कुछ क्यों त्याग करना होगा? तुम लोग तो बड़े अच्छे हो, इधर भी हो और उधर भी, आधा खाँड़ और आधा शिरा! (लोग हँसते हैं।) बड़े आनन्द में हो। नक्स का खेल जानते हो? मैं ज्यादा काटकर जल गया हूँ। तुम लोग बड़े सयाने हो, कोई दस में हो, कोई छः में, कोई पाँच में। तुमने ज्यादा नहीं काटा इसलिए मेरी तरह जल नहीं गये। खेल चल रहा है। यह तो अच्छा है। (सब हँसे।)

"सच कहता हूँ, तुम लोग गृहस्थी में हो, इसमें कोई दोष नहीं। पर मन ईश्वर की ओर रखना चाहिए। नहीं तो न होगा। एक हाथ से काम करो और एक हाथ से ईश्वर को पकड़े रहो। काम खतम हो जाने पर दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ लेना।

"सब कुछ मन पर निर्भर है। मन ही से बद्ध है और मन ही से मुक्त। मन पर जो रंग चढ़ाओगे उसी से वह रँग जायगा। जैसे रँगरेज के घर के कपड़े, लाल रंग से रँगो तो लाल; हरे से

रँगो तो हरे; सब्ज से रँगो, सब्ज; जिस रंग से रँगो वही रंग चढ़ जायगा। देखो न, अगर कुछ अंग्रेजी पढ़ लो तो मुँह में अंग्रेजी शब्द आ जाते हैं—फुट्-फट् इट्-मिट्। (सब हँसे।) और पैरों में बूट-जूता, सीटी बजाकर गाना—ये सब आ जाते हैं। और पण्डित संस्कृत पढ़े तो श्लोक आवृत्ति करने लगता है! मन को यदि कुसंग में रखो तो वैसी ही बातचीत, वैसी ही चिन्ता हो जायगी। यदि भक्तों के साथ रखो तो ईश्वरचिन्तन, भगवत्प्रसंग—ये सब होंगे।

"मन ही को लेकर सब कुछ है। एक ओर स्त्री है और एक ओर सन्तान। स्त्री को एक भाव से और सन्तान को दूसरे भाव से प्यार करता है, किन्तु है एक ही मन।"

(६)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (गीता, १८।६६)

ईसाई धर्म, ब्राह्मसमाज और पापवाद

श्रीरामकृष्ण (ब्राह्मभक्तों के प्रति)—मन ही में बन्धन है और मन ही में मुक्ति। मैं मुक्तपुरुष हूँ; चाहे संसार में रहूँ, चाहे अरण्य में, मुझे बन्धन कैसा? मैं ईश्वर की सन्तान हूँ; राजाधिराज का बेटा; मुझे भला कौन बाँध सकता है? साँप के काटने पर यदि दृढ़ता के साथ यह कहा जाय कि 'विष नहीं है' तो सचमुच विष उतर जाता है! उसी प्रकार दृढ़ता के साथ यह कहते कहते कि 'मैं बद्ध नहीं, मैं मुक्त हूँ', वास्तव में वैसा ही हो जाता है। मनुष्य मुक्त ही हो जाता है।

"किसी ने ईसाइयों की एक किताब दी थी; मैंने पढ़कर सुनाने के लिए कहा। उसमें केवल 'पाप' 'पाप' ही भरा था। (केशव के प्रति) तुम्हारे ब्राह्मसमाज में भी केवल 'पाप' 'पाप' ही सुनायी देता

है। जो व्यक्ति बार बार 'मैं बद्ध हूँ' 'मैं बद्ध हूँ' कहता रहता है वह बद्ध ही हो जाता है! जो दिनरात 'मैं पापी हूँ' 'मैं पापी हूँ' यही रटता रहता है, वह सचमुच पापी ही बन जाता है।

"ईश्वर के नाम पर इस प्रकार का ज्वलन्त विश्वास होना चाहिए---'क्या! मैंने उनका नाम लिया है, अब भी मुझमें पाप रह सकता है! मुझमें भला पाप कैसा! मुझे भला बन्धन कैसा!' कृष्णकिशोर सनातनी हिन्दू था—सदाचारनिष्ठ ब्राह्मण! एक बार वह वृन्दावन गया था। एक दिन घूमते घूमते उसे प्यास लगी। उसने एक कुएँ के पास जाकर देखा, एक आदमी खड़ा है। उसने उससे कहा, 'क्यों रे, तू मुझे एक लोटा पानी पिला सकता है? तू कौन जात है?' वह बोला, 'महाराज, मैं नीची जाति का हूँ—चमार हूँ।' कृष्णकिशोर ने कहा, 'तू शिव शिव कह। ले, अब पानी खींच दे।'

"भगवान् का नाम लेने से मनुष्य का शरीर, मन---सब कुछ शुद्ध हो जाता है।

"केवल 'पाप' 'नरक' यही सब बातें क्यों? एक बार कहो कि जो कुछ अयोग्य काम किये हैं, उन्हें फिर नहीं करूँगा, और उनके नाम पर विश्वास रखो।"

श्रीरामकृष्ण प्रेमोन्मत्त होकर नाममाहात्म्य गाने लगे—

(भावार्थ)—"दुर्गा दुर्गा अगर जपूँ मैं जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखूँ कैसे नहीं तारती, कैसे हो करुणा की खान॥"

"मैंने माँ के निकट केवल भक्ति माँगी थी। हाथ में फूल लेकर माँ के पादपद्मों में चढ़ाया था; कहा था, 'माँ, यह लो तुम्हारा पाप, यह लो तुम्हारा पुण्य, मुझे शुद्ध भक्ति दो; यह लो तुम्हारा ज्ञान, यह लो तुम्हारा अज्ञान, मुझे शुद्ध भक्ति दो; यह लो

तुम्हारी शुचिता, यह लो तुम्हारी अशुचिता, मुझे शुद्ध भक्ति दो; यह लो तुम्हारा धर्म, यह लो तुम्हारा अधर्म, मुझे शुद्ध भक्ति दो।'

(ब्राह्मभक्तों के प्रति)—"एक रामप्रसाद का गीत सुनो—

(भावार्थ)—"चल मन घूमने चलें। कालीरूपी कल्पतरु के नीचे तुझे (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों फल पड़े मिल जायेंगे। अपनी प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दो पत्नियों में से तू केवल निवृत्ति को ही साथ ले। उसके विवेक नामक बेटे से तत्त्वज्ञान की बातें पूछना। शुचि अशुचि दोनों को साथ लेकर तू दिव्यगृह में कब सोयेगा? जब इन दो सौतों में प्रीति स्थापित होगी तभी तू श्यामा माँ को पायेगा। अहंकार और अविद्या तेरे पिता और माता हैं—दोनों को भगा दे। यदि मोह तुझे पकड़कर खींचे तो तू धैर्यरूपी खूँटे को पकड़े रह। धर्म अधर्म इन दो बकरों को उपेक्षारूपी खूँटी से बाँधे रख। यदि वे नहीं मानें तो ज्ञानखड्ग के द्वारा उनका बलिदान कर देना। प्रवृत्ति नामक पहली पत्नी की सन्तानों को दूर ही से समझाना। यदि वे न मानें तो उन्हें ज्ञानसिन्धु में डुबो देना। रामप्रसाद कहता है, ऐसा करने पर तू यम को सही जवाब दे सकेगा और तभी तू सच्चा मन होगा।"

गाना समाप्त कर श्रीरामकृष्ण बोले—"संसार में रहकर ईश्वर-लाभ क्यों नहीं होगा? जनक राजा को हुआ था। रामप्रसाद ने कहा था, यह संसार 'धोखे की जगह' है। परन्तु ईश्वर के चरण-कमलों में भक्ति होने पर—

"'यह संसार मौज की जगह है। मैं यहाँ खाता, पीता और मौज उड़ाता हूँ। जनक राजा महातेजस्वी था, उसकी किसी बात में कसर नहीं थी। उसने यह और वह—दोनों बाजू सम्हालकर दूध का प्याला पिया था।' (सब हँसने लगे।)

गृहस्थ के लिए उपाय—एकान्तवास तथा विवेक

"परन्तु कोई एकदम फट से जनक राजा नहीं बन जाता। जनक राजा ने निर्जन में बहुत तपस्या की थी। संसार में रहते हुए भी बीच बीच में एकान्तवास करना चाहिए। गृहस्थी से वाहर निकलकर एकान्त में अकेले रहकर अगर भगवान् के लिए तीन दिन ही रोया जाय तो वह भी अच्छा है। यहाँ तक कि यदि अवसर पाकर एक ही दिन निर्जन में रहकर भगवच्चिन्तन किया जाय तो वह भी अच्छा है। लोग स्त्री-पुत्रों के लिए रोकर लोटा-भर आँसू बहाते हैं, ईश्वर के लिए भला कौन रोता है? बीच बीच में निर्जन में रहकर भगवत्प्राप्ति के लिए साधना करनी चाहिए। संसार के भीतर, विशेषकर कामकाज की झंझट में रहकर प्रथम अवस्था में मन को स्थिर करते समय अनेक बाधाएँ आती हैं। जैसे रास्ते के किनारे लगाया हुआ पेड़; जिस समय वह पौधे की स्थिति में रहता है,उस समय घेरा न लगाने पर गाय-बकरियाँ खा जाती हैं।

"रोग तो हुआ है सन्निपात का। पर जिस कमरे में सन्निपात का रोगी है, उसी कमरे में पानी का घड़ा और इमली का अचार रखा है। अगर रोगी को आराम पहुँचाना चाहते हो तो पहले उसे उस कमरे से हटाना होगा। संसारी जीव मानो सन्निपात का रोगी है; और विषय है पानी का घड़ा। विषयभोगतृष्णा मानो जलतृष्णा है। इमली, अचार की बात सिर्फ सोचते ही मुँह में पानी आ जाता है, वे चीजें पास नहीं लानी पड़तीं। ऐसी चीज रोगी के कमरे में ही रखी है। संसार में स्त्री-सहवास ऐसी ही चीज है। इसीलिए निर्जन में जाकर चिकित्सा कराना आवश्यक है।

"विवेक-वैराग्य प्राप्त करके संसार में प्रवेश करना चाहिए। संसारसमुद्र में काम-क्रोधादि मगर हैं। बदन में हलदी मलकर पानी

में उतरने पर मगर का डर नहीं रहता। विवेक-वैराग्य ही हलदी है। सदसत्-विचार का नाम विवेक है। ईश्वर ही सत् हैं, नित्यवस्तु हैं; बाकी सब असत्, अनित्य, दो दिन के लिए है—यह बोध ही विवेक है। और ईश्वर के प्रति अनुराग चाहिए, प्रेम, आकर्षण चाहिए—जैसा गोपियों का कृष्ण के प्रति था। एक गाना सुनो—

(भावार्थ)—"विपिन में बंसी बज उठी। मुझे तो जाना ही होगा, श्याम मेरी राह देख रहा है। तुम लोग चलोगी या नहीं, बताओ। तुम लोगों के लिए श्याम एक नाम है, पर सखि, मेरे लिए श्याम हृदय की व्यथा है। बंसी तुम्हारे कान में बजती है, पर मेरे तो वह हृदय में बजती है। श्याम की बंसी बज रही है। हे राधे, अब चलो, तुम्हारे बिना कुंज में शोभा नहीं आती।"

श्रीरामकृष्ण ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से यह गीत गाते गाते केशव आदि भक्तों से कहा, "राधाकृष्ण को मानो या न मानो, पर उनके इस आकर्षण को तो ग्रहण करो! ईश्वर के लिए इस प्रकार की व्याकुलता हो, इसके लिए प्रयत्न करो। व्याकुलता के आते ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है।"

(७)

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ (गीता, १२।४)

भाटा शुरू हो गया। जहाज कलकत्ते की ओर द्रुतगति से बढ़ रहा है। इसलिए पुल पार कर कम्पनी के बगीचे की ओर और थोड़ी दूर तक ले जाने के लिए कप्तान को आदेश दिया गया। जहाज कितनी दूर आ पहुँचा है, इसकी अधिकांश लोगों को सुध नहीं है। वे मग्न होकर श्रीरामकृष्ण की बातें सुन रहे हैं। समय कैसे चला जा रहा है, इसका होश नहीं है।

अब मुरमुरे और नारियल के टुकड़े बाँटे गये। सब ने थोड़ा थोड़ा लेकर खाना शुरू किया। आनन्द की हाट लगी है। केशव ने मुरमुरे आदि लाने की व्यवस्था की थी। ऐसे समय श्रीरामकृष्ण के ध्यान में आया कि विजय और केशव दोनों ही संकुचित होकर बैठे हुए हैं। तब जिस प्रकार दो नादान बच्चों में झगड़ा हो जाने पर कोई बड़ा व्यक्ति समझौता करा देता है, उसी प्रकार श्रीराम-कृष्ण उन दोनों के बीच समझौता कराने लगे। 'सर्वभूतहिते रत।'

श्रीरामकृष्ण (केशव के प्रति)—अजी! ये विजय आये हैं। तुम लोगों का झगड़ा-विवाद मानो शिव और राम की लड़ाई है। राम के गुरु शिव हैं। दोनों में युद्ध भी हुआ, फिर सन्धि भी हो गयी। पर शिव के भूतप्रेत और राम के बन्दर ऐसे थे कि उनका झगड़ना-किचकिचाना रुकता ही न था। (सब जोर से हँस पड़े।)

"अपने ही लोग हैं। ऐसा होता ही है। लव-कुश ने भी राम के साथ युद्ध किया था। फिर जानते हो न माँ और बेटी अलग से मंगलवार का व्रत रखती हैं, मानो माँ का मंगल और बेटी का मंगल अलग अलग है। परन्तु वास्तव में तो माँ के मंगल से बेटी का मंगल होता है और बेटी के मंगल से माँ का। इसी तरह तुममें से एक के एक समाज है, अब दूसरे को भी एक चाहिए। (सब हँसते हैं।) पर यह सब जरूरी है। तुम कहोगे कि जहाँ भगवान् ने स्वयं लीला की, वहाँ जटिला-कुटिला की क्या जरूरत थी? पर जटिला-कुटिला के सिवा लीला पुष्ट नहीं हो पाती। बिना उनके रंग नहीं चढ़ता। (सब जोर से हँसते हैं।)

"रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। उनके गुरु थे अद्वैतवादी। आखिर दोनों में अनबन होने लगी। गुरु-शिष्य आपस में एक दूसरे के मत का खण्डन करने लगे। ऐसा हुआ करता है। चाहे

जो कुछ हो, फिर भी हैं तो अपने ही ।"

(८)

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥
(गीता, ११।४३)

गुरुगिरी और ब्राह्मसमाज । एक सच्चिदानन्द ही गुरु हैं ।

सब लोग आनन्दित हैं। श्रीरामकृष्ण- केशव से कहते हैं, "तुम स्वभाव परखकर शिष्य नहीं बनाते, इसीलिए आपस में इस तरह की फूट हुआ करती है ।

"सभी मनुष्य दिखने में एक सरीखे हैं, पर हर एक का स्वभाव भिन्न है । किसी के भीतर सत्त्वगुण अधिक है, किसी के भीतर रजोगुण तो किसी के भीतर तमोगुण। गुझियाँ बाहर से एक-सी दिखायी देती हैं पर किसी के भीतर खोया, किसी के भीतर नारियल तो किसी के भीतर उड़द की दाल होती है । (सब हँसते हैं ।)

"मेरा भाव क्या है, जानते हो ? मैं खाता, पीता और मजे में रहता हूँ, बाकी की सब माँ ही जाने । तीन बातों से मेरी देह में मानो काँटा चुभ जाता है—गुरु, कर्ता और बाबा ।

"गुरु एकमात्र सच्चिदानन्द ही हैं। वे ही सब को शिक्षा देंगे। मेरा सन्तानभाव है । वैसे मनुष्य-गुरु तो लाखों मिलते हैं । सभी गुरु बनना चाहते हैं । शिष्य कौन बनना चाहता है ?

"लोकशिक्षा देना बड़ा कठिन है । यदि ईश्वर का साक्षात्कार हो और वे आदेश दें, तो यह सम्भव हो सकता है। नारद, शुकदेव आदि को आदेश हुआ था, शंकराचार्य को आदेश हुआ था । आदेश न मिलने से तुम्हारी बात कौन सुनेगा ? कलकत्ते के लोगों की हुल्लड़बाजी तो जानते ही हो ! जब तक नीचे लकड़ी

जलती है तब दूध उफनकर ऊपर आता है। लकड़ी को खींच लेते ही सब कुछ शान्त हो जाता है। कलकत्ते के लोग हुल्लड़बाज हैं। अभी एक जगह कुआँ खोद रहे हैं—पानी चाहिए। वहाँ पत्थर निकलने लगे कि खोदना छोड़ दिया! और एक जगह खोदना शुरू किया। वहाँ रेती निकलने लगी कि वह जगह भी छोड़ दी। फिर दूसरी जगह खोदने ही लगे। यही तो उनका हाल है।

"परन्तु आदेश मिला है यह केवल मन में सोच लेने से नहीं चलता। ईश्वर सचमुच ही दर्शन देते हैं और बातचीत करते हैं। इसी अवस्था में आदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार आदेश-प्राप्त व्यक्ति की बातों में कितना जोर होता है! पर्वत भी टल जाता है। सिर्फ लेक्चर से क्या होगा? लोग कुछ दिन सुनेंगे, फिर भूल जायेंगे; उसके अनुसार नहीं चलेंगे।

"उस ओर हालदारपुकुर नाम का एक तालाब है। कुछ लोग उसके किनारे रोज सबेरे पाखाना फिरा करते थे। जो लोग सबेरे स्नानादि के लिए आते वे यह देखकर उनके नाम से खूब चिल्लाते, खूब कोसते। पर दूसरे दिन फिर वही हाल! पाखाना फिरना बन्द नहीं होता था। तब लोगों ने कम्पनी को यह बात जतायी। कम्पनीवालों ने एक चपरासी को भेजा। जब उस चपरासी ने आकर एक कागज चिपका दिया—'यहाँ पाखाना न फिरें'—तब सब बन्द हो गया। (सब हँसते हैं।)

"लोकशिक्षा देना हो तो चपरास चाहिए। नहीं तो वह हास्यास्पद बात हो जाती है। खुद को ही नहीं मिली, दूसरों को देने चला। एक अन्धा दूसरे अन्धे को राह बताते हुए ले चला है। (हास्य) इससे हित होने के बजाय विपरीत ही होता है। ईश्वर-लाभ होने पर अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है, उसी समय किसे कौनसा

रोग है यह समझ में आता है, योग्य उपदेश दिया जा सकता है।

"आदेश न मिलने पर 'मैं लोगों को शिक्षा दे रहा हूँ' इस प्रकार का अहंकार होता है। अहंकार होता है अज्ञान के कारण अज्ञान से ऐसा लगता है कि मैं कर्ता हूँ। ईश्वर ही कर्ता हैं, ईश्वर सब कुछ कर रहे हैं, मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ—यह बोध हो जाने पर तो मनुष्य जीवन्मुक्त हो गया। 'मैं कर्ता हूँ' इस बोध के कारण। हीं इतना दुःख, इतनी अशान्ति पैदा होती है।"

(९)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ (गीता, ३।१९)

कर्मयोगसम्बन्धी उपदेश

श्रीरामकृष्ण (केशवादि से)—तुम लोग 'दुनिया का भला' करने की बातें करते हो। क्या दुनिया इतनी छोटी है! और तुम कौन हो दुनिया का भला करनेवाले? साधना के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर लो, उनका लाभ कर लो। वे यदि शक्ति दें तो सब का हित कर सकोगे, अन्यथा नहीं।

एक भक्त—जब तक ईश्वरलाभ न हो जाय तब तक क्या सब कर्म त्याग दें?

श्रीरामकृष्ण—नहीं, कर्मों का त्याग क्यों करोगे? ईश्वर का चिन्तन उनका नामगुणगान, नित्यकर्म—यह सब करना पड़ेगा।

ब्राह्मभक्त—संसार का कर्म? वैषयिक कर्म?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, वह भी करो, संसारयात्रा के निर्वाह के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही। परन्तु निर्जन में रो-रोकर ईश्वर से प्रार्थना करनी होगी, ताकि इन कर्मों को निष्काम भाव से किया जा सके। कहो, 'हे ईश्वर, मेरे विषय-कर्म कम कर दो, क्योंकि प्रभो,

मैं देख रहा हूँ कि ज्यादा कामकाज के आ पड़ने से मैं तुम्हें भूल जाता हूँ। सोचता हूँ कि मैं निष्काम कर्म कर रहा हूँ पर वह सकाम हो जाता है।' दान-धर्म आदि अधिक करने गये कि नाम कमाने की इच्छा आ जाती है।

"शम्भु मल्लिक अस्पताल, दवाखाना, स्कूल, रास्ते, तालाब आदि बनवाने की बात कह रहा था। मैंने कहा, जो काम सामने आ पड़ा है, किये बिना नहीं चल सकता, उसी को निष्काम होकर करना चाहिए। जान-बूझकर ज्यादा कामों में उलझना ठीक नहीं —इससे ईश्वर का विस्मरण हो जाता है। कालीघाट में जाकर दान ही करने लग गये, काली के दर्शन हुए ही नहीं! (हास्य) पहले किसी तरह धक्काधुक्की खाकर भी कालीदर्शन कर लेना चाहिए, उसके बाद चाहे जितना दान करो या न करो, इच्छा हो तो खूब करो। ईश्वरलाभ के लिए ही कर्म हैं। इसीलिए शम्भु को कहा, अगर ईश्वर के दर्शन हों तो क्या तुम उनसे कहोगे कि कुछ अस्पताल और दवाखाने बनवा दो? (हास्य) भक्त कभी इस प्रकार नहीं कहेगा। बल्कि वह तो कहेगा, 'प्रभो, मुझे अपने पादपद्मों में आश्रय दो, सदा अपने साथ रखो, अपने चरणकमलों के प्रति शुद्ध भक्ति दो'।

"कर्मयोग बड़ा कठिन है। शास्त्र में जिन कर्मों के बारे में कहा गया है, कलिकाल में उन्हें करना बड़ा कठिन है। लोग अन्नगत-प्राण हैं—जीवन अन्न पर ही निर्भर है। अधिक कर्म करना सम्भव नहीं। बुखार होने पर यदि वैद्यजी से चिकित्सा करवाने जायँ तो इधर रोगी खतम हो जाता है। अधिक देरी सहन नहीं होती। आजकल डी. गुप्त का जमाना है। कलियुग में उपाय है भक्तियोग—भगवान् का नामगुणगान और प्रार्थना। भक्तियोग ही युगधर्म है। (ब्राह्मभक्तों के प्रति) तुम लोगों का मार्ग भी

भक्तिमार्ग ही है, तुम लोग हरिनामसंकीर्तन करते हो, जगम्दबा का नामगुणगान करते हो, तुम धन्य हो! तुम्हारा भाव बहुत अच्छा है। वेदान्तवादियों की तरह तुम लोग संसार को स्वप्नवत् नहीं मानते। तुम उस तरह के ब्रह्मज्ञानी नहीं हो, तुम भक्त हो। तुम ईश्वर को व्यक्ति (Person) मानते हो, यह भी अच्छा भाव है। तुम लोग भक्त हो। व्याकुल होकर ईश्वर को पुकारने से उनके दर्शन अवश्य पाओगे।"

(१०)

सुरेन्द्र के मकान पर नरेन्द्र आदि के साथ

अब जहाज कोयलाघाट लौट आया। सब लोग उतरने की तैयारी करने लगे। कमरे से बाहर निकलते ही सब ने देखा, कोजागरी पौर्णिमा का पूर्णचन्द्र हँस रहा है, भागीरथी के जल पर मानो उसकी ज्योत्स्ना का लीलाविलास चल रहा है। श्रीरामकृष्ण के लिए गाड़ी मँगवायी गयी। कुछ देर बाद मास्टर और एक-दो भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण गाड़ी में बैठे। केशव के भतीजे नन्द-लाल भी गाड़ी में बैठे, थोड़ी दूर तक साथ जायेंगे।

जब सब जन गाड़ी में बैठ गये तब श्रीरामकृष्ण ने पूछा, "वे कहाँ हैं?" अर्थात् केशव कहाँ हैं? देखते ही देखते केशव आ खड़े हुए। चेहरे पर मुसकान थी। आकर पूछा, "कौन कौन साथ जा रहे हैं?" गाड़ी में सब के बैठ जाने पर केशव ने भूमिष्ठ होकर श्रीरामकृष्ण की पदधूलि ग्रहण की। श्रीरामकृष्ण ने भी स्नेहपूर्ण शब्दों में विदा ली।

गाड़ी चलने लगी। यह अंग्रेजों का मुहल्ला है। सुन्दर राज-मार्ग है। दोनो ओर सुन्दर सुन्दर इमारतें हैं। पूर्णचन्द्र उदित हुआ है; इमारतें मानो चन्द्र की विमल, शीतल किरणों में विश्राम कर रही हैं। दरवाजों पर गैसबत्तियाँ, कमरों के भीतर दीपमालाएँ

जगमगा रही हैं। जगह जगह पर हार्मोनियम-पियानो के साथ अंग्रेज महिलाएँ गा रही हैं। श्रीरामकृष्ण आनन्द से मृदु हास्य करते हुए जा रहे हैं। एक जगह एकाएक बोल उठे, "मुझे प्यास लग रही है, क्या किया जाय?" नन्दलाल ने इण्डिया क्लब के पास गाड़ी रुकवायी और ऊपर जाकर काँच के गिलास में पानी ले आये। श्रीरामकृष्ण ने मुसकराते हुए पूछा, "गिलास धोया है न ?" नन्दलाल के "हाँ" कहने पर श्रीरामकृष्ण ने उस गिलास का पानी पी लिया।

आपका बालक जैसा स्वभाव है। गाड़ी के चलने लगते ही बाहर झाँककर आसपास के मनुष्य, गाड़ी-घोड़े, चाँदनी आदि देखने लगे। हर एक बात में आनन्दित हो रहे हैं।

नन्दलाल कलुटोला में उतरे। श्रीरामकृष्ण की गाड़ी सिमुलिया स्ट्रीट में श्री सुरेश मित्र के मकान के सामने आ पहुँची। श्रीरामकृष्ण इन्हें सुरेन्द्र कहा करते थे। सुरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के परम भक्त हैं।

परन्तु सुरेन्द्र घर में नहीं हैं। अपने नये बगीचे में गये हैं। घर के लोगों ने बैठने के लिए नीचे का कमरा खोल दिया। गाड़ी का किराया देना होगा। कौन देगा ? अगर सुरेन्द्र होते तो वे ही देते। श्रीरामकृष्ण ने एक भक्त से कहा, "किराया घर की स्त्रियों से माँग लो न ! क्या वे नहीं जानतीं कि उनके पति वहाँ आया-जाया करते हैं ?" (सब हँसते हैं।)

नरेन्द्र उसी मुहल्ले में रहते हैं। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को बुला लाने कहा। घरवालों ने श्रीरामकृष्ण को दूसरे मँजले पर ले जाकर बैठाया। कमरे की फर्श पर बिछायत बिछी हुई है, उस पर दो-चार तकिये रखे हैं। दीवार पर सुरेन्द्र के द्वारा विशेष प्रयत्नपूर्वक बनवाया हुआ तैलचित्र है, जिसमें श्रीरामकृष्ण केशव को हिन्दू,

मुसलमान, ईसाई, बौद्ध आदि सब धर्म तथा वैष्णव, शाक्त, शैव आदि सब सम्प्रदायों का समन्वय दिखला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण प्रसन्न बैठकर मुसकराते हुए बातचीत कर रहे हैं। इतने में नरेन्द्र आ पहुंचे। अब तो श्रीरामकृष्ण का आनन्द मानो द्विगुणित हो उठा। आपने कहा, "आज केशव सेन के साथ जहाज में बैठकर घूमने गया था। विजय था, ये सब लोग थे।" मास्टर को निर्देशित करते हुए कहा, "इनसे पूछो, विजय और केशव को मैंने कैसे माँ-बेटी का मंगलवार, जटिला-कुटिला के बिना लीला की पुष्टि नहीं होती—ये सब बातें कहीं। (मास्टर से) क्यों जी?"

मास्टर— जी हाँ।

रात हो गयी पर अब भी सुरेन्द्र नहीं लौटे। श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर जायेंगे, अब अधिक देर नहीं की जा सकती, रात के साढ़े दस बज गये हैं। राह में चन्द्रमा का प्रकाश छाया है।

गाड़ी आयी। श्रीरामकृष्ण चढ़े। नरेन्द्र और मास्टर ने उन्हें प्रणाम किया और दोनों कलकत्ते में अपने-अपने घर लौटे।

परिच्छेद १४

शिवनाथ आदि ब्राह्मभक्तों के संग में

(१)

उत्सवमन्दिर

भगवान् श्रीरामकृष्ण सींती का ब्राह्मसमाज देखने आये हैं। २८ अक्टूबर १८८२ ई., शनिवार, आश्विन की कृष्णा द्वितीया है।

आज यहाँ ब्राह्मसमाज के छठें महीने का उत्सव होगा। इसी लिए भगवान् श्रीरामकृष्ण को निमन्त्रण देकर बुलाया है। दिन के तीन-चार बजे का समय है, श्रीरामकृष्ण कुछ भक्तों के साथ गाड़ी पर चढ़कर दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर से श्रीयुत वेणीमाधव पाल के मनोहर बगीचे में पहुँचे हैं। इसी बगीचे में ब्राह्मसमाज का अधिवेशन हुआ करता है। ब्राह्मसमाज को वे बहुत प्यार करते हैं। ब्राह्मभक्त भी उन्हें बड़ी श्रद्धाभक्ति से देखते हैं। अभी कल ही शुक्रवार के दिन, पिछले पहर आप केशव सेन और उनके शिष्यों के साथ जहाज पर चढ़कर हवाखोरी को निकले थे।

सींती पाइकपाड़ा के पास है। कलकत्ते से तीन मील, उत्तर दिशा में। स्थान निर्जन और मनोहर है; ईश्वरोपासना के लिए अत्यन्त उपयोगी है। बगीचे के मालिक साल में दो बार उत्सव मनाते हैं; एक बार शरत्-काल में और एक बार वसन्त में। इस महोत्सव में वे कलकत्ते और सींती के आसपास के ग्रामवासी अनेक भक्तों को निमन्त्रण देते हैं। अतएव आज कलकत्ते से शिवनाथ आदि भक्त आये हैं। इनमें से अनेक प्रातःकाल की उपासना में सम्मिलित हुए थे। वे सब सायंकालीन उपासना की प्रतीक्षा कर रहे हैं। विशेषतः उन लोगों ने सुना है कि अपराह्ण में महापुरुष का

आगमन होगा, अतएव उनकी आनन्द-मूर्ति देखेंगे, उनका हृदय-मुग्धकारी वचनामृत पान करेंगे, मधुर संकीर्तन सुनेंगे और देखेंगे भगवत्-प्रेममय देवदुर्लभ नृत्य ।

दोपहर को बगीचे में आदमी ठसाठस भर गये हैं। कोई लता-मण्डप की छाया में बेंच पर बैठा हुआ है, कोई सुन्दर तालाब के किनारे मित्रों के साथ घूम रहा है। कितने ही लोग समाजगृह में पहले ही से जगह लेकर आसन पर बैठे हुए श्रीरामकृष्ण के आने की बाट जोह रहे हैं। चारों ओर आनन्द उमड़ रहा है। शरद् के नील आकाश में भी आनन्द की छाया झलक रही है। बाग के फूलों से लदे हुए पेड़ों और लताओं से छनकर आती हुई हवा भक्तों के हृदय में आनन्द का एक झोंका लगा जाती है। सारी प्रकृति मानो मधुर स्वर से गा रही है—'आज हर्ष-शीतल-समीर भरते भक्तों के उर में हैं विभु।' सभी उत्कण्ठित हो रहे हैं, ऐसे समय श्रीरामकृष्ण की गाड़ी आकर समाजगृह के सामने खड़ी हो गयी।

सभी ने उठकर महापुरुष का स्वागत किया। वे आये हैं—सुनते ही लोगों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया।

समाजगृह के प्रधान कमरे में वेदी बनायी गयी है। वह जगह आदमियों से भर गयी है। सामने दालान है; वहाँ श्रीरामकृष्ण बैठे हैं; वहाँ भी लोग जम गये हैं। दालान के दोनों ओर दो कमरे हैं—वहाँ भी लोग हैं,—सभी दरवाजे पर खड़े हुए बड़े उत्सुक होकर श्रीरामकृष्ण को देख रहे हैं। दालान पर चढ़ने की सीढ़ियाँ बराबर दालान के एक छोर से दूसरे छोर तक हैं। इन सीढ़ियों पर भी अनेक लोग खड़े हैं। वहाँ से कुछ दूर पेड़ों और लतामण्डपों के नीचे रखी हुई बेंचों पर से भी लोग टक लगाकर महापुरुष के दर्शन कर रहे हैं। दोनों ओर फल और फूलों के पेड़ों की कतार

लगी हुई है,—बीच में रास्ता है। सभी पेड़ हवा की झोंकों से धीरे धीरे डोल रहे हैं, मानो वे आनन्दमग्न हो मस्तक नवाँकर उनका स्वागत कर रहे हों।

श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए आसन ग्रहण किया। सब की दृष्टि एक साथ उनकी आनन्दमूर्ति पर जा गिरी। जब तक रंगमंच पर खेल शुरू नहीं होता तब तक दर्शकवृन्दों में से कोई तो हँसता है, कोई विषयचर्चा छेड़ता है, कोई अकेला या दोस्तों के साथ टहलता है, कोई पान खाता है, कोई सिगरेट पीता है; परन्तु परदा उठते ही सब लोग बातचीत बन्द कर, अनन्यचित्त होकर एकाग्र दृष्टि से खेल देखने लगते हैं। अथवा, एक फूल से दूसरे फूल में मँडरानेवाले भौंरे कमल की खोज पाते ही दूसरे फूलों को छोड़कर पद्ममधु का पान करने के लिए भागे चले आते हैं।

(२)

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते। (गीता, १४।२६)

हँसमुख श्रीरामकृष्ण शिवनाथ आदि भक्तों की ओर स्नेह की दृष्टि फेरते हुए कहते हैं, "क्या शिवनाथ! तुम भी आये हो? देखो तुम लोग भक्त हो, तुम लोगों को देखकर बड़ा आनन्द होता है। गँजेड़ी का स्वभाव होता है कि दूसरे गँजेड़ी को देखते ही वह खुश हो जाता है; कभी तो उसे गले ही लगा लेता है। (शिवनाथ तथा अन्य सब हँसते हैं।)

संसारी लोगों का स्वभाव। नाममाहात्म्य

श्रीरामकृष्ण—जिन्हें मैं देखता हूँ कि मन ईश्वर पर नहीं है, उनसे कहता हूँ 'तुम कुछ देर वहाँ जाकर बैठो' या कह देता हूँ, 'जाओ, इमारतें (रानी रासमणि के मन्दिर आदि) देखो।' (सब हँसे।)

"कभी तो देखा है कि भक्तों के साथ निकम्मे आदमी आये हैं। उनमें बड़ी विषयबुद्धि रहती है। ईश्वरी चर्चा नहीं सुहाती। भक्त तो बड़ी देर तक मुझसे ईश्वरी वार्तालाप करते हैं, पर वे लोग उधर बैठे नहीं रह सकते; तड़फड़ाते हैं। बार बार कानों में फिसफिसाते हुए कहते हैं, 'कब चलोगे—कब चलोगे?' उन्होंने अगर कहा, 'ठहरो भी, जरा देर बाद चलते हैं', तो इन लोगों ने रूठकर कहा, 'तो तुम बातचीत करो, हम नाव पर चलकर बैठते हैं।' (सब हँसे।)

"संसारी मनुष्यों से यदि कहो कि सब छोड़-छाड़कर ईश्वर के पादपद्मों में मन लगाओ तो वे कभी न सुनेंगे। यही कारण है कि गौरांग और नित्यानन्द दोनों भाइयों ने आपस में विचार करके यह व्यवस्था की—'मागुर माछेर झोल (मागुर मछली की रसदार तरकारी), युवती मेयेर कोल (युवती स्त्री का अंक), बोल हरि बोल।' प्रथम दोनों के लोभ से बहुत आदमी 'हरि बोल' में शामिल होते थे। फिर तो हरिनामामृत का कुछ स्वाद पाते ही वे समझ जाते थे कि 'मागुर माछेर झोल' और कुछ नहीं है,—ईश्वरप्रेम के जो आँसू उमड़ते हैं, वही है; और युवती स्त्री है पृथ्वी—'युवती स्त्री का अंक' अर्थात् भगवत्-प्रेम के कारण धूलि में लोटपोट हो जाना।

"नित्यानन्द किसी तरह हरिनाम करा लेते थे। चैतन्यदेव ने कहा है, ईश्वर के नाम का बड़ा माहात्म्य है। फल जल्दी न मिलने पर भी कभी न कभी अवश्य प्राप्त होगा। जैसे, कोई पक्के मकान के आले में बीज रखा गया था; बहुत दिनों के बाद जब मकान गिर गया—मिट्टी में मिल गया, तब भी उस बीज से पेड़ पैदा हुआ और उसमें फल भी लगे।"

मनुष्यप्रकृति तथा तीन गुण। भक्ति का सत्त्व, रज, तम।

श्रीरामकृष्ण—जैसे संसारियों में सत्त्व, रज और तम—ये तीनों

गुण हैं, वैसे भक्ति में भी सत्त्व, रज और तम तीन गुण हैं।

"संसारियों का सत्त्वगुण कैसा होता है, जानते हो ? घर यहाँ टूटा है, वहाँ टूटा है---मरम्मत नहीं कराते। पूजागृह के बरामदे में कबूतरों की विष्ठा पड़ी है; आँगन में काई जम गयी है; होश तक नहीं। असबाब सब पुराने हो गये हैं; ठीक-ठाक करने की कोशिश नहीं करते। कपड़ा जो मिला वही सही। देखने में सीधेसादे, शान्त, दयालु, मिलनसार, कभी किसी का बुरा नहीं चाहते।

"और फिर संसारियों के रजोगुण के भी लक्षण हैं। जेब-घड़ी, चेन, उँगलियों में दो-तीन अँगूठियाँ, मकान की चीजें बड़ी साफ, दीवार पर क्वीन (रानी) की तस्वीर, राजपुत्र की तस्वीर, किसी बड़े आदमी की तस्वीर। मकान चूने से पुता हुआ---कहीं एक दाग तक नहीं। तरह तरह की अच्छी पोशाक। नौकरों के भी वर्दियाँ।---आदि आदि।

"संसारियों के तमोगुण के लक्षण हैं---निद्रा, काम-क्रोध, अहंकार---यही सब।

"और भक्ति का भी सत्त्व है। जिस भक्त में सत्त्वगुण है वह एकान्त में ध्यान करता है। कभी तो वह मसहरी के भीतर ध्यान करता है। लोग समझते हैं कि आप सो रहे हैं, शायद रात को आँख नहीं लगी, इसलिए आज उठने में देर हो रही है। इधर शरीर का ख्याल बस भूख मिटाने तक, साग-पात पाने ही से चल गया। न भोजन में भरमार, न पोशाक में टीम-टाम और न घर में चीजों का जमघट और फिर सतोगुणी भक्त कभी खुशामद करके धन नहीं कमाता।

"भक्ति का रज जिस भक्त को होता है वह तिलक लगाता है, रुद्राक्ष की माला पहनता है, जिसके बीच बीच सोने के दाने जड़े

रहते हैं ! (सब हँसते हैं।) जब पूजा करता है तब पीताम्बर पहन लेता है !"

(३)

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ (गीता, २।३)

श्रीरामकृष्ण—जिसे भक्ति का तम होता है उसका विश्वास अटूट है। इस प्रकार का भक्त हठपूर्वक ईश्वर से भिड़ जाता है, मानो डाका डालकर धन छीन लेता है। 'मारो, काटो, बाँधो !' इस तरह डाका डालने का भाव है।

नाममाहात्म्य तथा पाप

श्रीरामकृष्ण ऊर्ध्वदृष्टि हैं, प्रेमरस से भरे मधुर कण्ठ से गा रहे हैं, भाव यह है:—" 'काली काली' जपते हुए यदि मेरे शरीर का अन्त हो तो गया-गंगा-काशी-कांची-प्रभास आदि की परवाह कौन करता है ? हे काली, तुम्हारा भक्त पूजा-सन्ध्यादि नहीं चाहता, सन्ध्या खुद उसकी खोज में फिरती है, पर पता नहीं लगा सकती। दया-व्रत-दान आदि पर उसका मन नहीं जाता। मदन के याग-यज्ञ ब्रह्ममयी के रक्तिम चरणों में होते हैं। काली के नाम का गुण, जिसे देवाधिदेव महादेव पाँचों मुख से गाते हैं, कौन जान सकता है?

श्रीरामकृष्ण भावोन्मत्त हो मानो अग्निमन्त्र से दीक्षित होकर गाने लगे। गीत का आशय यह है:—

"यदि मैं 'दुर्गा दुर्गा' जपता हुआ मरूँ तो अन्त में इस दीन को, हे शंकरी, देखूँगा तुम कैसे नहीं तारती हो।"

श्रीरामकृष्ण—"क्या ! मैंने उनका नाम लिया है—मुझे पाप ! मैं उनकी सन्तान हूँ—उनके ऐश्वर्य का अधिकारी हूँ !" इस प्रकार की जिद्द चाहिए।

"तमोगुण को ईश्वर की ओर फेर देने से ईश्वर-लाभ होता है। उनसे हठ करो; वे कोई दूसरे तो नहीं, अपने ही तो हैं।

"फिर देखो, यह तमोगुण दूसरों के हित पर लगाया जा सकता है। वैद्य तीन प्रकार के होते हैं;—उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य नाड़ी देखकर 'दवा खा लेना' कहकर चला जाता है, वह अधम वैद्य है। रोगी ने दवा खायी या नहीं, इसकी खबर वह नहीं लेता। जो वैद्य रोगी को दवा खाने के लिए तरह तरह से समझाता-बुझाता है, मीठी बातों से कहता है, 'अजी दवा नहीं खाओगे तो अच्छे किस तरह होगे! भैया, खा लो, अच्छा मैं खुद खरल करके खिलाता हूं', वह मध्यम वैद्य है और जो वैद्य रोगी को किसी तरह दवा न खाते हुए देखकर छाती पर चढ़ बैठ जबरदस्ती दवा खिलाता है, वह उत्तम वैद्य है। यह वैद्यों का तमोगुण है, इस गुण से रोगी का उपकार होता है, अपकार नहीं।

तीन प्रकार के आचार्य

"वैद्यों के समान तीन प्रकार के आचार्य भी हैं। धर्मोपदेश देकर जो शिष्यों की फिर कोई खबर नहीं लेते वे आचार्य अधम हैं। जो शिष्यों के हित के लिए बार बार उन्हें समझाते हैं जिससे कि वे उपदेशों की धारणा कर सकें, बहुत विनय-प्रार्थना करते हैं, प्यार करते हैं,—वे मध्यम आचार्य हैं। और जब शिष्यों को किसी तरह उपदेश न सुनते देख कोई कोई आचार्य बलपूर्वक उन्हें राह पर लाते हैं, तो उन्हें उत्तम आचार्य समझना चाहिए।"

(४)

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" (तैत्तिरीय उपनिषत्)

ब्रह्म का स्वरूप अनिर्वचनीय है

एक ब्राह्मभक्त ने पूछा—ईश्वर साकार हैं या निराकार ?

श्रीरामकृष्ण-उनकी इति नहीं की जा सकती। वे निराकार

रहते हैं ! (सब हँसते हैं।) जब पूजा करता है तब पीताम्बर पहन लेता है !"

(३)

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ (गीता, २।३)

श्रीरामकृष्ण—जिसे भक्ति का तम होता है उसका विश्वास अटूट है। इस प्रकार का भक्त हठपूर्वक ईश्वर से भिड़ जाता है, मानो डाका डालकर धन छीन लेता है। 'मारो, काटो, बाँधो !' इस तरह डाका डालने का भाव है।

नाममाहात्म्य तथा पाप

श्रीरामकृष्ण ऊर्ध्वदृष्टि हैं, प्रेमरस से भरे मधुर कण्ठ से गा रहे हैं, भाव यह है:—"'काली काली' जपते हुए यदि मेरे शरीर का अन्त हो तो गया-गंगा-काशी-कांची-प्रभास आदि की परवाह कौन करता है ? हे काली, तुम्हारा भक्त पूजा-सन्ध्यादि नहीं चाहता, सन्ध्या खुद उसकी खोज में फिरती है, पर पता नहीं लगा सकती। दया-व्रत-दान आदि पर उसका मन नहीं जाता। मदन के याग-यज्ञ ब्रह्ममयी के रक्तिम चरणों में होते हैं। काली के नाम का गुण, जिसे देवाधिदेव महादेव पाँचों मुख से गाते हैं, कौन जान सकता है?

श्रीरामकृष्ण भावोन्मत्त हो मानो अग्निमन्त्र से दीक्षित होकर गाने लगे। गीत का आशय यह है:—

"यदि मैं 'दुर्गा दुर्गा' जपता हुआ मरूँ तो अन्त में इस दीन को, हे शंकरी, देखूंगा तुम कैसे नहीं तारती हो।"

श्रीरामकृष्ण—"क्या ! मैंने उनका नाम लिया है—मुझे पाप ! मैं उनकी सन्तान हूँ—उनके ऐश्वर्य का अधिकारी हूँ !" इस प्रकार की जिद्द चाहिए।

"तमोगुण को ईश्वर की ओर फेर देने से ईश्वर-लाभ होता है। उनसे हठ करो; वे कोई दूसरे तो नहीं, अपने ही तो हैं।

"फिर देखो, यह तमोगुण दूसरों के हित पर लगाया जा सकता है। वैद्य तीन प्रकार के होते हैं;—उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य नाड़ी देखकर 'दवा खा लेना' कहकर चला जाता है, वह अधम वैद्य है। रोगी ने दवा खायी या नहीं, इसकी खबर वह नहीं लेता। जो वैद्य रोगी को दवा खाने के लिए तरह तरह से समझाता-बुझाता है, मीठी बातों से कहता है, 'अजी दवा नहीं खाओगे तो अच्छे किस तरह होगे! भैया, खा लो, अच्छा मैं खुद खरल करके खिलाता हूँ', वह मध्यम वैद्य है और जो वैद्य रोगी को किसी तरह दवा न खाते हुए देखकर छाती पर चढ़ बैठ जबरदस्ती दवा खिलाता है, वह उत्तम वैद्य है। यह वैद्यों का तमोगुण है, इस गुण से रोगी का उपकार होता है, अपकार नहीं।

तीन प्रकार के आचार्य

"वैद्यों के समान तीन प्रकार के आचार्य भी हैं। धर्मोपदेश देकर जो शिष्यों की फिर कोई खबर नहीं लेते वे आचार्य अधम हैं। जो शिष्यों के हित के लिए बार बार उन्हें समझाते हैं जिससे कि वे उपदेशों की धारणा कर सकें, बहुत विनय-प्रार्थना करते हैं, प्यार करते हैं,—वे मध्यम आचार्य हैं। और जब शिष्यों को किसी तरह उपदेश न सुनते देख कोई कोई आचार्य बलपूर्वक उन्हें राह पर लाते हैं, तो उन्हें उत्तम आचार्य समझना चाहिए।"

(४)

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"(तैत्तिरीय उपनिषत्)

ब्रह्म का स्वरूप अनिर्वचनीय है

एक ब्राह्मभक्त ने पूछा—ईश्वर साकार हैं या निराकार?

श्रीरामकृष्ण—उनकी इति नहीं की जा सकती। वे निराकार

हैं, फिर साकार भी हैं। भक्तों के लिए वे साकार हैं। जो ज्ञानी हैं—संसार को जिन्होंने स्वप्नवत् मान लिया है, उनके लिए वे निराकार हैं। भक्त का यह विश्वास है कि मैं एक पृथक् सत्ता हूँ तथा संसार एक पृथक् सत्ता; इसलिए भक्त के निकट ईश्वर 'व्यक्ति' (Personal God) के रूप में आते हैं। ज्ञानी—जैसे वेदान्तवादी—सिर्फ 'नेति नेति' विचार करता है। विचार करने पर उसे यह बोध होता है कि मैं मिथ्या हूँ, संसार भी मिथ्या—स्वप्नवत् है। ज्ञानी ब्रह्म को बोधरूप देखता है; परन्तु वे क्या हैं, यह मुंह से नहीं कह सकता।

"वे किस तरह हैं, जानते हो? मानो सच्चिदानन्द समुद्र है जिसका ओर-छोर नहीं। भक्ति के हिम से जगह जगह जल बर्फ हो जाता है—बर्फ की तरह जम जाता है। अर्थात् भक्तों के पास वे व्यक्तभाव से कभी कभी साकाररूप धारण करते हैं। ज्ञान-सूर्य का उदय होने पर वह बर्फ गल जाती है, तब ईश्वर के व्यक्तित्व का बोध नहीं रह जाता—उनका रूप भी नहीं दिखायी देता। वे क्या हैं, मुंह से नहीं कहा जा सकता। कहे कौन! जो कहेंगे वे ही नहीं रह गये, उनका 'मैं' ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता।

"विचार करते करते फिर 'मैं' नहीं रह जाता। जब तुम प्याज छीलते हो, तब पहले लाल छिलके निकलते हैं। फिर सफेद मोटे छिलके। इसी तरह लगातार छीलते जाओ तो भीतर ढूंढ़ने से कुछ नहीं मिलता।

"जहाँ अपना 'मैं' खोजे नहीं मिलता—और खोजे भी कौन?—वहाँ ब्रह्म के स्वरूप का बोध किस प्रकार होता है, यह कौन कहे! नमक का एक पुतला समुद्र की थाह लेने गया। समुद्र में ज्योंही उतरा कि गलकर पानी हो गया। फिर खबर कौन दे?

"पूर्ण ज्ञान का लक्षण यह है,—पूर्ण ज्ञान होने पर मनुष्य चुप हो जाता है। तब 'मैं' रूपी नमक का पुतला सच्चिदानन्दरूपी समुद्र में गलकर एक हो जाता है, फिर जरा भी भेदबुद्धि नहीं रह जाती।

"विचार करने का जब तक अन्त नहीं होता, तब तक लोग तर्क पर तुले रहते हैं। अन्त हुआ कि चुप हो गये। घड़ा भर जाने से —घड़े का जल और तालाब का जल एक हो जाने से—फिर शब्द नहीं होता। जब तक घड़ा भर नहीं जाता, शब्द तभी तक होता है।

"पहले के लोग कहते थे, काले पानी में जहाज जाने से फिर लौट नहीं सकता।

" 'मैं' मरा कि बला टली। (हास्य) विचार चाहे लाख करो पर 'मैं' दूर नहीं होता। तुम्हारे और हमारे लिए 'मैं भक्त हूँ' यह अभिमान अच्छा है।

"भक्तों के लिए सगुण ब्रह्म हैं अर्थात् वे सगुण अर्थात् मनुष्य के रूप में दर्शन देते हैं। प्रार्थनाओं के सुननेवाले वे ही हैं। तुम लोग जो प्रार्थना करते हो वह उन्हीं से करते हो। तुम लोग न वेदान्तवादी हो, न ज्ञानी; तुम लोग भक्त हो। साकार रूप मानो चाहे न मानो, इसमें कुछ हानि नहीं; केवल यह ज्ञान रहने ही से काम होगा कि ईश्वर एक वह व्यक्ति हैं जो प्रार्थनाओं को सुनते हैं, सृजन, पालन और प्रलय करते हैं, जिनमें अनन्त शक्ति है।

"भक्तिमार्ग से ही वे जल्दी मिलते हैं।"

(५)

भक्त्या त्वनन्यया शक्यः अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ (गीता, ११।४५)

ईश्वरदर्शन—साकार तथा निराकार

एक ब्राह्मभक्त ने पूछा, "महाराज, ईश्वर को क्या कोई देख सकता

है ? अगर देख सकता है तो हमें वे क्यों नहीं देखने को मिलते ?"

श्रीरामकृष्ण–हाँ, वे अवश्य देखने को मिलते हैं। साकार रूप देखने में आता है और फिर अरूप भी दीख पड़ता है, परन्तु यह तुम्हें समझाऊँ किस तरह ?

ब्राह्मभक्त–हम उन्हें किस उपाय से देख सकते हैं ?

श्रीरामकृष्ण–व्याकुल होकर उनके लिए रो सकते हो ? लड़के के लिए, स्त्री के लिए, धन के लिए लोग आँसुओं की झड़ी बाँध देते हैं, परन्तु ईश्वर के लिए कौन रोता है ? जब तक लड़का खिलौने पर भूला रहता है तब तक माँ रोटी पकाना आदि घर-गृहस्थी के कामों में लगी रहती है। जब लड़के को खिलौना नहीं सुहाता, उसे फेंक, गला फाड़कर रोने लगता है, तब माँ तवा उतारकर दौड़ आती है,—बच्चे को गोद में उठा लेती है।

ब्राह्मभक्त–महराज, ईश्वर के स्वरूप पर इतने भिन्न भिन्न मत क्यों हैं ? कोई कहता है साकार और कोई कहता है निराकार। फिर साकारवादियों से तो अनेक रूपों की चर्चा सुन पड़ती है। यह गोरखधन्धा क्यों रचा है ?

श्रीरामकृष्ण–जो भक्त जिस प्रकार देखता है वह वैसा ही समझता है। वास्तव में गोरखधन्धा कुछ भी नहीं। यदि उन्हें कोई किसी तरह एक बार प्राप्त कर सके, तो वे सब समझा देते हैं। उस मुहल्ले में गये ही नहीं,—कुल खबर कैसे पाओगे ?

"एक कहानी सुनो। एक आदमी शौच के लिए जंगल गया। उसने देखा कि पेड़ पर एक जन्तु बैठा है। लौटकर उसने एक दूसरे से कहा—'देखो जी, उस पेड़ पर हमने एक लाल रंग का सुन्दर जीव देखा है।' उस आदमी ने जवाब दिया—'जब मैं शौच के लिए गया था तब मैंने भी देखा; पर उसका रंग लाल तो

नहीं है—वह तो हरा है !' तीसरे ने कहा—'नहीं जी नहीं, हमने भी देखा है, पीला है।' इसी प्रकार और भी कुछ लोग थे जिनमें से किसी ने कहा भूरा, किसी ने बैंगनी, किसी ने आसमानी आदि आदि। अन्त में लड़ाई ठन गयी। तब उन लोगों ने पेड़ के नीचे जाकर देखा। वहाँ एक आदमी बैठा था। पूछने पर उसने कहा—'मैं इसी पेड़ के नीचे रहता हूँ। उस जीव को मैं खूब पहचानता हूँ। तुम लोगों ने जो कुछ कहा, सब सत्य है। वह कभी लाल, कभी हरा, कभी पीला, कभी आसमानी और भी न जाने कितने रंग बदलता है। वह बहुरुपिया है। और फिर कभी देखता हूँ, कोई रंग नहीं !'

"अर्थात् जो मनुष्य सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करता है, वही जान सकता है कि उनका स्वरूप क्या है। वही मनुष्य जानता है कि वे अनेकानेक रूपों में दर्शन देते हैं, अनेक भावों में दीख पड़ते हैं,—वे सगुण हैं और निर्गुण भी। जो पेड़ के नीचे रहता है वही जानता है कि उस बहुरुपिया के कितने रंग हैं,—फिर कभी कभी तो कोई भी रंग नहीं रहता। दूसरे लोग केवल वादविवाद करके कष्ट उठाते हैं। कबीर कहते थे,—'निराकार मेरा पिता है और साकार मेरी माँ।'

"भक्त को जो स्वरूप प्यारा है, उसी रूप से वे दर्शन देते हैं—वे भक्तवत्सल हैं न। पुराण में कहा है कि वीरभक्त हनुमान के लिए उन्होंने रामरूप धारण किया था।

कालीरूप तथा श्यामरूप की व्याख्या

"वेदान्त-विचार के सामने नाम-रूप कुछ नहीं ठहरते। उस विचार का चरम सिद्धान्त है—'ब्रह्म सत्य और नामरूपोंवाला संसार मिथ्या।' जब तक 'मैं भक्त हूँ' यह अभिमान रहता है, तभी तक ईश्वर का रूप दिखायी देना और ईश्वर के सम्बन्ध में व्यक्ति (Person) का बोध रहना सम्भव है। विचार की दृष्टि से देखें तो

भक्त के 'मैं भक्त हूँ' इस अभिमान ने उसे कुछ दूर कर रखा है।

"कालीरूप या श्यामरूप साढ़े तीन हाथ का इसलिए है कि वह दूर है। दूर ही के कारण सूर्य छोटा दिखता है। पास जाओ तो इतना बड़ा मालूम होगा कि उसकी धारणा ही न कर सकोगे। और फिर कालीरूप या श्यामरूप श्यामवर्ण क्यों है?—क्योंकि वह भी दूर है। सरोवर का जल दूर से हरा, नीला या काला दीख पड़ता है; निकट जाकर हाथ में लेकर देखो, कोई रंग नहीं। आकाश दूर ही से नीला दिखायी देता है, पास जाकर देखो तो कोई रंग नहीं।

"इसलिए कहता हूँ, वेदान्त-दर्शन के विचार से ब्रह्म निर्गुण है। उनका स्वरूप क्या है, यह मुँह से नहीं कहा जा सकता। परन्तु जब तक तुम स्वयं सत्य हो तब तक संसार भी सत्य है, ईश्वर के नाम-रूप भी सत्य हैं, ईश्वर को एक व्यक्ति समझना भी सत्य है।

"तुम्हारा मार्ग भक्तिमार्ग है। यह बड़ा अच्छा है, सरल मार्ग है। अनन्त ईश्वर समझ में थोड़े ही आ सकते हैं? और उन्हें समझने की जरूरत भी क्या? यह दुर्लभ मनुष्यजन्म प्राप्त कर हमें वह करना चाहिए जिससे उनके चरण-कमलों में भक्ति हो।

"यदि लोटेभर पानी से हमारी प्यास बुझे तो तालाब में कितना पानी है, इसकी नापतौल करने की क्या जरूरत? अगर अद्धेभर शराब से हम मस्त हो जायँ तो कलवार की दूकान में कितने मन शराब है, इसकी जाँच-पड़ताल करने का क्या काम? अनन्त का ज्ञान प्राप्त करने का क्या प्रयोजन?

(६)

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ (गीता, ३।१७)

ईश्वरलाभ के लक्षण—सप्तभूमि तथा ब्रह्मज्ञान

"वेदों में ब्रह्मज्ञानी की अनेक प्रकार की अवस्थाओं का वर्णन है। ज्ञानमार्ग बड़ा कठिन मार्ग है। विषय-वासना—कामिनी-कांचन के प्रति आसक्ति—का लेशमात्र रहते ज्ञान नहीं होता। यह पथ कलि-काल में साधन करने योग्य नहीं।

"इस विषय में वेदों में सप्तभूमि (Seven Planes) का उल्लेख है। मन इन सात सोपानों पर विचरण किया करता है। जब वह संसार में रहता है तब लिंग, गुदा और नाभि उसके निवासस्थल हैं। तब वह उन्नत दशा पर नहीं रहता—केवल कामिनी-कांचन में लगा रहता है। मन की चौथी भूमि है हृदय। तब चैतन्य का उदय होता है, और मनुष्य को चारों ओर ज्योति दिखलायी पड़ती है। तब वह मनुष्य ईश्वरी ज्योति देखकर सविस्मय कह उठता है, 'यह क्या है, यह क्या है!' तब फिर नीचे (संसार की ओर) मन नहीं मुड़ता।

"मन की पंचम भूमि है कण्ठ। जिसका मन कण्ठ तक पहुँचा है उसकी सारी अविद्या, सम्पूर्ण अज्ञान दूर हो गया है। ईश्वरी प्रसंग के सिवा और कोई बात न तो सुनने को और न कहने को उसका जी चाहता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरी चर्चा छेड़ता है तो वह वहाँ से उठ जाता है।

"मन की छठी भूमि कपाल है। मन वहाँ जाने से दिनरात ईश्वरी रूप के दर्शन होते हैं। उस समय भी कुछ 'मैं' रहता है। वह मनुष्य उस अनुपम रूप को देखकर मतवाले की तरह उसे छूने तथा गले लगाने को बढ़ता है, परन्तु पाता नहीं। जैसे लालटेन के भीतर बत्ती को जलते देखकर, मन में आता है कि छूना चाहें तो हम इसे छू सकते हैं, परन्तु काँच के आवरण के कारण हम उसे छू नहीं पाते।

"शिरोदेश सप्तम भूमि है। वहाँ मन जाने से समाधि होती है और ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। परन्तु उस अवस्था में शरीर अधिक दिन नहीं रहता है। सदा बेहोश, कुछ खाया नहीं जाता, मुँह में दूध डालने से भी गिर जाता है। इस भूमि में रहने से इक्कीस दिन के भीतर मृत्यु होती है। यही ब्रह्मज्ञानियों की अवस्था है। तुम लोगों के लिए भक्तिपथ है। भक्तिपथ बड़ा अच्छा और सहज है।

समाधि तथा कर्मत्याग

"मुझसे एक मनुष्य ने कहा था, 'महाराज, मुझे आप समाधि सिखा सकते हैं?' (सब हँसते हैं।)

"समाधि होने पर सब कर्म छूट जाते हैं। पूजा-जपादि कर्म, विषय-कर्म सब छूट जाते हैं। पहले-पहल कामों की बड़ी रेलपेल होती है, परन्तु ईश्वर की ओर जितना ही बढ़ोगे, कामों का आडम्बर उतना ही घटता जायगा; यहाँ तक कि नामगुणकीर्तन तक छूट जाता है। (शिवनाथ से) जब तक तुम सभा में नहीं आये कि तब तक तुम्हारे नाम और गुणों की बड़ी चर्चा चलती रही। ज्योंही तुम आये कि वे सब बातें बन्द हो गयीं। तब तुम्हारे दर्शन से ही आनन्द मिलने लगा। लोग कहने लगे, 'यह लो, शिवनाथ बाबू आ गये।' फिर तुम्हारे बारे में और सब बातें बन्द हो जाती हैं।

"मेरी यह अवस्था होने पर गंगा में तर्पण करने के लिए जाकर मैंने देखा, उँगलियों के भीतर से पानी गिरा जा रहा है। तब हलधारी से रोते हुए पूछा, दादा, यह क्या हो गया! हलधारी बोला, इसे 'गलितहस्त' कहते हैं। ईश्वरदर्शन के बाद तर्पणादि कर्म नहीं रह जाते।

"संकीर्तन करते समय पहले कहते हैं, 'निताई आमार माता

हाथी !' 'निताई आमार माता हाथी !' (मेरा निताई मतवाले हाथी की तरह नाच रहा है।) भाव गहरा होने पर सिर्फ 'हाथी हाथी' कहते हैं। इसके बाद केवल 'हाथी' शब्द मुँह में लग्न रहता है। अन्त को 'हा' कहते हुए भाव-समाधि होती है। तब वे जो अब तक कीर्तन कर रहे थे, चुप हो जाते हैं।

"जैसे ब्रह्मभोज में पहले खूब शोरगुल मचता है। जब सभी के आगे पत्तल पड़ जाती है तब गुलगपाड़ा बहुत-कुछ घट जाता है। केवल 'पूड़ी लाओ, पूड़ी लाओ' की आवाज होती रहती है। फिर जब लोग पूड़ी-तरकारी खाना शुरू करते हैं तब बारह आना शब्द घट जाता है। जब दही आया तब सप्-सप्! (सब हँसते हैं।)—शब्द मानो होता ही नहीं। और भोजन के बाद निद्रा। तब सब चुप!

"इसीलिए कहा कि पहले-पहल कामों की बड़ी रेलपेल रहती है। ईश्वर के रास्ते पर जितना बढ़ोगे उतने ही कर्म घटते जायँगे। अन्त को कर्म छूट जाते हैं। और समाधि होती है।

"गृहस्थ की बहू के गर्भवती होने पर उसकी सास काम घटा देती है। दसवें महीने में काम अवसर नहीं करना पड़ता। लड़का होने पर उसका काम बिलकुल छूट जाता है। फिर वह सिर्फ लड़के की देखभाल में रहती है। घर-गृहस्थी का काम सास, ननद, जेठानी ये ही सब करती हैं।

समाधि के बाद लोकशिक्षा

"समाधिस्थ होने के बाद प्रायः शरीर नहीं रहता। किसी किसी का शरीर लोक-शिक्षण के लिए रह जाता है,—जैसे नारदादिकों का और चैतन्य जैसे अवतार-पुरुषों का। कुआँ खुद जाने पर कोई कोई झौवा कुदाल फेंक देते हैं। कोई कोई रख लेते हैं,—

सोचते हैं, शायद पड़ोस में किसी दूसरे को जरूरत पड़े। इसी प्रकार महापुरुष जीवों का दुःख देखकर विकल हो जाते हैं। ये स्वार्थी नहीं होते कि अपने ही ज्ञान से मतलब रखें। स्वार्थी लोगों की कथा तो जानते हो। कटी उँगली पर भी नहीं मूतते कि कहीं दूसरे का उपकार न हो जाय। (सब हँसे।) एक पैसे की बर्फी दूकान से ले आने को कहो तो उसमें से भी कुछ साफ कर जायेंगे। (सब हँसते हैं।)

"परन्तु शक्ति की विशेषता होती है। छोटा आधार (साधारण मनुष्य) लोकशिक्षा देते डरता है। सड़ी लकड़ी खुद तो किसी तरह बह जाती है, परन्तु एक चिड़िया के बैठने से भी वह डूब जाती है। नारदादि 'बहादुरी' लकड़ी हैं। ऐसी लकड़ी खुद भी बहती है और कितने ही मनुष्यों, मवेशियों, यहाँ तक कि हाथी को भी अपने ऊपर लेकर बह जाती है।"

(७)

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा, भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं, प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

(गीता, ११।४५)

ब्राह्मसमाज की प्रार्थनापद्धति। ईश्वर का ऐश्वर्य-वर्णन

श्रीरामकृष्ण (शिवनाथ आदि से)—क्यों जी, तुम लोग इतना ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन क्यों करते हो? मैंने केशव सेन से यही कहा था। एक दिन केशव वहाँ (कालीमन्दिर) गया था। मैंने कहा, तुम लोग किस तरह लेक्चर देते हो, मैं सुनूँगा। गंगाघाट की चाँदनी में सभा हुई, और केशव बोलने लगा। खूब बोला। मुझे भाव हो गया था। बाद को केशव से मैंने कहा, तुम यह सब इतना क्यों बोलते हो—हे ईश्वर, तुमने कैसे सुन्दर सुन्दर फूलों की रचना की, तुमने आकाश की सृष्टि की, तुमने नक्षत्र बनाये, तुमने

समुद्र का सृजन किया,—यह सब ! जो स्वयं ऐश्वर्य चाहते हैं उन्हें ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन करना अच्छा लगता है । जब राधाकान्त का जेवर चोरी गया था, तब बाबू (रानी रासमणि के जामाता) राधाकान्त के मन्दिर में जाकर ठाकुरजी से बोले, 'क्यों महाराज, तुम अपने जेवर की रक्षा न कर सके!' मैंने बाबू से कहा, 'यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है! स्वयं लक्ष्मी जिनकी दासी हैं,चरणसेवा करती हैं, उनको ऐश्वर्य की क्या कमी है ? यह जेवर तुम्हारे लिए ही अमोल वस्तु है, ईश्वर के लिए तो कंकड़-पत्थर है। राम राम! ऐसी बुद्धिहीनता की बातें न किया करो। कौन बड़ा ऐश्वर्य तुम उन्हें दे सकते हो ?' इसीलिए कहता हूँ जिसका मन जिस पर रम जाता है वह उसी को चाहता है; कहाँ वह रहता है, उसकी कितनी कोठियाँ हैं, कितने बगीचे हैं, कितना धन है, परिवार में कौन कौन है, नौकर कितने हैं—इसकी खबर कौन लेता है? जब मैं नरेन्द्र को देखता हूँ, तब सब कुछ भूल जाता हूँ। उसका घर कहाँ है, उसका बाप क्या करता है, उसके कितने भाई हैं, ये सब बातें कभी भूलकर भी नहीं पूछीं, ईश्वर के मधुर रस में डूब जाओ । उनकी सृष्टि अनन्त है, ऐश्वर्य अनन्त है । ज्यादा ढूंढ़-तलाश की क्या जरूरत ?

श्रीरामकृष्ण मधुर कण्ठ से गाने लगे। गीत इस आशय का है—
"'ऐ मन ! तू रूप के समुद्र में डूबा जा। तलातल पाताल खोजने पर तुझे प्रेमरत्न-धन मिलेगा । खोज, जी लगाकर खोज। खोजने ही से तू हृदय में वृन्दावन देखेगा। तब वहाँ सदा ज्ञान की बत्ती जलेगी । भला ऐसा कौन है जो जमीन पर डोंगा चलायेगा ? कबीर कहते हैं, तू सदा श्रीगुरु का चरणचिन्तन कर ।'

"दर्शन के बाद कभी कभी भक्त की साध होती है कि उनकी लीला देखें । श्रीरामचन्द्रजी जब राक्षसों को मारकर लंकापुरी में

घुसे तब बुड्ढी निकषा भागी। तब लक्ष्मण बोले, 'हे राम, भला यह क्या है ? यह निकषा इतनी बुड्ढी है, पुत्रशोक भी इसको कम नहीं हुआ, फिर भी इसे प्राणों का इतना भय है कि भाग रही है!' श्रीरामचन्द्रजी ने निकषा को अभय देते हुए सामने लाकर कारण पूछा। वह बोली, 'राम इतने दिनों तक बची हूँ, इसीलिए तुम्हारी इतनी लीला देखी। यही कारण है कि और भी बचना चाहती हूँ। न जाने और कितनी लीलाएँ देखूँ'। (सब हँसते हैं।)

(शिवनाथ से)—"तुम्हें देखने को जी चाहता है। शुद्धात्माओं को बिना देखे किसको लेकर रहूँगा ? शुद्धात्मा मेरे पिछले जन्म के मित्र जान पड़ते हैं।"

एक ब्राह्मभक्त ने पूछा, "महाराज, आप जन्मान्तर मानते हैं?"

श्रीरामकृष्ण—हाँ, मैंने सुना है कि जन्मातर होता है। ईश्वर का काम हम लोग अल्पबुद्धि से कैसे समझ सकते हैं ? अनेकों ने कहा है, इसलिए अविश्वास नहीं कर सकते। भीष्मदेव देह छोड़ना चाहते हैं, शरों की शय्या पर लेटे हुए हैं; सब पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ खड़े हैं। सब ने देखा, भीष्मदेव की आँखों से आँसू बह रहे हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले, 'भाई,यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि पितामह—जो स्वयं भीष्मदेव ही हैं; सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी, आठों वसुओं में से एक हैं—वे भी देह छोड़ते समय माया में पड़े रो रहे हैं।' यह भीष्मदेव से जब श्रीकृष्ण ने कहा तब वे बोले, 'कृष्ण तुम खूब जानते हो कि मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ। जब सोचता हूँ कि स्वयं भगवान् पाण्डवों के सारथि हैं, फिर भी उनके दु:ख और विपत्तियों का अन्त नहीं होता तब यही याद करके आँसू बहाता हूँ कि परमात्मा के कार्यों का कुछ भी भेद न पाया।'

भक्तों के साथ कीर्तनानन्द

समाजगृह में सन्ध्याकाल की उपासना शुरू हुई। रात के साढ़े

आठ बजे का समय है। चाँदनी रात है। बगीचे के वृक्ष, लताएं, कुंज आदि शरत्कालीन चन्द्रमा की निर्मल किरणों में आप्लावित हो उठे। समाजगृह में संकीर्तन हो रहा है। श्रीरामकृष्ण भगवत्प्रेम से मतवाले होकर नाच रहे हैं। ब्राह्म भक्तगण मृदंग-करताल लेकर, उन्हें घेरकर नाच रहे हैं। भाव में भरे हुए सभी मानो ईश्वर-दर्शन कर रहे हैं। हरिनाम-ध्वनि उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। चारों ओर के ग्रामवासीगण हरिनाम सुन रहे हैं और मन ही मन बगीचे के मालिक वेणीमाधव को कितना धन्यवाद दे रहे हैं।

कीर्तन हो जाने पर श्रीरामकृष्ण ने जगन्माता को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। प्रणाम करते हुए कह रहे हैं, "भागवत भक्त भगवान, ज्ञानी के चरणों में प्रणाम है, साकारवादी भक्तों और निराकारवादी भक्तों के चरणों में प्रणाम है, पहले के ब्रह्मज्ञानियों के चरणों में और आजकल के ब्राह्मसमाज के ब्रह्मज्ञानियों के चरणों में प्रणाम है।"

वेणीमाधव ने अच्छे से अच्छे रुचिकर पकवान भक्तों को खिलाये। श्रीरामकृष्ण ने भी भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक प्रसाद पाया।

परिच्छेद १५

सर्कस में श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण गाड़ी से श्यामपुकुर विद्यासागर स्कूल के फाटक पर आ पहुँचे। दिन के तीन बजे का समय होगा। साथ में उन्होंने मास्टर को भी ले लिया। राखाल तथा अन्य दो एक भक्त गाड़ी में हैं। आज बुधवार, १५ नवम्बर १८८२ ई., कार्तिक शुक्ला पंचमी है। गाड़ी चितपुर रास्ते से, किले के मैदान की ओर जा रही है।

श्रीरामकृष्ण आनन्दमय हैं। मतवाले की तरह गाड़ी से कभी इस ओर तथा कभी उस ओर मुख करके बालक की तरह देख रहे हैं और पथिकों के सम्बन्ध में भक्तों से बातचीत कर रहे हैं। मास्टर से कह रहे हैं, "देखो सब लोगों को देखता हूँ, कैसे निम्न दृष्टि के हैं। पेट के लिए सब जा रहे हैं। ईश्वर की ओर दृष्टि नहीं है।"

श्रीरामकृष्ण आज किले के मैदान में विल्सन सर्कस देखने जा रहे हैं। मैदान में पहुंचकर टिकट खरीदी गयी। आठ आने की अर्थात् अन्तिम श्रेणी की टिकट। भक्तगण श्रीरामकृष्ण को लेकर ऊँचे स्थान पर जाकर एक बेंच पर बैठे। श्रीरामकृष्ण आनन्द से कह रहे हैं, "वाह! यहाँ से बहुत अच्छा दिखता है।"

सर्कस में तरह तरह के खेल काफी देर तक दिखाये गये। गोलाकार रास्ते पर घोड़ा दौड़ रहा है, घोड़े की पीठ पर एक पैर पर मेम खड़ी है। फिर बीच बीच में सामने बड़े बड़े लोहे के चक्र रखे हैं। चक्र के पास आकर घोड़ा जब उसके नीचे से दौड़ता है, तो मेम घोड़े की पीठ से कूदकर चक्र के बीच में से होकर फिर घोड़े की पीठ पर एक पैर पर खड़ी हो जाती है। घोड़ा बार बार तेजी

के साथ उस गोलाकार पथ पर दौड़ने लगा, मेम भी फिर उसी प्रकार पीठ पर खड़ी है !

सर्कस समाप्त हुआ। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ उतरकर मैदान में गाड़ी के पास आये। ठण्ड पड़ रही थी। हरे रंग की शाल ओढ़कर मैदान में खड़े खड़े बातचीत कर रहे हैं। पास ही भक्त-गण खड़े हैं। एक भक्त के साथ में आपके लिए मसाले (लौंग, इलायची आदि) का एक छोटासा बटुआ है। उसमें कुछ मसाला और विशेष रूप से कबाबचीनी है।

पहले साधना, बाद में संसार। अभ्यासयोग

श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं, "देखो, मेम कैसे एक पैर के सहारे घोड़े पर खड़ी है और घोड़ा तेजी से दौड़ रहा है। कितना कठिन काम है ! अनेक दिनों तक अभ्यास किया है, तब तो ऐसा सीखा। जरा असावधान होते ही हाथ-पैर टूट जायेंगे और मृत्यु भी हो सकती है। संसार करना इसी प्रकार कठिन है। बहुत साधन-भजन करने के बाद ईश्वर की कृपा से कोई कोई इसमें सफल हुए हैं। अधिकांश लोग असफल हो जाते हैं। संसार करने जाकर और भी बद्ध हो जाते हैं, और भी डूब जाते हैं—मृत्यु-यन्त्रणा होती है ! जनक आदि की तरह किसी किसी ने उग्र तपस्या के बल पर संसार किया था। इसलिए साधन-भजन की विशेष आवश्यकता है। नहीं तो संसार में ठीक नहीं रहा जा सकता।"

बलराम के मकान पर श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण गाड़ी पर बैठे। गाड़ी बागबाजार के बसुपाड़ा में बलराम के मकान के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ दुमँजले पर बैठकघर में जा बैठे। सायंकाल है—दिया जलाया गया है। श्रीरामकृष्ण सर्कस की बातें कर रहे हैं। अनेक

भक्त एकत्रित हुए हैं। उनके साथ ईश्वर-सम्बन्धी चर्चा हो रही है। मुख में दूसरी कोई भी बात नहीं है, केवल ईश्वर की बात।

जातिभेद तथा अस्पृश्यों की समस्या

जातिभेद के सम्बन्ध में चर्चा चली।

श्रीरामकृष्ण बोले, "एक उपाय से जातिभेद उठ सकता है। वह उपाय है—भक्ति। भक्तों के जाति नहीं है। भक्ति होने से ही देह, मन, आत्मा सब शुद्ध हो जाते हैं। गौर, निताई हरिनाम देने लगे और चाण्डाल तक सभी को गोद में लेनें लगे। भक्ति न रहने पर ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। भक्ति रहने पर चाण्डाल चाण्डाल नहीं है। अस्पृश्य जाति भक्ति के होने पर शुद्ध पवित्र हो जाती है।"

संसारबद्ध जीव

श्रीरामकृष्ण संसारबद्ध जीवों की बात कर रहे हैं। वे मानो रेशम के कीड़े हैं। चाहें तो कोश को काटकर निकल आ सकते हैं, परन्तु काफी कोशिश से कोश बनाते हैं, छोड़कर आ नहीं सकते। इसी से मरते हैं। फिर मानो जाल में फंसी हुई मछली ' जिस रास्ते से गयी है, उसी रास्ते से निकल सकती है, परन्तु जल की मीठी आवाज और दूसरी मछलियों के साथ खेलकूद,—इसी में भूलकर रह जाती है। बाहर निकलने की चेष्टा नहीं करती। बच्चों की अस्फुट बातें मानो जलकल्लोल का मीठा शब्द है। मछली अर्थात् जीव और परिवारवर्ग। परन्तु एक दौड़ से जो भाग जाते हैं उन्हें कहते हैं मुक्त पुरुष।

श्रीरामकृष्ण गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"महामाया की विचित्र माया है, कैसा मोहजाल फैला रखा है! जिसके प्रभाव से ब्रह्मा विष्णु भी अचैतन्य हैं, फिर जीव की क्या बात? बिछे हुए जाल में मछली प्रवेश करती

है, पर आने-जाने का रास्ता रहते हुए भी फिर उसमें से भाग नहीं सकती।"

श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं, "जीव मानो दाल है। चक्की में पड़े हैं, पिस जायेंगे। परन्तु जो थोड़ेसे दाल के दाने खूँटी को पकड़कर रहते हैं वे नहीं पिसते। इसलिए खूँटी अर्थात् ईश्वर की शरण में जाना चाहिए। उन्हें पुकारो, उनका नाम लो, तब मुक्ति होगी। नहीं तो कालरूपी चक्की में पिस जाओगे।"

श्रीरामकृष्ण फिर गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"माँ, भवसागर में पड़कर शरीर-रूपी यह नौका डूब रही है। हे शंकरि, माया की आँधी और मोह का तूफान अधिकाधिक तेज हो रहा है। एक तो मनरूपी माझी अनाड़ी है, उस पर छः खेवैये गँवार हैं। आँधी में मँझधार में आकर डूबा जा रहा हूँ। भक्ति का डाँड़ टूट गया, श्रद्धा का पाल फट गया, नाव काबू से बाहर हो गयी, अब मैं उपाय क्या करूँ? और तो कोई उपाय नहीं दीखता, सोचकर लाचार हो रहा हूं। तरंग में तैरकर श्रीदुर्गानामरूपी 'भेले'* को पकड़ता हूँ।"

स्त्री-पुत्रों के प्रति कर्तव्य

विश्वास बाबू बहुत देर से बैठे थे, अब उठकर चले गये। उनके पास काफी धन था, परन्तु चरित्र भ्रष्ट हो जाने से सारा धन उड़ गया। अब स्त्री, कन्या आदि किसी को नहीं देखते हैं। बलराम के उनकी बात उठाने पर श्रीरामकृष्ण बोले, "वह अभागा दरिद्री है। गृहस्थ के कर्तव्य है, ऋण है; देवऋण, पितृ-ऋण, ऋषिऋण—फिर परिवार का ऋण है। सती स्त्री होने पर उसका पालन-पोषण, सन्तान जब तक योग्य नहीं बन जाते हैं, तब

* बेड़ा—पानी पर तैरने का एक साधन।

तक उनका पालन-पोषण करना पड़ता है।

"साधु ही केवल संचय नहीं करेगा। 'पंछी और दरवेश' संचय नहीं करते हैं। परन्तु मादा पक्षी के बच्चा होने पर वह संचय करती है। बच्चे के लिए मुख से उठाकर खाना ले जाती है।"

बलराम—अब विश्वास बाबू की साधुसंग करने की इच्छा है।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—साधु का कमण्डलु चार धाम घूमकर आता है, परन्तु वैसा ही कड़ूआ का कड़ूआ रहता है। मलय की हवा जिन पेड़ों को लगती है वे सब चन्दन हो जाते हैं, परन्तु सेमल, बड़ आदि चन्दन नहीं बनते! कोई कोई साधुसंग करते हैं गाँजा पीने के लिए! (हंसी) साधु लोग गाँजा पीते हैं, इसीलिए उनके पास आकर बैठते हैं, गाँजा तैयार कर देते हैं और प्रसाद पाते हैं! (सभी हँस पड़े।)

परिच्छेद १६

राजमोहन के मकान पर शुभागमन

श्रीरामकृष्ण ने जिस दिन किलेवाले मैदान में सर्कस देखा उसके दूसरे दिन फिर कलकत्ते में शुभागमन किया था। बृहस्पतिवार, १६ नवम्बर, १८८२ ई., कार्तिक शुक्ला षष्ठी। आते ही पहले-पहल गरानहट्टा‡ में षड्भुज महाप्रभु का दर्शन किया। वैष्णव साधुओं का अखाड़ा है, महन्त हैं श्री गिरिधारीदास। षड्भुज महाप्रभु की सेवा बहुत दिनों से चल रही है। श्रीरामकृष्ण ने तीसरे प्रहर दर्शन किया।

सायंकाल के कुछ देर बाद श्रीराकृष्ण शिमुलिया-निवासी श्री राजमोहन के मकान पर गाड़ी से आ पहुँचे। श्रीरामकृष्ण ने सुना है कि यहाँ पर नरेन्द्र आदि युवक मिलकर ब्राह्मसमाज की उपासना करते हैं। इसीलिए वे देखने आये हैं। मास्टर तथा और भी दो-एक भक्त साथ हैं। श्री राजमोहन पुराने ब्राह्मभक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को देख आनन्दित हुए और बोले, "तुम लोगों की उपासना देखूँगा।" नरेन्द्र गाना गाने लगे। युवकों में से श्री प्रिय आदि कोई कोई उपस्थित थे।

अब उपासना हो रही है। नवयुवकों में से एक व्यक्ति उपासना कर रहे हैं। वे प्रार्थना कर रहे हैं—"भगवान्, सब कुछ छोड़ तुममें मग्न हो जाऊँ।" श्रीरामकृष्ण को देख सम्भवतः उनका उद्दीपन हुआ है। इसीलिए सर्वत्याग की बात कह रहे हैं! मास्टर, श्रीरामकृष्ण के बहुत ही निकट बैठे थे। उन्होंने ही केवल सुना, श्रीराम-

‡ वर्तमान निमतल्ला स्ट्रीट।

कृष्ण मृदु स्वर में कह रहे हैं, "सो तो हो चुका !"

श्री राजमोहन श्रीरामकृष्ण को जलपान के लिए मकान के भीतर ले जा रहे हैं।

परिच्छेद १७

मनोमोहन तथा सुरेन्द्र के मकान पर

रविवार, १९ नवम्बर १८८२ ई.। आज श्रीजगद्धात्री-पूजा है। सुरेन्द्र ने निमन्त्रण दिया है। वे भीतर बाहर हो रहे हैं— कब श्रीरामकृष्ण आते हैं। मास्टर को देख वे कह रहे हैं, "तुम आये हो, और वे कहाँ हैं ?" इतने में श्रीरामकृष्ण की गाड़ी आ खड़ी हुई। पास ही श्री मनोमोहन का मकान है। श्रीरामकृष्ण पहले वहीं पर उतरे, वहाँ पर जरा विश्राम करके सुरेन्द्र के मकान पर जायेंगे।

मनोमोहन के बैठकखाने में श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "जो असहाय, दीन, दरिद्र है उसकी भक्ति ईश्वर की प्यारी है, जिस प्रकार खली मिला हुआ चारा गाय को प्यारा है। दुर्योधन उतना धन, उतना ऐश्वर्य दिखाने लगा पर उसके घर पर भगवान् न गये। वे विदुर के घर गये। वे भक्तवत्सल हैं। जिस प्रकार गाय अपने बच्चे के पीछे पीछे दौड़ती है, उसी प्रकार वे भी भक्तों के पीछे पीछे दौड़ते हैं।"

श्रीरामकृष्ण गाने लगे। भावार्थ यह है—

"'उस भाव के लिए परम योगी युगयुगान्तर तक योग करते हैं। भाव का उदय होने पर वे ऐसे ही खींच लेते हैं जैसे लोहे को चुम्बक।'

"चैतन्यदेव की आँखों से कृष्णनाम से आँसू गिरने लगते थे। ईश्वर ही वस्तु है, शेष सब अवस्तु। मनुष्य चाहे तो ईश्वर को प्राप्त कर सकता है ; परन्तु वह कामिनी-कांचन का भोग करने में ही मस्त रहता है। सिर पर मणि रहते भी साँप मेढक खाता रहता है।

"भक्ति ही सार है। ईश्वर का विचार करके भी उन्हें कौन जान सकेगा ? मुझे भक्ति चाहिए। उनका अनन्त ऐश्वर्य है। उतना जानने की मुझे क्या आवश्यकता है ? एक बोतल शराब से यदि नशा

आ जाय तो फिर यह जानने की क्या आवश्यकता है कि कलार की दूकान में कितने मन शराब है। एक लोटा जल से मेरी तृष्णा शान्त हो सकती है; पृथ्वी में कितना जल है यह जानने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं।"

श्रीरामकृष्ण अब सुरेन्द्र के मकान पर आये हैं। आकर दुमँजले के बैठकघर में बैठे हैं। सुरेन्द्र के मंझले भाई जज हैं। वे भी बैठे हैं। अनेक भक्त कमरे में इकट्ठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र के भाई से कह रहे हैं, "आप जज हैं, बहुत अच्छी बात है। इतना जानियेगा, सभी कुछ ईश्वर की शक्ति है। बड़ा पद उन्होंने ही दिया है तभी बना है। लोग समझते हैं, 'हम बड़े आदमी हैं।' छत पर का जल शेर के मुँहवाले परनाले से गिरता है। ऐसा लगता है, मानो शेर मुँह से पानी उगल रहा है। परन्तु देखो, कहाँ का जल है। कहाँ आकाश में बादल बना, उसका जल छत पर गिरा और उसके बाद लुढ़ककर परनाले में जा रहा है और फिर शेर के मुँह से होकर निकल रहा है।"

सुरेन्द्र के भाई—महाराज, ब्राह्मसमाजवाले स्त्री-स्वाधीनता की बात कहते हैं, और कहते हैं जातिभेद उठा दो। यह सब आपको कैसा लगता है?

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर से नया नया प्रेम होने पर वैसा हो सकता है। आँधी आने पर धूल उड़ती है, समझ में नहीं आता कि कौन आम का पेड़ है और कौन इमली का। आँधी शान्त होने पर फिर समझ में आता है। नये प्रेम की आँधी शान्त होने पर धीरे धीरे समझ में आ जाता है कि ईश्वर ही श्रेयः नित्य पदार्थ है और सभी कुछ अनित्य है। साधुसंग और तपस्या न करने पर ठीक ठीक धारणा नहीं होती! पखावज का बोल मुँह से बोलने

से क्या होगा ? हाथ पर आज़ा बहुत कठिन है। केवल लेक्चर देने से क्या होगा ? तपस्या चाहिए, तब धारणा होगी।

"जातिभेद ? केवल एक उपाय से जातिभेद उठ सकता है। वह है भक्ति। भक्त के जाति नहीं है। भक्ति से अछूत भी शुद्ध हो जाता है—भक्ति होने पर चाण्डाल फिर चाण्डाल नहीं रहता। चैतन्यदेव ने चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक सभी को शरण दी थी।

"ब्राह्मगण हरिनाम करते हैं, बहुत अच्छी बात है। व्याकुल होकर पुकारने पर उनकी कृपा होगी, ईश्वरलाभ होगा।

"सभी पथों से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। एक ईश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं। जिस प्रकार एक घाट का जल हिन्दू लोग पीते हैं, कहते हैं जल; दूसरे घाट में ईसाई लोग पीते हैं, कहते हैं वाटर; और तीसरे घाट में मुसलमान पीते हैं, कहते हैं पानी।"

सुरेन्द्र के भाई—महाराज, थिओसफी कैसी लगती है ?

श्रीरामकृष्ण—सुना है लोग कहते हैं कि उससे अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। देव मोड़ोल नामक व्यक्ति के मकान पर देखा था कि एक आदमी पिशाचसिद्ध है। पिशाच कितनी ही चीजें ला देता था। अलौकिक शक्ति लेकर क्या करूँगा ? क्या उससे ईश्वर-प्राप्ति होती है ? यदि ईश्वर-प्राप्ति न हुई तो सभी मिथ्या है !

परिच्छेद १८

मणि मल्लिक के ब्राह्मोत्सव में श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण ने कलकत्ते में श्री मणिलाल मल्लिक के सिन्दुरियापट्टीवाले मकान पर भक्तों के साथ शुभागमन किया है। वहाँ पर ब्राह्मसमाज का प्रतिवर्ष उत्सव होता है। दिन के चार बजे का समय होगा। यहाँ पर आज ब्राह्मसमाज का वार्षिकोत्सव है। २६ नवम्बर १८८२ ई.। श्री विजयकृष्ण गोस्वामी तथा अनेक ब्राह्मभक्त और श्री प्रेमचन्द्र बड़ाल तथा गृहस्वामी के अन्य मित्रगण आये हैं। मास्टर आदि साथ हैं।

श्री मणिलाल ने भक्तों की सेवा के लिए अनेक प्रकार का आयोजन किया है। प्रह्लाद-चरित्र की कथा होगी, उसके बाद ब्राह्मसमाज की उपासना होगी, अन्त में भक्तगण प्रसाद पायेंगे।

श्री विजय अभी तक ब्राह्मसमाज में ही हैं। वे आज की उपासना करेंगे। उन्होंने अभी तक गैरिक वस्त्र धारण नहीं किया है।

कथक महाशय प्रह्लाद-चरित्र की कथा कह रहे हैं। पिता हिरण्यकशिपु हरि की निन्दा करते हुए पुत्र प्रह्लाद को बार बार क्लेशित कर रहे हैं। प्रह्लाद हाथ जोड़कर हरि से प्रार्थना कर रहे हैं और कह रहे हैं, "हे हरि, पिता को सद्बुद्धि दो।" श्रीरामकृष्ण इस बात को सुनकर रो रहे हैं। श्री विजय आदि भक्तगण श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण को भावावस्था हो गयी है।

ब्राह्मभक्तों को उपदेश

कुछ देर बाद विजय आदि भक्तों से कह रहे हैं, "भक्ति ही सार है। उनके नामगुण का कीर्तन सदा करते करते भक्ति प्राप्त होती है। अहा, शिवनाथ की कैसी भक्ति है! मानो, रस में पड़ा

हुआ रसगुल्ला ।

"ऐसा समझना ठीक नहीं कि मेरा धर्म ही ठीक है तथा दूसरे सभी का धर्म असत्य है। सभी पथों से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। हृदय में व्याकुलता रहनी चाहिए। अनन्त पथ, अनन्त मत।

"देखो, ईश्वर को देखा जा सकता है। वेद में कहा है, 'अवाङ्-मनसगोचरम्।' इसका अर्थ यह है कि वे विषयासक्त मन के अगोचर हैं। वैष्णवचरण कहा करता था, 'वे शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं।'* इसीलिए साधुसंग, प्रार्थना, गुरु का उप-देश—यह सब आवश्यक है। तभी चित्तशुद्धि होती है, तब उनका दर्शन होता है। मैले जल में निर्मली डालने से वह साफ होता है, तब मुँह देखा जाता है। मैले आइने में भी मुँह नहीं देखा जा सकता।

"चित्तशुद्धि के बाद भक्ति प्राप्त करने पर, उनकी कृपा से उनका दर्शन होता है। दर्शन के बाद 'आदेश' पाने पर तब लोक-शिक्षा दी जा सकती है। पहले से ही लेक्चर देना ठीक नहीं है। एक गाने में कहा है—'मन अकेले बैठे क्या सोच रहे हो? क्या कभी प्रेम के बिना ईश्वर मिल सकता है?'

"फिर कहा है, 'तेरे मन्दिर में माधव नहीं है। शंख बजाकर तूने हल्ला मचा दिया। उसमें तो ग्यारह चमगीदड़ रातदिन मँडराते रहते हैं।'

"पहले हृदय-मन्दिर को साफ करना होता है। ठाकुरजी की प्रतिमा को लाना होता है। पूजा की तैयारी करनी होती है। कोई

---

* मन एव मनुष्याणा कारणं बन्धमोक्षयाः ।
बन्धाय विषयासंगि मोक्षे निर्विषयं स्मृतम् ॥

—मैत्रायणी उपनिषद्

तैयारी नहीं, भों भों करके शंख बजाने से क्या होगा?"

अब श्री विजय गोस्वामी वेदी पर बैठे ब्राह्मसमाज की पद्धति के अनुसार उपासना कर रहे हैं। उपासना के बाद वे श्रीरामकृष्ण के पास आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण (विजय के प्रति)—अच्छा, तुम लोगों ने उतना पाप, पाप क्यों कहा ? सौ बार 'मैं पापी हूँ, मैं पापी हूँ', ऐसा कहने से वैसा ही हो जाता है। ऐसा विश्वास करना चाहिए कि उनका नाम लिया है—मेरा फिर पाप कैसा ? वे हमारे माँ-बाप हैं; उनसे कहो कि पाप किया है, अब कभी नहीं करूँगा। और उनका नाम लो। सब मिलकर उनके नाम से देहमन को पवित्र करो —जिह्वा को पवित्र करो।

परिच्छेद १९

विजयकृष्ण गोस्वामी आदि के प्रति उपदेश

(१)

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

(गीता, २।२०)

दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी भगवान् श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आये हैं। उनके साथ तीन-चार ब्राह्मभक्त भी हैं। बृहस्पतिवार, १४ दिसम्बर १८८२ ई.। श्रीरामकृष्णदेव के परम भक्त बलराम बाबू के साथ ये लोग कलकत्ते से नाव पर चढ़कर आये हैं। श्रीरामकृष्ण दोपहर को जरा विश्राम कर रहे हैं। उनके पास रविवार को भीड़ ज्यादा होती है। इसीलिए जो भक्त उनसे एकान्त में बातचीत करना चाहते हैं, वे प्रायः दूसरे ही समय में आते हैं।

श्रीरामकृष्ण अपने तखत पर बैठे हुए हैं। विजय, बलराम, मास्टर और दूसरे भक्त उनकी ओर मुँह करके पश्चिमास्य बैठे हैं। कोई चटाई पर तो कोई फर्श ही पर बैठा है। कमरे के पश्चिम ओर के दरवाजे से गंगाजी दिखायी दे रही हैं। शीत ऋतु के कारण भागीरथी शान्त तथा स्वच्छ जल से पूर्ण है। दरवाजे के उस ओर पश्चिम का अर्धगोलाकार बरामदा है। बरामदे के नीचे फूलों का बगीचा और फिर गंगा का पुश्ता है। पुश्ते के पश्चिम अंग से सटकर पुण्यसलिला कलुषहारिणी गंगा मानो ईश्वरमन्दिर के पादमूल को आनन्द के साथ धोते हुए बहती जा रही है।

ठण्डकाला है, इसलिए सभी गरम कपड़े चढ़ाये हुए हैं। विजय को शूल की बहुत पीड़ा होती है, इसलिए वे अपने साथ दवा की शीशी ले आये हैं—दवा लेने का समय होने पर दवा लेंगे। इस समय विजय साधारण ब्राह्मसमाज में आचार्य की नौकरी करते हैं। उन्हें समाज की वेदी पर बैठकर उपदेश देना पड़ता है। परन्तु आजकल समाज के साथ अनेक विषयों पर उनका मतभेद हो रहा है। क्या किया जाय—नौकरी करते हैं, इसलिए अपनी इच्छा के अनुसार न तो कुछ कह सकते हैं, और न कर ही सकते हैं। विजय का जन्म एक अत्यन्त पवित्र और उच्च कुल में हुआ है। भगवान् श्रीचैतन्यदेव के एक प्रधान पार्षद अद्वैत गोस्वामी विजय के पूर्वपुरुष हैं। अद्वैत गोस्वामी ज्ञानी थे, निराकार पर-ब्रह्म के चिन्तन में लीन रहते थे; पर साथ ही उन्होंने भक्ति की भी पराकाष्ठा दिखायी है। वे हरिप्रेम में मतवाले होकर नृत्य करते थे—इतने आत्मविस्मृत हो जाते थे कि नाचते नाचते अंग से वस्त्र तक खिसक जाते थे। विजय भी ब्राह्मसमाज में आये हैं, निराकार परब्रह्म का चिन्तन करते हैं; परन्तु अपने पूर्वज अद्वैत गोस्वामी के पवित्र रक्त की धारा उनकी देह में प्रवाहित हो रही है। हृदय में भगवत्प्रेम का अंकुर प्रकाशोन्मुख है, केवल समय की प्रतीक्षा कर रहा है। इसीलिए वे भगवान् श्रीरामकृष्ण की अपूर्व भगवत्प्रेमोन्मत्त अवस्था को देखकर मुग्ध हुए हैं। मन्त्रमुग्ध सर्प जिस प्रकार सँपेरे के सामने फन निकाले बैठा रहता है, उसी प्रकार विजय भी श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से निकलनेवाले भगवत्-प्रसंग को सुनते हुए मुग्ध होकर उनके पास बैठे रहते हैं। फिर वे जब भगवत्प्रेम में बालकों की भाँति नृत्य करने लगते हैं तब विजय भी उनके साथ नाचने लग जाते हैं।

विष्णु 'एँड़ेदह' में रहता था। उसने गले में छुरा लगाकर आत्महत्या कर ली। आज उसी की चर्चा हो रही है।

श्रीरामकृष्ण—देखो, उस लड़के ने आत्महत्या कर ली, जब से यह सुना, मन खराब हो रहा है। यहाँ आता था, स्कूल में पढ़ता था, पर कहता था—संसार अच्छा नहीं लगता। पश्चिम चला गया था, किसी आत्मीय के यहाँ कुछ दिन ठहरा था। वहाँ निर्जन वन में, मैदान में, पहाड़ पर बैठा हुआ सदा ध्यान करता था। उसने मुझसे कहा था, न जाने ईश्वर के कितने रूपों के दर्शन करता हूँ।

"जान पड़ता है, यह अन्तिम जन्म था। पूर्वजन्म में बहुत-कुछ काम उसने कर डाला था। कुछ बाकी रह गया था, वह भी जान पड़ता है इस जन्म में पूरा हो गया।

"पूर्वजन्म का संस्कार मानना चाहिए। मैंने सुना है, एक मनुष्य शवसाधना कर रहा था। घने जंगल में भगवती की आराधना कर रहा था। परन्तु वह अनेक प्रकार की विभीषिकाएँ देखने लगा। अन्त को उसे बाघ पकड़ ले गया। वहीं एक और आदमी बाघ के भय से पास के एक पेड़ पर चढ़कर बैठा हुआ था। शव तथा पूजा की अन्य सामग्रियाँ इकट्ठी देखकर वह उतर पड़ा। और आचमन करके शव के ऊपर बैठ गया। कुछ जप करते ही माँ प्रकट होकर बोलीं, 'मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ—तू वर माँग।' माता के पादपंकजों में प्रणत होकर वह बोला, 'माँ, एक बात पूछता हूँ। तुम्हारा कार्य देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। उस मनुष्य ने इतनी मेहनत की, इतना आयोजन किया, इतने दिनों से तुम्हारी साधना कर रहा था, उस पर तो तुम्हारी कृपा न हुई; प्रसन्न तुम मुझ पर हुईं जो भजन-साधन-ज्ञान-भक्ति आदि कुछ नहीं जानता।' हँसकर भगवती बोलीं, 'बेटा, तुम्हें जन्मान्तर की बात याद नहीं है। तुम जन्म जन्म

से मेरे लिए तपस्या कर रहे हो। उसी साधनबल से इस प्रकार सब कुछ तैयार पाया और तुम्हें मेरे दर्शन भी मिले। अब कहो, क्या वर चाहते हो ?' "

मुक्त पुरुष का शरीरत्याग

एक भक्त बोल उठे, "आत्महत्या की बात सुनकर भय लगता है।"

श्रीरामकृष्ण—आत्महत्या करना महापाप है, घूम-फिरकर संसार में आना पड़ता है, और वही संसार-दुःख भोगना पड़ता है।

"परन्तु यदि कोई ईश्वर-दर्शन के बाद शरीर त्याग दे, तो उसे आत्महत्या नहीं कहते। उस प्रकार के शरीरत्याग में दोष नहीं है। ज्ञानलाभ के बाद कोई कोई शरीर छोड़ देते हैं। जब मिट्टी के साँचे में सोने की मूर्ति ढल जाती है, तब मिट्टी का साँचा चाहे कोई रखे, चाहे तोड़ दे।

"कई वर्ष हो गये, वराहनगर से एक लड़का आता था, उम्र कोई बीस साल की होगी। नाम गोपाल सेन था। जब यहाँ आता था तब उसको इतना भाव हो जाता था कि हृदय को उसे पकड़ रखना पड़ता था कि कहीं गिरकर उसके हाथ-पैर न टूट जायें।

"उस लड़के ने एक दिन एकाएक मेरे पैरों पर हाथ रखकर कहा, 'मैं और न आ सकूँगा—अब मैं चला !' कुछ दिन बाद सुना कि उसने देह छोड़ दी।"

(२)

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ (गीता, ९।३३)

जीव के चार दर्जे। बद्ध जीव के लक्षण।

श्रीरामकृष्ण—जीव चार दर्जे के कहे गये हैं—बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य। संसार मानो जाल है और जीव मछली। ईश्वर,

यह संसार जिनकी माया है, मछुए हैं। जब मछुए के जाल में मछलियाँ पड़ती हैं, तब कुछ मछलियाँ जाल चीरकर भागने की अर्थात् मुक्त होने की कोशिश करती हैं। उन्हें मुमुक्षु जीव कहना चाहिए। जो भागने की चेष्टा करती हैं उनमें से सभी नहीं भाग सकतीं। दो-चार मछलियाँ ही धड़ाम से कूदकर भाग जाती हैं। तब लोग कहते हैं, वह बड़ी मछली निकल गयी। ऐसे ही दो-चार मनुष्य मुक्त जीव हैं। कुछ मछलियाँ स्वभावतः ऐसी सावधानी से रहती हैं कि कभी जाल में आती ही नहीं। नारदादि नित्य जीव कभी संसार-जाल में नहीं फँसते। परन्तु प्रायः अधिकतर मछलियाँ जाल में पड़ जाती हैं, फिर भी उन्हें होश नहीं कि जाल में पड़ी हैं, अब मरना होगा। जाल में पड़ते ही जाल-सहित इधर से उधर भागती हैं, और सीधे कीच में घुसकर देह छिपाना चाहती हैं। भागने की कोई चेष्टा नहीं, वल्कि कीच में और गड़ जाती हैं। ये ही बद्ध जीव हैं। बद्ध जीव संसार में अर्थात् कामिनी-कांचन में फँसे हुए हैं, कलंकसागर में मग्न हैं, पर सोचते हैं कि बड़े आनन्द में हैं ! जो मुमुक्षु या मुक्त हैं, संसार उन्हें कूप जान पड़ता है, अच्छा नहीं लगता। इसीलिए कोई कोई ज्ञानलाभ, ईश्वरलाभ हो जाने पर शरीर छोड़ देते हैं, परन्तु इस तरह का शरीरत्याग बड़ी दूर की बात है।

"बद्ध जीवों—संसारी जीवों को किसी तरह होश नहीं होता। कितना दुःख पाते हैं, कितना धोका खाते हैं, कितनी विपदाएँ झेलते हैं, फिर भी बुद्धि ठिकाने नहीं आती।

"ऊँट कटीली घास को बहुत चाव से खाता है। परन्तु जितना ही खाता है उतना ही मुँह से धर धर खून गिरता है, फिर भी कटीली घास को खाना नहीं छोड़ता ! संसारी मनुष्यों को इतना शोकताप मिलता है, किन्तु कुछ दिन बीते कि सब भूल गये।

औरत गुजर गयी या बदचलन निकली, तो फिर ब्याह कर लेता है। बच्चा मर गया, कितना दुःख पाया, पर कुछ ही दिनों में सब भूल जाता है। बच्चे की वही माँ जो मारे शोक के अधीर हो रही थी, कुछ दिन बीत जाने पर फिर बाल सँवारती, जूड़ा बाँधती और गहनों से सजती है। इसी तरह मनुष्य बेटी के ब्याह में कुल धन गँवा बैठता है, परन्तु हर साल बेटियों को पैदा करने में घाटा नहीं होने देता! मुकदमेबाजी से घर में एक कौड़ी नहीं रह जाती तो भी मुकदमे के लिए लोटा-डोर टाँगे फिरते हैं! जितने लड़के पैदा हुए हैं, अच्छा भोजन, अच्छे कपड़े, अच्छा घर, उन्हीं को नहीं मिलता, ऊपर से हर साल एक और पैदा होता है!

"कभी कभी तो 'साँप-छछूँदर'वाली गति होती है। न निगल सके, न उगल सके। बद्ध जीव कभी समझ भी गया कि संसार में कुछ है नहीं, सिर्फ गुठली चाटना है, तो भी वह उसे नहीं छोड़ सकता, ईश्वर की ओर मन नहीं ले जा सकता।

"केशव सेन के एक आत्मीय को देखा, उम्र कोई पचास साल की थी, पर ताश खेल रहा था। मानो ईश्वर का नाम लेने का समय नहीं आया!

"बद्ध जीव का एक और लक्षण है। यदि उसको संसार से हटाकर किसी अच्छी जगह पर ले जाओ, तो वह तड़प-तड़पकर मर जायगा। विष्ठा के कीट को विष्ठा ही में आनन्द मिलता है। उसी से वह हृष्टपुष्ट होता है। उस कीट को अगर अन्न की हण्डी में रख दो तो वह मर जायगा।" (सब स्तब्ध हैं।)

(३)

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता, ६।३५)

तीव्र वैराग्य तथा बद्ध जीव

विजय—बद्ध जीवों के मन की कैसी अवस्था हो तो मुक्ति हो सकती है ?

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर की कृपा से तीव्र वैराग्य होने पर इस कामिनी-कांचन की आसक्ति से निस्तार हो सकता है। जानते हो तीव्र वैराग्य किसे कहते हैं ? 'बनत बनत बनि जाई', 'चलो राम भजो', यह सब मन्द वैराग्य है। जिसे तीव्र वैराग्य होता है उसके प्राण भगवान् के लिए व्याकुल रहते हैं, जैसे अपनी कोख के बच्चे के लिए माँ व्याकुल रहती है। जिसको तीव्र वैराग्य होता है वह भगवान् को छोड़ और कुछ नहीं चाहता। संसार को वह कुआँ समझता है; उसे जान पड़ता है कि अब डूबा। आत्मीयों को वह काला नाग देखता है, उनके पास से उसकी भागने की इच्छा होती है और भागता भी है। 'घर का काम पूरा कर लें तब ईश्वर की चिन्ता करेंगे', यह उसके मन में आता ही नहीं। भीतर बड़ी जिद रहती है।

"तीव्र वैराग्य किसे कहते हैं, इसकी एक कहानी सुनो। किसी देश में एक बार वर्षा कम हुई। किसान नालियाँ काट-काटकर दूर से पानी लाते थे। एक किसान बड़ा हठी थी। उसने एक दिन शपथ ली कि जब तक पानी न आने लगे, नहर से नाली का योग न हो जाय, तब तक बराबर नाली खोदूँगा। इधर नहाने का समय हुआ। उसकी स्त्री ने लड़की को उसे बुलाने भेजा। लड़की बोली, 'पिताजी, दोपहर हो गयी, चलो तुमको माँ बुलाती है।' उसने कहा, 'तू चल, हमें अभी काम है।' दोपहर ढल गयी, पर वह काम पर डटा रहा। नहाने का नाम न लिया। तब उसकी स्त्री खेत में जाकर बोली, 'नहाओगे कि नहीं ? रोटियाँ ठण्डी हो रही हैं। तुम तो हर

काम में हठ करते हो। काम कल करना या भोजन के बाद करना।' गालियाँ देता हुआ कुदाल उठाकर किसान स्त्री को मारने दौड़ा। बोला, 'तेरी बुद्धि मारी गयी है क्या? देखती नहीं कि पानी नहीं बरसता; खेती का काम सब पड़ा है; अब की बार लड़के-बच्चे क्या खायेंगे? सब को भूखों मरना होगा। हमने यही ठान लिया है कि खेत में पहले पानी लायेंगे, नहाने-खाने की बात पीछे होगी।' मामला टेढ़ा देखकर उसकी स्त्री वहाँ से लौट पड़ी। किसान ने दिनभर जी तोड़ मेहनत करके शाम के समय नहर के साथ नाली का योग कर दिया। फिर एक किनारे बैठकर देखने लगा, किस तरह नहर का पानी खेत में 'कलकल' स्वर से बहता हुआ आ रहा है, तब उसका मन शान्ति और आनन्द से भर गया। घर पहुँचकर उसने स्त्री को बुलाकर कहा, 'ले आ अब डोल और रस्सी।' स्नान-भोजन करके निश्चिन्त होकर फिर वह सुख से खुर्राटे लेने लगा। जिद यह है और यही तीव्र वैराग्य की उपमा है।

"खेत में पानी लाने के लिए एक और किसान गया था। उसकी स्त्री जब गयी और बोली, 'धूप बहुत हो गयी, चलो अब, इतना काम नहीं करते', तब वह चुपचाप कुदाल एक ओर रखकर बोला, 'अच्छा, तू कहती है तो चल।' (सब हँसते हैं।) वह किसान खेत में पानी न ला सका। यह मन्द वैराग्य की उपमा है।

"हठ बिना जैसे किसान खेत में पानी नहीं ला सकता, वैसे ही मनुष्य ईश्वरदर्शन नहीं कर सकता।"

(४)

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

(गीता, २।७०)

कामिनी-कांचन के लिए दासत्व

श्रीरामकृष्ण—पहले तुम इतना आते थे पर अब क्यों नहीं आते ?

विजय—यहाँ आने की बड़ी इच्छा रहती है, परन्तु अब मैं स्वाधीन नहीं हूँ, ब्राह्मसमाज में नौकरी करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण—कामिनी-कांचन जीव को बाँध लेते हैं। जीव की स्वाधीनता चली जाती है। कामिनी ही से कांचन की आवश्यकता होती है, जिसके लिए दूसरों की गुलामी की जाती है; फिर स्वाधीनता नहीं रहती, फिर तुम अपने मन का काम नहीं कर सकते।

"जयपुर में गोविन्दजी के पुजारी पहले-पहल अपना विवाह नहीं करते थे। तब वे बड़े तेजस्वी थे। एक बार राजा के बुलाने पर भी वे नहीं गये और कहा—'राजा ही को आने को कहो।' फिर राजा और पंचों ने मिलकर उनका विवाह करा दिया। तब राजा से साक्षात् करने के लिए किसी को बुलाना नहीं पड़ा! वे खुद हाजिर होते थे। कहते 'महाराज, आशीर्वाद देने आये हैं, यह निर्माल्य लाये हैं, धारण कीजिये।' आज घर बनवाना है, आज लड़के का 'अन्नप्राशन' है, आज लड़के का पाठशाला जाने का शुभ मुहूर्त है इन्हीं कारणों से आना पड़ता है।

"बारह सौ 'भगत' और तेरह सौ 'भगतिन' वाली कहावत तो जानते हो न! नित्यानन्द गोस्वामी के पुत्र वीरभद्र के तेरह सौ 'भगत' शिष्य थे। जब वे सिद्ध हो गये तब वीरभद्र डरे। वे सोचने लगे कि ये सब के सब सिद्ध हो गये, लोगों को जो कह देंगे वही होगा; जिधर से निकलेंगे वहीं भय है, क्योंकि मनुष्य बिना जाने यदि कोई अपराध कर डालेंगे तो उनका अहित होगा। यह सोचकर वीरभद्र ने उन्हें बुलाकर कहा, 'तुम गंगातट से सन्ध्या-उपासना

करके हमारे पास आओ ।' 'भगत' सब ऐसे तेजस्वी थे कि ध्यान करते ही करते समाधिमग्न हो गये । कब ज्वार का पानी सिर से बह गया, इसकी उन्हें खबर ही नहीं। भाटा हो गया, तथापि ध्यानभंग न हुआ । तेरह सौ भगतों में से एक सौ समझ गये थे कि बीरभद्र क्या कहेंगे । आचार्य की बात को टालना नहीं चाहिए, अतएव वे तो खिसक गये, वीरभद्र से साक्षात् नहीं किया । रहे बारह सौ भगत, वे वीरभद्र के पास लौटकर आये । वीरभद्र बोले, 'ये तेरह सौ भगतिनें तुम्हारी सेवा करेंगी, तुम लोग इनसे विवाह करो ।' शिष्यों ने कहा, 'जैसी आपकी आज्ञा; परन्तु हममें से एक सौ न जाने कहाँ चले गये ।' उन बारह सौ भगतों के साथ एक एक सेवा-दासी रहने लगी । फिर उनका वह तेज, तपस्याबल न रह गया । स्त्री के साथ रहने के कारण वह बल जाता रहा, क्योंकि उसके साथ स्वाधीनता नहीं रह जाती । (विजय से) तुम लोग स्वयं यह देखते हो; दूसरों का काम करते हुए क्या हो रहे हो । और देखो, इतनी परीक्षाएँ पास करनेवाले, इतनी अंग्रेजी जाननेवाले पण्डित नौकरी करते हुए सुबह-शाम मालिकों के बूट की ठोकरें खाते हैं । इसका कारण केवल 'कामिनी' है । विवाह करके यह हरी-भरी दुनिया उजाड़ने की इच्छा नहीं होती । इसीलिए यह अपमान, दासता की यह इतनी मार !

ईश्वरलाभ के उपरान्त कामिनी की मातृभाव से पूजा

"यदि एक बार उस प्रकार के तीव्र वैराग्य से भगवान् मिल जायं तो फिर स्त्रियों के प्रति आसक्ति नहीं रह जाती । घर में रहने से भी स्त्री की लालसा नहीं होती; फिर उससे कोई भय नहीं रहता । यदि एक चुम्बक-पत्थर बड़ा हो और एक छोटा, तो लोहे को कौन खींच सकता है ? बड़ा ही खींच सकता है । ईश्वर बड़ा

चुम्बक-पत्थर है और कामिनी छोटा चुम्बक-पत्थर है। तो भला कामिनी क्या कर सकेगी ?"

एक भक्त—महाराज, स्त्रियों से घृणा करें ?

श्रीरामकृष्ण—जिन्होंने ईश्वरलाभ कर लिया है, वे स्त्रियों को ऐसी दृष्टि से नहीं देखते, जिससे भय हो। वे यथार्थ देखते हैं कि स्त्रियों में ब्रह्ममयी माता का अंश है; और उन्हें माता जानकर उनकी पूजा करते हैं। (विजय से) तुम कभी कभी आया करो, तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा होती है।

(५)

ईश्वरादेश प्राप्त होने के बाद आचार्य-पद

विजय—ब्राह्मसमाज का काम करना पड़ता है, इसलिए हर समय नहीं आ सकता। अवकाश मिलने पर आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण—देखो, आचार्य का काम बड़ा कठिन है। ईश्वर का प्रत्यक्ष आदेश पाये बिना लोकशिक्षा नहीं दी जा सकती।

"यदि आदेश पाये बिना ही उपदेश दिया जाय तो लोग उस ओर ध्यान नहीं देते, उस उपदेश में कोई शक्ति नहीं रहती। पहले साधना करके या जिस तरह हो, ईश्वर को प्राप्त करना चाहिए। उनकी आज्ञा मिलने पर फिर लेक्चर दिया जा सकता है! उस देश में 'हालदारपुकुर' नाम का एक तालाब है। उसके बाँध पर लोग पाखाना फिरा करते थे। जो लोग घाट पर आते थे, वे उन्हें खूब गालियाँ देते थे, खूब गुल-गपाड़ा मचाते थे, परन्तु गालियों से कोई काम न होता था। दूसरे दिन फिर वही हालत होती थी। अन्त को कम्पनी के चपरासी नोटिस लटका गये कि यहाँ शौच के लिए जाने की सख्त मनाही है; न माननेवाले को सजा दी जायगी। इस नोटिस के बाद फिर वहाँ कोई शौच के लिए नहीं जाता था।

"उनके आदेश के बाद कहीं भी आचार्य हुआ जा सकता है और लेक्चर भी दिया जा सकता है। जिसको उनका आदेश मिलता है, उसे उनकी शक्ति भी मिलती है; तब वह आचार्य का कठिन काम कर सकता है।

"एक बड़े जमींदार से उसकी एक प्रजा मुकदमा लड़ रही थी। तब लोग समझ गये कि उस प्रजा के पीछे कोई जोरदार आदमी है; सम्भव है कि कोई बडा जमींदार ही उसकी ओर से मुकदमा चला रहा हो। मनुष्य साधारण जीव है, ईश्वर की शक्ति के बिना आचार्य जैसा कठिन काम वह नहीं कर सकता।"

सच्चिदानन्द ही गुरु और मुक्तिदाता हैं

विजय—महाराज, ब्राह्मसमाज में जो उपदेश दिये जाते हैं, क्या उनसे लोगों का उद्धार नहीं होता ?

श्रीरामकृष्ण—मनुष्य में वह शक्ति कहाँ कि वह दूसरे को संसार-बन्धन से मुक्त कर सके ? यह भुवनमोहिनी माया जिनकी है, वे ही इस माया से मुक्त कर सकते हैं। सच्चिदानन्द गुरु को छोड़ और दूसरी गति नहीं है। जिसको ईश्वर-दर्शन नहीं हुआ, उनका आदेश नहीं मिला, जो ईश्वर की शक्ति से शक्तिशाली नहीं है, उसकी क्या मजाल कि जीवों का भवबन्धन-मोचन कर सके ?

"मैं एक दिन पंचवटी के निकट झाऊतल्ले की ओर जा रहा था। एक मेढक की आवाज सुनायी दी—जान पड़ा कि साँप ने पकड़ा है। काफी देर बाद जब लौटने लगा तब भी उस मेढक की पुकार शुरू ही थी। बढ़कर देखा तो दिखायी दिया कि एक कौड़ियाला साँप उस मेढक को पकड़े हुए है—न छोड़ सकता है, न निगल सकता है; उस मेढक की भी भवव्यथा दूर नहीं हो रही है। तब मैंने सोचा कि यदि कोई असल साँप पकड़ता तो तीन ही पुकार

में इसको चुप हो जाना पड़ता। इस कौड़ियाले ने पकड़ा है, इसी-लिए साँप की भी दुर्दशा है और मेढ़क की भी !

"यदि सद्गुरु हो तो जीव का अहंकार तीन ही पुकार में दूर होता है। गुरु कच्चा हुआ तो गुरु की भी दुर्दशा है और शिष्य की भी। शिष्य का अहंकार दूर नहीं होता, न उसके भवबन्धन की फाँस ही कटती है। कच्चे गुरु के पल्ले पड़ा तो शिष्य मुक्त नहीं होता।"

(६)

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। (गीता, ३।२७)

अहंबुद्धि का नाश और ईश्वर-दर्शन

विजय—महाराज, हम लोग इस तरह बद्ध क्यों हो रहे हैं ? ईश्वर को क्यों नहीं देख पाते ?

श्रीरामकृष्ण—जीव का अहंकार ही माया है। यही अहंकार कुल आवरणों का कारण है। 'मैं' मरा कि बला टली। यदि ईश्वर की कृपा से 'मैं अकर्ता हूँ' यह ज्ञान हो गया तो वह मनुष्य तो जीव-न्मुक्त हो गया। फिर उसे कोई भय नहीं।

"यह माया या 'अहं' मेघ की तरह है। मेघ का एक छोटासा ही टुकड़ा क्यों न हो, पर उसके कारण सूर्य नहीं दीख पड़ते। उसके हट जाने से ही सूर्य दीख पड़ते हैं। यदि श्रीगुरु की कृपा से एक बार अंहबुद्धि दूर हो जाय तो फिर ईश्वर के दर्शन होते हैं।

"सिर्फ ढाई हाथ की दूरी पर श्रीरामचन्द्र हैं, जो साक्षात् ईश्वर हैं; पर बीच में सीतारूपिणी माया का पर्दा पड़ा हुआ है, इसी कारण लक्ष्मणरूपी जीव को ईश्वर के दर्शन नहीं होते। यह देखो तुम्हारे मुँह के आगे मैं इस अंगौछे की ओट करता हूँ। अब तुम मुझे नहीं देख सकते। पर हूँ मैं तुम्हारे बिलकुल निकट। इसी तरह औरों की अपेक्षा भगवान् निकट हैं, परन्तु इस माया-आवरण

के कारण तुम उनके दर्शन नहीं पाते।

"जीव तो स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, परन्तु इसी माया या अहंकार से वे नाना उपाधियों में पड़े हुए अपने स्वरूप को भूल गये हैं।

"एक एक उपाधि होती है, और जीवों का स्वभाव बदल जाता है। किसी ने काली धारीदार धोती पहनी कि देखना, प्रेमगीतों की तान मुँह से आप ही आप निकल पड़ती है, और ताश खेलना, सैरसपाटे के लिए निकलना तो हाथ में छड़ी लेकर—ये सब आप ही आप जुट जाते हैं! चाहे दुबला-पतला ही हो परन्तु बूट पहनते ही सीटी बजाना शुरू हो जाता है; सीढ़ियों पर चढ़ते समय साहबों की तरह उछलकर चढ़ता है! मनुष्य के हाथ में कलम रहे तो उसका यह गुण है कि कागज का जैसा-तैसा टुकड़ा पाते ही वह उस पर कलम घिसना शुरू कर देता है।

"रुपया भी एक विचित्र उपाधि है। रुपया होते ही मनुष्य एक दूसरी तरह का हो जाता है। वह पहले जैसा नहीं रह जाता। यहाँ एक ब्राह्मण आया जाया करता था। बाहर से वह बड़ा विनयी था। कुछ दिन बाद हम लोग कोन्नगर गये, हृदय साथ था। हम लोग नाव पर से उतरे कि देखा, वही ब्राह्मण गंगा के किनारे बैठा हुआ है। शायद हवाखोरी के लिए आया था। हम लोगों को देखकर बोला, 'क्यों महाराज, कहो कैसे हो?' उसकी आवाज सुनकर मैंने हृदय से कहा, 'हृदय, सुना, इसके धन हो गया है, इसी से आवाज किरकिराने लगी!' हृदय हँसने लगा।

"किसी मेढक के पास एक रुपया था। वह एक बिल में रखा रहता था। एक हाथी उस बिल को लाँघ गया। तब मेढक बिल से निकलकर बड़े गुस्से में आकर लगा हाथी को लात दिखाने!

और बोला, 'तुझे इतनी हिम्मत कि मुझे लाँघ जाय !' रुपये का इतना अहंकार होता है ।

अहंकार कब जाता है ? सप्तभूमि

"ज्ञानलाभ होने से अहंकार दूर हो सकता है । ज्ञानलाभ होने से समाधि होती है । जब समाधि होती है, तभी अहंकार जाता है । ऐसा ज्ञानलाभ बड़ा कठिन है ।

"वेदों में कहा है कि मन सप्तम भूमि पर जाने से समाधि होती है । समाधि होने से ही अहंकार दूर हो सकता है । मन प्राय: प्रथम तीन भूमियों में रहता है । लिंग, गुदा और नाभि ये ही वे तीन भूमियाँ हैं । तब मन संसार की ओर—कामिनी-कांचन की ओर खिंचा रहता है । जब मन हृदय में रहता है तब ईश्वरी ज्योति के दर्शन होते हैं । वह मनुष्य ज्योति देखकर कह उठता है—'यह क्या, यह क्या है !' इसके बाद मन कण्ठ में आता है । तब केवल ईश्वर की ही चर्चा करने और सुनने की इच्छा होती है । कपाल या भौहों के बीच में जब मन आता है तब सच्चिदानन्द-रूप दीख पड़ता है । उस रूप को गले लगाने और उसे छूने की इच्छा होती है, परन्तु छुआ नहीं जाता । लालटेन के भीतर की बत्ती को कोई चाहे देख ले पर उसे छू नहीं सकता, जान पड़ता है कि छू लिया, परन्तु छू नहीं पाता । जब सप्तम भूमि पर मन जाता है तब अहं नहीं रह जाता, समाधि होती है ।"

विजय—वहाँ पहुँचने पर जब ब्रह्मज्ञान होता है, तब मनुष्य क्या देखता है ?

श्रीरामकृष्ण—सप्तम भूमि में मन के जाने पर क्या होता है, मुँह से नहीं कहा जा सकता ।

'अहं' जाता नहीं है । 'बदमाश मैं' । 'दास मैं'

"जो 'मैं' संसारी बनता है, कामिनी-कांचन में फँसता है, वह 'बदमाश मैं' है । जीव और आत्मा में भेद सिर्फ इसलिए है कि बीच में यह 'मैं' जुड़ा हुआ है । पानी पर अगर लाठी डाल दी जाय तो पानी दो हिस्सों में बंटा हुआ दीख पड़ता है । परन्तु वास्तव में है वह एक ही पानी; लाठी के कारण उसके दो हिस्से नजर आते हैं ।

"यह लाठी 'अहं' ही है । लाठी उठा लो, वही एक जल रह जायगा ।

" बदमाश मैं" वह है जो कहता है, 'मुझे नहीं जानते हो ! मेरे इतने रुपये हैं, क्या मुझसे भी कोई बड़ा आदमी है ?' यदि किसी ने दस रुपये चुरा लिये तो पहले वह चोर से रुपये छीन लेता है, फिर चोर की ऐसी मरम्मत करता है कि पसली पसली ढीली कर देता है; इतने पर भी उसको नहीं छोड़ता, पहरेवाले के हाथ सौंपता है और सजा दिलवाता है ! 'बदमाश मैं' कहता है, 'अरे, इसने मेरे दस रुपये चुराये थे, उफ, इतनी हिम्मत !' "

विजय—यदि बिना 'अहं' के दूर हुए सांसारिक भोगों से पिण्ड नहीं छूटने का—समाधि नहीं होने की, तो ज्ञानमार्ग पर आना ही अच्छा है, क्योंकि उससे समाधि होगी । यदि भक्तियोग में 'अहं' रह जाता है तो ज्ञानयोग ही अच्छा ठहरा ।

श्रीरामकृष्ण—समाधि प्राप्त होकर एक दो मनुष्यों का अहंकार जाता है अवश्य, परन्तु प्रायः नहीं जाता । लाख विचार करो, पर देखना कि 'अहं' घूम-घामकर फिर उपस्थित है । आज बरगद का पेड़ काट डालो, कल सुबह को उसमें अंकुर निकला हुआ ही देखोगे । ऐसी दशा में यदि 'मैं' नहीं दूर होने का तो रहने दो साले को 'दास

मैं' बना हुआ। 'हे ईश्वर ! तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ' इसी भाव में रहो। 'मैं दास हूँ', 'मैं भक्त हूँ' ऐसे 'मैं' में दोष नहीं। मिठाई खाने से अम्लशूल होता है, पर मिश्री मिठाइयों में नहीं गिनी जाती।

"ज्ञानयोग बड़ा कठिन है। देहात्मबुद्धि का नाश हुए बिना ज्ञान नहीं होता। कलियुग में प्राण अन्नगत है, अतएव देहात्मबुद्धि, अहं-बुद्धि नहीं मिटती। इसलिए कलियुग के लिए भक्तियोग है। भक्ति-पथ सीधा पथ है। हृदय से व्याकुल होकर उनके नाम का स्मरण करो, उनसे प्रार्थना करो, भगवान् मिलेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

"मानो जलराशि पर बिना बाँस रखे ही एक रेखा खींची गयी है, मानो जल के दो भाग हो गये हैं; परन्तु वह रेखा बड़ी देर तक नहीं रहती। 'दास मैं' या 'भक्त का मैं' अथवा 'बालक का मैं' ये सब 'मैं' की रेखाएँ मात्र हैं।"

(७)

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ (गीता, १२।५)

भक्तियोग ही युगधर्म है। ज्ञानयोग की विशेष कठिनता

विजय—महाराज, आप 'बदमाश मैं' को दूर करने के लिए कहते हैं, तो क्या 'दास मैं' में दोष नहीं ?

श्रीरामकृष्ण—नहीं। 'दास मैं' अर्थात् 'मैं ईश्वर का दास हूँ', 'मैं उनका भक्त हूँ' इस अभिमान में दोष नहीं, बल्कि इससे भगवान् मिलते हैं।

विजय—अच्छा, तो 'दास मैं' वाले के काम-क्रोधादि कैसे होते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—अगर उसके भाव में पूरी सचाई आ जाय तो काम-क्रोधादि का आकार मात्र रह जाता है। यदि ईश्वरलाभ के बाद भी किसी का 'दास मैं' या 'भक्त मैं' बना रहा तो वह मनुष्य

किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता। पारस पत्थर छू जाने पर तलवार सोना हो जाती है; तलवार का स्वरूप तो रहता है, पर वह किसी की हिंसा नहीं करती।

"नारियल के पेड़ का पत्ता झड़ जाता है, उसकी जगह सिर्फ दाग बना रहता है, जिससे यह समझ लिया जाता है कि कभी यहाँ पत्ता लगा हुआ था। इसी तरह जिसको ईश्वर मिल गये हैं उसके अहंकार का चिह्न भर रह जाता है, काम-क्रोध का स्वरूप मात्र रह जाता है, उसकी बालक जैसी अवस्था हो जाती है। बालक सत्त्व, रज, तम में से किसी गुण के बन्धन में नहीं आता। बालक जितनी जल्दी किसी वस्तु पर अड़ जाता है, उतनी ही जल्दी वह उसे छोड़ भी देता है। एक पाँच रुपये की कीमत का कपड़ा चाहे तुम धेले के खिलौने पर रिझाकर फुसला लो। पहले तो वह बहककर कहेगा, 'नहीं, मैं न दूँगा, मेरे बाबूजी ने मोल ले दिया है।' और लड़के के लिए सभी बराबर हैं। ये बड़े हैं, यह छोटा है, यह ज्ञान उसे नहीं; इसीलिए उसे जाति-पाँति का विचार भी नहीं है। माँ ने कह दिया है, 'वह तेरा दादा है', फिर चाहे वह कलार हो, वह उसी के साथ बैठकर रोटी खाता है। बालक को घृणा नहीं, शुचि और अशुचि पर ध्यान नहीं, शौच के लिए जाकर हाथ नहीं मटियाता।

"कोई कोई समाधि के बाद भी 'भक्त का मैं', 'दास का मैं' लेकर रहते हैं। 'मैं दास हूं, तुम प्रभु हो', 'मैं भक्त हूँ, तुम भगवान् हो', यह अभिमान भक्तों का बना रहता है। ईश्वरलाभ के बाद भी रहता है। सम्पूर्ण 'मैं' नहीं दूर होता। और फिर इसी अभिमान का अभ्यास करते करते ईश्वर-प्राप्ति भी होती है। यही भक्ति-योग है।

"भक्ति के मार्ग पर चलने से भी ब्रह्मज्ञान होता है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। वे इच्छा करें तो ब्रह्मज्ञान भी दे सकते हैं। भक्त प्रायः ब्रह्मज्ञान नहीं चाहते। 'मैं दास हूँ, तुम प्रभु हो', 'मैं बच्चा हूँ, तू माँ है' वे ऐसा अभिमान रखना चाहते हैं।"

विजय—जो लोग वेदान्त-विचार करते हैं, वे भी तो उन्हें पाते हैं?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, विचारमार्ग से भी वे मिलते हैं। इसी को ज्ञान-योग कहते हैं। विचारमार्ग बड़ा कठिन है। सप्तभूमि की बात तो तुम्हें बतलायी है। सप्तम भूमि पर मन के पहुँचने से समाधि होती है, 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या' यह बोध होने पर मन का लय होता है, समाधि होती है। परन्तु कलि में जीवों का प्राण अन्नगत है; 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या' का बोध फिर कैसे हो सकता है? ऐसा बोध देहबुद्धि के बिना दूर हुए नहीं हो सकता। 'मैं न शरीर हूँ, न मन हूँ, न चौबीस तत्त्व हूँ, मैं सुख और दुःख से परे हूँ, मुझे फिर कैसा रोग, कैसा शोक, कैसी जरा, कैसी मृत्यु?'—ऐसा बोध कलिकाल में होना कठिन है। चाहे जितना विचार करो, देहात्मबुद्धि कहीं न कहीं से आ ही जाती है। बड़ के पेड़ को काट डालो, तुम तो सोचते हो कि जड़समेत उखाड़ फेंका, पर दूसरे दिन सबेरे उसमें कनखा निकला ही हुआ देखोगे! देहाभिमान नहीं दूर होता; इसीलिए कलिकाल में भक्तियोग अच्छा है, सीधा है।

"और 'मैं चीनी बन जाना नहीं चाहता, चीनी खाना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है।' मेरी कभी यह इच्छा नहीं होती कि कहूँ 'मैं ही ब्रह्म हूं।' मैं तो कहता हूँ 'तुम भगवान् हो, मैं तुम्हारा दास हूँ।' पाँचवीं और छठी भूमि के बीच में चक्कर काटना अच्छा है। छठी भूमि को पार कर सप्तम भूमि में अधिक देर तक रहने

की मेरी इच्छा नहीं होती। मैं उनका नामगुण-कीर्तन करूँगा, यही मेरी इच्छा है। सेव्य-सेवक भाव बड़ा अच्छा है। और देखो, ये तरंगें गंगा ही की हैं, परन्तु तरंगों की गंगा है, ऐसा कोई नहीं कहता। 'मैं वही हूँ' यह अभिमान अच्छा नहीं। देहात्मबुद्धि के रहते ऐसा अभिमान जिसको होता है उसकी बड़ी हानि होती है, फिर वह आगे बढ़ नहीं सकता, धीरे धीरे पतित हो जाता है। वह दूसरों की आँखों में धूल झोंकता है, साथ ही अपनी आँखों में भी; अपनी स्थिति का हाल वह नहीं समझ पाता।

भक्ति के दो प्रकार

"परन्तु भेड़ियाधसान की भक्ति से ईश्वर नहीं मिलते, उन्हें पाने के लिए 'प्रेमाभक्ति' चाहिए। 'प्रेमाभक्ति' का एक और नाम है 'रागभक्ति'। प्रेम या अनुराग के बिना भगवान् नहीं मिलते। ईश्वर पर जब तक प्यार नहीं होता तब तक उन्हें कोई प्राप्त नहीं कर सकता।

"और एक प्रकार की भक्ति है उसका नाम है 'वैधीभक्ति'। इतना जप करना होगा, उपवास करना होगा, तीर्थयात्रा करनी होगी, इतने उपचारों से पूजा करनी होगी, बलिदान देना होगा— यह सब वैधीभक्ति है। इसका बहुत-कुछ अनुष्ठान करतें करते क्रमशः रागभक्ति होती है। जब तक रागभक्ति न होगी, तब तक ईश्वर नहीं मिलेंगे। उन्हें प्यार करना चाहिए। जब संसारबुद्धि बिलकुल चली जायगी—सोलह आना मन उन्हीं पर लग जायगा, तब वे मिलेंगे।

"परन्तु किसी किसी को रागभक्ति अपने आप ही होती है। स्वतःसिद्ध, बचपन से ही। बचपन से ही वह ईश्वर के लिए रोता है, जैसे प्रह्लाद। 'विधिवादीय' भक्ति कैसी है ? जैसे हवा लगने

के लिए पंखा झलना। हवा के लिए पंखे की जरूरत है। ईश्वर पर अनुराग उत्पन्न करने के लिए जप, तप, उपवास आदि विधियाँ मानी जाती हैं; परन्तु जब दक्षिणी हवा आप बह चलती है तब लोग पंखा रख देते हैं। ईश्वर पर अनुराग, प्रेम, आप आ जाने से जप, तप आदि कर्म छूट जाते हैं। भगवत्प्रेम में मस्त हो जाने से वैध कर्म करने के लिए फिर किसको समय है?

"जब तक उन पर प्यार नहीं होगा, तब तक वह भक्ति कच्ची भक्ति है। जब उन पर प्यार होता है, तब वह भक्ति पक्की भक्ति कहलाती है।

"जिसकी भक्ति कच्ची है वह ईश्वर की कथा और उपदेशों की धारणा नहीं कर सकता। पक्की भक्ति होने पर ही धारणा होती है। फोटोग्राफ के शीशे पर अगर स्याही (Silver Nitrate) लगी हो तो जो चित्र उस पर पड़ता है वह ज्यों का त्यों उतर जाता है, परन्तु सादे शीशे पर चाहे हजारों चित्र दिखाये जायें, एक भी नहीं उतरता। शीशे पर से चित्र हटा कि वही ज्यों का त्यों सफेद शीशा! ईश्वर पर प्रीति हुए बिना उपदेशों की धारणा नहीं होती।"

विजय—महाराज, ईश्वर को कोई प्राप्त करना चाहे, उनके दर्शन करना चाहे, तो क्या सिर्फ भक्ति से काम सध जायगा?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, भक्ति ही से उनके दर्शन हो सकते हैं। परन्तु पक्की भक्ति, प्रेमाभक्ति, रागभक्ति चाहिए। उसी भक्ति से उन पर प्रीति होती है, जैसा बच्चों का माँ पर प्यार, माँ का बच्चे पर प्यार और पत्नी का पति पर प्यार होता है।

"इस प्यार, इस रागभक्ति के होने पर, स्त्री-पुत्र और आत्मीय-परिवार की ओर पहले जैसा आकर्षण नहीं रह जाता, फिर तो

उन पर दया होती है। घर-द्वार विदेश जैसा जान पड़ता है, उसे देखकर सिर्फ एक कर्मभूमि का ख्याल जागता है; जैसे घर देहात में और कलकत्ता है कर्मभूमि, कलकत्ते में किराये के मकान में रहना पड़ता है कर्म करने के लिए। ईश्वर पर प्यार होने से संसार की आसक्ति––विषयबुद्धि––बिलकुल जाती रहेगी!

"विषयबुद्धि का लेशमात्र रहते उनके दर्शन नहीं हो सकते। दियासलाई अगर भीगी हो तो चाहे जितना रगड़ो वह जलती ही नहीं––बीसों दियासलाई व्यर्थ ही बरबाद हो जाती हैं। विषयासक्त मन भीगी दियासलाई है।

"श्रीमती (राधिका) ने जब कहा, 'मैं सर्वत्र कृष्णमय देखती हूँ', तब सखियाँ बोलीं, 'कहाँ, हम तो उन्हें नहीं देखतीं; तुम प्रलाप तो नहीं कर रही हो?' श्रीमती बोलीं, 'सखियो, नेत्रों में अनुराग का अंजन लगा लो, तभी उन्हें देखोगी।' (विजय से) तुम्हारे ब्राह्मसमाज ही के भजन में है–– 'प्रभो, बिना अनुराग के यज्ञ-यागादि करके क्या तुम्हें जाना जा सकता है?'

"यह अनुराग, यह प्रेम, यह सच्ची भक्ति, यह प्यार यदि एक बार भी हो तो साकार और निराकार दोनों मिल जाते हैं।"

ईश्वर-दर्शन उनकी कृपा बिना नहीं होता

विजय––महाराज, क्या किया जाय जो ईश्वर-दर्शन हों?

श्रीरामकृष्ण––चित्तशुद्धि के बिना ईश्वर के दर्शन नहीं होते। कामिनी-कांचन में पड़कर मन मलिन हो गया है, उसमें जंग लग गया है। सुई में कीच लग जाने से उसे चुम्बक नहीं खींच सकता, मिट्टी साफ कर देने ही से चुम्बक खींचता है। मन का मैल नेत्र-जल से धोया जा सकता है। 'हे ईश्वर, अब ऐसा काम न करूंगा' यह कहकर यदि कोई अनुताप करता हुआ रोये तो मैल धुल

जाता है। तब ईश्वररूपी चुम्बक मनरूपी सुई को खींच लेता है। तब समाधि होती है, ईश्वर के दर्शन होते हैं।

"परन्तु चेष्टा चाहे जितनी करो, बिना उनकी कृपा के कुछ नहीं होता। उनकी कृपा बिना, उनके दर्शन नहीं मिलते। और कृपा भी क्या सहज ही होती है? अहंकार का सम्पूर्ण त्याग कर देना चाहिए। मैं कर्ता हूँ, इस ज्ञान के रहते ईश्वर-दर्शन नहीं होते। भाण्डार में अगर कोई हो, और तब घर के मालिक से अगर कोई कहे कि आप खुद चलकर चीजें निकाल दीजिये, तो वह यही कहता है, 'है तो वहाँ एक आदमी, फिर मैं क्यों जाऊँ?' जो खुद कर्ता बना बैठा है, उसके हृदय में ईश्वर सहज ही नहीं आते।

"कृपा होने से दर्शन होते हैं। वे ज्ञानसूर्य हैं। उनकी एक ही किरण से संसार में यह ज्ञानालोक फैला हुआ है। उसी से हम एक-दूसरे को पहचानते हैं और संसार में कितनी ही तरह की विद्याएँ सीखते हैं। अपना प्रकाश यदि वे एक बार अपने मुँह के सामने रखें तो दर्शन हो जायें। सार्जण्ट रात को अँधेरे में हाथ में लालटेन लेकर घूमता है, पर उसका मुँह कोई नहीं देख पाता। पर उसी लालटेन के उजाले में वह सब को देखता है, और आपस में सभी एक दूसरे का मुँह देखते हैं।

"यदि कोई सार्जण्ट को देखना चाहे तो उससे विनती करे, कहे—'साहब, जरा लालटेन अपने मुँह के सामने लगाइये; आपको एक नजर देख लूँ।'

"ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवन्, एक बार कृपा करके आप अपना ज्ञानालोक अपने श्रीमुख पर धारण कीजिये, मैं आपके दर्शन करूँगा।

"घर में यदि दीपक न जले तो वह दारिद्रय का चिह्न है।

हृदय में ज्ञान का दीपक जलाना चाहिए। 'हृदय-मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलाकर ब्रह्ममयी का श्रीमुख देखो'।"

विजय अपने साथ दवा भी लाये हैं। श्रीरामकृष्ण के सामने पीयेंगे। दवा पानी में मिलाकर पी जाती है। श्रीरामकृष्ण ने पानी मँगवाया। श्रीरामकृष्ण अहेतुक कृपासिन्धु हैं; विजय किराये की गाड़ी या नाव द्वारा आने में असमर्थ हैं, इसलिए कभी कभी वे खुद आदमी भेजकर उन्हें बुला लेते हैं। इस बार बलराम को भेजा था। किराया बलराम देंगे। विजय बलराम के साथ आये हैं। शाम के समय विजय, नवकुमार और उनके दूसरे साथी बलराम की नाव पर चढ़े। बलराम उन्हें बागबाजार के घाट पर उतार देंगे। मास्टर भी साथ हो गये।

नाव बागबाजार के अन्नपूर्णाघाट पर लगायी गयी। हृदय में श्रीरामकृष्ण की आनन्दमय मूर्ति का चिन्तन तथा उनके अमृतोपम उपदेशों का मनन करते हुए विजय, बलराम, मास्टर आदि अपने अपने घर पहुँचे।

जब ये लोग उतरकर बागबाजार में बलराम के मकान के निकट पहुँचे तब चाँदनी फैलने लगी थी। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी है। ठण्डी का मौसम है, थोड़ी थोड़ी ठण्डी लग रही है।

परिच्छेद २०

भक्तों के प्रति उपदेश

बाबूराम आदि के साथ 'स्वाधीन इच्छा' के सम्बन्ध में वार्तालाप । श्री तोतापुरी का आत्महत्या का संकल्प

श्रीरामकृष्ण तीसरे प्रहर के बाद दक्षिणेश्वर मन्दिर के अपने कमरे के पश्चिमवाले बरामदे में वार्तालाप कर रहे हैं। साथ बाबूराम, मास्टर, रामदयाल आदि हैं। दिसम्बर १८८२ ई.। बाबूराम, रामदयाल तथा मास्टर आज रात को यहीं रहेंगे। बड़े दिनों की छुट्टी हुई है। मास्टर कल भी रहेंगे। बाबूराम नये नये आये हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)—"ईश्वर सब कुछ कर रहे हैं, यह ज्ञान होने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। केशव सेन शम्भु मल्लिक के साथ आया था। मैंने उससे कहा, वृक्ष के पत्ते तक ईश्वर की इच्छा के विना नहीं हिलते। 'स्वाधीन इच्छा' है कहाँ? सभी ईश्वर के अधीन हैं। नंगा* उतने वड़े ज्ञानी थे जी, वे भी पानी में डूबने गये थे! यहाँ पर ग्यारह महीने रहे। पेट की पीड़ा हुई, रोग की यन्त्रणा से घबड़ाकर गंगा में डूबने गये थे। घाट के पास काफी दूर तक जल कम था। जितना ही आगे बढ़ते हैं, घुटनेभर से अधिक जल नहीं मिलता। तब उन्होंने समझा; समझकर लौट आये। एक बार अत्यन्त अधिक बीमारी के कारण मैं बहुत ही जिद्दी हो गया था। गले में छुरी लगाने चला था! इसलिए कहता हूँ, 'माँ, मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री; मैं रथ हूँ, तुम

---

* श्री तोतापुरी (श्रीरामकृष्णदेव की वेदान्त-साधना के गुरु); नागा सम्प्रदाय के होने के कारण श्रीरामकृष्ण उन्हें 'नंगा' कहते थे।

रथी; जैसा चलाती हो वैसा ही चलता हूँ, जैसा कराती हो वैसा ही करता हूँ"।"

श्रीरामकृष्ण के कमरे में गाना हो रहा है। भक्तगण गाना गा रहे हैं; उसका भावार्थ इस प्रकार है :—

(१) "हे कमलापति, यदि तुम हृदयरूपी वृन्दावन में निवास करो तो हे भक्तिप्रिय, मेरी भक्ति सती राधा बनेगी। मुक्ति की मेरी कामना गोपनारी बनेगी। देह नन्द की पुरी बनेगा, और प्रीति माँ यशोदा बन जायगी। हे जनार्दन, मेरे पापसमूहरूपी गोवर्धन को धारण करो। इसी समय काम आदि कंस के छः चरों को विनष्ट करो। कृपा की बंसरी बजाते हुए मेरे मनरूपी गाय को वशीभूत कर मेरे हृदयरूपी चरागाह में निवास करो। मेरी इस कामना की पूर्ति करो, यही प्रार्थना है। इस समय मेरे प्रेमरूपी यमुना के तट पर आशारूपी वट के नीचे कृपा करके प्रकट होकर निवास करो। यदि कहो कि गोपालों के प्रेम में बन्दी होकर ब्रजधाम में रहता हूँ, तो यह अज्ञानी 'दाशरथि' तुम्हारा गोपाल, तुम्हारा दास बनेगा।"

(२) "हे मेरे प्राणरूपी पिंजरे के पक्षी, गाओ न। ब्रह्मरूपी कल्पतरु पर बैठकर, हे पक्षी, तुम प्रभु के गुण गाओ न। और साथ ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-रूपी पके फलों को खाओ न।"

नन्दनबागान के श्रीनाथ मित्र अपने मित्रों के साथ आये हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें देखकर कहते हैं, "यह देखो, इनकी आँखों में से भीतर का सब कुछ दिखायी पड़ रहा है, खिड़की के काँच में से जिस प्रकार कमरे के भीतर की सभी चीजें देखी जाती हैं।" श्रीनाथ, यज्ञनाथ ये लोग नन्दनबागान के ब्राह्मपरिवार के हैं। इनके मकान पर प्रतिवर्ष ब्राह्मसमाज का उत्सव होता था। बाद

में श्रीरामकृष्ण उत्सव देखने गये थे।

सायंकाल को मन्दिर में आरती होने लगी। कमरे में छोटे तख्त पर बैठकर श्रीरामकृष्ण ईश्वर-चिन्तन कर रहे हैं। धीरे धीरे भावमग्न हो गये। भाव शान्त होने पर कहते हैं, "माँ, उसे भी खींच लो। वह इतने दीन भाव से रहता है, तुम्हारे पास आना-जाना कर रहा है!"

श्रीरामकृष्ण भाव में क्या बाबूराम की बात कह रहे हैं?

बाबूराम, मास्टर, रामदयाल आदि बैठे हैं। रात के आठ-नौ बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण समाधि-तत्त्व समझा रहे हैं। जड़ समाधि, चेतन समाधि, स्थित समाधी, उन्मना समाधि।

क्या ईश्वर निष्ठुर हैं?

सुख-दुःख की बात चल रही है। ईश्वर ने इतना दुःख क्यों बनाया?

मास्टर—विद्यासागर प्रेमकोप से कहते हैं, "ईश्वर को पुकारने की क्या आवश्यकता है! देखो, चंगेजखाँ ने जिस समय लूटमार करना आरम्भ किया उस समय उसने अनेक लोगों को बन्द कर दिया। धीरे धीरे करीब एक लाख कैदी इकट्ठे हो गये। तब सेनापतियों ने आकर कहा, 'हुजूर, इन्हें खिलायेगा कौन? इन्हें साथ रखने पर भी हमारे लिए विपत्ति है। क्या किया जाय? छोड़नें पर भी विपत्ति है।' उस समय चंगेजखाँ ने कहा, 'तो फिर क्या किया जाय? उनका वध कर डालो।' इसलिए कचाकच काट डालने का आदेश हो गया! इस हत्याकाण्ड को तो ईश्वर ने देखा। कहाँ, निवारण भी तो नहीं किया। वे हैं, तो रहें। मुझे उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मेरा तो कोई भला न हुआ!"

श्रीरामकृष्ण–क्या ईश्वर का काम, वे किस उद्देश्य से क्या करते हैं समझा जा सकता है ? वे सृष्टि, पालन, संहार सभी कर रहे हैं। वे क्यों संहार कर रहे हैं, हम क्या समझ सकते हैं ? मैं कहता हूँ, माँ, मुझे समझने की आवश्यकता भी नहीं है। बस, अपने चरणकमल में भक्ति दो। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है इसी भक्ति को प्राप्त करना। और सब माँ जानें। बगीचे में आम खाने को आया हूँ, कितने पेड़, कितनी शाखाएँ, कितने करोड़ पत्ते हैं—यह सब हिसाब करने से मुझे क्या मतलब ? मैं आम खाता हूँ, पेड़ और पत्तों के हिसाब से मेरा क्या सम्बन्ध ?

आज रात में बाबूराम, मास्टर और रामदयाल श्रीरामकृष्ण के कमरे में जमीन पर सोये।

आधी रात, दो-तीन बजे का समय होगा, श्रीरामकृष्ण के कमरे में बत्ती बुझ गयी है। वे स्वयं बिस्तर पर बैठे बीच बीच में भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं।

दया और माया

श्रीरामकृष्ण (मास्टर आदि भक्तों के प्रति)–देखो, दया और माया ये दो पृथक् पृथक् चीजें हैं। माया का अर्थ है, आत्मीयों के प्रति ममता—जैसे बाप, माँ, भाई, बहन, स्त्री, पुत्र इन पर प्रेम। दया का अर्थ है सर्व भूतों में प्रेम, समदृष्टि। किसी में यदि दया देखो, जैसे विद्यासागर में, तो उसे ईश्वर की दया जानो। दया से सर्वभूतों की सेवा होती है। माया भी ईश्वर की ही है। माया द्वारा वे आत्मीयों की सेवा करा लेते हैं। पर इसमें एक बात है। माया अज्ञानी बनाकर रखती है और बद्ध बनाती है। परन्तु दया से चित्तशुद्धि होती है और धीरे धीरे बन्धन-मुक्ति होती है।

चित्तशुद्धि हुए बिना भगवान् के दर्शन नहीं होते। काम, क्रोध,

क्षोभ, इन सब पर विजय प्राप्त करने से उनकी कृपा होती है, तब उनके दर्शन होते हैं। तुम लोगों को बहुत ही गुप्त बातें बता रहा हूँ। काम पर विजय प्राप्त करने के लिए मैंने बहुतकुछ किया था। आनन्द-आसन के चारों ओर 'जय काली' 'जय काली' कहते हुए कई बार प्रदक्षिणा की थी।

"मेरी दस-ग्यारह वर्ष की उम्र में, जब उस देश में था, उस समय वह स्थिति--समाधि की स्थिति--प्राप्त हुई थी। मैदान में से जाते जाते जो कुछ देखा उससे मैं विह्वल हो पड़ा था। ईश्वर-दर्शन के कुछ लक्षण हैं। ज्योति देखने में आती है, आनन्द होता है, हृदय के बीच में गुर-गुर करके महावायु उठती है।"

दूसरे दिन बाबूराम, रामदयाल घर लौट गये। मास्टर ने वह दिन व रात्रि श्रीरामकृष्ण के साथ बितायी। उस दिन उन्होंने मन्दिर में ही प्रसाद पाया।

परिच्छेद २१

मारवाड़ी भक्तों के साथ

तीसरा पहर बीत गया है। मास्टर तथा दो-एक भक्त बैठे हैं। कुछ मारवाड़ी भक्तों ने आकर प्रणाम किया। वे कलकत्ते में व्यापार करते हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण से कहा, "आप हमें कुछ उपदेश कीजिये।" श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मारवाड़ी भक्तों के प्रति)—देखो 'मैं और मेरा' दोनों अज्ञान हैं। 'हे ईश्वर, तुम कर्ता हो और यह सब तुम्हारा है' इसका नाम ज्ञान है। और 'मेरा' क्योंकर कहोगे ? बगीचे का कर्मचारी कहता है, 'मेरा बगीचा', परन्तु कोई अपराध करने पर मालिक उसे निकाल देता है। उस समय ऐसा साहस नहीं होता कि वह आम की लकड़ी का बना अपना सन्दूक भी बगीचे से बाहर ले जाय ! काम, क्रोध आदि जाने के नहीं। ईश्वर की ओर उनका मुँह घुमा दो। कामना, लोभ करना हो तो ईश्वर को पाने के लिए कामना, लोभ करो। विचार करके उन्हें भगा दो। हाथी जब दूसरों के केले के पेड़ खाने जाता है, तो महावत उसे अंकुश मारता है।

"तुम लोग तो व्यापार करते हो। जानते हो कि धीरे धीरे उन्नति करनी होती है। कोई पहले अण्डी पीसने की घानी खोलता है और फिर अधिक धन होने पर कपड़े की दूकान खोलता है। इसी प्रकार ईश्वर के पथ में आगे बढ़ना पड़ता है। बने तो बीच बीच में कुछ दिन निर्जन में रहकर उन्हें अच्छी तरह से पुकारो।

"फिर भी जानते हो? समय न होने पर कुछ नहीं होता। किसी किसी का भोग-कर्म काफी बाकी रह जाता है। इसीलिए देरी होती है। फोड़ा कच्चा रहते चीरने पर हानि पहुँचाता है। पककर जब

मुँह निकलता है, उस समय डाक्टर चीरता है । लड़के ने कहा था 'माँ, अब मैं सोता हूँ । जब मुझे शौच लगे तब तुम जगा देना ।' माँ ने कहा, 'बेटा, शौच लगने पर तुम खुद ही उठ जाओगे! मुझे उठाना न पड़े।' " (सब हँसते हैं ।)

मारवाड़ी भक्तगण बीच बीच में श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए मिठाई, फल आदि लाते हैं । परन्तु श्रीरामकृष्ण साधारणत: उन चीजों का सेवन नहीं करते । कहते हैं, वे लोग अनेक झूठी बातें कहकर धन कमाते हैं । इसलिए उपस्थित मारवाड़ियों को वार्तालाप के भीत से उदेश दे रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण—देखो, व्यापार करने में सत्य की टेक नहीं रहती । व्यापार में तेजी-मन्दी होती रहती है । नानक की कहानी में है, उहोंने कहा, 'असाधु की चीजें खाने गया तो मैंने देखा कि वे सब खून से लथपथ हो गयी हैं !' साधु को शुद्ध चीज देनी चाहिए । मिथ्या उपाय से प्राप्त की हुई चीजें नहीं देनी चाहिए । सत्यपथ द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है ।'*

"सदा उनका नाम लेना चाहिए । काम के समय मन को उनके हवाले कर देना चाहिए । जिस प्रकार मेरी पीठ पर फोड़ा हुआ है, सभी काम कर रहा हूँ, परन्तु मन फोड़े में ही है । रामनाम लेना अच्छा है । जो राम दशरथ का बेटा है, उन्होंने जगत् की सृष्टि की है, वे सर्वभूतों में हैं । और वे अत्यन्त निकट हैं, वे ही भीतर और बाहर हैं ।

"वही राम दशरथ का बेटा, वही राम घट-घट में लेटा ।
वही राम जगत् पसेरा, वही राम सब से न्यारा ॥"

---

* सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
—(मुण्डकोपनिषद्, ३।१।५)

सत्यमेव जयते नानृतम् । —(मुण्डकोपनिषद्, ३।१।६)

परिच्छेद २२

प्राणकृष्ण, मास्टर आदि भक्तों के साथ

(१)

समाधि में

श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिर के अपने कमरे में भक्तों के साथ बैठे हैं। दिनरात भगवत्प्रेम में—ब्रह्ममयी माता के प्रेम में—मस्त रहते हैं।

फर्श पर चटाई बिछी है। आप उसी पर आकर बैठ गये। सामने हैं प्राणकृष्ण और मास्टर। श्री राखाल* भी कमरे में बैठे हुए हैं। हाजरा महाशय घर के बाहर दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में बैठे हैं।

जाड़े का मौसम है—पूस का महीना। सोमवार, दिन के आठ बजे हैं। पहली जनवरी १८८३। श्रीरामकृष्ण शाल ओढ़े हुए हैं।

इस समय श्रीरामकृष्ण के अनेक अन्तरंग भक्त आने-जाने लगे हैं। लगभग सालभर से नरेन्द्र, राखाल, भवनाथ, बलराम, मास्टर बाबूराम, लाटू आदि भक्त सदा आते-जाते रहते हैं। इनके आने के सालभर पूर्व से राम, मनोमोहन, सुरेन्द्र और केदार आया करते हैं।

लगभग पाँच महीने हुए होंगे, जब श्रीरामकृष्ण विद्यासागर के 'बादुड़बागान' वाले मकान में पधारे थे। दो महीने पूर्व आप श्री केशव सेन के साथ विजय आदि ब्राह्मभक्तों को लेकर नाव पर आनन्द करते हुए कलकत्ता गये थे।

श्री प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय कलकत्ते के श्यामपुकुर मुहल्ले में रहते हैं। पहले इनका जनाई मौजे में निवास था। ये 'एक्सचेंज'

---

* इन्हें, श्रीरामकृष्ण की अभीष्टदेवी काली ने श्रीरामकृष्ण को उनका मानस पुत्र बतलाया था; ये ही बाद मे स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए और रामकृष्ण संघ के प्रथम संचालक हुए थे।

विभाग के बड़े बाबू हैं। नीलाम के काम की देखरेख करते हैं। पहली पत्नी के कोई सन्तान न होने के कारण उनकी सम्मति से इन्होंने दूसरी बार विवाह किया था। दूसरी पत्नी के एक पुत्र हुआ है। वही इनकी इकलौती सन्तान है। श्रीरामकृष्ण पर इनकी बड़ी भक्ति है। शरीर कुछ स्थूल होने के कारण कभी कभी श्रीरामकृष्ण इन्हें 'मोटा ब्राह्मण' कहकर पुकारते थे। ये बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। लगभग नौ महीने हुए होंगे, श्रीरामकृष्ण ने भक्तों के साथ इनका निमन्त्रण स्वीकार किया था। इन्होंने बड़े आदर से सब को भोजन कराया था।

श्रीरामकृष्ण जमीन पर बैठे हुए हैं। पास ही टोकरीभर जलेबियाँ रखी हैं---किसी भक्त ने लायी हैं। आपने जलेबी का एक टुकड़ा तोड़कर खाया।

श्रीरामकृष्ण (प्राणकृष्ण आदि से हँसते हुए)—देखा, मैं माता का नाम जपता हूँ, इसीलिए ये सब चीजें खाने को मिलती हैं। (हास्य)

"परन्तु वे लौकी-कोहड़े जैसे फल नहीं देती---वे देतीं हैं अमृत-फल---ज्ञान, प्रेम, विवेक, वैराग्य!"

कमरे में छः-सात साल की उम्र का एक लड़का आया। इधर श्रीरामकृष्ण की भी बालकों जैसी अवस्था है। जैसे एक बालक किसी दूसरे बालक को देखकर खाने की चीज छिपा लेता है जिससे वह छीनाझपटी न करे, वैसे ही श्रीरामकृष्ण की अवस्था उस बालक को देखकर होने लगी। वे उस जलेबियों की टोकरी को हाथों से ढककर छिपाने लगे। फिर धीरे से उन्होंने उसे एक ओर हटाकर रख दिया।

प्राणकृष्ण गृहस्थ तो हैं परन्तु वे वेदान्तचर्चा भी करते हैं, कहते हैं, "ब्रह्म ही सत्य है, संसार मिथ्या; मैं वही हूँ—सोऽहम्।" श्रीरामकृष्ण उन्हें समझाते हैं,- "कलिकाल में प्राण अन्नगत हैं, कलिकाल में नारदीय भक्ति चाहिए।

"वह विषय भाव का है, बिना भाव के कौन उसे पा सकता है ?'"

बालकों की तरह हाथों से जलेबियों की टोकरी छिपाते हुए श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गये।

(२)

भावराज्य व रूपदर्शन

श्रीरामकृष्ण समाधि में मग्न हैं। काफी समय हुआ, भाव के आवेश में पूर्ण बने बैठे हैं। न देह डुलती है, न पलकें गिरती हैं; साँस भी चलती है या नहीं, जान नहीं पड़ता।

बड़ी देर बाद आपने एक लम्बी साँस छोड़ी—मानो इन्द्रिय-राज्य में फिर लौट रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (प्राणकृष्ण से)– वे केवल निराकार नहीं, साकार भी हैं। उनके रूप के दर्शन होते हैं। भाव और भक्ति से उनके अनुपम रूप के दर्शन मिलते हैं। माँ अनेक रूपों में दर्शन देती हैं।

"कल माँ को देखा, गेरुए रंग का अँगरखा पहने हुए। मेरे साथ बातें कर रही थीं।

"और एक दिन मुसलमान लड़की के रूप में मेरे पास आयी थीं। कपाल पर तिलक, पर शरीर पर कपड़ा नहीं।—छः-सात साल की बालिका, मेरे साथ साथ घूमने और मुझसे हँसी-ठट्ठा करने लगी।

"जब मैं हृदय के घर पर था तब गौरांग के दर्शन हुए थे, वे काली धारीदार धोती पहने थे।

"हलधारी कहता था, वे भाव और अभाव से परे हैं। मैंने माँ से जाकर कहा, 'माँ, हलधारी ऐसी बात कह रहा है, तो क्या रूप आदि मिथ्या हैं ?' माँ रति की माँ के रूप में मेरे पास आयीं और बोलीं, 'तू भाव में ही रह।' मैंने भी हलधारी से यही कहा।

"कभी कभी यह बात भूल जाता हूँ, इसलिए कष्ट भोगना पड़ता

है । भाव में न रहने के कारण दाँत टूट गये । अतएव 'दैववाणी' या 'प्रत्यक्ष' न होने तक भाव में ही रहूँगा—भक्ति ही लेकर रहूँगा । क्यों—तुम क्या कहते हो ?"

प्राणकृष्ण–जी हाँ ।

श्रीरामकृष्ण–और तुम्हीं से क्यों पूछूँ ? इसके भीतर कोई एक रहता है । वही मुझे इस तरह चला रहा है । कभी कभी मुझमें देवभाव का आवेश होता था, तब बिना पूजा किये चित्त शान्त न होता था ।

"मैं यन्त्र हूँ, और वे यन्त्री । वे जैसा कराते हैं, वैसा ही करता हूँ । जो कुछ बुलवाते हैं, वही बोलता हूँ ।"

श्रीरामकृष्ण ने भक्त रामप्रसाद के एक गीत की पंक्तियाँ उदाहरण के लिए कहीं; उसका अर्थ यह है—

'भवसागर में अपना डोंगा बहाकर उस पर बैठा हुआ हूँ । जब ज्वार आयगी, तब पानी के साथ साथ मैं भी चढ़ता जाऊँगा और जब भाटा हो जायगा, तब उतरता जाऊँगा ।'

श्रीरामकृष्ण–जूठी पत्तल हवा के झोंके से उड़कर कभी तो अच्छी जगह पर गिरती है, कभी नाली में गिर जाती है—हवा जिधर ले जाती है उधर ही चली जाती है ।

"जुलाहे ने कहा—राम की मर्जी से डाका डाला गया, राम ही की मर्जी से मुझे छोड़ दिया ।

"हनुमान ने कहा—हे राम, मैं शरणागत हूँ, शरणागत हूँ; —यही आशीर्वाद दीजिये कि आपके पादपद्मों में मेरी शुद्धा भक्ति हो, फिर कभी आपकी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ ।

"मेढक मरते हुए बोला—राम, जब साँप पकड़ता है, तब तो 'राम, रक्षा करो' कहकर चिल्लाता हूँ, परन्तु अब जब कि राम ही के

धनुष से बिंधकर मर रहा हूँ, तो चुप्पी साधनी ही पड़ी ।

"पहले प्रत्यक्ष दर्शन होते थे—इन्हीं आँखों से, जैसे तुम्हें देख रहा हूँ । अब भावावेश में दर्शन होते हैं ।

"ईश्वर-लाभ होने पर बालकों का-सा स्वभाव हो जाता है । जो जिसका चिन्तन करता है, वह उसकी सत्ता को भी पाता है । ईश्वर का स्वभाव बालकों जैसा है । खेलते हुए बालक जैसे घरौंदा बनाते, बिगाड़ते और उसे फिर से बनाते हैं, उसी तरह वे भी सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर रहे हैं । बालक जैसे किसी गुण के वश में नहीं है, उसी प्रकार वे भी सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से परे हैं ।

"इसीलिए जो परमहंस होते हैं, वे दस-पाँच बालक अपने साथ रखते हैं—अपने पर उनके स्वभाव का आरोप करने के लिए ।"

आगरपाड़ा से एक बीस-बाईस साल का लड़का आया हुआ है । जब यह आया है, श्रीरामकृष्ण को इशारा करके एकान्त में ले जाता है और वहीं चुपचाप अपने मन की बात कहता है । यह अभी हाल ही में आने-जाने लगा है । आज वह निकट आकर फर्श पर बैठा ।

प्रकृतिभाव तथा कामजय । सरलता और ईश्वरलाभ

श्रीरामकृष्ण (उसी लड़के से)—आरोप करने पर भाव बदल जाता है । प्रकृति के भाव का आरोप करो तो धीरे धीरे कामादि रिपु नष्ट हो जाते हैं । ठीक स्त्रियों के-से हाव-भाव हो जाते हैं । नाटक में जो लोग स्त्रियों का काम करते हैं, उन्हें नहाते समय देखा है,—स्त्रियों की ही तरह दाँत माँजते और बातचीत करते हैं ।

"तुम किसी शनिवार या मंगलवार को आओ ।"

(प्राणकृष्ण से)—"ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं । शक्ति न मानो तो संसार मिथ्या हो जाता है; हम, तुम, घर, परिवार—सब मिथ्या हो जाते हैं । आद्याशक्ति के रहने ही के कारण संसार का अस्तित्व

है। विना आधार के कोई चीज कभी ठहर सकती है ? बिना खूँटियों के न तो ढाँचा खड़ा रह सकता है और न उस पर सुन्दर मूर्ति ही बन सकती है।

"विषयबुद्धि का त्याग किये बिना चैतन्य नहीं होता है——ईश्वर नहीं मिलते। उसके रहने ही से कपटता आ जाती है। बिना सरल हुए कोई उन्हें पा नहीं सकता।

'ऐसी भक्ति करो घट भीतर, छोड़ कपट चतुराई।
सेवा बन्दी और अधीनता, सहज मिलें रघुराई ॥'

"जो लोग विषयकर्म करते हैं, आफिस का काम या व्यवसाय करते हैं, उन्हें भी सचाई से रहना चाहिए। सच बोलना कलिकाल की तपस्या है।

प्राणकृष्ण—"अस्मिन् धर्मे महेशि स्यात् सत्यवादी जितेन्द्रियः।
परोपकारनिरतो निर्विकारः सदाशयः ॥'

"यह महानिर्वाणतन्त्र में लिखा है।"

श्रीरामकृष्ण—हाँ, इसकी धारणा करनी चाहिए।

(३)

श्रीरामकृष्ण का यशोदा-भाव तथा समाधि

श्रीरामकृष्ण अपनी छोटी खाट पर जा बैठे हैं। भाव में तो सदा ही पूर्ण रहते हैं। भावनेत्रों से राखाल को देख रहे हैं। देखते देखते हृदय में वात्सल्यरस उमड़ने लगा, अंग पुलकित होने लगे। क्या यशोदामाता इन्हीं नेत्रों से गोपाल को देखा करती थीं ?

देखते ही देखते फिर आप समाधिलीन हो गये। कमरे के भीतर जितने भक्त बैठे हुए थे, वे सभी आश्चर्य से चकित और स्तब्ध होकर श्रीरामकृष्ण के भाव की यह अद्भुत अवस्था देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण कुछ प्रकृतिस्थ होकर कहते हैं,—"राखाल को देखकर इतनी उद्दीपना क्यों होती है ? जितना ही ईश्वर की ओर बढ़ते जाओगे, ऐश्वर्य की मात्रा उतनी ही घटती जायगी। साधक पहले दशभुजा मूर्ति देखता है। वह ईश्वरी मूर्ति है। इसमें ऐश्वर्य का प्रकाश अधिक रहता है। इसके बाद द्विभुजा मूर्ति देखता है। तब दस हाथ नहीं रहते—इतने अस्त्र-शस्त्र नहीं रहते। इसके बाद गोपाल-मूर्ति के दर्शन होते हैं, कोई ऐश्वर्य नहीं—केवल एक छोटे बच्चे की मूर्ति। इससे भी परे है—केवल ज्योति-दर्शन।

यथार्थ ब्रह्मज्ञान की अवस्था—विचार और आसक्ति का त्याग

"उन्हें प्राप्त कर लेने पर, उनमें समाधिमग्न हो जाने पर, फिर ज्ञान-विचार नहीं रह जाता।

"ज्ञान-विचार तो तभी तक है,जब तक अनेक वस्तुओं की धारणा रहती है—जब तक जीव, जगत्, हम, तुम, यह ज्ञान रहता है। जब एकत्व का यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब चुप हो जाना पड़ता है। जैसे त्रैलंगस्वामी।

"ब्रह्मभोज के समय नहीं देखा ? पहले खूब गुलगपाड़ा मचता है। ज्यों-ज्यों पेट भरता जाता है, त्यों-त्यों आवाज घटती जाती है। जब दही आया,तब सुप्-सुप्, बस और कोई शब्द नहीं। इसके बाद ही निद्रा—समाधि ! तब आवाज जरा भी नहीं रह जाती !

(मास्टर और प्राणकृष्ण से)—"कितने ही ऐसे हैं जो ब्रह्मज्ञान की डींग मारते हैं परन्तु नीचे स्तर की वस्तुएँ लेकर मग्न रहते हैं। —घर-द्वार, धनमान, इन्द्रियसुख। मानूमेण्ट (Monument) के नीचे जब तक रहा जाता है, तब तक गाड़ी, घोड़ा, साहब, मेम—यही सब दीख पड़ते हैं। ऊपर चढ़ने पर सिर्फ आकाश, समुद्र लहराता हुआ दीख पड़ता है। तब घर-द्वार, घोड़ा-गाड़ी, आदमी

—इन पर मन नहीं रमता, ये सब चींटी जैसे नजर आते हैं।

"ब्रह्मज्ञान होने पर संसार की आसक्ति चली जाती है, काम-कांचन के लिए उत्साह नहीं रहता—सब शान्त हो जाता है। काठ जब जलता है तब उसमें चटाचट आवाज होती है और कड़ुआ धुआँ भी निकलता है। जब सब जलकर खाक हो जाता है, तब फिर शब्द नहीं होता। आसक्ति के जाते ही उत्साह भी चला जाता है। अन्त में केवल शान्ति रह जाती है।

"ईश्वर की ओर कोई जितना ही बढ़ता है, उतनी ही शान्ति मिलती है। शान्तिः शान्तिः शान्तिः प्रशान्तिः। गंगा के निकट जितना ही जाया जाता है, उतना ही शीतलता का अनुभव होता जाता है। नहाने पर और भी शान्ति मिलती है।

"परन्तु जीव, जगत्, चौबीस तत्त्व, इनकी सत्ता उन्हीं की सत्ता से भासित हो रही है। उन्हें छोड़ देने पर कुछ भी नहीं रह जाता। एक के बाद शून्य रखने से संख्या बढ़ जाती है। एक को निकाल डालो तो शून्य का कोई अर्थ नहीं रह जाता।"

प्राणकृष्ण पर कृपा करने के लिए श्रीरामकृष्ण अपनी अवस्था के सम्बन्ध में कह रहे हैं।

ब्रह्मज्ञान के उपरान्त 'भक्ति का मैं'

श्रीरामकृष्ण—ब्रह्मज्ञान के पश्चात्, समाधि के पश्चात्, कोई कोई नीचे उतरकर 'विद्या का मैं', 'भक्ति का मैं' लेकर रहते हैं। हाट का क्रय-विक्रय समाप्त हो जाने पर भी कुछ लोग अपनी इच्छानुसार हाट में ही रह जाते हैं, जैसे नारद आदि। वे 'भक्ति का मैं' लेकर लोकशिक्षा के लिए संसार में रहते हैं। शंकराचार्य ने लोकशिक्षा के लिए 'विद्या का मैं' रखा था।

"आसक्ति का नाममात्र भी रहते वे नहीं मिल सकते। सूत

के रेशे निकले हुए हों तो वह सुई के भीतर नहीं जा सकता।

"जिन्होंने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है, उनके काम-क्रोध नाम-मात्र के हैं, जैसे जली रस्सी,—रस्सी का आकार तो है परन्तु फूंकने से ही उड़ जाती है।

"मन से आसक्ति के चले जाने पर उनके दर्शन होते हैं। शुद्ध मन से जो निकलेगी, वह उन्हीं की वाणी है। शुद्ध मन जो है, शुद्ध बुद्धि भी वही है और शुद्ध आत्मा भी वही है; क्योंकि उन्हें छोड़ कोई दूसरा शुद्ध नहीं है।

"परन्तु उन्हें पा लेने पर लोग धर्माधर्म को पार कर जाते हैं।"

इतना कहकर श्रीरामकृष्ण मधुर कण्ठ से भक्त रामप्रसाद का एक गीत गाने लगे। उसका मर्म यह है—

"मन, चल, सैर करने चलें। कालीरूपी कल्पलता के नीचे तुझे चारों फल मिल जायेंगे। अपनी प्रवृत्ति और निवृत्ति, इन दो पत्नियों में से तू निवृत्ति को साथ लेना और उसी के पुत्र विवेक से तत्त्व की बातें पूछना।"

(४)

श्रीरामकृष्ण का श्रीराधा-भाव

श्रीरामकृष्ण दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में आकर बैठे। प्राणकृष्ण आदि भक्त भी साथ साथ आये हैं। हाजरा महाशय बरामदे में बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण हँसते हुए प्राणकृष्ण से कह रहे हैं—

"हाजरा कुछ कम नहीं है। अगर यहाँ (स्वयं को लक्ष्य करके) कोई बड़ी दरगाह हो तो हाजरा छोटी दरगाह है!" (सब हँसते हैं।)

नवकुमार आकर बरामदे के दरवाजे में खड़े हुए और भक्तों को देखते ही चले गये। उन्हें देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा—"अहंकार की मूर्ति है!"

दिन के आठ बज चुके हैं। प्राणकृष्ण ने प्रणाम करके चलने की आज्ञा ली; उन्हें कलकत्ते के मकान में लौट जाना है।

एक वैरागी गोपीयन्त्र (एकतारे की सूरत-शकल का) लेकर श्रीरामकृष्ण के कमरे में गा रहे हैं। गीतों का आशय यह है—

(१) "नित्यानन्द का जहाज आया है। तुम्हें पार जाना हो तो इस पर आ जाओ। छः गोरे इसमें सदा पहरा देते हैं। उनकी पीठ ढाल से घिरी हुई है और कमर में तलवार लटक रही है। सदर दरवाजा खोलकर वे धनरत्न लुटा रहे हैं।"

(२) "इस समय घर छा लेना। इस बार वर्षा जोरों की होगी, सावधान हो जाओ, अदरक का पानी पीकर अपने काम पर डट जाओ। जब श्रावण लग जायगा तब कुछ भी न सूझेगा। छप्पर का ठाट सड़ जायगा। फिर तुम घर न छा सकोगे। जब झकोरे लगेंगे, तब छप्पर उड़ जायगा। घर वीरान हो जायगा। तुम्हें भी फिर स्थान बदलना ही पड़ेगा।"

(३) "किसके भाव में नदिये में आकर दीन वेश धारण कर तुम स्वयं हरि होते हुए भी हरिनाम गा रहे हो? किसका भाव लेकर तुमने यह भाव और ऐसा स्वभाव धारण किया? कुछ समझ में नहीं आता।"

श्रीरामकृष्ण गाना सुन रहे हैं, इसी समय श्री केदार चटर्जी आये और उन्होंने प्रणाम किया। वे आफिस की पोशाक में— चोगा, अचकन पहने और घड़ी चेन लगाये हुए आये हैं। परन्तु ईश्वरचर्चा होती है तो आपकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। आप बड़े प्रेमी हैं। हृदय में गोपीभाव विराजमान है।

केदार को देखकर श्रीरामकृष्ण के मन में वृन्दावन की लीला का उद्दीपन होने लगा। आप प्रेमोन्मत्त हो गये। खड़े होकर

केदार को सुनाते हुए इस मर्म का गाना गाने लगे——

"क्यों सखि, वह वन अभी कितनी दूर है जहाँ मेरे श्यामसुन्दर हैं? अब तो चला नहीं जाता!"

श्रीराधिका के भावावेश में गाते ही गाते श्रीरामकृष्ण समाधि-मग्न हो गये। चित्रवत् खड़े हैं। नेत्रों के दोनों कोरों से आनन्दाश्रु ढुलक रहे हैं।

भूमिष्ठ होकर श्रीरामकृष्ण के चरणों का स्पर्श करके केदार उनकी स्तुति करने लगे——

"हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपं
सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीडे॥"

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हुए। केदार को अपने घर हालीशहर से कलकत्ते में काम पर जाना था। रास्ते में दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में श्रीरामकृष्ण के दर्शन करके जा रहे हैं। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् केदार ने बिदाई ली।

इसी तरह भक्तों से वार्तालाप करते हुए दोपहर का समय हो गया। श्री रामलाल श्रीरामकृष्ण के लिए थाली में कालीमाता का प्रसाद ले आये। कमरे में आसन पर दक्षिणास्य बैठकर श्रीराम-कृष्ण ने प्रसाद पाया। बालकों की तरह भोजन किया——थोड़ा थोड़ा सभी कुछ खाया।

भोजन करके श्रीरामकृष्ण उसी छोटी खाट पर विश्राम करने लगे। कुछ समय पश्चात् मारवाड़ी भक्तों का आगमन हुआ।

(५)

अभ्यासयोग। दो पथ——विचार और भक्ति

दिन के तीन बजे हैं। मारवाड़ी भक्त जमीन पर बैठे हुए

श्रीरामकृष्ण से प्रश्न कर रहे हैं। कमरे में मास्टर, राखाल और दूसरे भक्त भी हैं।

मारवाड़ी भक्त—महाराज, उपाय क्या है ?

श्रीरामकृष्ण—उपाय दो हैं। विचार-मार्ग और अनुराग अथवा भक्ति का मार्ग।

"सत्-असत् का विचार। एकमात्र सत् या नित्य वस्तु ईश्वर हैं, और सब कुछ असत् या अनित्य है। इन्द्रजाल दिखलानेवाला ही सत्य है, इन्द्रजाल मिथ्या है। यही विचार है।

"विवेक और वैराग्य। इस सत्-असत् विचार का नाम विवेक है। वैराग्य अर्थात् संसार की वस्तुओं से विरक्ति। यह एकाएक नहीं होता—प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए। कामिनी-कांचन का त्याग पहले मन से करना पड़ता है। फिर तो उनकी इच्छा होते ही वह मन से त्याग कर सकता है और बाहर से भी त्याग कर सकता है। पर कलकत्ते के आदमियों से क्या मजाल जो कहा जाय कि ईश्वर के लिए सब कुछ छोड़ो! उनसे यही कहना पड़ता है कि मन ही में त्याग करो। अभ्यासयोग से कामिनी-कांचन में आसक्ति का त्याग होता है—यह बात गीता में है। अभ्यास से मन में असाधारण शक्ति आ जाती है। तब इन्द्रियसंयम करने और काम-क्रोध को वश में लाने में कष्ट नहीं उठाना पड़ता। जैसे कछुआ पैर समेट लेने पर फिर बाहर नहीं निकालना चाहता—कुल्हाड़ी से टुकड़े टुकड़े कर डालने पर भी बाहर नहीं निकालता।"

मारवाड़ी भक्त—महाराज, आपने दो रास्ते बतलाये। दूसरा कौनसा है ?

श्रीरामकृष्ण—वह अनुराग या भक्ति का मार्ग है। व्याकुल होकर एक बार निर्जन में अकेले में दर्शन की प्रार्थना करते हुए रोओ।

"ऐ मन, जैसे पुकारा जाता है उस तरह तुम पुकारो तो सही,

फिर देखो भला तुम्हें छोड़कर माँ श्यामा कैसे रह सकती हैं ?"

मारवाड़ी भक्त—महाराज, साकार-पूजा का क्या अर्थ है ? और निराकार-निर्गुण का क्या मतलब है ?

श्रीरामकृष्ण—जैसे पिता का फोटोग्राफ देखने से पिता की याद आती है, वैसे ही प्रतिमा की पूजा करते करते सत्य के रूप की उद्दीपना होती है।

"साकार रूप कैसा है जानते हो ? जैसे जलराशि से बुलबुले निकलते हैं, वैसा ही। महाकाश चिदाकाश से एक एक रूप आविर्भूत होते हुए दीख पड़ते हैं। अवतार भी एक रूप ही है। अवतार-लीला भी आद्याशक्ति ही की क्रीड़ा है।

"पाण्डित्य में क्या रखा है ? व्याकुल होकर पुकारने पर वे मिलते हैं। नाना विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं।

"जो आचार्य हैं उन्हीं को कई विषयों का ज्ञान रखना चाहिए। दूसरों को मारने के लिए ढाल-तलवार की जरूरत होती है, परन्तु अपने को मारने के लिए एक सुई या नहरनी ही से काम चल सकता है।

"मैं कौन हूँ, इसकी ढूंढ़-तलाश करने के लिए चलो तो उन्हीं के निकट जाना पड़ता है। क्या मैं मांस हूँ ? या हाड़, रक्त या मज्जा हूँ ? मन या बुद्धि हूँ ? अन्त में विचार करते हुए देखा जाता है कि मैं यह सब कुछ नहीं हूँ। 'नेति' 'नेति'। आत्मा वह चीज नहीं कि पकड़ में आ जाय। वह निर्गुण और निरुपाधि है।

"परन्तु भक्तिमत से वे सगुण हैं। चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम—सब चिन्मय !"

मारवाड़ी भक्तगण प्रणाम करके बिदा हुए।

सन्ध्या हो गयी। श्रीरामकृष्ण गंगा-दर्शन कर रहे हैं। कमरे में

दीपक जलाया गया। श्रीरामकृष्ण जगन्माता का नामस्मरण कर रहे हैं और अपनी खाट पर बैठे हुए उन्हीं के ध्यान में मग्न हैं!

श्रीमन्दिर में अब आरती होने लगी। जो लोग इस समय भी गंगा के किनारे या पंचवटी में घूम रहे हैं, वे दूर से आरती की मधुर घण्टाध्वनि सुन रहे हैं। ज्वार आ गयी है, भागीरथी कल-कल स्वर से उत्तर की ओर बह रही हैं। आरती का मधुर शब्द इस 'कल-कल' ध्वनि से मिलकर और भी मधुर हो गया है। इस माधुर्य के भीतर प्रेमोन्मत्त श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। सब कुछ मधुर है! हृदय भी मधुमय हो रहा है!

परिच्छेद २३

बेलघर में गोविन्द मुखोपाध्याय के मकान पर

श्रीरामकृष्ण ने बेलघर के श्री गोविन्द मुखोपाध्याय के मकान पर शुभागमन किया है। रविवार, १८ फरवरी १८८३ ई.। नरेन्द्र, राम आदि भक्तगण आये हैं, पड़ोसीगण भी आये हैं। सबेरे सात-आठ बजे के समय श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र आदि के साथ संकीर्तन में नृत्य किया था।

कीर्तन के बाद सभी बैठ गये। कई लोग श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण बीच बीच में कह रहे हैं, "ईश्वर को प्रणाम करो।" फिर कह रहे हैं, "वे ही सब रूपों में हैं। परन्तु किसी किसी स्थान पर उनका विशेष प्रकाश है—जैसे साधुओं में। यदि कहो, दुष्ट लोग भी हैं, बाघ-सिंह भी तो हैं, तो वह ठीक है, परन्तु बाघरूपी नारायण से आलिंगन करने की आवश्यकता नहीं है, उसे दूर से प्रणाम करके चले जाना चाहिए। फिर देखो जल। कोई जल पिया जाता है, किसी जल से पूजा की जाती है, किसी जल से स्नान किया जाता है और फिर किसी जल से केवल हाथ-मुंह धोया जाता है।"

पड़ोसी— वेदान्त का क्या मत है?

श्रीरामकृष्ण— वेदान्तवादी कहते हैं, 'सोऽहं'। ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या है। 'मैं' भी मिथ्या है, केवल वह परब्रह्म ही सत्य है।

"परन्तु 'मैं' तो नहीं जाता। इसलिए मैं उनका दास, मैं उनकी सन्तान, मैं उनका भक्त, यह अभिमान बहुत अच्छा है।

"कलियुग में भक्तियोग ही ठीक है। भक्ति द्वारा भी उन्हें प्राप्त किया जाता है। देहबुद्धि के रहने से विषयबुद्धि होती ही

है। रूप, रस, गंध, स्पर्श—ये सब विषय हैं। विषयबुद्धि दूर होना बहुत कठिन है। विषयबुद्धि के रहते 'सोऽहं' नहीं होता।*

"संन्यासियों में विषयबुद्धि कम है। संसारीगण सदैव विषय-चिन्ता लेकर ही रहते हैं, इसलिए संसारियों के लिए 'दासोऽहं'।"

पड़ोसी—हम पापी हैं, हमारा क्या होगा?

श्रीरामकृष्ण—उनका नाम-गुणगान करने से देह से सब पाप भाग जाते हैं। देहरूपी वृक्ष पर पाप-पक्षी बैठे हुए हैं; उनका नाम-कीर्तन करना मानो ताली बजाना है। ताली बजाने से जिस प्रकार वृक्ष के ऊपर के सभी पक्षी भाग जाते हैं, उसी प्रकार उनके नाम-गुणकीर्तन से सभी पाप भाग जाते हैं।

"फिर देखो मैदान के तालाब का जल धूप से स्वयं ही सूख जाता है। इसी प्रकार उनके नाम-गुणकीर्तन से पापरूपी तालाब का जल स्वयं ही सूख जाता है।

"रोज अभ्यास करना पड़ता है। सर्कस में देख आया, घोड़ा दौड़ रहा है, उस पर मेम एक पैर पर खड़ी है। कितने अभ्यास से ऐसा हुआ होगा!

"और उनके दर्शन के लिए कम से कम एक बार रोओ।

"यही दो उपाय हैं,—अभ्यास और अनुराग, अर्थात् उन्हें देखने के लिए व्याकुलता।"

दुमँजले पर बैठकखाने के बरामदे में श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ प्रसाद पा रहे हैं। दिन के एक बजे का समय हुआ। भोजन समाप्त होने के साथ ही साथ नीचे के आँगन में एक भक्त गाने लगे।

---

* अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते। (गीता, १२।५)

(भावार्थ)—"जागो, जागो जननि! हे कुलकुण्डलिनि! मूलाधार में सोते हुए कितने दिन बीत गये!"

श्रीरामकृष्ण गाना सुनकर समाधिमग्न हुए। सारा शरीर स्थिर है, हाथ प्रसाद-पात्र पर जैसा था वैसा ही चित्रलिखित-सा रह गया। और भोजन न हुआ। काफी देर के बाद भाव कुछ कम होने पर कह रहे हैं, "मैं नीचे जाऊँगा, मैं नीचे जाऊँगा।"

एक भक्त उन्हें बड़ी सावधानी के साथ नीचे ले जा रहे हैं।

आँगन में ही प्रातःकाल नामसंकीर्तन तथा प्रेमानन्द में श्रीरामकृष्ण का नृत्य हुआ था। अभी तक दरी और आसन बिछा हुआ है। श्रीरामकृष्ण अभी तक भावमग्न हैं। गानेवाले के पास आकर बैठे। गायक ने इतनी देर में गाना बन्द कर दिया था। श्रीरामकृष्ण दीन भाव से कह रहे हैं, "भाई, और एक बार 'माँ' का नाम सुनूँगा।" गायक फिर गाना गा रहे हैं।

(भावार्थ)—"जागो, जागो जननि! हे कुलकुण्डलिनि! मूलाधार में निद्रितावस्था में कितने दिन बीत गये! अपनी कार्यसिद्धि के लिए मस्तक की ओर चलो, जहाँ सहस्रदल पद्म में परमशिव विराजमान हैं। हे माँ, चैतन्यरूपिणी, षट्चक्र को भेदकर मन के खेद को दूर करो।"

गाना सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण फिर भावमग्न हो गये।

परिच्छेद २४

दक्षिणेश्वर में राखाल, राम आदि के साथ

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में दोपहर को भोजन करके भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। आज २५ फरवरी १८८३ ई. है।

राखाल, हरीश, लाटू, हाजरा आजकल श्रीरामकृष्ण के पास ही रहते हैं। कलकत्ते से राम, केदार, नित्यगोपाल, मास्टर आदि भक्त आये हैं और चौधरी भी आये हैं।

अभी अभी चौधरी की पत्नी का स्वर्गवास हो गया है। मन में शान्ति पाने के उद्देश्य से कुछ एक बार वे श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए आ चुके हैं। उन्हें उच्च शिक्षा मिली है, सरकारी पद पर नौकरी करते हैं।

श्रीरामकृष्ण (राम आदि भक्तों से)—राखाल, नरेन्द्र, भवनाथ, ये सब नित्यसिद्ध हैं, जन्म ही से इन्हें चैतन्य प्राप्त है। ये लोकशिक्षा के लिए ही शरीर धारण करते हैं।

"एक श्रेणी के लोग और होते हैं। वे कृपासिद्ध कहलाते हैं। एकाएक उनकी कृपा हुई कि दर्शन हुए और ज्ञानलाभ हुआ। जैसे हज़ार वर्षों के अंधेरे कमरे में चिराग ले जाओ तो क्षण भर में उजाला हो जाता है—धीरे धीरे नहीं होता।

निर्जन में साधना

"जो लोग संसार में हैं, उन्हें साधना करनी चाहिए। निर्जन में व्याकुल होकर ईश्वर को बुलाना चाहिए।

(चौधरी से)—"पाण्डित्य से वे नहीं मिलते।

"और उन्हें विचार करके समझनेवाला है कौन? उनके पादपद्मों

में जिस से भक्ति हो, सब को वही करना चाहिए।

"उनका ऐश्वर्य अनन्त है—समझ में क्या आये? और उनके कार्यों को भी कोई क्या समझे?

भीष्मदेव का क्रन्दन

"भीष्मदेव जो साक्षात् अष्टवसुओं में एक हैं, शरशय्या पर रोने लगे; कहा, 'क्या आश्चर्य! पाण्डवों के साथ सदा स्वयं भगवान् रहते हैं, फिर भी उनके दुःख और विपत्तियों का अन्त नहीं!—भगवान् के कार्यों को कोई क्या समझे!'

"कोई कोई सोचते हैं कि हम भजन-पूजन करते हैं—हम जीत गये। परन्तु हारजीत उनके हाथों में है। यहाँ एक वेश्या मरने के समय ज्ञानपूर्वक गंगा-स्पर्श करके मरी!

चौधरी—किस तरह उनके दर्शन हों?

श्रीरामकृष्ण—इन आँखों से वे नहीं दीख पड़ते। वे दिव्यदृष्टि देते हैं, तब उनके दर्शन होते हैं! अर्जुन को विश्वरूप-दर्शन के समय श्रीभगवान् ने दिव्यदृष्टि दी थी।

"तुम्हारी फिलासफी (Philosophy) में सिर्फ हिसाब-किताब होता है—सिर्फ विचार करते हैं। इससे वे नहीं मिलते।

रागभक्ति—अहैतुकी भक्ति

"यदि रागभक्ति—अनुराग के साथ भक्ति—हो तो वे स्थिर नहीं रह सकते।

"भक्ति उनको उतनी ही प्रिय है जितनी बैल को सानी।

"रागभक्ति—शुद्धा भक्ति—अहैतुकी भक्ति। जैसे प्रह्लाद की।

"तुम किसी बड़े आदमी से कुछ चाहते नहीं हो, परन्तु रोज आते हो, उन्हें देखना ही चाहते हो। पूछने पर कहते हो—'जी, कोई काम नहीं है, बस दर्शन के लिए आ गया।' इसे अहैतुकी

भक्ति कहते हैं। तुम ईश्वर से कुछ चाहते नहीं, सिर्फ प्यार करते हो।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण गाने लगे। गीत का मर्म यह है:—

"'मैं मुक्ति देने में कातर नहीं होता, किन्तु शुद्धा भक्ति देने में कातर होता हूँ।'

"मूल बात है ईश्वर में रागानुगा भक्ति और विवेक-वैराग्य चाहिए।"

चौधरी—महाराज, गुरु के न होने से क्या नहीं होता ?

श्रीरामकृष्ण—सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।

"शवसाधना करते समय जब इष्टदर्शन का मौका आता है, तब गुरु सामने आकर कहते हैं, 'यह देख अपना इष्ट।' फिर गुरु इष्ट में लीन हो जाते हैं। जो गुरु हैं वे ही इष्ट हैं। गुरु मार्ग पर लगा देते हैं।

"अनन्त का तो व्रत, पर पूजा विष्णु की की जाती है। उसी में ईश्वर का अनन्त रूप विराजमान है।

सर्वधर्मसमन्वय

(राम आदि भक्तों से) "यदि कहो किस मूर्ति का चिन्तन करेंगे, तो जो मूर्ति अच्छी लगे, उसी का ध्यान करना। परन्तु समझना कि सभी एक हैं।

"किसी से द्वेष न करना चाहिए। शिव, काली, हरि—सब एक ही के भिन्न भिन्न रूप हैं। वह धन्य है जिसको उनके एक होने का ज्ञान हो गया है।

"बाहर शैव, हृदय में काली, मुख में हरिनाम !

"कुछ कुछ काम-क्रोधादि के न रहने से शरीर नहीं रहता। परन्तु तुम लोग घटाने ही की चेष्टा करना।"

श्रीरामकृष्ण केदार को देखकर कह रहे हैं—

"ये अच्छे हैं। नित्य भी मानते हैं, लीला भी मानते हैं। एक

ओर ब्रह्म और दूसरी ओर देवलीला से लेकर मनुष्यलीला तक !"

केदार कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण के रूप में भगवान् मनुष्यदेह धारण कर अवतीर्ण हुए हैं।

संन्यासी तथा कामिनी

नित्यगोपाल को देखकर श्रीरामकृष्ण बोले—

"इसकी अच्छी अवस्था है। (नित्यगोपाल से) तू वहाँ ज्यादा न जाना। कहीं एक-आध बार चले गये। भक्त है तो क्या हुआ—स्त्री है न? इसीलिए सावधान रहना।

"संन्यासी के नियम बड़े कठिन हैं। उसके लिए स्त्रियों के चित्र देखने की भी मनाही है। यह संसारियों के लिए नहीं है।

"स्त्री यदि भक्त भी हों तो भी उससे ज्यादा न मिलना चाहिए।

"जितेन्द्रिय होने पर भी संन्यासी को लोकशिक्षा के लिए यह सब करना पड़ता है।

"साधुपुरुष का सोलहों आना त्याग देखने पर दूसरे लोग त्याग की शिक्षा लेंगे, नहीं तो वे भी डूब जायेंगे। संन्यासी जगद्गुरु हैं।"

अब श्रीरामकृष्ण और भक्तगण उठकर घूमने लगे। मास्टर प्रह्लाद के चित्र के सामने खड़े होकर देख रहे हैं—श्रीरामकृष्ण ने कहा है कि प्रह्लाद की भक्ति अहैतुकी भक्ति है।

परिच्छेद २५

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर के अपने कमरे में राखाल,मास्टर आदि दो-एक भक्तों के साथ बैठे हैं। शुक्रवार, ९ मार्च १८८३ ई.। माघी अमावस्या, प्रातःकाल आठ-नौ बजे का समय होगा।

अमावस्या का दिन है। श्रीरामकृष्ण को सतत जगन्माता का उद्दीपन हो रहा है। वे कह रहे हैं, "ईश्वर ही वस्तु हैं, बाकी सब, अवस्तु। माँ ने अपनी महामाया द्वारा मुग्ध कर रखा है। मनुष्यों में देखो, बद्ध जीव ही अधिक हैं। इतना दुःख-कष्ट पाते हैं, फिर भी उसी 'कामिनी-कांचन' में उनकी आसक्ति है। काँटेदार घास खाते समय ऊँट के मुँह से धर-धर खून बहता है, फिर भी वह उसे छोड़ता नहीं, खाते ही जाता है। प्रसववेदना के समय स्त्रियाँ कहती हैं, 'ओह; अब और पति के पास नहीं जाऊंगी',परन्तु फिर भूल जाती हैं।

"देखो, उनकी खोज कोई नहीं करता। अनन्नास को छोड लोग उसके पत्ते खाते हैं!"

संसार किसलिए ? निष्काम कर्म द्वारा चित्तशुद्धि के लिए

भक्त—महाराज, संसार में वे क्यों रख देते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—ससार कर्मक्षेत्र है। कर्म करते करते ही ज्ञान होता है। गुरु ने कहा, इन कर्मों को करो और इन कर्मों को न करो। फिर वे निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं।* कर्म करते करते मन का मैल धुल जाता है। अच्छे डाक्टर की चिकित्सा में रहने पर दवा खाते खाते कैसा ही रोग क्यों न हो, ठीक हो जाता है।

---

* कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (गीता, २।४७)

"संसार से वे क्यों नहीं छोड़ते ? रोग अच्छा होगा तब छोड़ेंगे। कामिनी-कांचन का भोग करने की इच्छा जब न रहेगी, तब छोड़ेंगे। अस्पताल में नाम लिखाकर भाग आने का उपाय नहीं है। रोग की क़सर रहते डाक्टर साहब न छोड़ेंगे।"

श्रीरामकृष्ण आजकल यशोदा की तरह सदा वात्सल्य-रस में मग्न रहते हैं, इसलिए उन्होंने राखाल को साथ रखा है। राखाल के प्रति श्रीरामकृष्ण का गोपाल-भाव है। जिस प्रकार माँ की गोद में छोटा लड़का जाकर बैठता है, उसी प्रकार राखाल भी श्रीराम-कृष्ण की गोद के सहारे बैठते थे। मानो स्तनपान कर रहे हों।

भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण का बान देखना

श्रीरामकृष्ण इसी भाव में बैठे हैं, इसी समय एक आदमी ने आकर समाचार दिया कि बान* आ रहा है। श्रीरामकृष्ण, राखाल मास्टर सभी लोग बान देखने के लिए पंचवटी की ओर दौड़ने लगे। पंचवटी के नीचे आकर सभी बान देख रहे हैं। दिन के करीब साढ़े दस बजे का समय होगा। एक नौका की स्थिति को देख श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "देखो, देखो, उस नाव की न जाने क्या दशा होगी !"

अब श्रीरामकृष्ण पंचवटी के पथ पर मास्टर, राखाल आदि के साथ बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)--अच्छा, बान कैसे आता है ?

मास्टर भूमि पर रेखाएँ खींचकर पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, माध्याकर्षण,

---

* बंगाल के उपसागर में ज्वार आने पर उसका बहुतसा जल गंगा में घुस जाता है और वह विशाल जलराशि बड़ी ऊँची लहर के रूप में जोरों से गर्जना करती हुई गंगा के पृष्ठभाग पर से उलटी दिशा में वेग के साथ बढ़ने लगती है। इसे 'बान' कहते हैं। -(प्र.)

ज्वार-भाटा, पूर्णिमा, अमावस्या, ग्रहण आदि समझाने की चेष्टा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—यह लो! समझ नहीं सक रहा हूँ। सिर घूम जाता है। चक्कर आ रहा है। अच्छा, इतनी दूर की बातें कैसे जान सके ?

"देखो, मैं बचपन में चित्र अच्छी तरह खींच सकता था। परन्तु गणित से सिर चकराता था। हिसाब नहीं सीख सका।"

अब श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में लौट आये हैं। दीवार पर टँगे हुए यशोदा के चित्र को देख कह रहे हैं, "चित्र अच्छा नहीं हुआ। मानो ठीक मालिन मौसी है!"

अधर सेन को उपदेश

मध्याह्न के आहार के बाद श्रीरामकृष्ण ने थोड़ासा विश्राम किया। धीरे धीरे अधर तथा अन्य भक्तगण आ पहुँचे। अधर सेन पहली बार श्रीरामकृष्ण का दर्शन कर रहे हैं। अधर का मकान कलकत्ता, बेनेटोला में है। वे डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं। उम्र उनतीस-तीस वर्ष की होगी।

अधर (श्रीरामकृष्ण के प्रति)—महाराज, मुझे एक बात पूछनी है। क्या देवता के सामने बलि चढ़ाना अच्छा है? इससे तो जीवहिंसा होती है!

श्रीरामकृष्ण—शास्त्र के अनुसार, मन की एक विशेष अवस्था में बलि चढ़ायी जा सकती है। 'विधिवादीय' बलि में दोष नहीं है। जैसे, अष्टमी के दिन एक बलि चढ़ाते हैं। परन्तु यह विधि सभी अवस्था के लिए नहीं है। मेरी अब ऐसी अवस्था है कि मैं सामने रहकर बलि नहीं देख सकता हूँ।

"फिर ऐसी भी अवस्था होती है कि सर्वभूतों में ईश्वर को

देखता हूँ। चींटियों में भी वे ही दिखायी देते हैं। ऐसी स्थिति में एक एक किसी प्राणी के मरने पर मन में यही सान्त्वना होती है कि उसकी देह मात्र का विनाश हुआ। आत्मा की मृत्यु नहीं है।*

"अधिक विचार करना ठीक नहीं, माँ के चरणकमल में भक्ति रहने से ही हो जायगा। अधिक विचार करने से सब गोलमाल हो जाता है। इस देश में तालाब का जल ऊपर ऊपर से पिओ, अच्छा साफ जल पाओगे; अधिक नीचे हाथ डालकर हिलाने से जल मैला हो जाता है। इसलिए उनसे भक्ति की प्रार्थना करो। ध्रुव की भक्ति सकाम थी, उनसे राज्य पाने के लिए तपस्या की थी; परन्तु प्रह्लाद की निष्काम अहैतुकी भक्ति थी।"

भक्त—ईश्वर कैसे प्राप्त होते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—उसी भक्ति के द्वारा। परन्तु उनसे जबरदस्ती करनी होती है। दर्शन नहीं देगा तो गले में छुरा भोंक लूँगा,—इसका नाम है भक्ति का तम।

भक्त—क्या ईश्वर को देखा जाता है ?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, अवश्य देखा जाता है। निराकार-साकार दोनों ही देखे जाते हैं। चिन्मय साकार रूप का दर्शन होता है। फिर साकार मनुष्य रूप में भी वे प्रत्यक्ष हो सकते हैं। अवतार को देखना और ईश्वर को देखना एक ही है। ईश्वर ही युग युग में मनुष्य के रूप में अवतीर्ण होतेहैं।†

———

* न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (गीता, २।२०)

† धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। (गीता, ४।८)

परिच्छेद २६

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव

(१)

प्रभात में भक्तों के साथ

कालीमन्दिर में आज श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव है। फाल्गुन की शुक्ला द्वितीया है, दिन रविवार, ११ मार्च १८६३ ई. । आज श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त उन्हें लेकर जन्मोत्सव मनायेंगे।

सबेरे से भक्त एक एक करके एकत्र हो रहे हैं। सामने माता भवतारिणी का मन्दिर है। मंगलारती के बाद ही प्रभाती रागिणी में मधुर तान लगाती हुई नौबत बज रही है। वसन्त का सुहावना मौसम है, लता-वृक्ष नये कोमल पल्लवों से लहराते हुए दीख पड़ते हैं। इधर श्रीरामकृष्ण के जन्मदिन की याद करके भक्तों के हृदय में आनन्द-सिन्धु उमड़ रहा है। चारों ओर आनन्द-समीरण बह रहा है। मास्टर ने देखा, इतने सबेरे ही भवनाथ, राखाल, भवनाथ के मित्र कालीकृष्ण आ गये हैं। श्रीरामकृष्ण पूर्ववाले बरामदे में बैठे हुए इनसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप कर रहे हैं। मास्टर ने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—"तुम आये हो! (भक्तों से) लज्जा, घृणा, भय इन तीनों के रहते काम सिद्ध नहीं होता। आज कितना आनन्द होगा! परन्तु जो लोग भगवन्नाम में मस्त होकर नृत्य-गीत न कर सकेंगे, उनका कहीं कुछ न होगा। ईश्वरी चर्चा में कैसी लज्जा और कैसा भय? अच्छा, अब तुम लोग गाओ।"

भवनाथ और कालीकृष्ण गा रहे हैं। गीत इस आशय का है :—

"हे आनन्दमय! आज का दिन धन्य है! हम सब तुम्हारे सत्य-धर्म का भारत में प्रचार करेंगे। हरएक हृदय में तुम्हीं विराजित हो, चारों ओर तुम्हारे ही पवित्र नाम की ध्वनि गूँजती है, भक्त-समाज तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे प्रभो, हमें धन, जन और मान न चाहिए, दूसरी कामना भी नहीं है, विकल जन तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं। हे प्रभो, तुम्हारे चरणों में शरण ली तो फिर न विपत्ति में भय है, न मृत्यु में; मुझे तो अमृत मिल गया। तुम्हारी जय हो!"

हाथ जोड़कर बैठे हुए मन लगाकर श्रीरामकृष्ण गाना सुन रहे हैं। गाना सुनते सुनते आपका मन सीधे भावराज्य में पहुँच गया है। श्रीरामकृष्ण का मन सूखी दियासलाई है। एक बार घिसने से उद्दीपना होती है। प्राकृत मनुष्यों का मन भीगी दियासलाई है, कितनी ही घिसो पर जलती नहीं, क्योंकि वह विषयासक्त है। श्रीरामकृष्ण बड़ी देर तक ध्यान में लगे हुए हैं। कुछ देर बाद कालीकृष्ण भवनाथ से कुछ कह रहे हैं।

कालीकृष्ण श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके उठे। श्रीरामकृष्ण ने विस्मित होकर पूछा, "कहाँ जाओगे?"

भवनाथ—कुछ काम है, इसीलिए वे जा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—क्या काम है?

भवनाथ—श्रमजीवियों के शिक्षालय में (Baranagore Workingmen's Institute) जा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—भाग्य ही में नहीं है। आज हरिनाम-कीर्तन में कितना आनन्द होता है, देखा नहीं। उसके भाग्य ही में नहीं था।

(२)

संन्यासियों के कठिन नियम

दिन के साढ़े-आठ या नौ बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण ने आज गंगा

में स्नान नहीं किया, शरीर कुछ अस्वस्थ है। घड़ा भरकर पानी बरामदे में लाया गया। भक्त उनको स्नान करा रहे हैं। नहाते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा, "एक लोटा पानी अलग रख दो।" अन्त में वही पानी सिर पर डाला। आज आप बड़े सावधान हैं, एक लोटे से ज्यादा पानी सिर पर नहीं डाला।

स्नान के बाद मधुर कण्ठ से भगवान् का नाम ले रहे हैं। धोया हुआ कपड़ा पहने, एक-दो भक्तों के साथ आँगन से होते हुए कालीमाता के मन्दिर की ओर जा रहे हैं। मुख से लगातार नाम उच्चारण कर रहे हैं। चितवन बाहर की ओर नहीं है—अण्डे को सेते समय चिड़िया की दृष्टि जिस प्रकार होती है उसी के सदृश हो रही है।

कालीमाता के मन्दिर में जाकर आपने प्रणाम और पूजा की। पूजा का कोई नियम न था—गन्ध-पुष्प कभी माता के चरणों में देते हैं और कभी अपने सिर पर। अन्त में माता का निर्माल्य सिर पर रख भवनाथ से कहा, "यह लो डाब❖।" माता का प्रसादी डाब था।

फिर आँगन से होते हुए अपने कमरे की तरफ आ रहे हैं। साथ में भवनाथ और मास्टर हैं। भवनाथ के हाथ में डाब है। रास्ते की दाहिनी ओर श्रीराधाकान्त का मन्दिर है, जिसे श्रीरामकृष्ण 'विष्णुघर' कहा करते थे। इन युगलमूर्तियों को देखकर आपने भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। बायीं ओर बारह शिवमन्दिर थे। शिवजी को हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे।

अब श्रीरामकृष्ण अपने डेरे पर पहुँचे। देखा कि और भी कई भक्त आये हुए हैं। राम, नित्यगोपाल, केदार चटर्जी आदि

❖ कच्चा नारियल

अनेक लोग आये हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। आपने भी उनसे कुशल-प्रश्न पूछा।

नित्यगोपाल को देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "तू कुछ खायेगा ?" ये भक्त उस समय बालक के भाव में थे। इन्होंने विवाह नहीं किया था, उम्र तेईस-चौबीस वर्ष की होगी। ये सदा भावराज्य में रहते थे और कभी अकेले, कभी राम के साथ प्रायः श्रीरामकृष्ण के पास आया करते थे। श्रीरामकृष्ण इनकी भावा-वस्था को देखकर इनसे बड़ा प्यार करते हैं—और कभी कभी कहते हैं कि इनकी परमहंस की अवस्था है। इसलिए आप इनको गोपाल जैसे देख रहे हैं।

भक्त ने कहा, "खाऊँगा।" उनकी बातें ठीक एक बालक की-सी थीं।

खिलाने के बाद श्रीरामकृष्ण उनको गंगा की ओर अपने कमरे के गोल बरामदे में ले गये और उनसे बातें करने लगे।

एक परम भक्त महिला, जिनकी उम्र कोई इकतीस-बत्तीस वर्ष की होगी, श्रीरामकृष्ण के पास अक्सर आती हैं और उनकी बड़ी भक्ति करती हैं। वे भी इन भक्त की अद्भुत भावावस्था को देख-कर इन्हें अपने लड़के के भाँति प्यार करती हैं और इन्हें प्रायः अपने घर लिवा ले जाती हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्त से)—क्या तू वहाँ जाता है ?

नित्यगोपाल (बालक की तरह)—हाँ, जाता हूँ। मुझे लिवा ले जाती है।

श्रीरामकृष्ण—अरे साधु सावधान ! एक-आध बार जाना, बस। ज्यादा मत जाना, नहीं तो गिर पड़ेगा ! कामिनी और कांचन ही माया है। साधु को स्त्रियों से बहुत दूर रहना चाहिए। वहाँ सब

डूब जाते हैं। वहाँ ब्रह्मा और विष्णु तक लोटपोट हो जाते हैं।

भक्त ने सब सुना।

मास्टर (स्वगत)—क्या आश्चर्य की बात है! इन भक्त की परमहंस की अवस्था है—यह तो आप स्वयं ही कहते हैं। इतनी उच्च अवस्था होते हुए भी इनके पतन की आशंका है! साधुओं के लिए आपने क्या ही कठिन नियम बना दिये हैं! स्त्रियों के साथ अधिक मिलने-जुलने से साधु का पतन होने की सम्भावना रहती है। यह उच्च आदर्श सामने न रहे तो भला जीवों का उद्धार कैसे हो? वह स्त्री तो भक्त ही है। फिर भी भय है! अब समझा, श्रीचैतन्य-देव ने छोटे हरिदास को इतनी कठोर सजा क्यों दी थी। महाप्रभु के मना करने पर भी हरिदास ने एक भक्त विधवा से वार्तालाप किया था। परन्तु हरिदास संन्यासी थे। इसलिए महाप्रभु ने उन्हें त्याग दिया। कितनी कठोर सजा! संन्यासी के लिए कितना कठिन नियम! फिर इन भक्त पर आपका कितना प्रेम है! आगे चलकर कोई विपत्ति न आ पड़े, इसलिए पहले ही से इन्हें सचेत कर रहे हैं। भक्तगण निःस्तब्ध होकर 'साधु सावधान' यह गम्भीर वाणी सुन रहे हैं।

(३)

साकार-निराकार। श्रीरामकृष्ण की रामनाम में समाधि

अब श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ अपने कमरे के उत्तर-पूर्ववाले बरामदे में आ गये हैं। भक्तों में दक्षिणेश्वर के रहनेवाले एक गृहस्थ भी बैठे हैं; वे घर पर वेदान्त की चर्चा करते हैं। श्रीरामकृष्ण के सामने व केदार चटर्जी से शब्दब्रह्म पर बातचीत कर रहे हैं।

दक्षिणेश्वरवाले—यह अनाहत शब्द सदैव अपने भीतर और बाहर हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण—केवल शब्द होने से ही तो सब कुछ नहीं हुआ। शब्द का एक प्रतिपाद्य विषय भी तो होना चाहिए। तुम्हारे नाम ही से मुझे थोड़े ही आनन्द होता है। बिना तुमको देखे सोलहों आने आनन्द नहीं होता।

दक्षिणेश्वरवाले—वह शब्द ही ब्रह्म है—अनाहत शब्द।

श्रीरामकृष्ण (केदार से)—अहा, समझे तुम? इनका ऋषियों का-सा मत है। ऋषियों ने श्रीरामचन्द्र से कहा, 'राम, हम जानते हैं कि तुम दशरथ के पुत्र हो। भरद्वाज आदि ऋषि भले ही तुम्हें अवतार जानकर पूजें, पर हम तो अखण्ड सच्चिदानन्द को चाहते हैं।' यह सुनकर राम हँसते हुए चल दिये।

केदार—ऋषियों ने राम को अवतार नहीं जाना। तो वे नासमझ थे।

श्रीरामकृष्ण (गम्भीर भाव से)—तुम ऐसा मत कहना! जिसकी जैसी रुचि! और जिसके पेट में जो चीज पचे!

"ऋषि ज्ञानी थे, इसीलिए वे अखण्ड सच्चिदानन्द को चाहते थे। पर भक्त अवतार को चाहते हैं, भक्ति का स्वाद चखने के लिए। ईश्वर के दर्शन से मन का अन्धकार हट जाता है। पुराणों में लिखा है कि जब श्रीरामचन्द्र सभा में पधारे, तब वहाँ मानो सौ सूर्यों का उदय हो गया! तो प्रश्न उठता है कि सभा में बैठे हुए लोग जल क्यों नहीं गये? इसका उत्तर यह है कि उनकी ज्योति जड़ ज्योति नहीं है। सभा में बैठे हुए सब लोगों के हृदयकमल खिल उठे। सूर्य के निकलने से कमल खिल जाते हैं।"

श्रीरामकृष्ण खड़े होकर भक्तों से यह कह ही रहे थे कि एकाएक उनका मन बाहरी जगत् को छोड़ भीतर की ओर मुड़ गया। "हृदय-कमल खिल उठे"—ये शब्द कहते ही आप समाधिमग्न हो गये।

श्रीरामकृष्ण उसी अवस्था में खड़े हैं। क्या भगवान् के दर्शन से

आपका हृदयकमल खिल उठा ? बाहरी जगत् का कुछ भी ज्ञान आपको नहीं है । मूर्ति की तरह आप खड़े हैं । मुँह उज्ज्वल और सहास्य है । भक्तों में से कुछ खड़े और कुछ बैठे हैं, सभी निर्वाक् होकर टकटकी लगाये प्रेमराज्य की इस अनोखी छवि को—इस अपूर्व समाधिदृश्य को—देख रहे हैं ।

बड़ी देर बाद समाधि टूटी । श्रीरामकृष्ण लम्बी साँस छोड़कर बारम्बार रामनाम उच्चारण कर रहे हैं । नाम के प्रत्येक वर्ण से मानो अमृत टपक रहा है । श्रीरामकृष्ण बैठे । भक्त भी चारों तरफ बैठकर उनको एकटक देख रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)–जब अवतार आते हैं, तो साधारण लोग उनको नहीं जान सकते । वे छिपकर आते हैं । दो ही चार अन्तरंग भक्त उनको जान सकते हैं । राम पूर्णब्रह्म थे, पूर्ण अवतार थे, यह बात केवल बारह ऋषियों को मालूम थी । अन्य ऋषियों ने कहा था, 'राम, हम तो तुमको दशरथ का बेटा ही समझते हैं ।'

"अखण्ड सच्चिदानन्द को सब कोई थोड़े ही समझ सकते हैं ! परन्तु भक्ति उसी की पक्की है, जो नित्य को पहुँचकर विलास के उद्देश्य से लीला लेकर रहता है । विलायत में क्वीन (रानी) को जब देखकर आओ, तब क्वीन की बातें, क्वीन के कार्य, इन सब का वर्णन हो सकता है । क्वीन के विषय में कहना तभी ठीक उतरता है । भरद्वाज आदि ऋषियों ने राम की स्तुति की थी और कहा था, 'हे राम, तुम्हीं वह अखण्ड सच्चिदानन्द हो ! हमारे सामने तुम मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुए हो । सच तो यह है कि माया के द्वारा ही तुम मनुष्य जैसे दिखते हो ।' भरद्वाज आदि ऋषि राम के परम भक्त थे । उन्हीं की भक्ति पक्की है ।"

(४)

कीर्तन का आनन्द तथा समाधि

भक्त निर्वाक् होकर यह अवतार-तत्त्व सुन रहे हैं। कोई कोई सोच रहे हैं, 'क्या आश्चर्य है! वेदोक्त अखण्ड सच्चिदानन्द—जिन्हें वेद ने मन-वचन से परे बताया है—क्या वे ही हमारे सामने साढ़े-तीन हाथ का मनुष्य-शरीर लेकर आते हैं? जब श्रीरामकृष्ण कहते हैं तो वैसा अवश्य ही होगा! यदि ऐसा न होता तो 'राम राम' कहते हुए इन महापुरुष को क्यों समाधि होती? अवश्य इन्होंने हृदयकमल में राम का रूप देखा होगा।'

थोड़ी देर में कोन्नगर से कुछ भक्त मृदंग और झाँझ लिये संकीर्तन करते हुए बगीचे में आये। मनमोहन, नवाई आदि बहुत-से लोग नामसंकीर्तन करते हुए श्रीरामकृष्ण के पास उसी उत्तर-पूर्ववाले बरामदे में पहुँचे। श्रीरामकृष्ण प्रेमोन्मत्त होकर उनसे मिलकर संकीर्तन कर रहे हैं।

नाचते नाचते बीच बीच में समाधि हो जाती है। तब संकीर्तन के बीच में निःस्पन्द होकर खड़े रहते हैं। उसी अवस्था में भक्तों ने उनको फूलों की बड़ी बड़ी मालाओं से सजाया। भक्त देख रहे हैं मानो सामने ही श्रीगौरांग खड़े हैं। गहरी भावसमाधि में मग्न हैं। श्रीगौरांग की तरह श्रीरामकृष्ण की भी तीन दशाएँ हैं; कभी अन्तर्दशा—तब जड़ वस्तु की भाँति आप बेहोश और निःस्पन्द हो जाते हैं; कभी अर्धबाह्य दशा—तब प्रेम से भरपूर होकर नाचते हैं; और फिर बाह्य दशा—तब भक्तों के साथ संकीर्तन करते हैं।

श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो खड़े हैं। गले में मालाएँ हैं। कहीं गिर न पड़ें इसलिए एक भक्त आपको पकड़े हुए हैं। चारों ओर भक्त खड़े होकर मृदंग और झाँझ के साथ कीर्तन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण की दृष्टि स्थिर है। श्रीमुख पर प्रेम की छटा झलक रही है। आप पश्चिम की ओर मुँह किये हैं। बड़ी देर तक सब लोग यह आनन्दमूर्ति देखते रहे।

समाधि छूटी। दिन चढ़ गया है। थोड़ी देर बाद कीर्तन भी बन्द हुआ। भक्तगण श्रीरामकृष्ण को भोजन कराने के लिए व्यग्र हुए।

कुछ देर विश्राम के पश्चात् श्रीरामकृष्ण एक नया पीला वस्त्र पहने अपनी छोटी खाट पर बैठे। आनन्दमय महापुरुष की उस अनुपम ज्योतिर्मय रूपछवि को भक्त देख रहे हैं; पर देखने की प्यास नहीं मिटती। वे सोचते हैं कि इसे देखते ही रहें, इस रूपसागर में डूब जायें।

श्रीरामकृष्ण भोजन करने बैठे। भक्तों ने भी प्रसाद पाया।

(५)

श्रीरामकृष्ण और सर्वधर्मसमन्वय

भोजन के उपरान्त श्रीरामकृष्ण छोटे तख्त पर आराम कर रहे हैं। कमरे में लोगों की भीड़ बढ़ रही है। बाहर के बरामदे भी लोगों से भरे हैं। कमरे के भीतर जमीन पर भक्त बैठे हैं और श्रीरामकृष्ण की ओर एकदृष्टि से ताक रहे हैं। केदार, सुरेश, राम, मनोमोहन, गिरीन्द्र, राखाल, भवनाथ, मास्टर आदि बहुत लोग वहाँ पर मौजूद हैं। राखाल के पिता आये हैं, वे भी वहीं बैठे हैं।

एक वैष्णव गोसाईं भी उसी स्थान पर बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण उनसे बातें कर रहे हैं। गोसाइयों को देखते ही श्रीरामकृष्ण सिर झुकाकर प्रणाम करते थे—कभी कभी तो उनके सामने साष्टांग प्रणाम करते थे।

नाममाहात्म्य अथवा अनुराग ?

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, तुम क्या कहते हो ? उपाय क्या है ?

गोसाईं–जी, नाम से ही सब कुछ होगा । कलियुग में नाम की बड़ी महिमा है !

श्रीरामकृष्ण–हाँ, नाम की बड़ी महिमा तो है, पर बिना अनुराग के क्या हो सकता है ? ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होने चाहिए । सिर्फ नाम लेता जा रहा हूँ, पर चित्त कामिनी और कांचन में है, इससे क्या होगा ?

"बिच्छू या मकड़ी के काटने पर खाली मन्त्र से वह अच्छा नहीं होता—उसके लिए कण्डे का ताप भी देना पड़ता है ।"

गोसाईं–तो अजामिल का क्यों हुआ ? वह महापातकी था, ऐसा पाप ही न था जो उसने न किया हो; पर मरते समय अपने लड़के को 'नारायण' कहकर बुलाने से ही उसका उद्धार हो गया ।

श्रीरामकृष्ण–शायद अजामिल पूर्वजन्म में बहुत कर्म कर चुका था । और यह भी लिखा है कि उसने बाद में तपस्या भी की थी ।

"अथवा यों कहो कि उस समय उसके अन्तिम क्षण आ गये थे । हाथी को नहला देने से क्या होगा, फिर धूल-मिट्टी लिपटाकर वह ज्यों का त्यों हो जाता है । पर हाथीखाने में घुसने के पहले ही अगर कोई उसकी धूल झाड़ दे और उसे नहला दे तो फिर उसका शरीर साफ रह सकता है ।

"मान लिया कि नाम से जीव एक बार शुद्ध हुआ, पर वह फिर तरह तरह के पापों में लिप्त हो जाता है । मन में बल नहीं; वह प्रण नहीं करता कि फिर पाप नहीं करूँगा । गंगास्नान से सब पाप मिट जाते हैं सही, पर सब लोग कहते हैं कि वे पाप एक पेड़ पर चढ़े रहते हैं । जब वह मनुष्य गंगाजी से नहाकर लौटता है, तो वे पुराने पाप पेड़ से कूदकर फिर उसके सिर पर सवार हो जाते हैं । (सब हँसे ।) उन पुराने पापों ने उसे फिर घेर लिया !

दो-चार कदम चलते ही उसे धर दबाया !

"इसलिए नाम भी करो और साथ ही प्रार्थना भी करो कि ईश्वर पर अनुराग हो, और जो चीजें दो दिन के लिए हैं—जैसे, धन, मान, देहसुख आदि—उनसे आसक्ति घट जाय ।

वैष्णवधर्म तथा साम्प्रदायिकता

(गोसाईं से)—"यदि आन्तरिकता हो तो सभी धर्मों से ईश्वर मिल सकते हैं । वैष्णवों को भी मिलेंगे तथा शाक्तों, वेदान्तियों और ब्राह्मों को भी, मुसलमानों और ईसाइयों को भी । हृदय से चाहने पर सब को मिलेंगे । कोई कोई झगड़ा कर बैठते हैं । वे कहते हैं कि हमारे श्रीकृष्ण को भजे बिना कुछ न बनेगा; या हमारी कालीमाता को भजे बिना कुछ न होगा; अथवा हमारे ईसाई धर्म को ग्रहण किये बिना कुछ न होगा ।

"ऐसी बुद्धि का नाम हठधर्म है, अर्थात् मेरा ही धर्म ठीक है और बाकी सब का गलत । यह बुद्धि खराब है । ईश्वर के पास हम बहुत रास्तों से पहुँच सकते हैं ।

"फिर कोई कोई कहते हैं कि ईश्वर साकार हैं, निराकार नहीं । यह कहकर वे झगड़ने लग जाते हैं ! जो वैष्णव है वह वेदान्ती से झगड़ता है ।

"यदि ईश्वर के साक्षात् दर्शन हों, तो सब हाल ठीक ठीक बताया जा सकता है । जिसने दर्शन किये हैं वह ठीक जानता है कि भगवान् साकार भी हैं और निराकार भी; वे और भी कैसे कैसे हैं, यह कौन बताये !

"कुछ अन्धे एक हाथी के पास गये थे । एक ने बता दिया, इस चौपाये का नाम हाथी है । तब अन्धों से पूछा गया, हाथी कैसा है ? वे हाथी की देह छूने लगे । एक ने कहा, हाथी खम्भे

के आकार का है ! उसने हाथी का पैर ही छुआ था । दूसरे ने कहा, हाथी सूप की तरह है ! उसके हाथ हाथी के कान पर पड़े थे । इसी तरह किसी ने पेट पकड़कर कुछ कहा, किसी ने सूँड़ पकड़कर कुछ कहा । ऐसे ही ईश्वर के सम्बन्ध में जिसने जितना देखा है, उसने यही सोचा है कि ईश्वर बस ऐसे ही हैं, और कुछ नहीं ।

"एक आदमी शौच के लिए गया था । लौटकर उसने कहा, 'मैंने पेड़ के नीचे एक सुन्दर लाल गिरगिट देखा ।' दूसरे ने कहा, 'तुमसे पहले मैं उस पेड़ के नीचे गया था; परन्तु वह लाल क्यों होने लगा ? वह तो हरा है. मैंने अपनी आँखों से देखा है ।' तीसरे ने कहा, 'मैं तुम दोनों से पहले गया था, उसको मैंने भी देखा है; परन्तु वह न लाल है, न हरा; वह तो नीला है ।' और दो थे; उनमें से एक ने बताया पीला, और एक ने, खाकी । इस तरह अनेक रंग हो गये । अन्त में सब में झगड़ा होने लगा । हर एक का यही विश्वास था कि उसने जो कुछ देखा है, वही ठीक है । उनकी लड़ाई देख एक ने पूछा, 'तुम लड़ते क्यों हो ?' जब उसने कुल हाल सुना तब कहा, 'मैं उसी पेड़ के नीचे रहता हूँ; और उस जानवर को मैं खूब पहचानता हूँ । तुममें से हर एक का कहना सच है । वह कभी हरा, कभी नीला, कभी लाल, इस तरह अनेक रंग धारण करता है । और कभी देखता हूँ, कोई रंग नहीं ! निर्गुण है !' "

साकार अथवा निराकार ?

(गोस्वामी से)—"ईश्वर को सिर्फ साकार कहने से क्या होगा ! वे श्रीकृष्ण की तरह मनुष्यरूप धारण करके आते हैं, यह भी सत्य है; अनेक रूपों से भक्तों को दर्शन देते हैं, यह भी सत्य है; और फिर वे निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, यह भी सत्य है । वेदों ने उनको साकार भी कहा है, निराकार भी कहा है ; सगुण भी

कहा है और निर्गुण भी।

"किस तरह, जानते हो? सच्चिदानन्द मानो एक अनन्त समुद्र है। ठण्डक के कारण समुद्र का पानी बर्फ बनकर तैरता है। पानी पर बर्फ के कितने ही आकार के टुकड़े तैरते हैं। वैसे ही भक्ति-हिम के लगने से सच्चिदानन्द-सागर में साकार मूर्ति के दर्शन होते हैं। वे भक्त के लिए साकार होते हैं। फिर जब ज्ञानसूर्य का उदय होता है तब बर्फ गल जाती है, फिर वही पहले का पानी ज्यों का त्यों रह जाता है। ऊपर-नीचे जल ही जल भरा हुआ है। इसीलिए श्रीमद्भागवत में सब स्तव करते हैं, 'हे देव, तुम्हीं साकार हो,तुम्हीं निराकार हो। हमारे सामने तुम मनुष्य बने घूम रहे हो, परन्तु वेदों ने तुम्हीं को वाक्य और मन से परे कहा है।'

"परन्तु यह कह सकते हो कि किसी किसी भक्त के लिए वे नित्य साकार हैं। ऐसा भी स्थान है जहाँ बर्फ गलती नहीं, स्फटिक का आकार धारण करती है।"

केदार—श्रीमद्भागवत में व्यासदेव ने तीन दोषों के लिए पर-मात्मा से क्षमाप्रार्थना की है। एक जगह कहा है, हे भगवन्, तुम मन और वाणी से दूर हो, किन्तु मैंने केवल तुम्हारी लीला, तुम्हारे साकार रूप का वर्णन किया; अतएव अपराध क्षमा करो।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, ईश्वर साकार भी हैं और निराकार भी, फिर साकार-निराकार के भी परे हैं। उनकी इति नहीं की जा सकती।

(६)

नित्यसिद्ध तथा कौमार-वैराग्य

राखाल के पिता बैठे हुए हैं। राखाल आजकल श्रीरामकृष्ण के पास ही रहते हैं। राखाल की माता के गुजर जाने पर उनके पिता ने अपना दूसरा विवाह कर लिया है। राखाल यहीं रहते हैं, इस-

लिए उनके पिता कभी कभी आया करते हैं। राखाल के यहाँ रहने में इनकी ओर से कोई बाधा नहीं है। ये श्रीमान् और विषयी मनुष्य हैं। सदा मुकदमों की पैरवी में रहते हैं। श्रीरामकृष्ण के पास कितने ही वकील और डिप्टी मैजिस्ट्रेट आया करते हैं। राखाल के पिता इनसे वार्तालाप करने के लिए कभी कभी आ जाते हैं। उनसे मुकदमों की बहुतसी बातें सूझ जाती हैं।

श्रीरामकृष्ण रह-रहकर राखाल के पिता को देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण की इच्छा है, राखाल उन्हीं के पास रह जायें।

श्रीरामकृष्ण (राखाल के पिता और भक्तों से)–अहा, आजकल राखाल का स्वभाव कैसा हुआ है! उसके मुँह पर दृष्टि डालने से देखोगे, उसके होंठ रह-रहकर हिल रहे हैं। अन्तर में ईश्वर का नाम जपता है, इसलिए होंठ हिलते रहते हैं।

"ये सब लड़के नित्यसिद्ध की श्रेणी के हैं। ईश्वर का ज्ञान साथ लेकर पैदा हुए हैं। कुछ उम्र होते ही ये समझ जाते हैं कि संसार की छूत देह में लगी तो फिर निस्तार न होगा। वेदों में 'होमा' पक्षी की कहानी है। वह चिड़िया आकाश में ही रहती है; जमीन पर कभी नहीं उतरती। आकाश ही में अण्डे देती है। अण्ड़े गिरते रहते हैं, पर वे इतनी ऊँचाई से गिरते हैं कि गिरते ही गिरते बीच में वे फूट जाते हैं। तब बच्चे निकल आते हैं। वे भी गिरने लगते हैं। उस समय भी वे इतने ऊँचे पर रहते हैं कि गिरते ही गिरते उनके पंख निकल आते हैं और आँखें भी खुल जाती हैं। तब वे समझ जाते हैं कि अरे हम मिट्टी में गिर जायेंगे, और गिरे तो चकनाचूर! मिट्टी देखते ही एकदम अपनी माता की ओर उड़ जाते हैं। माता के निकट पहुँचना ही उनका लक्ष्य हो जाता है।

"ये सब लड़के ठीक वैसे ही हैं। बचपन ही में संसार देखकर डर जाते हैं। इनकी एकमात्र चिन्ता यही है कि किस तरह माता के निकट जायें, किस प्रकार ईश्वर के दर्शन हों।

"यदि यह कहो कि ये रहे विषयी मनुष्यों में, पैदा हुए विषयी के यहाँ, फिर इनमें ऐसी भक्ति, ऐसा ज्ञान कैसे हो गया, तो इसका भी अर्थ है। मैली जमीन पर यदि चना गिर जाय, तो उसमें चना ही फलता है। उस चने से कितने अच्छे काम होते हैं। मैली जमीन पर गिर गया है, इसलिए उससे कोई दूसरा पौधा थोड़े ही होगा।

"अहा, राखाल का स्वभाव आजकल कैसा हो गया है! और होगा भी क्यों नहीं? यदि सूरण अच्छा हुआ, तो उसके अंकुर भी अच्छे होते हैं। (सब हँसते हैं।) जैसा बाप, वैसा उसका बेटा।"

मास्टर (गिरीन्द्र से अलग से)—साकार और निराकार की बात कैसी समझायी इन्होंने! जान पड़ता है, वैष्णव केवल साकार ही मानते हैं।

गिरीन्द्र—होगा। वे एक ही भाव पर अड़े रहते हैं।

मास्टर—'नित्य साकार' आप समझे? स्फटिकवाली बात? मैं उसे अच्छी तरह नहीं समझ सका।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—क्यों जी, तुम लोग क्या बातचीत कर रहे हो?

मास्टर और गिरीन्द्र जरा हँसकर चुप हो गये।

वृन्दा दासी (रामलाल से)—रामलाल, अभी इस आदमी को मिठाइयाँ दो, हमें बाद में देना।

श्रीरामकृष्ण—वृन्दा को अभी मिठाइयाँ नहीं दी गयीं?

(७)
पंचवटी में कीर्तनानन्द

दिन के तीसरे पहर भक्तगण पंचवटी में कीर्तन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण भी उनमें मिल गये; भक्तों के साथ मातृनाम-संकीर्तन करते हुए आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

(गीत का भावार्थ)—"श्यामा माँ के चरणरूपी आकाश में मन की पतंग उड़ रही थी। कलुष की वायु से वह चक्कर खाकर गिर पड़ी। माया का कन्ना भारी हुआ, मैं उसे फिर उठा नहीं सका। स्त्री-पुत्रादि के तागे में उलझकर वह फट गयी। उसका ज्ञानरूपी मस्तक (ऊपर का हिस्सा) अलग हो गया है। उठाने से ही वह गिर पड़ती है। जब सिर ही नहीं रह गया तो वह उड़ कैसे सकती है! साथ के छः आदमियों की (कामक्रोधादि की) विजय हुई। वह भक्ति के तागे से बंधी थी। खेलने के लिए आते ही तो यह भ्रम सवार हो गया। 'नरेशचन्द्र' को इस हँसने और रोने से तो बेहतर आना ही न था।"

फिर गाना होने लगा। गीत के साथ ही मृदंग-करताल बजने लगे। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ नाच रहे हैं।

(गीत का भावार्थ)—"मेरा मन-मधुप श्यामापद-नीलकमल में मस्त हो गया। कामादि पुष्पों में जितने विषय-मधु थे, सब तुच्छ हो गये। चरण काले हैं, मधुप काला है, काले से काला मिल गया। पंचतत्त्व यह तमाशा देखकर भाग गये। 'कमलाकान्त' के मन की आशा इतने दिनों में पूर्ण हुई। सुखदुःख दोनों बराबर हुए; केवल आनन्द का सागर उमड़ रहा है।"

कीर्तन हो रहा है, और भक्त गा रहे हैं।

(भावार्थ)—"श्यामा माँ ने एक कल बनायी है। साढ़े-तीन हाथ की कल के भीतर वह कितने ही रंग दिखा रही है। वह स्वयं कल के भीतर रहकर कल की डोर पकड़कर उसे घुमाया करती है। कल कहती है, मैं खुद घूमती हूँ। वह यह नहीं जानती कि कौन उसे घुमा रहा

है। जिसने कल को पहचान लिया है, उसे कल न होना होगा। किसी किसी कल की भक्तिरूपी डोर में श्यामा माँ स्वयं बँधी हुई है।"

भक्त लोग आनन्द करने लगे। जब उन्होंने थोड़ी देर के लिए गाना बन्द किया तब श्रीरामकृष्ण उठे। इधर उधर अभी अनेक भक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण पंचवटी से अपने कमरे की ओर जा रहे हैं। मास्टर साथ हैं। बकुल के पेड़ के नीचे जब वे आये तब त्रैलोक्य से भेंट हुई। उन्होंने प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य से)—पंचवटी में वे लोग गा रहे हैं, एक बार चलकर देखो तो।

त्रैलोक्य—मैं जाकर क्या करूँ ?

श्रीरामकृष्ण—क्यों, देखने का आनन्द मिलता।

त्रैलोक्य—एक बार देख आया।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, ठीक है।

(८)

श्रीरामकृष्ण और गृहस्थधर्म

साढ़े-पाँच या छः बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ अपने कमरे के दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में बैठे हुए हैं। भक्तों को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (केदार आदि भक्तों से)—जो संसारत्यागी है वह तो ईश्वर का नाम लेगा ही। उसको तो और दूसरा काम ही नहीं। वह यदि ईश्वर का चिन्तन करता है तो उसमें आश्चर्य की बात क्या है! वह यदि ईश्वर की चिन्ता न करे, यदि ईश्वर का नाम न ले, तो लोग उसकी निन्दा करेंगे।

"संसारी मनुष्य यदि ईश्वर का नाम जपे, तो समझो उसमें

बड़ी मर्दानगी है। देखो, राजा जनक बड़े ही मर्द थे। वे दो तलवारें चलाते थे, एक ज्ञान की और एक कर्म की। एक ओर पूर्ण ज्ञान था, और दूसरी ओर वे संसार का कर्म कर रहे थे। बदचलन स्त्री घर के सब कामकाज बड़ी खूबी से करती है, परन्तु वह सदा अपने यार की चिन्ता में रहती है।

"साधुसंग की सदा आवश्यकता है। साधु ईश्वर से मिला देते हैं।"

केदार—जी हाँ, महापुरुष जीवों के उद्धार के लिए आते हैं। जैसे रेलगाड़ी के इंजन के पीछे कितनी ही गाड़ियाँ बँधी रहती हैं, परन्तु वह उन्हें घसीट ले जाता है। अथवा जैसे नदी या तड़ाग कितने ही जीवों की प्यास बुझाते हैं।

क्रमशः भक्तगण घर लौटने लगे। सभी ने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। भवनाथ को देखकर श्रीरामकृष्ण बोले, "तू आज न जा, तुझ जैसों को देखते ही उद्दीपना हो जाती है।"

भवनाथ अभी संसारी नहीं हुए। उम्र उन्नीस-बीस होगी। गोरा रंग, सुन्दर देह। ईश्वर के नाम से आँखों में आँसू आ जाते हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें साक्षात् नारायण देखते हैं!

परिच्छेद २७

ब्राह्मभक्तों के प्रति उपदेश

(१)

समाधि में

फाल्गुन के कृष्णपक्ष की पंचमी है, बृहस्पतिवार, २९ मार्च १८८३। दोपहर को भोजन करके भगवान् श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर के लिए विश्राम कर रहे हैं। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर का वही पहले का कमरा है। सामने पश्चिम की ओर गंगा बह रही है। दिन के दो बजे का समय है। ज्वार आ रही है।

कोई कोई भक्त आये हुए हैं। ब्राह्मभक्त श्री अमृत और ब्राह्म-समाज के नामी गवैये श्री त्रैलोक्य—जिन्होंने केशव सेन के ब्राह्म समाज में भगवान् की लीलाओं का गुणगान कर बालक, वृद्ध सभी का कितनी बार मन लुभाया है—आये हैं।

राखाल बीमार हैं। उन्हीं की बात श्रीरामकृष्ण भक्तों से कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—यह लो, राखाल बीमार पड़ गया। क्या सोडा पीने से अच्छा होता है? न जाने क्या होगा! राखाल, तू जगन्नाथ का प्रसाद खा।

यह कहते कहते श्रीरामकृष्ण एक अद्भुत भाव में आ गये। शायद आप देख रहे हैं, साक्षात् नारायण सामने राखाल के रूप में बालक का वेष धारण करके आ गये हैं। इधर कामिनीकांचन-त्यागी बालकभक्त शुद्धात्मा राखाल हैं और उधर भगवत्प्रेम में सदा मस्त रहनेवाले श्रीरामकृष्ण की प्रेमभरी दृष्टि—अतएव वात्सल्यभाव का उदय होना स्वाभाविक था। राखाल को

वात्सल्यभाव से देखते हुए आप बड़े ही प्रेम से 'गोविन्द' 'गोविन्द' उच्चारण करने लगे। श्रीकृष्ण को देखकर यशोदा के मन में जिस भाव का उदय होता था, यह शायद वही भाव है! भक्तगण यह अद्‌भुत दृश्य देख रहे हैं। एकाएक वह भाव स्थिर हो गया। 'गोविन्द' नाम जपते हुए भक्तावतार श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गये! शरीर चित्रवत् स्थिर हो गया। इन्द्रियाँ मानो अपने काम से जवाब देकर चली गयीं। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर हो रही है। साँस चल रही है या नहीं, इसमें सन्देह है। इस लोक में केवल शरीर पड़ा हुआ है, आत्माराम चिदाकाश में विहार कर रहे हैं। अब तक जो माता की तरह सन्तान के लिए घबड़ाये हुए थे, वे अब कहाँ हैं? क्या इसी अद्‌भुत अवस्था का नाम समाधि है?

इसी समय गेरुए कपड़े पहने हुए एक अपरिचित बंगाली सज्जन आ पहुँचे। भक्तों के बीच में बैठ गये।

(२)

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।। (गीता, ३।६)

गेरुआ वस्त्र और संन्यासी

धीरे धीरे श्रीरामकृष्ण की समाधि छूटने लगी। भाव में आप ही आप बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (गेरुआ देखकर)—यह गेरुआ क्यों? क्या कुछ लपेट लेने ही से हो गया? (हँसते हैं।) किसी ने कहा था—'चण्डी छोड़कर अब ढोल बजाता हूँ।' पहले चण्डी के गीत गाता था, फिर ढोल बजाने लगा। (सब हँसते हैं।)

"वैराग्य तीन-चार प्रकार के होते हैं। जिसने संसार की ज्वाला से दग्ध होकर गेरुआ धारण कर लिया है, उसका वैराग्य अधिक

दिन नहीं टिकता। किसी ने देखा, काम कुछ मिलता नहीं, झट गेरुआ पहनकर काशी चला गया! तीन महीने बाद घर में चिट्ठी आयी, उसने लिखा है—'मुझे काम मिल गया है, कुछ ही दिनों में घर आऊँगा, चिन्ता न करना!' परन्तु जिसके सब कुछ है, चिन्ता की कोई बात नहीं, किन्तु फिर भी कुछ अच्छा नहीं लगता, अकेले अकेले में भगवान् के लिए रोता है, उसी का वैराग्य यथार्थ वैराग्य है।

"मिथ्या कुछ भी अच्छा नहीं। मिथ्या वेष भी अच्छा नहीं। वेष के अनुकूल यदि मन न हुआ, तो क्रमशः उससे महा अनर्थ हो जाता है। झूठ बोलने या बुरा कर्म करने से धीरे धीरे उसका भय चला जाता है। इससे सादे कपड़े पहनना अच्छा है। मन में आसक्ति भरी है, कभी कभी पतन भी हो जाता है, और बाहर से गेरुआ! यह बड़ा ही भयानक है!

"यहाँ तक कि जो लोग सच्चे हैं उनके लिए कौतुकवश भी झूठ की नकल बुरी चीज है। केशव सेन के यहाँ मैं 'नववृन्दावन' नाटक देखने गया था। न जाने कैसा क्रास (Cross) वह लाया और फिर पानी छिड़कने लगा; कहता था, शान्तिजल है। एक को देखा, मतवाला बना बहक रहा था।

ब्राह्मभक्त—कु० बाबू थे।

श्रीरामकृष्ण—भक्त के लिए इस तरह का स्वाँग करना भी अच्छा नहीं। उन सब विषयों में बड़ी देर तक मन को डाल रखना दोष है। मन धोबी के घर का कपड़ा है, जिस रंग से रंगोगे, वही रंग उस पर चढ़ जायगा। मिथ्या में बड़ी देर तक डाल रखोगे तो मिथ्या ही हो जायगा।

"एक दूसरे दिन 'निमाई-संन्यास' का अभिनय था। केशव के घर में मैं भी देखने के लिए गया था। केशव के कुछ खुशामदी चेलों

ने अभिनय बिगाड़ डाला था। एक ने केशव से कहा 'कलिकाल के चैतन्य तो आप ही हैं'। केशव मेरी ओर देखकर हँसता हुआ कहने लगा, 'तो फिर ये क्या हुए?' मैंने कहा, 'मैं तुम्हारे दासों का दास —रज की रज हूँ।' केशव को नाम और यश की अभिलाषा थी!"

नरेन्द्र आदि नित्यसिद्ध हैं

श्रीरामकृष्ण (अमृत और त्रैलोक्य से)—नरेन्द्र और राखाल आदि ये जो लड़के हैं, ये नित्यसिद्ध हैं। ये जन्म-जन्मान्तर से ईश्वर के भक्त हैं। अनेक लोगों को बड़ी साधना के बाद कहीं थोड़ीसी भक्ति प्राप्त होती है, परन्तु इन्हें जन्म से ही ईश्वर पर अनुराग है। मानो स्वयम्भू शिव हैं—बैठाये हुऐ शिव नहीं।

"नित्यसिद्धों का एक दर्जा ही अलग है। सभी चिड़ियों की चोंच टेढ़ी नहीं होती। ये कभी संसार में नहीं फँसते, जैसे प्रह्लाद।

"साधारण मनुष्य साधना करता है, ईश्वर पर भक्ति भी करता है, और संसार में भी फँस जाता है, स्त्री और धन के लिए भी हाथ लपकाता है। मक्खी जैसे फूल पर भी बैठती है, बर्फियों पर भी बैठती है और विष्ठा पर भी बैठती है। (सब स्तब्ध हैं।)

"नित्यसिद्ध तो मधुमक्खी की तरह होते हैं। मधुमक्खियाँ केवल फूल पर बैठती हैं और मधु ही पीती हैं। नित्यसिद्ध रामरस का ही पान करते हैं, विषयरस की ओर नहीं जाते।

"साधना द्वारा जो भक्ति प्राप्त होती है, इनकी वह भक्ति नहीं है। इतना जप, इतना ध्यान करना होगा, इस तरह पूजा करनी होगी, यह सब विधिवादीय भक्ति है। जैसे किसी गाँव में किसी को जाना है, परन्तु रास्ते में धनहे खेत पड़ते हैं, तो मेड़ों से घूमकर उसे जाना पड़ता है। अगर किसी को सामनेवाले गाँव में जाना है, परन्तु रास्ते में नदी पड़ती है, तो टेढ़ा रास्ता चलकर

लगाते हुए ही पार करना पड़ता है ।

"रागभक्ति, प्रेमाभक्ति, ईश्वर पर आत्मीयों की-सी प्रीति होने पर फिर कोई विधिनियम नहीं रह जाता । तब का जाना धनहे खेतों की मेड़ों पर का जाना नहीं, किन्तु कटे हुए खेतों से सीधा निकल जाना है। चाहे जिस ओर से सीधे चले जाओ। बाढ़ आने पर फिर नदी के टेढ़े रास्ते से नहीं जाना पड़ता। तब इधर उधर की जमीन और रास्ते पर एक बाँस पानी चढ़ जाता है। तब तो बस सीधे नाव चलाकर पार हो जाओ।

"इस रागभक्ति, अनुराग या प्रेम के बिना ईश्वर नहीं मिलते।"

समाधितत्त्व—सविकल्प और निर्विकल्प

अमृत—महाराज !. इस समाधि-अवस्था में भला, आपको क्या जान पड़ता है ?

श्रीरामकृष्ण—सुना नहीं ? भौंरे की चिन्ता करते करते झींगुर भौंरा ही बन जाता है। वह अनुभव कैसा होता है जानते हो ? मानो हण्डी की मछली को गंगा में छोड़ दिया हो।

अमृत—क्या जरा भी अहंकार नहीं रह जाता ?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, बहुधा मेरा कुछ अहंकार रह जाता है। सोने के एक टुकड़े को तुम चाहे जितना घिस डालो पर अन्त में एक छोटासा कण बचा ही रहता है। और, जैसे कोई बड़ी भारी अग्नि-राशि है, उसकी एक जरासी चिनगारी हो। बाह्य ज्ञान चला जाता है, परन्तु प्रायः थोड़ासा अहंकार रह जाता है, शायद वे विलास के लिए रख छोड़ते हैं। 'मैं' और 'तुम' इन दोनों के रहने ही से स्वाद मिलता है। कभी कभी इस 'अहं' को भी वे मिटा देते हैं। इसे 'जड़ समाधि' या 'निर्विकल्प समाधि' कहते हैं।

तब क्या अवस्था होती है, यह कहा नहीं जा सकता ! नमक का पुतला समुद्र नापने गया था। ज्योंही समुद्र में उतरा कि गल गया। 'तदाकाराकारित्व' ! अब लौटकर कौन बतलाये कि समुद्र कितना गहरा है !

परिच्छेद २८

नरेन्द्र आदि भक्तों के साथ बलराम के मकान पर

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बलराम बाबू के मकान में बैठे हुए हैं, बैठक के उत्तर-पूर्ववाले कमरे में। दोपहर ढल चुकी, एक बजा होगा। नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल, बलराम और मास्टर कमरे में उनके साथ बैठे हुए हैं।

आज अमावस्या है, शनिवार, ७ अप्रैल १८८३। श्रीरामकृष्ण बलराम बाबू के घर सुबह को आये थे। दोपहार को भोजन वहीं किया है। नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल तथा और भी दो-एक भक्तों को आपने निमन्त्रित करने के लिए कहा था, अतएव उन लोगों ने भी यहीं आकर भोजन किया है। श्रीरामकृष्ण बलराम से कहते थे— "इन्हें खिलाना, तो बहुतसे साधुओं के खिलाने का पुण्य होगा।"

कुछ दिन हुए श्रीरामकृष्ण श्री केशवबाबू के यहाँ 'नव-वृन्दावन' नाटक देखने गये थे। साथ नरेन्द्र और राखाल भी गये थे। नरेन्द्र ने भी अभिनय में भाग लिया था। केशव पवहारी बाबा बने थे।

श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्रादि भक्तों से)—केशव साधु बनकर शान्ति-जल छिड़कने लगा। परन्तु मुझे यह अच्छा न लगा। अभिनय में शान्तिजल !

"और एक आदमी (कु० बाबू) पापपुरुष बना था। ऐसा करना भी अच्छा नहीं। न पाप करना ही अच्छा है और न पाप का अभिनय करना ही।"

नरेन्द्र का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है; परन्तु उनका गाना सुनने की

श्रीरामकृष्ण को बड़ी इच्छा है। वे कहने लगे "नरेन्द्र, ये लोग कह रहे हैं, तू कुछ गा।"

नरेन्द्र तानपुरा लेकर गाने लगे। गीतों का भावार्थ यह है—

(१) "मेरे प्राण-पिंजरे के पक्षी, गाओ। ब्रह्म-कल्पतरु पर बैठकर परमात्मा के गुण गाओ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-रूपी पके हुए फल खाओ। हे मेरे हृदय के प्राणविहंग, तुम निरन्तर 'आत्माराम, प्राणाराम' कहकर पुकारो। प्यासे चातक की तरह पुकारो, आलस मत करो।"

(२) "वे विश्वरंजन हैं, परमज्योति ब्रह्म हैं, अनादिदेव जगत्पति हैं, प्राणों के भी प्राण हैं। . . ."

(३) "हे राजराजेश्वर! दर्शन दो! मैं जिन प्राणों को तुम्हारे चरणों में अर्पित कर रहा हूँ, वे संसार के अनल-कुण्ड में पड़कर झुलस गये हैं। और उस पर यह हृदय कलुष-कलंक से आवृत है। दयामय! मोहमुग्ध होकर मैं मृतकल्प हो रहा हूँ, तुम मृत-संजीवनी दृष्टि से मेरा शोधन कर लो।"

(४) "गगनरूपी थाल में रवि-चन्द्ररूपी दीपक जल रहे हैं।..."

(५) "चिदाकाश में प्रेमचन्द्र का पूर्ण उदय हुआ। . . ."

नरेन्द्रनाथ के गानों के समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने भवनाथ से गाने के लिए कहा। भवनाथ ने भी एक गाना गाया।

(भावार्थ)—"हे दयाघन, तुम्हारे जैसा हितकारी और कौन है? इस प्रकार सुख और दुःख में समान रूप से साथ देनेवाला। सभी पाप-ताप, भय आदि का हरण करनेवाला साथी दूसरा कौन है? संकटों से पूर्ण इस घोर भवसागर से तारनेवाला खेवैया और कौन है? किसकी कृपा से ये संग्रामकारी रिपुगण पराजित होकर दूर भागते हैं? इस प्रकार समस्त पापों का दहन और

त्रिताप का निवारण कर शान्तिजल प्रदान करनेवाला और कौन है ? अन्त समय में, जब सभी लोग त्याग देते हैं उस समय, कौन इस तरह बाँहें फैलाकर गोद में ले लेता है ?"

नरेन्द्र (हँसते हुए)–इसने (भवनाथ ने) पान और मछली खाना छोड़ दिया है।

श्रीरामकृष्ण (भवनाथ से हँसते हुए)–क्यों रे ? पान और मछली में क्या रखा है ? इससे कुछ नहीं होता। कामिनी-कांचन का त्याग ही त्याग है। राखाल कहाँ है ?

एक भक्त– जी, राखाल सो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)–एक आदमी बगल में चटाई लेकर नाटक देखने के लिए गया था। नाटक शुरू होने में देर थी, इसलिए वह चटाई बिछाकर सो गया। जब जागा तब सब समाप्त हो गया था ! (सब हँसते हैं।)

"फिर चटाई बगल में दबाकर घर लौट आया।"

रामदयाल बहुत बीमार हैं। एक दूसरे कमरे में, बिछौने पर पड़े हुए हैं। श्रीरामकृष्ण उस कमरे में जाकर उनकी बीमारी का हाल पूछने लगे।

संसारी तथा शास्त्रार्थ

तीसरे पहर के चार बज चुके हैं। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र, राखाल, मास्टर, भवनाथ आदि के साथ बैठक में बैठे हुए हैं। कुछ ब्राह्म-भक्त भी आये हैं। उन्हीं के साथ बातचीत हो रही है।

ब्राह्मभक्त– महाराज ने पंचदशी देखी है।

श्रीरामकृष्ण–यह सब पहले-पहल एक बार सुनना पड़ता है—पहले-पहल एक बार विचार कर लेना पड़ता है। इसके बाद—"प्यारी श्यामा माँ को यत्नपूर्वक हृदय में रख। मन, तू देख और

मैं देखूं और दूसरा कोई न देखने पाये ।'

"साधन-अवस्था में वह सब सुनना पड़ता है । उन्हें प्राप्त कर लेने पर ज्ञान का अभाव नहीं रहता । माँ ज्ञान की राशि ठेलती रहती हैं ।

"पहले हिज्जे करके लिखना पड़ता है--फिर सीधे घसीटते जाओ ।

"सोना गलाने के समय कमर कसकर काम में लगना पड़ता है । एक हाथ में धौंकनी--दूसरे में पंखा--मुँह से फूँकना--जब तक सोना न गल जाय । गल जाने पर ज्योंही साँचे में छोड़ा कि सब चिन्ता दूर हो गयी ।

"शास्त्र केवल पढ़ने ही से कुछ नहीं होता । कामिनी-कांचन में रहने से वे शास्त्र का अर्थ समझने नहीं देते । संसार की आसक्ति में ज्ञान का लोप हो जाता है ।

" 'प्रयत्नपूर्वक मैंने काव्यरसों के जितने भेद सीखे थे वे सब इस काले की प्रीति में पड़ने से नष्ट हो गये ।' " (सब हँसते हैं ।)

श्रीरामकृष्ण ब्राह्मभक्तों से केशव की बात कहने लगे--

"केशव योग और भोग दोनों में हैं । संसार में रहकर ईश्वर की ओर उनका मन लगा रहता है ।"

एक भक्त कानवोकेशन (विश्वविद्यालय की उपाधिवितरण-सभा) के सम्बन्ध में कहते हुए बोले, "देखा, वहाँ बड़ी भीड़ लगी हुई थी ।"

श्रीरामकृष्ण--एक जगह बहुतसे लोगों को देखने पर ईश्वर का उद्दीपन होता है । यदि मैं ऐसा देखता तो विह्वल हो जाता ।

परिच्छेद २९

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

(१)

मणिलाल और काशीदर्शन

चलो भाई, आज फिर भगवान् श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने दक्षिणेश्वर मन्दिर चलें। देखें, किस तरह वे भक्तों के साथ आनन्दविलास कर रहे हैं, और किस तरह सदा ईश्वरी भाव में मस्त होकर समाधिमग्न हो रहे हैं। हम देखेंगे, कभी वे समाधिमग्न हैं, कभी कीर्तन के आनन्द में मतवाले बने हुए हैं, तो कभी प्राकृत मनुष्यों की तरह भक्तों से वार्तालाप करते हैं। मुख में ईश्वरी प्रसंग के सिवा दूसरा विषय ही नहीं। मन सदा अन्तर्मुख है। हर एक श्वास के साथ माँ का नाम जप रहे हैं। व्यवहार पाँच वर्ष के बालक की तरह है। अभिमान कहीं छू तक नहीं गया है। किसी विषय में आसक्ति नहीं, सदानन्द, सरल और उदार स्वभाव है। "ईश्वर ही सत्य हैं, और सब अनित्य, दो दिन का।" ——यही एक वाणी है। चलो, उस प्रेमोन्मत्त बालक को देखने चलें। वे महायोगी हैं। अनन्त सागर के किनारे एकाकी विचरण कर रहे हैं। उस अनन्त सच्चिदानन्द सागर में मानो कुछ देख रहे हैं और देखकर प्रेमोन्मत्त बने घूम रहे हैं।

आज चैत्र की शुक्ला प्रतिपदा है। रविवार, ८ अप्रैल १८८३। कल शनिवार को अमावस्या थी। श्रीरामकृष्ण कल बलराम बाबू के घर गये थे। अमानिशा के घोर अन्धकार में महाकाली एकाकी महाकाल के साथ लीलाविलास करती हैं। इसीलिए श्रीरामकृष्ण अमावस्या के दिन स्थिर नहीं रह पाते। बालकों की-सी स्थिति

है। जो दिनरात निरन्तर माँ के दर्शन कर रहा हो, माँ के बिना जो क्षण भर रह नहीं सकता, वह बालक ही तो है।

प्रातःकाल का समय है। श्रीरामकृष्ण बच्चे की तरह बैठे हुए हैं। पास ही बालकभक्त राखाल बैठे हुए हैं। मास्टर ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण के भतीजे रामलाल भी हैं। किशोरी तथा और भी कुछ भक्त आ गये! थोड़ी देर में पुराने ब्राह्मभक्त श्री मणिलाल मल्लिक भी आये और भूमिष्ठ हो श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

मणिलाल काशी गये थे। व्यवसायी आदमी हैं; काशी में उनकी कोठी है।

श्रीरामकृष्ण—क्यों जी, काशी गये थे, कुछ साधु-महात्मा भी देखे?

मणिलाल—जी हाँ, त्रैलंगस्वामी, भास्करानन्द, इन सब को देखने गया था।

श्रीरामकृष्ण—कहो, इन सब को कैसे देखा?

मणिलाल—त्रैलंगस्वामी उसी ठाकुरबाड़ी में हैं, मणिकर्णिका घाट पर वेणीमाधव के पास। लोग कहते हैं, पहले उनकी बड़ी ऊँची अवस्था थी। बड़े बड़े चमत्कार दिखला सकते थे। अब बहुत-कुछ घट गया है।

श्रीरामकृष्ण—यह सब विषयी लोगों की निन्दा है!

मणिलाल—भास्करानन्द सब से मिलते जुलते हैं, वे त्रैलंगस्वामी की तरह नहीं हैं कि एकदम बोलना ही बन्द।

श्रीरामकृष्ण—भास्करानन्द से तुम्हारी कोई बातचीत हुई?

मणिलाल—जी हाँ, बहुत बातें हुईं। उनसे पापपुण्य की भी बात चली थी। उन्होंने कहा, पापमार्ग का त्याग करना, पाप की चिन्ता न करना, ईश्वर यही सब चाहते हैं। जिन कामों के करने से पुण्य होता है, उन्हीं कामों को करना चाहिए।

सिद्धों की दृष्टि में 'ईश्वर ही कर्ता हैं'

श्रीरामकृष्ण—हाँ, यह एक तरह की बात है।—ऐहिक इच्छाएँ रखनेवालों के लिए। परन्तु जिनमें चैतन्य का उदय हुआ है, जिन्हें यह बोध हो गया है कि ईश्वर ही सत्य हैं, और सब असत्, अनित्य, उनका भाव एक दूसरी तरह का होता है। वे जानते हैं कि ईश्वर ही एकमात्र कर्ता हैं और सब अकर्ता हैं। जिन्हें चैतन्य हुआ है, उनके पैर बेताल नहीं पड़ते। उन्हें हिसाब-किताब करके पाप का त्याग नहीं करना पड़ता। ईश्वर पर उनका इतना अनुराग होता है कि जो कर्म वे करते हैं, वही सत्कर्म हो जाता है! परन्तु वे जानते हैं कि इन सब कर्मों का कर्ता मैं नहीं हूं; मैं तो उनका दास हूँ। मैं यन्त्र हूँ, वे यन्त्री हैं। वे जैसा कराते हैं, वैसा ही करता हूं; जैसा कहलाते हैं, वैसा ही कहता हूँ; जैसा चलाते हैं, वैसा ही चलता हूँ।

"जिन्हें चैतन्य हुआ है, वे पापपुण्य के पार चले गये हैं। वे देखते हैं, ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं। कहीं एक मठ था। मठ के साधु-महात्मा रोज भिक्षा के लिए जाया करते थे। एक दिन एक साधु ने देखा कि एक जमींदार किसी किसान को पीट रहा है। साधु बड़े दयालु थे। बीच में पड़कर उन्होंने जमींदार को मारने से मना किया। जमींदार उस समय मारे गुस्से के आगबबूला हो रहा था। उसने दिल का सारा बुखार महात्माजी पर ही उतारा; उन्हें इतना पीटा कि वे बड़ी देर तक बेहोश पड़े रहे। किसी ने मठ में जाकर खबर दी कि तुम्हारे किसी साधु को जमींदार ने बहुत मारा। मठ के साधु दौड़ते हुए आये और देखा तो वे साधु बेहोश पड़े हैं। तब उन्होंने उन्हें उठाकर मठ मे लाया और एक कमरे में सुला दिया। साधु बेहोश थे, चारों ओर से लोग उन्हें

घेरे दुःखित भाव से बैठे थे। कोई कोई पंखा झल रहे थे। एक ने कहा 'मुँह में जरा दूध डालकर तो देखो।' मुँह में दूध डालने पर उन्हें होश आया। आँखें खोलकर ताकने लगे। किसी ने कहा, 'अब यह देखना चाहिए कि इन्हें इतना ज्ञान है या नहीं कि आदमी पहचान सकें।' यह कहकर उसने ऊँची आवाज लगाकर पूछा 'क्यों महाराज, आपको दूध कौन पिला रहा है?' साधु ने धीमे स्वर में कहा, 'भाई! जिसने मुझे मारा था वही अब दूध पिला रहा है।'

"ईश्वर को बिना जाने ऐसी अवस्था नहीं होती।"

मणिलाल–जी हाँ, पर आपने यह जो कहा यह बड़ी ऊँची अवस्था की बात है। भास्करानन्द के साथ ऐसी ही कुछ बातें हुई थीं।

श्रीरामकृष्ण–वे किसी मकान में रहते हैं ?

मणिलाल–जी हाँ, एक आदमी के मकान में रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण–उम्र क्या है ?

मणिलाल–पचपन की होगी।

श्रीरामकृष्ण–कुछ और भी बातें हुईं ?

मणिलाल–मैंने पूछा, भक्ति कैसे हो ? उन्होंने बतलाया, नाम जपो, राम राम कहो।

श्रीरामकृष्ण–यह बड़ी अच्छी बात है।

(२)

गृहस्थ और कर्मयोग

मन्दिर में भवतारिणी, राधाकान्त और द्वादश शिवों की पूजा समाप्त हो गयी। अब उनकी भोगारती के बाजे बज रहे हैं। चैत का महीना, दोपहर का समय है। अभी अभी ज्वार का चढ़ना आरम्भ हुआ है। दक्षिण की ओर से बड़े जोरों की हवा चल रही है। पूतसलिला भागीरथी अभी अभी उत्तरवाहिनी हुई हैं।

श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद कमरे में विश्राम कर रहे हैं।

राखाल बसीरहाट में रहते हैं। वहाँ गर्मी के दिनों में पानी के अभाव से लोगों को बड़ा कष्ट होता है।

श्रीरामकृष्ण (मणिलाल से)—देखो, राखाल कहता था, उसके देश में लोगों को पानी बिना बड़ा कष्ट होता है। तुम वहाँ एक तालाव क्यों नही खुदवा देते ? इससे लोगों का कितना उपकार होगा ! (हंसते हुए) तुम्हारे पास तो बहुत रुपये हैं, इतने रुपये रखकर क्या करोगे ? वैसे सुना है, तेली लोग बड़े हिसाबी होते हैं। (श्रीरामकृष्ण के साथ दूसरे भक्त भी हँस पड़े।)

मणिलाल कलकत्ते की सिंदूरियापट्टी में रहते हैं। सिंदूरियापट्टी के ब्राह्मसमाज का अधिवेशन उन्हीं के यहाँ होता है। ब्राह्मसमाज के वार्षिक उत्सव में वे बहुतसे लोगों को आमन्त्रित करते हैं। श्रीरामकृष्ण को भी आमन्त्रण देते हैं। वराहनगर में मणिलाल का एक बगीचा है। वहाँ वे बहुधा अकेले आया करते हैं और उस समय श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर जाया करते हैं। वे सचमुच बड़े हिसाबी हैं। रास्ते भर के लिए किराये की गाड़ी नहीं करते। पहले ट्राम में चढ़कर शोभाबाजार तक आते हैं; फिर वहाँ से कुछ आदमियों के साथ हिस्से में किराया देकर घोड़ागाड़ी पर चढ़कर वराहनगर आते हैं। परन्तु रुपये की कमी नहीं है। कुछ साल बाद गरीब विद्यार्थियों के लिए उन्होंने एक ही किश्त में पचीस हजार रुपये देने का बन्दोबस्त कर दिया था।

मणिलाल चुप बैठे रहे। कुछ देर इधर उधर की बातें करके बोले, "महाराज ! आप तालाब खुदवाने की बात कह रहे थे। उतना कहने ही से काम हो जाता, ऊपर से तेली-तमोली कहने की क्या जरूरत थी ?" श्रीरामकृष्ण मुसकराने लगे।

(३)

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण तथा ब्राह्मभक्त । प्रेमतत्त्व

कुछ देर बाद कलकत्ते से कुछ पुराने ब्राह्मभक्त आ पहुँचे। उनमें एक श्री ठाकुरदास सेन भी थे । कमरे में कितने ही भक्तों का समागम हुआ है । श्रीरामकृष्ण अपने छोटे तख्त पर बैठे हुए हैं । सहास्यवदन, बालक की-सी मूर्ति, उत्तरास्य होकर बैठे हैं । ब्राह्मभक्तों के साथ आनन्द से वार्तालाप कर रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण (ब्राह्म तथा दूसरे भक्तों से)—तुम लोग 'प्रेम, प्रेम' चिल्लाते हो, पर प्रेम को क्या ऐसी साधारण वस्तु समझ लिया है ? प्रेम चैतन्यदेव को हुआ था। प्रेम के दो लक्षण हैं । पहला, संसार भूल जाता है । ईश्वर पर इतना प्यार होता है कि संसार का कोई ज्ञान ही नहीं रह जाता । चैतन्यदेव वन देखकर वृन्दा-वन सोचते थे और समुद्र देखकर यमुना सोचते थे । दूसरा लक्षण यह है कि अपनी देह जो इतनी प्यारी वस्तु है, उस पर भी ममता नहीं रह जाती । देहात्मबोध समूल नष्ट हो जाता है ।

"ईश्वर के दर्शन हुए विना प्रेम नहीं होता ।

"ईश्वरप्राप्ति के कुछ लक्षण हैं । जिसके भीतर अनुराग के ऐश्वर्य प्रकाशित हो रहे हैं, उसके लिए ईश्वरप्राप्ति में अधिक देर नहीं है ।

"अनुराग के ऐश्वर्य क्या हैं, सुनोगे ? विवेक, वैराग्य, जीवों पर दया, साधुसेवा, साधुसंग, ईश्वर का नाम-गुणकीर्तन, सत्य-वचन, यह सब ।

"अनुराग के ये सब लक्षण देखने पर ठीक ठीक कहा जा सकता है कि ईश्वरप्राप्ति में अब बहुत देर नहीं है । यदि मालिक का कसी नौकर के घर जाना ठीक हो जाय तो नौकर के घर की

दशा देखकर यह बात समझ में आ जाती है। पहले घासफूस की कटाई होती है, घर का जाला झाड़ा जाता है, घर बुहारा जाता है। बाबू खुद अपने यहाँ से दरी, हुक्का वगैरह भेज देते हैं। यह सब सामान जब उसके घर आने लगता है, तब लोगों के समझने में कुछ बाकी नहीं रहता कि अब बाबूजी आना ही चाहते हैं।"

एक भक्त—क्या पहले विचार करके इन्द्रियनिग्रह करना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण—वह भी एक रास्ता है—विचारमार्ग। भक्ति-मार्ग से अन्तरिन्द्रिय-निग्रह आप ही आप हो जाता है और सहज ही हो जाता है। ईश्वर पर प्यार जितना ही बढ़ता जाता है, उतना ही इन्द्रियसुख अलोना मालूम पड़ता है।

"जिस रोज लड़का मर जाता है उस रोज क्या स्त्री-पुरुष का मन देहसुख की ओर जा सकता है?"

एक भक्त—उन्हें प्यार कर कहाँ सकते हैं?

नाममाहात्म्य

श्रीरामकृष्ण—उनका नाम लेते रहने से सब पाप कट जाते हैं। काम, क्रोध, शरीरसुख की इच्छा, ये सब दूर हो जाते हैं।

एक भक्त—उनके नाम में रुचि नहीं होती।

श्रीरामकृष्ण—व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करो जिससे उनके नाम में रुचि हो। वे ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण देवदुर्लभ कण्ठ से गाने लगे। जीवों के दुःख से कातर होकर माँ से अपने हृदय का दुःख कह रहे हैं। अपने पर प्राकृत जीवों की अवस्था का आरोप करके माँ को जीवों का दुःख गाकर सुना रहे हैं। गीत का आशय यह है—

"माँ श्यामा! दोष किसी का नहीं, मैं अपने ही हाथों से खोदे हुए कुएँ के पानी में डूब रहा हूँ। माँ कालमनोरमा, षड्रिपुओं

की कुदाल लेकर मैंने पुण्यक्षेत्र पर कूप खोदा, जिसमें अब कालरूपी पानी बढ़ रहा है। तारिणि, त्रिगुणधारिणी माँ, मेरे ही गुणों ने विगुण कर दिया है, अब मेरी क्या दशा होगी ? इस वारि का निवारण कैसे करूँ यह सोचते हुए 'दाशरथि' की आँखों से निरन्तर वारिधारा बह रही है। पहले पानी कमर तक था, वहाँ से छाती तक आया। इस पानी में मेरे जीवन की रक्षा कैसे होगी? माँ, मुझे तेरी ही अपेक्षा है। मुझे तू मुक्तिभिक्षा दे, कृपाकटाक्ष करके पार कर दे।"

फिर गाने लगे। उनके नाम पर रुचि होने से जीवों का विकार दूर हो जाता है—इसी भाव का गीत है।

(भावार्थ)—"हे शंकरि ! यह कैसा विकार है ? तुम्हारी कृपा-औषधि मिलने पर ही यह दूर होगा। मिथ्या गर्व से मेरा सर्वांग जल रहा है। मुझे यह कैसा मोह हो गया है ! धन-जन की तृष्णा छूटती ही नहीं, अब मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ ? सर्वमंगले, जो कुछ कहता हूँ सब अनित्य प्रलाप है। आँखों से माया की नींद किसी तरह नहीं छूटती। पेट में हिंसा की कृमि हो गयी है। व्यर्थ कामों में घूमते रहने का भ्रमरोग हो गया है। जब तुम्हारे नाम ही पर अरुचि है, तब भला इस रोग से मैं कैसे बच सकूँगा ?"

श्रीरामकृष्ण—उनके नाम में अरुचि। रोग में यदि अरुचि हो गयी तो फिर बचने की राह नहीं रह जाती। यदि जरा भी रुचि हो तो बचने की बहुत-कुछ आशा है। इसीलिए नाम में रुचि होनी चाहिए। ईश्वर का नाम लेना चाहिए—दुर्गानाम, कृष्ण-नाम, शिवनाम, चाहे जिस नाम से पुकारो। यदि नाम लेने में दिनदिन अनुराग बढ़ता जाय, आनन्द हो तो फिर कोई भय नहीं,—विकार दूर होगा ही, उनकी कृपा अवश्य होगी।

आन्तरिक भक्ति तथा दिखावटी भक्ति। भगवान् मन देखते हैं।

"जैसा भाव होता है लाभ भी वैसा ही होता है। रास्ते से दो

मित्र जा रहे थे। एक जगह भागवत पाठ चल रहा था। एक मित्र ने कहा, 'आओ भाई, जरा भागवत सुनें।' दूसरे ने जरा झाँककर देखा। फिर वहाँ से वेश्या के घर चला गया। वहाँ कुछ देर बाद उसके मन में बड़ी विरक्ति हो आयी। वह आप ही आप कहने लगा, 'मुझे धिक्कार है! मेरा मित्र तो भागवत सुन रहा है और मैं यहाँ कहाँ पड़ा हूँ!' इधर जो व्यक्ति भागवत सुन रहा था वह भी अपने मन को धिक्कार रहा था। वह कह रहा था, 'मैं कैसा मूर्ख हूँ! यह पण्डित न जाने क्या बक रहा है और मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ! मेरा मित्र वहाँ कैसे आनन्द में होगा!' जब ये दोनों मरे तब जो भागवत सुन रहा था, उसे तो यमदूत ले गये और जो वेश्या के घर गया था, उसे विष्णु के दूत वैकुण्ठ में ले गये।

"भगवान् मन देखते हैं। कौन क्या कर रहा है, कहाँ पड़ा हुआ है, यह नहीं देखते। 'भावग्राही जनार्दनः।'

"कर्ताभजा सम्प्रदाय के लोग मन्त्रदीक्षा देने के समय कहते हैं, 'अब मन तेरा है'। अर्थात् अब सब कुछ तेरे मन पर निर्भर है।

"वे कहते हैं, जिसका मन ठीक है, उसका करण ठीक है, वह अवश्य ईश्वर को प्राप्त करेगा।

"मन के ही गुण से हनुमान समुद्र पार कर गये। 'मैं श्रीरामचन्द्र का दास हूँ, मैंने रामनाम उच्चारण किया है, मैं क्या नहीं कर सकता!'—विश्वास इसे कहते हैं।

ईश्वरदर्शन क्यों नहीं होते?—अहंभाव के कारण

"जब तक अहंकार है तब तक अज्ञान है। अहंकार के रहते मुक्ति नहीं होती।

"गौएँ 'हम्मा' 'हम्मा' करती हैं और बकरे 'में' 'में' करते हैं।

इसीलिए उनको इतना कष्ट भोगना पड़ता है। कसाई काटते हैं, चमड़े से जूते बनते हैं, ढोल मढ़ा जाता है—दु:ख की पराकाष्ठा हो जाती है। हिन्दी में अपने को 'हम' कहते हैं और 'मैं' भी कहते हैं। 'मैं' 'मैं' करने के कारण कितने कर्म भोगने पड़ते हैं! अन्त में आँतों से धनुहे की ताँत बनायी जाती है। धनुहे के हाथ में जब वह पड़ती है, तब 'तूँ' 'तूँ' कहती है। 'तूँ' कहने के बाद निस्तार होता है। फिर दु:ख नहीं उठाना पड़ता।

"हे ईश्वर, तुम कर्ता हो और मैं अकर्ता हूँ, इसी का नाम ज्ञान है।

"नीचे आने से ही ऊँचे उठा जाता है। चातक पक्षी का घोसला नीचे रहता है, परन्तु वह बहुत ऊँचे उड़ जाता है। ऊँची जमीन में कृषि नहीं होती। नीची जमीन चाहिए। पानी उसी में रुकता है। तभी कृषि होती है।

साधुसंग तथा प्रार्थना

"कुछ कष्ट उठाकर सत्संग करना चाहिए। घर में तो केवल विषय-चर्चा होती है, रोग लगा ही रहता है। जब चिड़िया सीखचे पर बैठती है तभी 'राम राम' बोलती है, जब वन में उड़ जाती है तब वही 'टें टें' करने लगती है।

"धन होने से ही कोई बड़ा आदमी नहीं हो जाता। बड़े आदमी के घर का यह लक्षण है कि सब कमरों में दिये जलते रहते हैं। गरीब तेल नहीं खर्च कर सकते; इसीलिए दिये का वैसा बन्दोबस्त नहीं कर सकते। यह देहमन्दिर अँधेरे में न रखना चाहिए, ज्ञानदीप जला देना चाहिए! 'ज्ञानदीप जलाकर ब्रह्ममयी का मुंह देखो।'

"ज्ञान सभी को हो सकता है। जीवात्मा और परमात्मा।

प्रार्थना करो, उस परमात्मा के साथ सभी जीवों का योग हो सकता है। गैस का नल सब घरों में लगाया हुआ है और गैस गैस-कम्पनी के यहाँ मिलती है। अर्जी भेजो, गैस का बन्दोबस्त हो जायगा, घर में गैसबत्ती जल जायगी। सियालदह में आफिस है। (सब हँसते हैं।)

"किसी किसी को चैतन्य हुआ है इसके लक्षण भी हैं। ईश्वरी प्रसंग को छोड़ और कुछ सुनने को उसका जी नहीं चाहता। ईश्वरी प्रसंग के सिवा कोई दूसरी बात करना उसे अच्छा नहीं लगता। जैसे सातों समुद्र, गंगा-यमुना और सब नदियों में पानी है, परन्तु चातक को वर्षा की बूँदों की ही रट रहती है। चाहे मारे प्यास के छाती फट जाय, परन्तु वह दूसरा पानी कभी नहीं पीता।"

(४)

गोपीप्रेम। 'अनुरागरूपी बाघ'

श्रीरामकृष्ण ने कुछ गाने के लिए कहा। रामलाल और काली-मन्दिर के एक ब्राह्मण कर्मचारी गाने लगे। ठेका लगाने के लिए एक बायाँ मात्र था। कुछ भजन गाये गये।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)—बाघ जैसे दूसरे पशुओं को खा जात है, वैसे 'अनुरागरूपी बाघ' काम-क्रोध आदि रिपुओं को खा जाता है। एक बार ईश्वर पर अनुराग होने से फिर काम-क्रोध आदि नहीं रह जाते। गोपियों की ऐसी ही अवस्था हुई थी। श्रीकृष्ण पर उनका ऐसा ही अनुराग था।

"और है 'अनुराग-अंजन'। श्रीमती (राधा) कहती हैं—'सखियो, मैं चारों ओर कृष्ण ही देखती हूँ।' उन लोगों ने कहा—'सखि, तुमने आँखों में अनुराग-अंजन लगा लिया है, इसीलिए

ऐसा देखती हो।'

"इस प्रकार लिखा है कि मेढक का सिर जलाकर उसका अंजन आँखों में लगाने से चारों ओर साँप ही साँप दीख पड़ते हैं।

"जो लोग केवल कामिनी-कांचन में पड़े हुए हैं, कभी ईश्वर का स्मरण नहीं करते. वे वद्ध जीव हैं। उन्हें लेकर क्या कभी महान् कार्य हो सकता है ? जैसे कौए का चोंच मारा हुआ आम ठाकुरसेवा में लगाने की क्या, खाने में भी हिचकिचाहट होती है।

"संसारी जीव, वद्धजीव, ये रेशम के कीड़े हैं। यदि चाहें तो कोश को काटकर बाहर निकल सकते हैं; परन्तु खुद जिस घर को बनाया है, उसे छोड़ने में बड़ा मोह होता है। फल यह होता है कि उसी में उनकी मृत्यु हो जाती है।

"जो मुक्त जीव हैं, वे कामिनी-कांचन के वशीभूत नहीं होते। कोई कोई कीड़े (रेशम के) जिस कोये को इतने प्रयत्न से बनाते हैं, उसे काटकर निकल भी आते हैं। परन्तु ऐसे एक ही दो होते हैं।

"माया मोह में डाले रहती है। दो एक मनुष्यों को ज्ञान होता है। वे माया के भुलावे में नहीं आते--कामिनी-कांचन के वशीभूत नहीं होते।

"साधनसिद्ध और कृपासिद्ध। कोई कोई वड़े परिश्रम से खेत में पानी खींचकर लाते हैं। यदि ला सकें तो फसल भी अच्छी होती है। किसी किसी को पानी सींचना ही नहीं पड़ा, वर्षा के जल से खेत भर गया। उसे पानी सींचने के लिए कष्ट नहीं उठाना पड़ा। माया के हाथ से रक्षा पाने के लिए कष्टसाध्य साधनभजन करना पड़ता है। कृपासिद्ध को कष्ट नहीं उठाना पड़ता। परन्तु ऐसे दो ही एक मनुष्य होते हैं।

"और हैं नित्यसिद्ध। इनका ज्ञान--चैतन्य--जन्म-जन्मान्तरों

में बना ही रहता है। मानो फौआरे की कल बन्द है, मिस्त्री ने इसे उसे खोलते हुए उसको भी खोल दिया और उससे फर्र से पानी निकलने लगा। जब नित्यसिद्ध का प्रथम अनुराग मनुष्य देखते हैं तब आश्चर्य से कहने लगते हैं—'इतनी भक्ति, इतना वैराग्य, इतना प्रेम इसमें कहाँ था ?' "

श्रीरामकृष्ण गोपियों के अनुराग की बात कह रहे हैं। फिर गाना होने लगा। रामलाल गाने लगे। गीत का आशय यह है—

"हे नाथ ! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो, तुम्हीं हमारे प्राणों के आधार हो और सब वस्तुओं में सार पदार्थ भी तुम्हीं हो। तुम्हें छोड़ तीनों लोक में अपना और कोई नहीं। सुख, शान्ति, सहाय, सम्बल, सम्पद्, ऐश्वर्य, ज्ञान, बुद्धि, बल, वासगृह, आरामस्थल, आत्मीय, मित्र, परिवार सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हीं हमारे इहकाल हो और तुम्हीं परकाल हो, तुम्हीं परित्राण हो और तुम्हीं स्वर्ग-धाम हो, शास्त्रविधि और कल्पतरु गुरु भी तुम्हीं हो; तुम्हीं हमारे अनन्त सुख के आधार हो। हमारे उपाय, हमारे उद्देश्य तुम्हीं हो। तुम्हीं स्रष्टा, पालनकर्ता और उपास्य हो ! दण्डदाता पिता, स्नेहमयी माता और भवार्णव के कर्णधार भी तुम्हीं हो।"

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)—अहा ! कैसा गीत है !—'तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो।' अक्रूर के आने पर गोपियों ने श्रीराधा से कहा, 'राधे ! यह तेरे सर्वस्व-धन का हरण करने के लिए आया है।' प्यार यह है। ईश्वर के लिए व्याकुलता इसे कहते हैं।

फिर गाना होने लगा—

(भावार्थ)—"रथचक्र को न पकड़ो, न पकड़ो। क्या रथ चक्र से चलता है ! जिनके चक्र से जगत् चलता है वे हरि ही इस चक्र के चक्री हैं।"

गीत सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण गम्भीर समाधि-सागर में डूब गये। भक्तगण श्रीरामकृष्ण को चुपचाप टकटकी लगाये देख रहे हैं। कमरे म सन्नाटा छाया हुआ है। श्रीरामकृष्ण हाथ जोड़े हुए समाधिस्थ बैठे हैं—वैसे ही जैसे फोटोग्राफ में दिखायी देते हैं। नेत्रों से आनन्दधारा बह रही है।

बड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हुए। परन्तु अभी उन्हीं से वार्तालाप कर रहे हैं, जिन्हें समाधि-अवस्था में देख रहे थे। कोई कोई शब्द सुन पड़ता है। श्रीरामकृष्ण आप ही आप कह रहे हैं—"तुम्हीं मैं हो, मैं ही तुम हूँ।...खूब करते हो परन्तु!"

"यह मुझे पीलिया रोग तो नहीं हो गया?—चारों ओर तुम्हीं को देख रहा हूँ।

"हे कृष्ण, दीनबन्धु! प्राणवल्लभ! गोविन्द!"

'प्राणवल्लभ! गोविन्द!' कहते हुए श्रीरामकृष्ण फिर समाधि-मग्न हो गये। भक्तगण महाभावमय श्रीरामकृष्ण को बार बार देख रहे हैं, किन्तु फिर भी नेत्रों की तृप्ति नहीं होती।

(५)

श्रीरामकृष्ण का ईश्वरावेश। उनके मुख से ईश्वरवाणी

श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हैं। अपनी छोटी खाट पर बैठे हुए हैं। चारों ओर भक्तगण बैठे हैं। श्री अधर सेन कुछ मित्रों के साथ आये है। अधर डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं। इन्होंने श्रीरामकृष्ण को पहले एक बार देखा है—आज दूसरी बार देख रहे हैं। इनकी उम्र लगभग उनतीस-तीस वर्ष की होगी। इनके मित्र सारदा-चरण को मृत पुत्र का शोक है। ये स्कूलों के डिप्टी इन्स्पेक्टर रह चुके हैं। अब पेन्शन ले ली है। साधन-भजन पहले ही से कर रहे हैं। बड़े लड़के का देहान्त हो जाने से किसी तरह मन को

सान्त्वना नहीं मिलती। इसीलिए अधर उन्हें श्रीरामकृष्ण के पास ले आये हैं। बहुत दिनों से अधर स्वयं भी श्रीरामकृष्ण को देखना चाहते थे।

श्रीरामकृष्ण की समाधि छूटी। आँखें खोलकर आपने देखा, कमरे भर के लोग आपकी ओर ताक रहे हैं। उस समय आप अपने आप कुछ कहने लगे।

क्या श्रीरामकृष्ण के मुँह से ईश्वर स्वयं उपदेश दे रहे हैं!

श्रीरामकृष्ण–"कभी कभी विषयी मनुष्यों में ज्ञान का उन्मेष होता है, वह दीपशिखा की तरह दीख पड़ता है,—नहीं नहीं, सूर्य की किरण की तरह; छेद के भीतर से मानो किरण निकल रही है। विषयी मनुष्य और ईश्वर का नाम! उसमें अनुराग नहीं होता। जैसे बालक कहता है, तुझे भगवान् की कसम है। घर की स्त्रियों का झगड़ा सुनकर 'भगवान् की कसम' याद कर ली है।

"विषयी मनुष्यों में निष्ठा नहीं होती। हुआ हुआ, न हुआ तो न सही। पानी की जरूरत है, कुआँ खोद रहा है। खोदते खोदते जैसे ही कंकड़ निकला कि बस छोड़ दी वह जगह, दूसरी जगह खोदने लगा। लो, वहाँ भी बालू ही बालू निकलती है! बस वहाँ से भी अलग हुआ। जहाँ खोदना आरम्भ किया है, वहीं जब खोदता रहे तभी तो पानी मिलेगा।

"जीव जैसे कर्म करता है वैसे ही फल भी पाता है।

"इसीलिए गाने में कहा है—

(भावार्थ)–"'माँ श्यामा! दोष किसी का नहीं, मैं अपने ही हाथों खोदे हुए कुएँ के पानी में डूब रहा हूँ।'

"'मैं' और मेरा' अज्ञान है। विचार तो करो, देखोगे जिसे 'मैं' कह रहे हो, वह आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विचार करो—तुम शरीर हो या हाड़ हो या मांस या और कुछ ? तब देखोगे, तुम कुछ नहीं हो। तुम्हारी कोई उपाधि नहीं। तब कहोगे, मैंने कुछ भी नहीं किया; मेरे न दोष हैं, न गुण; न पाप है, न पुण्य।

"यह सोना है और यह पीतल, ऐसे विचार को अज्ञान कहते हैं और सब कुछ सोना है, इसे ज्ञान।

"ईश्वरदर्शन होने पर विचार बन्द हो जाता है। फिर ऐसा भी है कि कोई ईश्वरलाभ करके भी विचार करता है। कोई भक्ति लेकर रहता है, उनका गुणगान करता है।

"बच्चा तभी तक रोता है जब तक उसे माता का दूध पीने को नहीं मिलता। मिला कि रोना बन्द हो गया। तब आनन्दपूर्वक पीता रहता है। परन्तु एक बात है। कभी कभी वह दूध पीते पीते खेलता भी है और आनन्द से किलकारियाँ भरता है।

"वे ही सब कुछ हुए हैं। परन्तु मनुष्य में उनका प्रकाश अधिक है। जहाँ शुद्धसत्त्व बालकों का-सा स्वभाव है कि कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी नाचता है, कभी गाता है, वहाँ वे प्रत्यक्ष भाव से रहते हैं।"

श्रीरामकृष्ण अधर का कुशलसमाचार ले रहे हैं। अधर ने अपने मित्र के पुत्रशोक का हाल कहा। श्रीरामकृष्ण अपने ही भाव में गाने लगे—

(भावार्थ)—" 'जीव ! समर के लिए तैयार हो जाओ। रण के वेश में काल तुम्हारे घर में घुस रहा है। भक्ति-रथ पर चढ़कर, ज्ञान-तूण लेकर रसना-धनुष में प्रेम गुण लगा, ब्रह्ममयी के नाम-रूपी ब्रह्मास्त्र का सन्धान करो। लड़ाई के लिए एक युक्ति और है। तुम्हें रथ-रथी की आवश्यकता न होगी यदि भागीरथी के तट

पर तुम्हारी यह लड़ाई हो।'

"क्या करोगे ? इस काल के लिए तैयार हो जाओ। काल घर में घुस रहा है। उनका नामरूपी अस्त्र लेकर लड़ना होगा। कर्ता वे ही हैं। मैं कहता हूँ, 'जैसा कराते हो, वैसा ही करता हूँ। जैसा कहाते हो, वैसा ही कहता हूँ। मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री; मैं घर हूँ, तुम घर के मालिक; मैं गाड़ी हूँ, तुम इंजिनियर।'

"आममुख्तार उन्हीं को बनाओ। काम का भार अच्छे आदमी को देने से कभी अमंगल नहीं होता। उनकी जो इच्छा हो, करें।

"शोक भला क्यों नहीं होगा। आत्मज है न। रावण मरा तो लक्ष्मण दौड़े हुए गये, देखा, उसके हाड़ों में ऐसी जगह नहीं थी जहाँ छेद न रहे हों। लौटकर राम से बोले—भाई, तुम्हारे बाणों की बड़ी महिमा है, रावण की देह में ऐसी जगह नहीं है जहाँ छेद न हों! राम बोले—हाड़ के भीतरवाले छेद हमारे बाणों के नहीं हैं, मारे शोक के उसके हाड़ जर्जर हो गये हैं। वे छेद शोक के ही चिह्न हैं।

"परन्तु है यह सब अनित्य। गृह, परिवार, सन्तान, सब दो दिन के लिए है। ताड़ का पेड़ ही सत्य है। दो एक फल गिर जाते हैं। इसके लिए दुःख क्यों ?

"ईश्वर तीन काम करते हैं,—सृष्टि, स्थिति और प्रलय। मृत्यु है ही। प्रलय के समय सब ध्वंस हो जायगा, कुछ भी न रह जायगा। माँ केवल सृष्टि के बीज बीनकर रख देंगी। फिर नयी सृष्टि होने के समय उन्हें निकालेंगी। घर की स्त्रियों के जैसे हण्डी रहती है जिसमें वे खीरे-कोहड़े के बीज, समुद्रफेन, नील का डला आदि छोटी छोटी पोटलियों में बाँधकर रख देती हैं।" (सब हँसते हैं।)

(६)

अधर को उपदेश

श्रीरामकृष्ण अधर के साथ अपने कमरे के उत्तरी ओर के बरामदे में खड़े होकर बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (अधर से)—तुम डिप्टी हो। यह पद भी ईश्वर के ही अनुग्रह से मिला है। उन्हें न भूलना, समझना, सब को एक ही रास्ते से जाना है, यहाँ सिर्फ दो दिन के लिए आना हुआ है।

"संसार कर्मभूमि है। यहाँ कर्म करने के लिए आना हुआ है, जैसे देहात में घर है और कलकत्ते में काम करने के लिए आया जाता है।

"कुछ काम करना आवश्यक है। यह साधन है। जल्दी जल्दी सब काम समाप्त कर लेना चाहिए। जब सुनार सोना गलाते हैं, तब धौंकनी, पंखा, फूँकनी आदि से हवा करते हैं, जिससे आग तेज हो और सोना गल जाय। सोना गल जाता है, तब कहते हैं, चिलम भरो। अब तक पसीने पसीने हो रहे थे; पर काम करके ही तम्बाकू पीयेंगे।

"पूरी जिद चाहिए; साधना तभी होती है। दृढ़ प्रतिज्ञा होनी चाहिए।

"उनके नाम-बीज में बड़ी शक्ति है। वह अविद्या का नाश करता है। बीज कितना कोमल है और अंकुर भी कितना नरम होता है, परन्तु मिट्टी कैसी ही कड़ी क्यों न हो, वह उसे पार कर ही जाता है—मिट्टी फट जाती है।

"कामिनी-कांचन के भीतर रहने से वे मन को खींच लेते हैं। सावधानी से रहना चाहिए। त्यागियों के लिए विशेष भय की

बात नहीं। यथार्थ त्यागी कामिनी-कांचन से अलग रहता है। साधना के बल से सदा ईश्वर पर मन रखा जा सकता है।

"जो यथार्थ त्यागी हैं वे सर्वदा ईश्वर पर मन रख सकते हैं; वे मधुमक्खी की तरह केवल फूल पर बैठते हैं; मधु ही पीते हैं। जो लोग संसार में कामिनी-कांचन के भीतर हैं उनका मन ईश्वर में लगता तो है, पर कभी कभी कामिनी-कांचन पर भी चला जाता है; जैसे साधारण मक्खियाँ बर्फी पर भी बैठती हैं और सड़े घाव पर भी बैठती हैं। हाँ, विष्ठा पर भी बैठती हैं।

"मन सदा ईश्वर पर रखना। पहले कुछ मेहनत करनी पड़ेगी; फिर पेन्शन पा जाओगे।"

परिच्छेद ३०

सुरेन्द्र के मकान पर उत्सव में

(१)

अहंकार। स्वाधीन इच्छा अथवा ईश्वर-इच्छा। साधुसंग

सुरेन्द्र के घर के आँगन में श्रीरामकृष्ण सभा को आलोकित कर बैठे हुए हैं। शाम के छः बजे होंगे।

आँगन से पूर्व की ओर, दालान के भीतर, देवीप्रतिमा प्रतिष्ठित है। माता के पादपद्मों में जवा और विल्वपत्र तथा गले में फूलों की माला शोभायमान है। माता दालान को आलोकित करके बैठी हुई हैं।

आज अन्नपूर्णा देवी की पूजा है। चैत्र शुक्ला अष्टमी, १५ अप्रैल १८८३, दिन रविवार। सुरेन्द्र माता की पूजा कर रहे हैं, इसीलिए निमन्त्रण देकर श्रीरामकृष्ण को ले आये हैं। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ आये हैं। आते ही उन्होंने दालान पर चढ़कर देवी के दर्शन किये। फिर प्रणाम करके खड़े होकर देवी की ओर देखते हुए उँगलियों पर मूलमन्त्र जपने लगे। भक्तगण दर्शन और प्रणाम करके पास ही खड़े हैं।

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ आँगन में आये। आँगन में दरी पर साफ चद्दर बिछी है। उस पर कुछ तकिये रखे हुए हैं। एक ओर मृदंग-करताल लेकर कुछ वैष्णव बैठे हुए हैं; संकीर्तन होगा। भक्तगण श्रीरामकृष्ण को घेरकर बैठ गये।

लोग श्रीरामकृष्ण को एक तकिये के पास ले जाकर बैठाने लगे; परन्तु वे तकिया हटाकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)—तकिये के सहारे बैठना! जानते हो

न अभिमान छोड़ना बड़ा कठिन है ! अभी विचार कर रहे हो कि अभिमान कुछ नहीं है, परन्तु फिर न जाने कहाँ से आ जाता है !

"बकरा काट डाला गया, फिर भी उसके अंग हिल रहे हैं।

"स्वप्न में डर गये हो; आँखें खुल गयीं, बिलकुल सचेत हो गये, फिर भी छाती धड़क रही है। अभिमान ठीक ऐसा ही है। हटा देने पर भी न जाने कहाँ से आ जाता है ! बस आदमी मुँह फुलाकर कहने लगता है, मेरा आदर नहीं किया।"

केदार–'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।'

श्रीरामकृष्ण–मैं भक्तों की रेणु की रेणु हूँ।

वैद्यनाथ आये हैं। वैद्यनाथ विद्वान् हैं। कलकत्ते के हाइकोर्ट के वकील हैं। वे श्रीरामकृष्ण को हाथ जोड़कर प्रणाम करके एक ओर बैठ गये।

सुरेन्द्र (श्रीरामकृष्ण से)–ये मेरे आत्मीय हैं।

श्रीरामकृष्ण–हाँ, इनका स्वभाव तो बड़ा अच्छा है।

सुरेन्द्र–ये आपसे कुछ पूछना चाहते हैं, इसीलिए आये हैं।

श्रीरामकृष्ण (वैद्यनाथ से)–जो कुछ देख रहे हो, सभी उनकी शक्ति है। उनकी शक्ति के बिना कोई कुछ भी नहीं कर सकता। परन्तु एक बात है। उनकी शक्ति सब जगह बराबर नहीं है। विद्यासागर ने कहा था, 'परमात्मा ने क्या किसी को अधिक शक्ति दी है ?' मैंने कहा, 'शक्ति अगर अधिक न देते तो तुम्हें हम लोग देखने क्यों आते ? तुम्हारे दो सींग थोड़े ही हैं !' अन्त में यही ठहरा कि विभु रूप से सर्वभूतों में ईश्वर हैं, केवल शक्ति का भेद है।

वैद्यनाथ–महाराज ! मुझे एक सन्देह है। यह जो Free Will अर्थात् स्वाधीन इच्छा की बात होती है,—कहते हैं कि हम इच्छा करें तो अच्छा काम भी कर सकते हैं और बुरा भी,—क्या यह सच है ? क्या हम सचमुच स्वाधीन हैं ?

श्रीरामकृष्ण–सभी ईश्वर के अधीन है। उन्हीं की लीला है। उन्होंने अनेक वस्तुओं की सृष्टि की है,—छोटी-बड़ी, भली-बुरी, मजबूत-कमजोर। अच्छे आदमी, बुरे आदमी। यह सब उन्हीं की माया है—उन्हीं का खेल है। देखो न, बगीचे के सब पेड़ बराबर नहीं होते।

"जब तक ईश्वर नहीं मिलते, तब तक जान पड़ता है, हम स्वाधीन हैं। यह भ्रम वे ही रख देते हैं, नहीं तो पाप की वृद्धि होती, पाप से कोई न डरता, न पाप की सजा मिलती।

"जिन्होंने ईश्वर को पा लिया है, उनका भाव जानते हो क्या है? मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो; मैं गृह हूँ, तुम गृही; मैं रथ हूँ, तुम रथी; जैसा चलाते हो, वैसा ही चलता हूं; जैसा कहाते हो, वैसा ही कहता हूँ।

(वैद्यनाथ से)–"तर्क करना अच्छा नहीं। आप क्या कहते हैं?"

वैद्यनाथ–जी हाँ, तर्क करने का स्वभाव ज्ञान होने पर नष्ट हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण–Thank you (धन्यवाद)! (लोग हंसते हैं।) तुम पाओगे। ईश्वर की बात कोई कहता है, तो लोगों को विश्वास नहीं होता। यदि कोई महापुरुष कहे, मैंने ईश्वर को देखा है, तो कोई उस महापुरुष की बात ग्रहण नहीं करता। लोग सोचते हैं, इसने अगर ईश्वर को देखा है तो हमें भी दिखाये तो जानें। परन्तु नाड़ी देखना कोई एक दिन में थोड़े ही सीख लेता है! वैद्य के पीछे महीनों घूमना पड़ता है। तभी वह कह सकता है, कौन कफ की नाड़ी है, कौन पित्त की है और कौन वात की है। नाड़ी देखना जिनका पेशा है, उनका संग करना चाहिए। (सब हँसते हैं।)

"क्या सभी पहचान सकते हैं कि यह अमुक नम्बर का सूत है?

सूत का व्यवसाय करो, जो लोग व्यवसाय करते हैं, उनकी दूकान में कुछ दिन रहो, तो कौन चालीस नम्बर का सूत है, कौन इकतालीस नम्बर का, तुरन्त कह सकोगे।"

(२)

भक्तों के साथ कीर्तनानन्द। समाधि में

अब संकीर्तन होगा। मृदंग बजाया जा रहा है। गोष्ठ मृदंग बजा रहा है। अभी गाना शुरू नहीं हुआ। मृदंग का मधुर वाद्य गौरांग-मण्डल और उनके नामसंकीर्तन की याद दिलाकर मन को उद्दीप्त करता है। श्रीरामकृष्ण भाव में मग्न हो रहे हैं। रह-रहकर मृदंगवादक पर दृष्टि डालकर कह रहे हैं—"अहा! मुझे रोमांच हो रहा है!"

गवैयों ने पूछा, "कैसा पद गायें?" श्रीरामकृष्ण ने विनीत भाव से कहा, "जरा गौरांग के कीर्तन गाओ।"

कीर्तन आरम्भ हो गया। पहले गौरचन्द्रिका होगी, फिर दूसरे गाने।

कीर्तन में गौरांग के रूप का वर्णन हो रहा है। कीर्तन-गवैये अन्तरों में चुन-चुनकर अच्छे पद जोड़ते हुए गा रहे हैं—"सखि, मैंने पूर्णचन्द्र देखा", "न ह्रास है—न मृगांक", "हृदय को आलोकित करता है।"

गवैयों ने फिर गाया—"कोटि चन्द्र के अमृत से उसका मुख धुला हुआ है।"

श्रीरामकृष्ण यह सुनते ही सुनते समाधिमग्न हो गये।

गाना होता ही रहा। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण की समाधि छूटी। वे भाव में मग्न होकर एकाएक उठकर खड़े हो गये तथा प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं की तरह श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन करते

ए कीर्तन-गवैयों के साथ साथ गाने लगे—"सखि ! रूप का दोष है या मन का ?" "दूसरों को देखती हुई तीनों लोक में श्याम ही श्याम देखती हूँ ।"

श्रीरामकृष्ण नाचते हुए गा रहे हैं । भक्तगण निर्वाक् होकर देख रहे हैं । गवैये फिर गा रहे हैं,—गोपिका की उक्ति—"बंसी री ! तू अब न बज । क्या तुझे नींद भी नहीं आती ?" इसमें पद जोड़कर गा रहे हैं—"और नींद आये भी कैसे !"—"सेज तो करपल्लव है न ?"—"श्रीमुख के अमृत का पान करती है !" —"तिस पर उँगलियाँ सेवा करती हैं !"

श्रीरामकृष्ण ने आसन ग्रहण किया । कीर्तन होता रहा । श्रीमती राधा की उक्ति गायी जाने लगी । वे कहती हैं—"दृष्टि, श्रवण और घ्राण की शक्ति तो चली गयी—सभी इन्द्रियों ने उत्तर दे दिया, तो मैं ही अकेली क्यों रह गयी ?"

अन्त में श्रीराधा-कृष्ण दोनों के एक दूसरे से मिलन का कीर्तन होने लगा—

"राधिकाजी श्रीकृष्ण को पहनाने के लिए माला गूँथ ही रही थीं कि अचानक श्रीकृष्ण उनके सामने आकर खड़े हो गये ।"

युगल-मिलन के संगीत का आशय यह है—

"कुंजवन में श्याम-विनोदिनी राधिका कृष्ण के भावावेश में विभोर हो रही है । दोनों में से न तो किसी के रूप की उपमा हो सकती है और न किसी के प्रेम की ही सीमा है । आधे में सुनहली किरणों की छटा है और आधे में नीलकान्त मणि की ज्योति । गले के आधे हिस्से में वन के फूलों की माला है और आधे में गज-मुक्ता । कानों के अर्धभाग में मकरकुण्डल हैं और अर्धभाग में रत्नों की छबि । अर्धललाट में चन्द्रोदय हो रहा है

और आधे में सूर्योदय। मस्तक के अर्धभाग में मयूरशिखण्ड शोभा पा रहा है और आधे में वेणी। कनककमल झिलमिला रहे हैं, फणी मानो मणि उगल रहा है।"

कीर्तन वन्द हुआ। श्रीरामकृष्ण 'भागवत, भक्त, भगवान्' इस मन्त्र का वार बार उच्चारण करते हुए भूमिष्ठ हो प्रणाम कर रहे हैं। चारों ओर के भक्तों को उद्देश्य करके प्रणाम कर रहे हैं और संकीर्तन-भूमि की धूलि लेकर अपने मस्तक पर रख रहे हैं।

(३)

श्रीरामकृष्ण और साकार-निराकार

रात के साढ़े नौ बजे का समय होगा। अन्नपूर्णा देवी दालान को आलोकित कर रही हैं। सामने श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ खड़े हुए हैं। सुरेन्द, राखाल, केदार, मास्टर, राम, मनोमोहन तथा और भी अनेक भक्त हैं। उन लोगों ने श्रीरामकृष्ण के साथ ही प्रसाद पाया है। सुरेन्द्र ने सब को तृप्तिपूर्वक भोजन कराया है। अब श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौटनेवाले हैं। भक्तजन भी अपनें अपने घर जायेंगे। सब लोग दालान में आकर इकट्ठे हुए हैं।

सुरेन्द्र (श्रीरामकृष्ण से)—परन्तु आज मातृवन्दना का एक भी गाना नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण (देवीप्रतिमा की ओर उँगली उठाकर)—अहा! दालान की कैसी शोभा हुई है! माँ मानो अपनी दिव्य छटा छिटकाकर बैठी हुई हैं। इस रूप के दर्शन करने पर कितना आनन्द होता है! भोग की इच्छा, शोक, ये सब भाग जाते हैं। परन्तु क्या निराकार के दर्शन नहीं होते? नहीं, होते हैं। हाँ, जरा भी विषय-बुद्धि के रहते नहीं होते। ऋषियों ने सर्वस्वत्याग करके 'अखण्ड-सच्चिदानन्द' में मन लगाया था।

"आजकल ब्रह्मज्ञानी उन्हें 'अचल-घन' कहकर गाते हैं,—मुझे अलोना लगता है। जो लोग गाते हैं, वे मानो कोई मधुर रस नहीं पाते। शीरे पर ही भूले रहे, तो मिश्री की खोज करने की इच्छा नहीं हो सकती।

"तुम लोग देखते हो—बाहर कैसे सुन्दर दर्शन हो रहे हैं, और आनन्द भी कितना मिलता है। जो लोग निराकार निराकार करके कुछ नहीं पाते, उनके न है बाहर और न है भीतर।"

श्रीरामकृष्ण माता का नाम लेकर इस भाव का गीत गा रहे हैं,—"माँ, आनन्दमयी होकर मुझे निरानन्द न करना। मेरा मन तुम्हारे उन दोनों चरणों के सिवा और कुछ नहीं जानता। मैं नहीं जानता, धर्मराज मुझे किस दोष से दोषी बतला रहे हैं। मेरे मन में यह वासना थी कि तुम्हारा नाम लेता हुआ मैं भव-सागर से तर जाऊँगा। मुझे स्वप्न में भी नहीं मालूम था कि तुम मुझे असीम सागर में डुबा दोगी। दिनरात मैं दुर्गानाम जप रहा हूँ, किन्तु फिर भी मेरी दुःखराशि दूर न हुई। परन्तु हे हर-सुन्दरि, यदि इस बार भी मैं मरा तो यह निश्चय है कि संसार में फिर तुम्हारा नाम कोई न लेगा।"

श्रीरामकृष्ण फिर गाने लगे। गीत इस आशय का है—

"मेरे मन! दुर्गानाम जपो। जो दुर्गानाम जपता हुआ रास्ते में चला जाता है, शूलपाणि शूल लेकर उसकी रक्षा करते हैं। तुम दिवा हो, तुम सन्ध्या हो, तुम्हीं रात्रि हो; कभी तो तुम पुरुष का रूप धारण करती हो, कभी कामिनी बन जाती हो। तुम तो कहती हो कि मुझे छोड़ दो, परन्तु मैं तुम्हें कदापि न छोड़ूँगा,—मैं तुम्हारे चरणों में नूपुर होकर बजता रहूँगा,—जय दुर्गा, श्रीदुर्गा कहता हुआ! माँ, जब शंकरी होकर तुम आकाश में उड़ती

रहोगी तब मैं मीन बनकर पानी में रहूँगा; तुम अपने नखों पर मुझे उठा लेना। हे ब्रह्ममयी, नखों के आघात से यदि मेरे प्राण निकल जायें, तो कृपा करके अपने अरुण चरणों का स्पर्श मुझे करा देना।"

श्रीरामकृष्ण ने देवी को फिर प्रणाम किया। अब सीढ़ियों से उतरते समय पुकारकर कह रहे हैं—"ओ रा– जू– हैं ?" (ओ राखाल ! जूते सब हैं ?)

श्रीरामकृष्ण गाड़ी पर चढ़े। सुरेन्द्र ने प्रणाम किया। दूसरे भक्तों ने भी प्रणाम किया। चाँदनी अभी भी रास्ते पर पड़ रही है। श्रीरामकृष्ण की गाड़ी दक्षिणेश्वर की ओर चल दी।

परिच्छेद ३१

सींती के ब्राह्मसमाज में ब्राह्मभक्तों के साथ

(१)

संसार में निष्काम कर्म

श्रीरामकृष्ण ने श्री वेणी पाल के सींती के बगीचे में शुभागमन किया है। आज सींती के ब्राह्मसमाज का छमाही महोत्सव है। रविवार, चैत्र पूर्णिमा, २२ अप्रैल १८८३। तीसरे प्रहर का समय। अनेक ब्राह्मभक्त उपस्थित हैं। भक्तगण श्रीरामकृष्ण को घेरकर दक्षिण के बरामदे में आ बैठे। सायंकाल के बाद आदिसमाज के आचार्य श्री बेचाराम उपासना करेंगे। ब्राह्मभक्तगण बीच बीच में श्रीरामकृष्ण से प्रश्न कर रहे हैं।

ब्राह्मभक्त—महाराज, मुक्ति का उपाय क्या है?

श्रीरामकृष्ण—उपाय अनुराग, अर्थात् उनसे प्रेम करना, और प्रार्थना।

ब्राह्मभक्त—अनुराग या प्रार्थना?

श्रीरामकृष्ण—अनुराग पहले, फिर प्रार्थना।

श्रीरामकृष्ण सुर के साथ गाना गाने लगे जिसका भावार्थ यह है,—'हे मन, पुकारने की तरह पुकारो तो देखूँ श्यामा कैसे रह सकती हैं!' फिर बोले——

"और सदा ही उनका नामगुणगान, कीर्तन और प्रार्थना करनी चाहिए। पुराने लोटे को रोज माँजना होगा, एक बार माँजने से क्या होगा? और विवेक-वैराग्य तथा संसार अनित्य है यह बुद्धि चाहिए।"

ब्राह्मभक्त—संसार छोड़ना क्या अच्छा है?

श्रीरामकृष्ण—सभी के लिए संसारत्याग ठीक नहीं। जिनके भोग का अन्त नहीं हुआ, उनसे संसारत्याग नहीं होता। रत्ती भर शराब से क्या मस्ती आती है ?

ब्राह्मभक्त—तो फिर वे लोग क्या संसार करेंगे ?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, वे लोग निष्काम कर्म करने की चेष्टा करें। हाथ में तेल मलकर कटहल छीलें। धनियों के घर में दासियाँ सब काम करती हैं, परन्तु मन रहता है अपने निज के घर में; इसी का नाम निष्काम कर्म है।† इसी का नाम है मन से त्याग। तुम लोग मन से त्याग करो। संन्यासी बाहर का त्याग और मन का त्याग दोनों ही करे।

ब्राह्मभक्त—भोग के अन्त का क्या अर्थ है ?

श्रीरामकृष्ण—कामिनी-कांचन भोग है। जिस कमरे में इमली का अचार और पानी की सुराही है, उस कमरे में यदि सन्निपात का रोगी रहे, तो मुश्किल ही है। रुपया, पैसा, मान, इज्जत, शारीरिक सुख ये सब भोग एक बार न हो जाने पर,—भोग का अन्त न होने पर,—ईश्वर के लिए सभी को व्याकुलता नहीं होती।

ब्राह्मभक्त—स्त्री-जाति खराब है या हम खराब हैं ?

श्रीरामकृष्ण—विद्यारूपिणी स्त्री भी है, और फिर अविद्यारूपिणी स्त्री भी है। विद्यारूपिणी स्त्री भगवान् की ओर ले जाती है और अविद्यारूपिणी स्त्री ईश्वर को भुला देती है, संसार में डुबा देती है।

"उनकी महामाया से यह जगत्-संसार हुआ है। इस माया के

---

† कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।—गीता, २।४७
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥—गीता, ९।२७

भीतर विद्यामाया और अविद्यामाया दोनों ही हैं। विद्यामाया का आश्रय लेने पर साधुसंग की इच्छा, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, वैराग्य ये सब होते हैं। पंचभूत तथा इन्द्रियों के भोग के विषय अर्थात् रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द, यह सब अविद्यामाया है। यह ईश्वर को भुला देती है।"

ब्राह्मभक्त--अविद्या यदि अज्ञान पैदा करती है तो उन्होंने अविद्या को पैदा क्यों किया?

श्रीरामकृष्ण--उनकी लीला। अन्धकार न रहने पर प्रकाश की महिमा समझी नहीं जा सकती। दुःख न रहने पर सुख समझा नहीं जा सकता। बुराई का ज्ञान रहने पर ही भलाई का ज्ञान होता है।

"फिर आम पर छिलका है इसीलिए आम बढ़ता है और पकता है। आम जब तैयार हो जाता है उस समय छिलका फेंक देना पड़ता है। मायारूपी छिलका रहने पर ही धीरे धीरे ब्रह्म-ज्ञान होता है। विद्यामाया, अविद्यामाया, आम के छिलके की तरह हैं। दोनों ही आवश्यक हैं!"

ब्राह्मभक्त-अच्छा, साकार पूजा, मिट्टी से बनायी हुई देवमूर्ति की पूजा---ये सब क्या ठीक हैं?

श्रीरामकृष्ण--तुम लोग साकार नहीं मानते हो, अच्छी बात है। तुम्हारे लिए मूर्ति नहीं, भाव मुख्य है। तुम लोग आकर्षण मात्र को लो, जैसे श्रीकृष्ण पर राधा का आकर्षण, प्रेम। साकारवादी जिस प्रकार माँ काली, माँ दुर्गा की पूजा करते हैं, 'माँ, माँ' कहकर पुकारते हैं, कितना प्यार करते हैं,तुम लोग इसी भाव को लो, मूर्ति को न भी मानो तो कोई बात नहीं है।

ब्राह्मभक्त--वैराग्य कैसे होता है? और सभी को क्यों

नहीं होता ?

श्रीरामकृष्ण—भोग की शान्ति हुए बिना वैराग्य नहीं होता। छोटे बच्चे को खाना और खिलौना देकर अच्छी तरह से भुलाया जा सकता है, परन्तु जब खाना हो गया और खिलौने के साथ खेल भी समाप्त हो गया तब वह कहता है, 'माँ के पास जाऊँगा।' माँ के पास न ले जाने पर खिलौना पटक देता है और चिल्लाकर रोता है।

सच्चिदानन्द ही गुरु हैं

ब्राह्मभक्तगण गुरुवाद के विरोधी हैं। इसीलिए ब्राह्मभक्त इस सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं।

ब्राह्मभक्त—महाराज, गुरु न होने पर क्या ज्ञान न होगा ?

श्रीरामकृष्ण—सच्चिदानन्द ही गुरु हैं। यदि कोई मनुष्य गुरु के रूप में तुम्हारा चैतन्य जागृत कर दे तो जानो कि सच्चिदानन्द ने ही उस रूप को धारण किया है। गुरु मानो सखा हैं। हाथ पकड़कर ले जाते हैं। भगवान् का दर्शन होने पर फिर गुरु-शिष्य का ज्ञान नहीं रह जाता। 'वह बड़ा कठिन स्थान है, वहाँ पर गुरु-शिष्यों में साक्षात्कार नहीं होता।' इसीलिए जनक ने शुकदेव से कहा था, 'यदि ब्रह्मज्ञान चाहते हो तो पहले दक्षिणा दो'; क्योंकि ब्रह्मज्ञान हो जाने पर गुरु-शिष्यों में भेदबुद्धि नहीं रहेगी। जब तक ईश्वर का दर्शन नहीं होता, तभी तक गुरु-शिष्य का सम्बन्ध रहता है।

थोड़ी देर में सन्ध्या हुई। ब्राह्मभक्तों में से कोई कोई श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं, "शायद अब आपको सन्ध्या करनी होगी।"

श्रीरामकृष्ण—नहीं, ऐसा कुछ नहीं। यह सब पहले-पहल एक एक बार कर लेना पड़ता है। उसके बाद फिर अर्घ्यपात्र या

नियम आदि की आवश्यकता नहीं रहती।

(२)

श्रीरामकृष्ण तथा आचार्य बेचाराम; वेदान्त और ब्रह्मतत्त्व के प्रसंग में

सन्ध्या के बाद आदि-समाज के आचार्य श्री बेचाराम ने वेदी पर बैठकर उपासना की। बीच बीच में ब्राह्मसंगीत और उपनिषद् का पाठ होने लगा।

उपासना के बाद श्रीरामकृष्ण के साथ बैठकर आचार्यजी अनेक प्रकार के वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है। आपका क्या मत है?

आचार्य—जी, निराकार मानो electric current (बिजली का प्रवाह) है; आँखों से देखा नहीं जाता, परन्तु अनुभव किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, दोनों ही सत्य हैं। साकार-निराकार दोनों सत्य हैं। केवल निराकार कहना कैसा है जानते हो? जैसे शहनाई में सात छेद रहते हुए भी एक व्यक्ति केवल 'पों' करता रहता है, परन्तु दूसरे को देखो, कितनी ही रागरागिनियाँ बजाता है। उसी प्रकार देखो, साकारवादी ईश्वर का कितने भावों से आस्वाद लेता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर—अनेक भावों से।

"असली बात क्या है जानते हो? किसी भी प्रकार से अमृत के कुण्ड* में गिरना है। चाहे स्तव करके गिरो अथवा कोई

---

* अमृतकुण्ड:—आनन्दरूपम् अमृतं यद् विभाति। ब्रह्म एव इदम् अमृतम्, पुरस्ताद् ब्रह्म, पश्चाद् ब्रह्म, दक्षिणतश्चोत्तरेण, अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्म।—मुण्डक उपनिषद् २।२।११

धक्का दे दे और तुम जाकर कुण्ड में गिर पड़ो। परिणाम एक ही होगा। दोनों ही अमर होंगे।

"ब्राह्मों के लिए जल और बरफ की उपमा ठीक है। सच्चिदानन्द मानो अनन्त जलराशि हैं। महासागर का जल ठण्डे देश में स्थान स्थान पर जिस प्रकार बरफ का आकार धारण कर लेता है, उसी प्रकार भक्तिरूपी ठण्ड से वे सच्चिदानन्द भक्त के लिए साकार रूप धारण करते हैं। ऋषियों ने उस अतीन्द्रिय, चिन्मय रूप का दर्शन किया था और उनके साथ वार्तालाप किया था। भक्त के प्रेम के शरीर—भागवती तनु* द्वारा इस चिन्मय रूप का दर्शन होता है।

"फिर है ब्रह्म 'अवाङ्मनसगोचरम्।' ज्ञानरूपी सूर्य के ताप से साकार बरफ गल जाती है; ब्रह्मज्ञान के बाद, निर्विकल्प समाधि के बाद, फिर वही अनन्त, वाक्य-मन के अतीत, अरूप, निराकार ब्रह्म!

"उसका स्वरूप मुख से नहीं कहा जाता, चुप हो जाना पड़ता है। मुख से कहकर अनन्त को कौन समझायेगा? पक्षी जितना ही ऊपर उठता है, उसके ऊपर और भी है। आप क्या कहते हैं?"

आचार्य—जी हाँ, वेदान्त में इसी प्रकार की बातें हैं।

श्रीरामकृष्ण—नमक का पुतला समुद्र नापने गया था; लौटकर फिर उसने खबर न दी। एक मत में है, शुकदेव आदि ने दर्शन-

---

* नारद ने कहा था—"मुझे शुद्धा, सत्त्वमयी, भागवती तनु प्राप्त हो गयी।"

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम्।
आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत् पांचभौतिकः॥

—श्रीमद्भागवत, १।६।२९

स्पर्शन किया था, डुबकी नहीं लगायी थी।

"मैंने विद्यासागर से कहा था, 'सब चीजें उच्छिष्ट हो गयी हैं, परन्तु ब्रह्म उच्छिष्ट नहीं हुआ।[1] अर्थात् ब्रह्म क्या है, कोई मुँह से कह नहीं सका। मुख से बोलने से ही चीज उच्छिष्ट हो जाती है।' विद्यासागर विद्वान् हैं, यह सुनकर बहुत खुश हुए।

"सुना है, केदार के उस तरफ बरफ से ढका पहाड़ है। अधिक ऊँचाई पर उठने से फिर लौटना नहीं होता। जो लोग यह जानने के लिए गये हैं कि अधिक ऊँचाई पर क्या है तथा वहाँ जाने पर कैसी स्थिति होती है, उन्होंने फिर लौटकर खबर नहीं दी।

"उनका दर्शन होने पर मनुष्य आनन्द से विह्वल हो जाता है, चुप हो जाता है।[2] खबर कौन देगा? समझायेगा कौन?

"सात फाटकों से परे राजा है। प्रत्येक फाटक पर एक एक महा ऐश्वर्यवान् पुरुष बैठे हैं। प्रत्येक फाटक में शिष्य पूछ रहा है, 'क्या यही राजा है?' गुरु भी कह रहे हैं 'नहीं'; नेति नेति। सातवें फाटक पर जाकर जो कुछ देखा, एकदम अवाक् रह गये! आनन्द से विह्वल हो गये। फिर यह पूछना न पड़ा कि क्या यही राजा है? देखते ही सब सन्देह मिट गये।[3]"

आचार्य—जी हाँ, वेदान्त में इसी प्रकार सब लिखा है।

श्रीरामकृष्ण—जब वे सृष्टि, स्थिति, प्रलय करते हैं, तब हम उन्हें सगुण ब्रह्म, आद्याशक्ति कहते हैं। जब वे तीनों गुणों से अतीत हैं, तब उन्हें निर्गुण ब्रह्म, वाक्य-मन के अतीत परब्रह्म कहा जाता है।

"मनुष्य उनकी माया में पड़कर अपने स्वरूप को भूल जाता है।

---

[1] अचिन्त्यम् अव्यपदेश्यम्. . अद्वैतम्। —माण्डूक्य उपनिषद्, ७

[2] यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।—तैत्तिरीय उपनिषद्,२।९।१

[3] छिद्यन्ते सर्वसंशयाः...तस्मिन् दृष्टे परावरे।—मुण्डकउपनिषद्,२।२।८

इस बात को भूल जाता है कि वह अपने पिता के अनन्त ऐश्वर्य का अधिकारी है। उनकी माया त्रिगुणमयी है। ये तीनों ही गुण डाकू हैं। सब कुछ हर लेते हैं, हमारे स्वरूप को भुला देते हैं। सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं। इनमें से केवल सत्त्वगुण ही ईश्वर का रास्ता बताता है; परन्तु ईश्वर के पास सत्त्वगुण भी नहीं ले जा सकता।

"एक धनी जंगल के बीच में से जा रहा था। ऐसे समय तीन डाकुओं ने आकर उसे घेर लिया और उसका सब कुछ छीन लिया। सब कुछ छीनकर एक डाकू ने कहा, 'अब इसे रखकर क्या करोगे! इसे मार डालो।' ऐसा कहकर वह उसे काटने गया। दूसरा डाकू बोला, 'जान से मत मारो; हाथ-पैर बाँधकर इसे यहीं पर छोड़ दिया जाय, तो फिर यह पुलिस को खबर नहीं दे सकेगा।' यह कहकर उसे बाँधकर डाकू लोग वहीं छोड़कर चले गये।

"थोड़ी देर के बाद तीसरा डाकू लौट आया। आकर बोला, 'खेद है; तुमको बहुत कष्ट हुआ? मैं तुम्हारा बन्धन खोले देता हूँ।' बन्धन खोलने के बाद उस व्यक्ति को साथ लेकर डाकू रास्ता दिखाता हुआ चलने लगा। सरकारी रास्ते के पास आकर उसने कहा, 'इस रास्ते से चले जाओ; अब तुम सहज ही अपने घर जा सकोगे।' उस व्यक्ति ने कहा, 'यह क्या महाशय? आप भी चलिये; आपने मेरा कितना उपकार किया! हमारे घर पर चलने से हम कितने आनन्दित होंगे!' डाकू ने कहा, 'नहीं, मेरे वहाँ जाने पर छुटकारे का उपाय नहीं, पुलिस पकड़ लेगी।' यह कहकर रास्ता बताकर वह लौट गया।

"पहला डाकू तमोगुण है, जिसने कहा था, 'इसे रखकर क्या करोगे, मार डालो।' तमोगुण से विनाश होता है। दूसरा डाकू रजोगुण है; रजोगुण से मनुष्य संसार में आबद्ध होता है;

अनेकानेक कार्यों में जकड़ जाता है। रजोगुण ईश्वर को भुला देता है। सत्त्वगुण ही केवल ईश्वर का रास्ता बताता है। दया, धर्म, भक्ति यह सब सत्त्वगुण से उत्पन्न होते हैं। सत्त्वगुण मानो अन्तिम सीढ़ी है। उसके बाद ही है छत। मनुष्य का धाम है परब्रह्म। त्रिगुणातीत न होने पर ब्रह्मज्ञान नहीं होता।"

आचार्य–अच्छा हुआ, ये सब बड़ी अच्छी बातें हुईं।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)–भक्त का स्वभाव क्या है, जानते हो? मैं कहूँ, तुम सुनो; तुम कहो, मैं सुनूँ। तुम लोग आचार्य हो, कितने लोगों को शिक्षा दे रहे हो। तुम लोग जहाज हो, हम तो हैं मछुओं की छोटी नैया। (सभी हँस पड़े।)

परिच्छेद ३२

नन्दनबागान के ब्राह्मसमाज में भक्तों के साथ

(१)

श्रीमन्दिर-दर्शन और उद्दीपन। श्रीराधा का प्रेमोन्माद

श्रीरामकृष्ण नन्दनबागान के ब्राह्मसमाज-मन्दिर में भक्तों के साथ बैठे हैं। ब्राह्मभक्तों से बातचीत कर रहे हैं। साथ में राखाल, मास्टर आदि हैं। शाम के पाँच बजे होंगे।

काशीश्वर मित्र का मकान नन्दनबागान में है। वे पहले सबजज थे। वे आदिब्राह्मसमाजवाले ब्राह्म थे। अपने ही घर पर ईश्वर की उपासना किया करते थे, और बीच बीच में भक्तों को निमन्त्रण देकर उत्सव मनाते थे। उनके देहान्त के बाद श्रीनाथ, यज्ञनाथ आदि उनके पुत्रों ने कुछ दिन तक उसी तरह उत्सव मनाये थे। वे ही श्रीरामकृष्ण को बड़े आदर से आमन्त्रित कर लाये हैं।

श्रीरामकृष्ण आकर पहले नीचे के एक कमरे में बैठे, जहाँ धीरे धीरे बहुतसे ब्राह्मभक्त सम्मिलित हुए। रवीन्द्रबाबू आदि ठाकुर-परिवार के भक्त भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे।

बुलाये जाने पर श्रीरामकृष्ण ऊपरी मँजले के उपासना-मन्दिर में जा विराजे। कमरे के पूर्व की ओर वेदी रची गयी है। नैर्ऋत्य कोने में एक पियानो है। कमरे के उत्तरी हिस्से में कुछ कुर्सियाँ रखी हुई हैं। उसी के पूर्व की ओर अन्तःपुर में जाने का दरवाजा है।

शाम को उत्सव के निमित्त उपासना होगी। आदिब्राह्मसमाज के श्री भैरव बन्द्योपाध्याय और एक-दो भक्त मिलकर वेदी पर उपासना का अनुष्ठान करेंगे।

गर्मी का मौसम है। आज बुधवार, चैत्र की कृष्णा दशमी है। २ मई, १८८३। अनेक ब्राह्मभक्त नीचे के बड़े आँगन या बरामदे में इधर-उधर घूम रहे हैं। श्री जानकी घोषाल आदि दो-चार सज्जन उपासनागृह में आकर श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हैं।—वे उनके श्रीमुख से ईश्वरी प्रसंग सुनेंगे। कमरे में प्रवेश करते ही श्रीरामकृष्ण ने वेदी के सम्मुख प्रणाम किया। फिर बैठकर राखाल, मास्टर आदि से कहने लगे—

"नरेन्द्र ने मुझसे कहा था, 'समाज-मन्दिर को प्रणाम करने से क्या होता है?' मन्दिर देखने से ईश्वर ही की याद आती है—उद्दीपना होती है। जहाँ उनकी चर्चा होती है, वहाँ उनका आविर्भाव होता है, और सारे तीर्थ वहाँ आ जाते हैं। ऐसे स्थानों के देखने से भगवान् की ही याद होती है।

"एक भक्त बबूल का पेड़ देखकर भावाविष्ट हुआ था। यही सोचकर कि इसी लकड़ी से श्रीराधाकान्त के बगीचे के लिए कुल्हाड़ी का बेंट बनता है।

"किसी और भक्त की ऐसी गुरुभक्ति थी कि गुरुजी के मुहल्ले के एक आदमी को ही देखकर भावों से तर हो गया!

"मेघ देखकर, नील वस्त्र देखकर अथवा एक चित्र देखकर श्रीराधा को श्रीकृष्ण की उद्दीपना हो जाती थी! ये सब चीजें देखकर वे 'कृष्ण कहाँ हैं?' कहकर बावली-सी हो जातीं!"

घोषाल—उन्माद तो अच्छा नहीं है।

श्रीरामकृष्ण—यह तुम क्या कह रहे हो? यह उन्माद विषय-चिन्ता का फल थोड़े ही है कि उससे बेहोशी आ जायगी! यह अवस्था तो ईश्वर-चिन्तन से उत्पन्न होती है! क्या तुमने प्रेमोन्माद, ज्ञानोन्माद की बात नहीं सुनी?

उपाय—ईश्वर पर प्रेम तथा षड्‌रिपुओं की गति बदलना

एक ब्राह्मभक्त—किस उपाय से ईश्वर मिल सकता है?

श्रीरामकृष्ण—उस पर प्रेम हो, और सदा यह विचार रहे कि ईश्वर ही सत्य है, और जगत् अनित्य।

"पीपल का पेड़ ही सत्य है—फल तो दो ही दिन के लिए हैं।"

ब्राह्मभक्त—काम, क्रोध आदि रिपु हैं—क्या किया जाय?

श्रीरामकृष्ण—छः रिपुओं को ईश्वर की ओर मोड़ दो। आत्मा के साथ रमण करने की कामना हो। जो ईश्वर की राह पर बाधा पहुंचाते हैं उन पर क्रोध हो। उसे ही पाने के लिए लोभ। यदि ममता है तो उसी के लिए हो। जैसे 'मेरे राम' 'मेरे कृष्ण'। यदि अहंकार करना है तो विभीषण की तरह—'मैंने श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया, फिर यह सिर किसी दूसरे के सामने नहीं नवाऊँगा!'

ब्राह्मभक्त—यदि ईश्वर ही सब कुछ करा रहा है तो मैं पापों के लिए उत्तरदायी नहीं हूँ?

पापकर्मों का उत्तरदायित्व

श्रीरामकृष्ण (हँसकर)—दुर्योधन ने वही बात कही थी—'त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।'*

"जिसको ठीक विश्वास है कि ईश्वर ही कर्ता हैं और मैं अकर्ता हूँ, वह पाप नहीं कर सकता। जिसने नाचना सीख लिया है उसके पैर ताल के विरुद्ध नहीं पड़ते।

"मन शुद्ध न होने से यह विश्वास ही नहीं होता कि ईश्वर है!"

श्रीरामकृष्ण उपासना-मन्दिर में एकत्रित भक्तों को देख रहे

---

* —'हे हृषीकेश, तुम हृदय में बैठकर जैसा करा रहे हो, वैसा ही मैं करता हूँ।'

हैं और कहते हैं, "बीच बीच में इस तरह एक साथ मिलकर ईश्वर-चिन्तन करना और उनके नामगुण गाना बहुत अच्छा है। परन्तु संसारी लोगों का ईश्वरानुराग क्षणिक है—वह उतनी ही देर तक ठहरता है जितना तपाये हुए लोहे पर पानी का छिड़काव।"

ब्रह्मोपासना तथा श्रीरामकृष्ण

अब सन्ध्या की उपासना होगी। वह बड़ा कमरा भक्तों से भर गया। कुछ ब्राह्म महिलाएँ हाथों में संगीत-पुस्तक लिये कुर्सियों पर आ बैठीं।

पियानो और हार्मोनियम के सहारे ब्रह्मसंगीत होने लगा। गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण के आनन्द की सीमा न रही। क्रमशः उद्बोधन, प्रार्थना और उपासना हुई। आचार्य वेदी पर बैठ वेदों से मन्त्रपाठ करने लगे।

"ॐ पिता नोऽसि, पिता नो बोधि। नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः।

—तुम हमारे पिता हो, हमें सद्बुद्धि दो। तुम्हें नमस्कार है। हमें नष्ट न करो।"

(ब्राह्मभक्त उनसे स्वर मिलाकर कहते हैं—)

"ॐ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। आनन्दरूपममृतं यद्विभाति। शान्तं शिवमद्वैतम्। शुद्धमपापविद्धम्।"

फिर आचार्यों ने स्तवपाठ किया।

"ॐ नमस्ते सते ते जगत्कारणाय। नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।" इत्यादि।

तदनन्तर उन्होंने प्रार्थना की—

'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। आविराविर्म एधि।

रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मा पाहि नित्यम् ॥*

स्तोत्रादि का पाठ सुनकर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो रहे हैं। अब आचार्य निबन्ध पढ़ते हैं।

अहेतुक कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण

उपासना समाप्त हो गयी। भक्तों को खिलाने का प्रबन्ध हो रहा है। अधिकांश ब्राह्मभक्त नीचे आँगन और बरामदे में टहल रहे हैं।

रात के नौ बज गये। श्रीरामकृष्ण को दक्षिणेश्वर लौट जाना है। घर के मालिक निमन्त्रित गृही भक्तों की संवर्धना में इतने व्यस्त हैं कि श्रीरामकृष्ण की कोई खबर ही नहीं ले सकते।

श्रीरामकृष्ण (राखाल आदि से)—अरे, कोई बुलाता भी तो नहीं।

राखाल (क्रोध में)—महाराज, आइये, हम दक्षिणेश्वर चलें।

श्रीरामकृष्ण (हँसकर)—अरे ठहर। गाड़ी का किराया—तीन रुपये दो आने—कौन देगा? चिढ़ने से ही काम न चलेगा! पैसे का नाम नहीं, और थोथी झाँझ! फिर इतनी रात को खाऊँ कहाँ?

बड़ी देर में सुना गया कि पत्तलें बिछी हैं। सब भक्त एक साथ बुलाये गये। उस भीड़ में श्रीरामकृष्ण भी राखाल आदि के साथ दूसरे मँजले में भोजन करने चले। भीड़ में बैठने की जगह नहीं मिलती थी। बड़ी मुश्किल से श्रीरामकृष्ण एक तरफ बैठाये गये। स्थान भद्दा था। एक रसोइया ठकुराइन ने भाजी परोसी। श्रीरामकृष्ण को उसे खाने की रुचि नहीं हुई उन्होंने नमक के सहारे एक आध पूड़ी और थोड़ीसी मिठाई खायी।

---

*—"मुझे अनित्य से नित्य को, अन्धकार से ज्योति को और मृत्यु से अमरत्व को पहुँचाओ। मेरे पास आविर्भूत होओ। हे रुद्र, अपने कारुण्य-पूर्ण मुख से सदा मेरी रक्षा करो।"

आप दयासागर हैं। गृहस्वामी लड़के हैं। वे आपकी पूजा करना नहीं जानते तो क्या आप उनसे नाराज होंगे ? अगर आप बिना खाये चले जायें तो उनका अमंगल होगा। फिर उन्होंने तो ईश्वर के ही उद्देश्य से इतना आयोजन किया।

भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण गाड़ी पर बैठे। गाड़ी का किराया कौन दे ? उस भीड़ में गृहस्वामियों का पता ही नहीं चलता था। इस किराये के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण ने बाद में विनोद करते हुए भक्तों से कहा था—

"गाड़ी का किराया माँगने गया ! पहले तो उसे भगा ही दिया। फिर बड़ी कोशिश से तीन रुपये मिले, पर दो आने नहीं दिये। कहा कि उसी से हो जायगा !"

परिच्छेद ३३

भक्तों के साथ कीर्तनानन्द में

(१)

श्रीरामकृष्ण ने कलकत्ता कँसारीपाड़ा की हरिभक्ति-प्रदायिनी सभा में शुभागमन किया है। रविवार, वैशाख शुक्ला सप्तमी, संक्रान्ति, १३ मई १८८३ ई०। आज सभा में वार्षिकोत्सव हो रहा है। मनोहर साँई का कीर्तन हो रहा है।

श्रीराधाकृष्ण-प्रेम का गाना हो रहा है। सखियाँ श्रीमती राधिका से कह रही हैं, 'तूने मान (प्रणयकोप) क्यों किया ? तो क्या तू कृष्ण का सुख नहीं चाहती ?' श्रीमती कहती हैं, 'उनके चन्द्रावली के कुंज में जाने के लिए मैंने कोप नहीं किया। वहाँ उन्हें क्यों जाना चाहिए ? चन्द्रावली तो सेवा नहीं जानती।'

(२)

दूसरे रविवार को (२०-५-८३) रामचन्द्र के मकान पर फिर कीर्तन हो रहा है। श्रीरामकृष्ण आये हैं। वैशाख शुक्ला चतुर्दशी। श्रीमती राधिका श्रीकृष्ण के विरह में बहुत-कुछ कह रही हैं— "जब मैं बालिका थी उसी समय से श्याम को देखना चाहती थी। सखि, दिन गिनते गिनते नाखून घिस गये। देखो, उन्होंने जो माला दी थी वह सूख गयी है, फिर भी मैंने उसे नहीं फेंका। कृष्णचन्द्र का उदय कहाँ हुआ ? वह चन्द्र मान (प्रणयकोप-) रूपी राहू के भय से कहीं चला तो नहीं गया ! हाय ! उस कृष्ण-मेघ का कब दर्शन होगा ? क्या फिर दर्शन होगा ! प्रिय, प्राण खोलकर तुम्हें कभी भी न देख सकी ! एक तो कुल दो ही आँखें,

उसमें फिर पलक, उसमें फिर आँसुओं की धारा। उनके सिर पर मोर का पंख मानो स्थिर बिजली के समान है। मोरगण उस मेघ को देख पंख खोलकर नृत्य करते थे।

"सखि ! यह प्राण तो नहीं रहेगा——मेरी देह तमाल वृक्ष की शाखा पर रख देना और मेरे शरीर पर कृष्णनाम लिख देना।"

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "वे और उनका नाम अभिन्न हैं। इसीलिए श्रीमती राधिका इस प्रकार कह रही हैं। जो राम वही नाम है।"

श्रीरामकृष्ण भावमग्न होकर यह कीर्तन का गाना सुन रहे हैं। गोस्वामी कीर्तनिया इन गानों को गा रहे हैं। अगले रविवार को फिर दक्षिणेश्वर मन्दिर में वही गाना होगा। उसके बाद के शनिवार को फिर अधर के मकान पर वही कीर्तन होगा।

परिच्छेद २४

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर के अपने कमरे में खड़े खड़े भक्तों के साथ बातचीत कर रहे हैं। रविवार, वैशाख कृष्णा पंचमी, २७ मई १८८३ ई०। दिन के नौ बजे का समय होगा। भक्तगण धीरे धीरे आकर उपस्थित हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर आदि भक्तों के प्रति)—विद्वेषभाव अच्छा नहीं,—शाक्त, वैष्णव, वेदान्ती ये सब झगड़ा करते हैं, यह ठीक नहीं। पद्मलोचन बर्दवान के सभापण्डित थे। सभा में विचार हो रहा था—'शिव बड़े हैं या ब्रह्मा।' पद्मलोचन ने बहुत सुन्दर बात कही थी,—'मैं नहीं जानता, मुझसे न शिव का परिचय है, और न ब्रह्मा का!' (सभी हँसने लगे।)

"व्याकुलता रहने पर सभी पथों से उन्हें प्राप्त किया जाता है, परन्तु निष्ठा रहनी चाहिए। निष्ठा-भक्ति का दूसरा नाम है अव्यभिचारिणी भक्ति,—जिस प्रकार एक शाखावाला वृक्ष सीधा ऊपर की ओर जाता है। व्यभिचारिणी भक्ति—जैसे पाँच शाखा-वाला वृक्ष। गोपियों की ऐसी निष्ठा थी कि वृन्दावन के पीताम्बर और मोहनचूड़ावाले गोपालकृष्ण के अतिरिक्त और किसी से प्रेम न करेंगी। मथुरा में जब राजवेष में सिर पर पगड़ी पहने कृष्ण को देखा तो उन्होंने घूँघट की आड़ में मुँह छिपा लिया और कहा, 'यह कौन है? क्या इसके साथ बात करके हम द्विचारिणी बनेंगी?'

"स्त्री जो स्वामी की सेवा करती है वह भी निष्ठा-भक्ति है। देवर, जेठ को खिलाती है, पैर धोने को जल देती है, परन्तु स्वामी

के साथ दूसरा ही सम्बन्ध रहता है। इसी प्रकार अपने धर्म में भी निष्ठा हो सकती है। इसीलिए दूसरे धर्म से घृणा नहीं करनी चाहिएं, बल्कि उनके साथ मीठा व्यवहार करना चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण द्वारा जगन्माता की पूजा तथा आत्मपूजा

श्रीरामकृष्ण गंगास्नान करके काली के दर्शन करने गये हैं। साथ में मास्टर हैं। श्रीरामकृष्ण पूजा के आसन पर बैठकर माँ के चरणकमलों पर फूल चढ़ा रहे हैं; बीच बीच में अपने सिर पर भी चढ़ा रहे हैं और ध्यान कर रहे हैं।

बहुत समय के बाद श्रीरामकृष्ण आसन से उठे। भाव में विभोर होकर नृत्य कर रहे हैं और मुँह से माँ का नाम ले रहे हैं। कह रहे हैं, 'माँ विपद्नाशिनी।' देह धारण करने से ही दुःख, विपदाएँ होती हैं, सम्भव है इसीलिए जीव को इस 'विपद्नाशिनी' महामन्त्र का उच्चारण कर कातर होकर पुकारना सिखा रहे हैं।

अब श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के पश्चिमवाले बरामदे में आकर बैठे हैं। अभी तक भाव का आवेश है। पास हैं राखाल, मास्टर, नकुड़ वैष्णव आदि। नकुड़ वैष्णव को श्रीरामकृष्ण अट्ठाईस-उनतीस वर्षों से जानते हैं। जिस समय वे पहले-पहल कलकत्ते में आकर झामापुकुर में रहे थे और घर घर में जाकर पूजा करते थे, उस समय कभी कभी नकुड़ वैष्णव की दूकान में जाकर बैठते थे और आनन्द मनाते थे। आजकल पानिहाटी में राघव पण्डित के महोत्सव के उपलक्ष्य में नकुड़ बाबाजी आकर प्रायः प्रतिवर्ष श्रीरामकृष्ण का दर्शन करते हैं। नकुड़ वैष्णव भक्त थे। कभी कभी वे भी महोत्सव का भण्डारा देते थे। नकुड़ मास्टर के पड़ोसी थे।

श्रीरामकृष्ण जिस समय झामापुकुर में थे, उस समय गोविन्द चटर्जी के मकान में रहते थे। नकुड़ ने मास्टर को वह पुराना

मकान दिखाया था।

जगन्माता के नामकीर्तन के आनन्द में श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण भाव के आवेश में गीत गा रहे हैं, जिनका भावार्थ यह है:—

(१) "हे महाकाल की मनोमोहिनी सदानन्दमयी काली, माँ, तुम अपने आनन्द में आप ही नाचती हो और आप ही ताली बजाती हो। हे आदिभूते सनातनि, शून्यरूपे शशिभालिके, जिस समय ब्रह्माण्ड न था, उस समय तुझे मुण्डमाला कहाँ मिली? एकमात्र तुम यन्त्री हो, हम सब तुम्हारे निर्देश पर चलतें हैं। माँ, तुम जैसा कराती हो, वैसा ही करते हैं, जैसा कहलाती हो वैसा ही कहते हैं। हे निर्गुणे, माँ, कमलाकान्त गाली देकर कहता है कि तुझ सर्वनाशिनी ने खड्ग धारण करके धर्म और अधर्म दोनों को नष्ट कर दिया है!"

(२) "हे तारा, तुम ही मेरी माँ हो। तुम त्रिगुणधरा परात्परा हो। मैं जानता हूँ, माँ, कि तुम दीनों पर दया करनेवाली और विपत्ति में दुःख को हरण करनेवाली हो। तुम सन्ध्या, तुम गायत्री, तुम जगद्धात्री हो। माँ, तुम असहाय को बचानेवाली तथा सदाशिव के मन को हरनेवाली हो। माँ, तुम जल में, थल में और आदिमूल में विराजमान हो। तुम साकार रूप में सर्व घट में विद्यमान होते हुए भी निराकार हो।"

श्रीरामकृष्ण ने 'माँ' के और भी कुछ गीत गाये। फिर भक्तों से कह रहे हैं, "संसारियों के सामने केवल दुःख की बात ठीक नहीं। आनन्द चाहिए। जिनको अन्न का अभाव है, वे दो दिन उपवास भी कर सकते हैं, परन्तु खाने में थोड़ा विलम्ब होने पर जिन्हें दुःख होता है उनके पास केवल रोने की बातें, दुःख की

बातें करना ठीक नहीं।

"वैष्णवचरण कहा करता था, 'केवल पाप, पाप यह सब क्या है? आनन्द करो।' "

श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद विश्राम भी न कर चुके थे कि मनोहर साँई गोस्वामी आ पधारे।

श्रीराधा के भाव में महाभावमय श्रीरामकृष्ण। क्या श्रीरामकृष्ण गौरांग हैं?

गोस्वामी पूर्वराग का कीर्तन गा रहे हैं। थोड़ा सुनकर ही श्रीरामकृष्ण राधा के भाव में भावाविष्ट हो गये।

पहले ही गौरचन्द्रिका-कीर्तन। "हथेली पर हाथ—चिन्तित गोरा—आज क्यों चिन्तित हैं? सम्भवतः राधा के भाव में भावित हुए हैं।"

गोस्वामी फिर गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"घड़ी में सौ बार, पल पल में घर से बाहर आती और फिर भीतर जाती है। कहीं पर भी मन नहीं लग रहा है, जोर जोर से श्वास चल रहा है, बार बार कदम्ब-कानन की ओर ताकती है। राधे, ऐसा क्यों हुआ?"

संगीत की इसी पंक्ति को सुन श्रीरामकृष्ण की महाभाव की स्थिति हुई है! उन्होंने अपनी कमीज को फाड़कर फेंक दिया।

कीर्तनकार का संगीत सुनते सुनते महाभाव में श्रीरामकृष्ण काँप रहे हैं! केदार को देख वे कीर्तन के स्वर में कह रहे हैं, "प्राणनाथ! हृदयवल्लभ, तुम लोग मुझे कृष्ण ला दो; यही तो मित्रता का काम है; या तो उन्हें ला दो और नहीं तो मुझे ले चलो; तुम लोगों की मैं चिरकाल के लिए दासी बनी रहूँगी।"

गोस्वामी कीर्तनिया श्रीरामकृष्ण के महाभाव की स्थिति को देखकर मुग्ध हुए हैं। वे हाथ जोड़कर कह रहे हैं, "मेरी विषय-

बुद्धि मिटा दीजिये।"

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—तुम उस साधु के सदृश हो जिसने पहले रहने की जगह ठीक कर, फिर शहर देखना शुरू किया। तुम इतने बड़े रसिक हो, तुम्हारे भीतर से इतना मीठा रस निकल रहा है!

गोस्वामी—प्रभो, मैं चीनी का बोझ ढोनेवाला बैल हूँ, चीनी का आस्वादन कहाँ कर सका?

फिर कीर्तन होने लगा। कीर्तनकार श्रीमती राधिका की अवस्था का वर्णन कर कह रहे हैं—"कोकिलकुल कुर्वंति कलनादम्।"

कोकिल का कलनाद श्रीमती को वज्रध्वनि जैसा लग रहा है। इसलिए वे जैमिनि का नाम उच्चारण कर रही हैं और कह रही हैं, "सखि, कृष्ण के विरह में यह प्राण नहीं रहेगा; इस देह को तमाल वृक्ष की शाखा पर रख देना।"

गोस्वामी ने राधाश्याम का मिलन गाकर कीर्तन समाप्त किया।

परिच्छेद ३५

भक्तों के मकान पर

(१)

बलराम के मकान पर श्रीरामकृष्ण। नरलीला का दर्शन और आस्वादन

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर से कलकत्ता आ रहे हैं। बलराम के मकान से होकर अधर के मकान पर और उसके बाद राम के मकान पर जायेंगे। अधर के मकान में मनोहर साँई का कीर्तन होगा। राम के घर पर कथा होगी। शनिवार, वैशाख कृष्णा द्वादशी, २ जून १८८३ ई०।

श्रीरामकृष्ण गाड़ी में आते आते राखाल, मास्टर आदि भक्तों से कह रहे हैं, "देखो, उन पर प्रेम हो जाने पर पाप आदि सब भाग जाते हैं, जैसे धूप से मैदान के तालाब का जल सूख जाता है।

"विषय की वासना तथा कामिनी-कांचन पर मोह रखने से कुछ नहीं होता। यदि विषयासक्ति रहे तो संन्यास लेने पर भी कुछ नहीं होता—जैसे थूक को फेंककर फिर चाट लेना।"

थोड़ी देर बाद गाड़ी में श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं, "ब्राह्म-समाजी लोग साकार को नहीं मानते। (हँसकर) नरेन्द्र कहता है, 'पुत्तलिका!' फिर कहता है, 'वे अभी तक कालीमन्दिर में जाते हैं।'"

श्रीरामकृष्ण बलराम के घर पर आये हैं। वे एकाएक भावाविष्ट हो गये हैं। सम्भव है, देख रहे हैं, ईश्वर ही जीव तथा जगत् बने हुए हैं, ईश्वर ही मनुष्य बनकर घूम रहे हैं। जगन्माता से कह रहे हैं, "माँ, यह क्या दिखा रही हो? रुक जाओ; यह सब क्या दिखा रही हो? राखाल आदि के द्वारा क्या क्या दिखा

रही हो, माँ ! रूप आदि सब उड़ गया। अच्छा माँ, मनुष्य तो केवल ऊपर का ढाँचा ही है न ? चैतन्य तुम्हारा ही है।

"माँ, आजकल के ब्राह्मसमाजी मीठा रस नहीं पाते ! आँखें सूखी, मुँह सूखा ! प्रेमभक्ति न होने से कुछ न हुआ !

"माँ, तुमसे कहा था, एक व्यक्ति को साथी बना दो, मेरे जैसे किसी को ! इसीलिए राखाल को दिया है न ?"

अधर के मकान पर हरिसंकीर्तन में

श्रीरामकृष्ण अधर के मकान पर आये हैं। मनोहर साँई के कीर्तन की तैयारी हो रही है।

श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के लिए अधर के बैठकघर में अनेक भक्त तथा पड़ोसी आये हैं। सभी की इच्छा है कि श्रीरामकृष्ण कुछ कहें।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)—संसार और मुक्ति दोनों ही ईश्वर की इच्छा पर निर्भर हैं। उन्होंने ही संसार में अज्ञान बनाकर रखा है। फिर समय वे अपनी इच्छा से पुकारेंगे, उसी समय मुक्ति होगी। लड़का खेलने गया है, खाने के समय माँ बुला लेती है।

"जिस समय वे मुक्ति देंगे उस समय वे साधुसंग करा देते हैं और फिर अपने को पाने के लिए व्याकुलता उत्पन्न कर देते हैं।"

पड़ोसी—महाराज, किस प्रकार व्याकुलता होती है ?

श्रीरामकृष्ण—नौकरी छूट जाने पर किरानी को जिस प्रकार व्याकुलता होती है ! वह जिस प्रकार रोज आफिस आफिस में घूमता है और पूछता रहता है, 'साहब, कोई नौकरी की जगह खाली हुई ?' व्याकुलता होने पर मनुष्य छटपटाता है—कैसे ईश्वर को पाऊँ !

"और यदि मूँछों पर हाथ फेरते हुए पैर पर पैर धरकर बैठे

बैठे पान चबा रहा है—कोई चिन्ता नहीं, तो ऐसी स्थिति में ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

पड़ोसी—साधुसंग होने पर क्या व्याकुलता हो सकती है ?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, हो सकती है; परन्तु पाखण्डियों को नहीं होती। साधु का कमण्डल चारों धाम होकर आने पर भी कड़ए का कड़आ ही रह जाता है!

अब कीर्तन शुरू हुआ है; गोस्वामीजी कलह-संवाद गा रहे हैं—

"श्रीमती कह रही है, 'सखि ! प्राण जाता है, कृष्ण को ला दे !'

"सखी—'राधे, कृष्णरूपी मेघ बरसता ही था, परन्तु तूने मान (प्रेमकोप) रूपी आँधी से उस मेघ को उड़ा दिया। तू कृष्ण के सुख में सुखी नहीं है, नहीं तो मान क्यों करती ?'

"श्रीमती—'सखि, मान तो मेरा नहीं है। जिसका मान है उसी के साथ चला गया है।'

ललिता श्रीमती की ओर से कुछ कह रही है।

अब कीर्तन में गोस्वामी कह रहे हैं कि सखियाँ राधाकुण्ड के पास श्रीकृष्ण की खोज करने लगीं। उसके बाद यमुनातट पर श्रीकृष्ण का दर्शन, साथ में श्रीदाम, सुदाम, मधुमंगल। वृन्दा के साथ श्रीकृष्ण का वार्तालाप, श्रीकृष्ण का योगी का-सा भेस, जटिला-संवाद, राधा का भिक्षादान, राधा का हाथ देख योगी द्वारा गणना तथा संकट की भविष्यवाणी। कात्यायनी की पूजा में जाने की तैयारी।

कीर्तन समाप्त हुआ। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—गोपियों ने कात्यायनी की पूजा की थी। सभी उस महामाया आद्याशक्ति के अधीन हैं। अवतार आदि तक उस माया

का आश्रय लेकर ही लीला करते हैं; इसीलिए वे आद्याशक्ति की पूजा करते हैं। देखो न, राम सीता के लिए कितने रोये हैं। पंचभूतों के फन्दे में पड़कर ब्रह्म रोते हैं।

"हिरण्याक्ष का वध कर वराह-अवतार कच्चे-बच्चे लेकर रह रहे थे। आत्मविस्मृत होकर उन्हें स्तनपान करा रहे थे! देवताओं ने परामर्श करके शिवजी को भेज दिया। शिवजी ने त्रिशूल के आघात से वराह का शरीर विनष्ट कर दिया; तब वे स्वधाम में पधारे। शिवजी ने पूछा था, 'तुम आत्मविस्मृत क्यों हो गये हो?' इस पर उन्होंने कहा था, 'मैं बहुत अच्छा हूँ!'"

अधर के मकान से होकर अब श्रीरामकृष्ण राम के मकान पर जा रहे हैं।

(२)

रामचन्द्र दत्त के मकान पर

श्रीरामकृष्णदेव सिमुलिया महल्ले की मधु राय की गली में रामबाबू का मकान है। रामचन्द्र दत्त श्रीरामकृष्णदेव के विशिष्ट भक्त हैं। वे डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त कर मेडिकल कालेज में रसायनशास्त्र के सहकारी परीक्षक नियुक्त हुए थे और 'साइन्स असोसिएशन' में रसायनशास्त्र के अध्यापक भी थे। उन्होंने स्वोपार्जित धन से यह मकान बनवाया था। इस मकान में श्रीरामकृष्णदेव कुछ एक बार आये थे, इसीलिए यह मकान भक्तों के लिए आज तीर्थ के समान महान् पवित्र है। रामचन्द्र गुरुदेव की कृपा लाभ कर ज्ञानपूर्वक संसारधर्म पालन करने की चेष्टा करते थे। श्रीरामकृष्णदेव मुक्तकण्ठ से रामबाबू की प्रशंसा करते और कहते थे,—'राम अपने मकान में भक्तों को स्थान देता है, कितनी सेवा करता है, उसका मकान भक्तों का एक अड्डा है।' नित्यगोपाल,

लाटू, तारक आदि एक प्रकार से रामचन्द्र के घर के आदमी हो गये थे। इन्होंने उनके साथ बहुत दिनों तक एकत्र वास किया था। इसके सिवाय उनके मकान में प्रतिदिन नारायण की पूजा और सेवा होती थी।

रामचन्द्र श्रीरामकृष्ण को वैशाख की पूर्णिमा को, जिस समय हिण्डोले का श्रृंगार होता है, इस मकान में उनकी पूजा करने के लिए सर्वप्रथम ले आये थे। प्रायः प्रतिवर्ष आज के दिन वे उनको ले जाकर भक्तों से सम्मिलित हो महोत्सव मनाया करते थे। रामचन्द्र के प्यारे शिष्यवृन्द अब भी उस दिन उत्सव मनाते हैं।

आज रामचन्द्र के मकान में उत्सव है! श्रीरामकृष्ण आयेंगे। आपके लिए रामचन्द्र ने श्रीमद्भागवत की कथा का प्रबन्ध किया है। छोटासा आँगन है, परन्तु उसी में कैसा सुन्दर सजाया है! वेदी तैयार हुई है, उस पर कथक महोदय बैठे हैं। राजा हरिश्चन्द्र की कथा हो रही है। इसी समय बलराम और अधर के मकान से होकर श्रीरामकृष्ण यहाँ आ पहुँचे। रामचन्द्र ने आगे बढ़कर उनकी चरणरज को मस्तक में धारण किया और वेदी के सम्मुख उनके लिए निर्दिष्ट आसन पर उन्हें लाकर बैठाया। चारों ओर भक्त और पास ही मास्टर बैठे हैं।

राजा हरिश्चन्द्र की कथा होने लगी——

"विश्वामित्र बोले, 'महाराज! तुमने मुझे ससागरा पृथ्वी दान कर दी है, इसलिए अब इसके भीतर तुम्हारा स्थान नहीं है; किन्तु तुम काशीधाम में रह सकते हो, वह महादेव का स्थान है। चलो, तुम्हें और तुम्हारी सहधर्मिणी शैव्या और तुम्हारे पुत्र को वहाँ पहुँचा दें। वहीं पर जाकर तुम प्रबन्ध करके मुझे दक्षिणा दे देना।' यह कहकर राजा को साथ ले विश्वामित्र काशीधाम की

ओर चले। काशी में आकर उन लोगों ने विश्वेश्वर के दर्शन किये।"

विश्वेश्वर-दर्शन की बात होते ही श्रीरामकृष्ण एकदम भावाविष्ट हो अस्पष्ट रूप से 'शिव' 'शिव' उच्चारण कर रहे हैं।

कथक महोदय कथा कहते गये--

"राजा हरिश्चन्द्र दक्षिणा नहीं दे पाये, इसलिए उन्होंने रानी शैव्या को बेच दिया। पुत्र रोहिताश्व भी शैव्या के साथ चला गया।"

कथक महोदय ने शैव्या के ब्राह्मण मालिक के यहाँ रोहिताश्व के फूल तोड़ने और उसे साँप के द्वारा काटे जाने की कथा कही।--

"उस अन्धकाराच्छन्न कालरात्रि में सन्तान की मृत्यु हो गयी। उसका अन्तिम संस्कार करने के लिए कोई नहीं था। गृहस्वामी वृद्ध ब्राह्मण शय्या त्यागकर नहीं उठे। पुत्र के शव को गोद में लिये शैव्या अकेली ही श्मशान की ओर चल पड़ी। बीच बीच में बादल गरज रहे थे और बिजली कड़क रही थी। एक एक बार घोर अन्धकार को चीरती हुई बिजली चमक दिखा जाती थी। भयभीत, शोकाकुल शैव्या रोती हुई चली जा रही थी।

"पत्नी और पुत्र को बेचने पर भी दक्षिणा की राशि पूरी न होने पायी; इसलिए हरिश्चन्द्र ने स्वयं को एक चाण्डाल को बेच डाला था। वे श्मशान में चाण्डाल बने बैठे हैं--कर वसूल करने पर ही अग्निसंस्कार करने देंगे। कितने ही शव जल रहे हैं, कितने जलकर भस्मीभूत हो गये हैं। घोर अँधेरी रात में श्मशान कितना भयावना दिखायी दे रहा है! शैव्या उस स्थान पर आकर विलाप करने लगी।"

उस करुण क्रन्दन को सुनकर, ऐसा कौन है जो व्याकुल न हो, जिसका हृदय विदीर्ण न हो? सभी श्रोतागण रो पड़े।

श्रीरामकृष्ण क्या कर रहे हैं? वे स्थिर होकर कथा सुन रहे

हैं—बिलकुल स्थिर हैं ! केवल एक बार आँख के कोने में एक बूँद आँसू छलक उठा पर आपने उसे पोंछ डाला । आपने अधीर होकर रुदन क्यों नहीं किया ?

अन्त में रोहिताश्व को जीवनदान, सब लोगों का विश्वेश्वर-दर्शन और हरिश्चन्द्र का पुनः राज्यलाभ वर्णन कर कथक महोदय ने कथा समाप्त की। श्रीरामकृष्ण बहुत समय तक वेदी के सम्मुख बैठकर कथा सुनते रहे । कथा समाप्त होने पर बाहर के कमरे में जाकर बैठे । चारों ओर भक्तमण्डली बैठी है, कथक भी पास आकर बैठ गये । श्रीरामकृष्ण कथक से बोले, "कुछ उद्धव-संवाद कहो ।"

मुक्ति और भक्ति—गोपीप्रेम

कथक कहने लगे, "जब उद्धव वृन्दावन आये, गोपियाँ और ग्वालबाल उनके दर्शन के लिए व्याकुल हो दौड़कर उनके पास गये । सभी पूछने लगे, 'श्रीकृष्ण कैसे हैं ? क्या वे हम लोगों को भूल गये ? क्या वे कभी हम लोगों का स्मरण करते हैं ?' यह कहकर कोई रोने लगा, कोई उन्हें साथ ले वृन्दावन के अनेक स्थानों को दिखलाने और कहने लगा, 'इस स्थान में श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण किया था; यहाँ पर धेनुकासुर और वहाँ पर शकटासुर का वध किया था; इस मैदान में गौओं को चराते थे; इसी यमुना के तट पर वे विहार करते थे; यहाँ पर ग्वालबालों सहित क्रीड़ा करते थे; इस कुंज में गोपियों के साथ वार्तालाप करते थे ।' उद्धव बोले, 'आप लोग कृष्ण के लिए इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं ? वे तो सर्वभूतों में व्याप्त हैं । वे साक्षात् नारायण हैं ! उनके सिवाय और कुछ नहीं है ।' गोपियों ने कहा, 'हम यह सब नहीं समझ सकतीं । लिखना पढ़ना हमें नहीं मालूम ।

हम तो केवल अपने वृन्दावनविहारी कृष्ण को जानती हैं, जो यहाँ बहुत-कुछ लीला कर गये हैं।' उद्धव फिर बोले, 'वे साक्षात् नारायण हैं, उनकी चिन्ता करने से पुनः संसार में नहीं आना पड़ता, जीव मुक्त हो जाता है।' गोपियों ने कहा, 'हम मुक्ति आदि—ये सब बातें नहीं समझतीं। हम तो अपने प्राणवल्लभ कृष्ण को देखना चाहती हैं।' "

श्रीरामकृष्णदेव यह सब ध्यान से सुनते रहे और भाव में मग्न हो बोले, "गोपियों का कहना सत्य है।" यह कहकर वे अपने मधुर कण्ठ से गाने लगे। गाने का आशय यह है:—

"मैं मुक्ति देने में कातर नहीं होता, पर शुद्धा भक्ति देने में कातर होता हूँ। जो शुद्धा भक्ति प्राप्त कर लेते हैं वे सब से आगे हैं। वे पूज्य होकर त्रिलोकजयी होते हैं। सुनो चन्द्रावलि, भक्ति की बात करता हूँ—मुक्ति तो मिलती है, पर भक्ति कहाँ मिलती है? भक्ति के कारण मैं पाताल में बलिराजा का द्वारपाल होकर रहता हूँ। शुद्धा भक्ति एक वृन्दावन में है जिसे गोप-गोपियों के सिवाय दूसरा कोई नहीं जानता। भक्ति के कारण मैं नन्द के भवन में उन्हें पिता जानकर उनके जूते सिर पर ले चलता हूँ।"

श्रीरामकृष्ण (कथक के प्रति)—गोपियों की भक्ति थी प्रेमा-भक्ति—अव्यभिचारिणी भक्ति—निष्ठा-भक्ति। व्यभिचारिणी भक्ति किसे कहते हैं, जानते हो? ज्ञानमिश्रित भक्ति। जैसे कृष्ण ही सब हुए हैं—वे ही परब्रह्म हैं, वे ही राम, वे ही शिव, वे ही शक्ति हैं। पर प्रेमाभक्ति में उस ज्ञान का संयोग नहीं है। द्वारका में आकर हनुमान ने कहा, 'सीताराम के दर्शन करूँगा।' भगवान् रुक्मिणी से बोले, 'तुम सीता बनकर बैठो,

अन्यथा हनुमान से रक्षा नहीं है ।' पाण्डवों ने जब राजसूय यज्ञ किया, उस समय देश देश के नरेश युधिष्ठिर को सिंहासन पर बिठाकर प्रणाम करने लगे । विभीषण बोले, 'मैं एक नारायण को प्रणाम करूँगा, और दूसरे को नहीं !' यह सुनते ही भगवान् स्वयं भूमिष्ठ होकर युधिष्ठिर को प्रणाम करने लगे । तब विभीषण ने राजमुकुट धारण किये हुए भी युधिष्ठिर को साष्टांग प्रणाम किया ।

"किस प्रकार, जानते हो ?—जैसे घर की बहू अपने देवर, जेठ, ससुर और स्वामी सब की सेवा करती है । पैर धोने के लिए जल देती है, अंगौछा देती है, पीढ़ा रख देती है, परन्तु दूसरी तरह का सम्बन्ध एकमात्र स्वामी ही के साथ रहता है ।

"इस प्रेमाभक्ति में दो चीजें हैं । 'अहंता' और 'ममता' । यशोदा सोचती थीं, 'गोपाल को मैं न देखूँगी तो और कौन देखेगा ? मेरे देखभाल न करने पर उसे रोग-व्याधि हो सकती है ।' यशोदा नहीं जानती थीं कि कृष्ण स्वयं भगवान् हैं । और 'ममता'—'मेरा कृष्ण, मेरा गोपाल' । उद्धव बोले, 'माँ, तुम्हारे कृष्ण साक्षात् नारायण हैं, वे संसार के चिन्तामणि हैं । वे सामान्य वस्तु नहीं हैं ।' यशोदा कहने लगीं, 'अरे तुम्हारे चिन्तामणि कौन ! मेरा गोपाल कैसा है, मैं पूछती हूँ । चिन्तामणि नहीं, मेरा गोपाल ।'

"गोपियों की निष्ठा कैसी थी ! मथुरा में द्वारपाल से अनुनय-विनय कर वे सभा में आयीं । द्वारपाल उन लोगों को कृष्ण के पास ले गया । कृष्ण को देख गोपियाँ मुख नीचा कर परस्पर कहने लगीं, 'यह पगड़ी बाँधे राजवेश में कौन है ? इसके साथ वार्तालाप कर क्या अन्त में हम द्विचारिणी बनेंगी ? हमारे मोहन मोरमुकुट-पीताम्बरधारी प्राणवल्लभ कहाँ हैं ?' देखते हो

इन लोगों की निष्ठा कैसी है ! वृन्दावन का भाव ही दूसरा है। सुना है, द्वारका की तरफ लोग पार्थसखा श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं——वे राधा को नहीं चाहते !"

भक्त–कौन श्रेष्ठ है, ज्ञानमिश्रित भक्ति या प्रेमाभक्ति ?

श्रीरामकृष्ण–ईश्वर के प्रति एकान्त अनुराग हुए बिना प्रेमा-भक्ति का उदय नहीं होता। और 'ममत्व'-ज्ञान अर्थात् भगवान् मेरे अपने हैं, यह ज्ञान। तीन मित्र जंगल में जा रहे थे, सहसा एक बाघ सामने आ खड़ा हुआ ! एक आदमी बोला, 'भाई, हम सब आज मरे।' दूसरा आदमी बोला, 'क्यों, मरेंगे क्यों ? आओ, ईश्वर का स्मरण करें।' तीसरा आदमी बोला, 'नहीं, ईश्वर को कष्ट देकर क्या होगा ? आओ, इसी पेड़ पर चढ़कर बैठें।'

"जिस आदमी ने कहा, 'हम लोग मरे' वह नहीं जानता था कि ईश्वर रक्षा करनेवाले हैं। जिसने कहा, 'आओ, ईश्वर का स्मरण करें' वह ज्ञानी था, वह जानता था कि ईश्वर सृष्टि, स्थिति, प्रलय के मूल कारण हैं। और जिसने कहा, 'भगवान् को कष्ट देकर क्या होगा, आओ, पेड़ पर चढ़ बैठें', उसके भीतर प्रेम उत्पन्न हुआ था——स्नेह-ममता का भाव आया था। तो प्रेम का स्वभाव ही यह है कि प्रेमी अपने को बड़ा समझता है और प्रेमास्पद को छोटा। वह देखता है, कहीं उसे कोई कष्ट न हो। उसकी यही इच्छा होती है कि जिससे प्रेम करें उससे पैर में एक काँटा भी न चुभे।"

श्रीरामकृष्णदेव तथा भक्तों को ऊपर ले जाकर अनेक प्रकार के मिष्टान्न आदि से रामबाबू ने उनकी सेवा की। भक्तों ने बड़े आनन्द से प्रसाद पाया।

परिच्छेद ३६

दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ

(१)

मनुष्य में ईश्वरदर्शन। नरेन्द्र से प्रथम भेंट

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में अपने कमरे में बैठे हैं। भक्तगण उनके दर्शन के लिए आ रहे हैं। आज ज्येष्ठ मास की कृष्णा चतुर्दशी, सावित्री-चतुर्दशी व्रत का दिन है। सोमवार, ४ जून, १८८३ ई०। आज रात को अमावस्या तिथि में फलहारिणी कालीपूजा होगी।

मास्टर कल रविवार से आये हैं। कल रात को कात्यायनी-पूजा हुई थी। श्रीरामकृष्ण प्रेमाविष्ट हो नाट-मन्दिर में माता के सामने खड़े हो गाते हुए कह रहे थे, "माता, तुम्हीं व्रज की कात्यायनी हो। तुम्हीं स्वर्ग हो, तुम्हीं मर्त्य हो, तुम्हीं पाताल भी हो। तुम्हीं से हरि, ब्रह्मा, और द्वादश गोपाल पैदा हुए हैं। दश-महाविद्याएँ और दशावतार भी तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं। अब की बार तुम्हें किसी प्रकार मुझे पार करना होगा।"

श्रीरामकृष्ण गा रहे थे और माँ से बातें कर रहे थे। प्रेम से बिलकुल मतवाले हो गये थे। मन्दिर से वे अपने कमरे में आकर तख्त पर बैठे।

रात के दूसरे पहर तक माँ का नामकीर्तन होता रहा।

सोमवार को सबेरे के समय बलराम और कुछ दूसरे भक्त आये। फलहारिणी कालीपूजा के उपलक्ष्य में त्रैलोक्यबाबू आदि भी सपरिवार आये हैं। सबेरे नौ बजे का समय है। श्रीराम-

कृष्णदेव प्रसन्नमुख, गंगा की ओर के गोल बरामदे में बैठे हैं। पास ही मास्टर बैठे हैं। राखाल लेटे हैं। आनन्द में श्रीरामकृष्ण ने राखाल का मस्तक अपनी गोद में उठा लिया है। आज कुछ दिनों से आप राखाल को साक्षात् गोपाल के रूप में देखते हैं।

त्रैलोक्य सामने से माँ काली के दर्शन को जा रहे हैं। साथ में नौकर उनके सिर पर छाता लगाये जा रहा है। श्रीरामकृष्ण राखाल से बोले, 'उठ रे, उठ!'

श्रीरामकृष्ण बैठे हैं। त्रैलोक्य ने आकर प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य से)—कल 'यात्रा' नहीं हुई?

त्रैलोक्य—जी नहीं, अब की बार 'यात्रा' की वैसी सुविधा नहीं हुई।

श्रीरामकृष्ण—तो इस बार जो हुआ सो हुआ। देखना, जिससे फिर ऐसा न होने पाये। जैसा नियम है वैसा ही हमेशा होना अच्छा है।

त्रैलोक्य यथोचित उत्तर देकर चले गये। कुछ देर बाद विष्णु-मन्दिर के पुरोहित राम चटर्जी आये।

श्रीरामकृष्ण—राम, मैंने त्रैलोक्य से कहा, इस साल 'यात्रा' नहीं हुई, देखना जिससे आगे ऐसा न हो। तो क्या यह कहना ठीक हुआ?

राम—महाराज, उससे क्या हुआ! अच्छा ही तो कहा। जैसा नियम है उसी प्रकार हमेशा होना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण (बलराम से)—अजी, आज तुम यहीं भोजन करो।

भोजन के कुछ पहले श्रीरामकृष्णदेव अपनी अवस्था के सम्बन्ध में भक्तों को बहुत बातें बताने लगे। राखाल, बलराम, मास्टर, रामलाल तथा और दो-एक भक्त बैठे थे।

श्रीरामकृष्ण—हाजरा मुझे उपदेश देता है कि तुम इन लड़कों

के लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो ! गाड़ी में बैठकर बलराम के मकान पर जा रहा था, उसी समय मन में बड़ी चिन्ता हुई। कहने लगा, 'माँ, हाजरा कहता है, नरेन्द्र आदि बालकों के लिए मैं इतनी चिन्ता क्यों करता हूँ; वह कहता है, ईश्वर की चिन्ता त्यागकर इन लड़कों की चिन्ता आप क्यों करते हैं ?' मेरे यह कहते कहते अचानक माँ ने दिखलाया कि वे ही मनुष्य रूप में लीला करती हैं। शुद्ध आधार में उनका प्रकाश स्पष्ट होता है। इस दर्शन के बाद जब समाधि कुछ टूटी तो हाजरा के ऊपर बड़ा क्रोध हुआ। कहा, साले मेरा मन खराब कर दिया था। फिर सोचा, उस बेचारे का अपराध ही क्या है; वह यह कैसे जान सकता है ?

"मैं इन लोगों को साक्षात् नारायण जानता हूँ। नरेन्द्र के साथ पहले भेंट हुई। देखा, देहबुद्धि नहीं है। जरा छाती को स्पर्श करते ही उसका बाह्य-ज्ञान लोप हो गया। होश आने पर कहने लगा, 'आपने यह क्या किया ! मेरे तो माता-पिता हैं।' यदु मल्लिक के मकान में भी ऐसा ही हुआ था। क्रमशः उसे देखने के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, प्राण छटपटाने लगे। तब भोलानाथ* से कहा, 'क्यों जी, मेरा मन ऐसा क्यों होता है? नरेन्द्र नाम का एक कायस्थ लड़का है, उसके लिए ऐसा क्यों होता है ?' भोलानाथ बोले, 'इस सम्बन्ध में महाभारत में लिखा है कि समाधि-वान् पुरुष का मन जब नीचे उतरता है, तब सतोगुणी लोगों के साथ विलास करता है। सतोगुणी मनुष्य देखने से उसका मन शान्त होता है।'—यह बात सुनकर मेरे चित्त को शान्ति मिली। बीच बीच में नरेन्द्र को देखने के लिए मैं बैठा बैठा रोया करता था।"

* भोलानाथ मुखर्जी ठाकुरबाड़ी के मुन्शी थे, बाद में खजांची हुए थे।

(२)

श्रीरामकृष्ण का प्रेमोन्माद और रूपदर्शन

श्रीरामकृष्ण—ओह, कैसी अवस्था बीत गयी है ! पहले जब ऐसी अवस्था हुई थी तो रातदिन कैसे बीत जाते थे, कह नहीं सकता। सब कहने लगे थे, पागल हो गया; इसीलिए इन लोगों ने शादी कर दी। उन्माद अवस्था थी। पहले स्त्री के बारे में चिन्ता हुई, वाद में सोचा कि वह भी इसी प्रकार रहेगी, खायेगी, पियेगी। ससुराल गया, वहाँ भी खूब संकीर्तन हुआ। नफर, दिगम्बर बनर्जी के पिता आदि सब लोग आये। खूब संकीर्तन होता था। कभी कभी सोचता था, क्या होगा। फिर कहता था, माँ, गाँव के जमींदार यदि मानें तो समझूँगा यह अवस्था सत्य है। और सचमुच वे भी आप ही आने लगे और बातचीत करने लगे।

"कैसी अवस्था बीत गयी है ! किंचित् ही कारण से एकदम भगवान् की उद्दीपना होती थी। मैंने सुन्दरी-पूजा की। चौदह वर्ष की लड़की थी। देखा साक्षात् माँ जगदम्बा ! रुपये देकर मैंने प्रणाम किया।

"रामलीला देखने के लिए गया तो सीता, राम, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, सभी को साक्षात् प्रत्यक्ष देखा। तब जो जो बने थे उनकी पूजा करने लगा।

"कुमारी कन्याओं को बुलाकर उनकी पूजा करता—देखता साक्षात् माँ जगदम्बा।

"एक दिन वकुलवृक्ष के तले देखा, नीला वस्त्र पहने हुए एक स्त्री खड़ी है। वह वेश्या थी, पर मेरे मन में एकदम सीता की उद्दीपना हो गयी। उस स्त्री को बिलकुल भूल गया और देखा साक्षात् सीतादेवी लंका से उद्धार पाकर राम के पास जा रही

हैं। बहुत देर तक बाह्य-संज्ञाहीन हो समाधि-अवस्था में रहा।

"और एक दिन कलकत्ते में किले के मैदान में घूमने के लिए गया था। उस दिन 'बलून' (गुब्बारा) उड़नेवाला था। बहुत-से लोगों की भीड़ थी। अचानक एक अंग्रेज बालक की ओर दृष्टि गयी, वह पेड़ के सहारे त्रिभंग होकर खड़ा था। देखते ही श्रीकृष्ण की उद्दीपना हो समाधि हो गयी।

"शिऊड़ गाँव में चरवाहों को भोजन कराया। सब के हाथ में मैंने जलपान की सामग्री दी। देखा, साक्षात् व्रज के ग्वालबाल! उनसे जलपान लेकर मैं भी खाने लगा।

"प्रायः होश न रहता था। मथुरबाबू ने मुझे ले जाकर जानबाजार के मकान में कुछ दिन रखा। मैं देखने लगा, साक्षात् माँ की दासी हो गया हूँ। घर की औरतें बिलकुल शरमाती नहीं थीं, जैसे छोटे छोटे बच्चों को देख कोई भी स्त्री लज्जा नहीं करती। रात को बाबू की कन्या को जमाई के पास पहुँचाने जाता।

"अब भी थोड़े ही में उद्दीपना हो जाती है। राखाल जप करते समय ओठ हिलाता था। मैं उसे देखकर स्थिर नहीं रह सकता था, एकदम ईश्वर की उद्दीपना होती और विह्वल हो जाता।"

श्रीरामकृष्ण अपने प्रकृति-भाव की और भी कथाएँ कहने लगे। बोले, "मैंने एक कीर्तनिया को स्त्री-कीर्तनिया के ढंग दिखलाये थे। उसने कहा, 'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। आपने यह सब कैसे सीखा?' " यह कहकर आप स्त्री-कीर्तनिया के ढंग का अनुकरण कर दिखलाने लगे। कोई भी अपनी हँसी न रोक सका।

(३)

श्रीरामकृष्ण 'अहेतुक कृपासिन्धु'

भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। गाढ़ी

नींद नहीं, तन्द्रा-सी है। श्री मणिलाल मल्लिक ने आकर प्रणाम किया और आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण अब भी लेटे हैं। मणिलाल बीच बीच में बातें करते हैं। श्रीरामकृष्ण अर्धनिद्रित-अर्धजागृत अवस्था में हैं, वे किसी किसी बात का उत्तर दे देते हैं।

मणिलाल–शिवनाथ नित्यगोपाल की प्रशंसा करते हैं। कहते हैं, उनकी अच्छी अवस्था है।

श्रीरामकृष्ण अभी पूरी तरह से नहीं जागे। वे पूछते हैं, "हाजरा को वे लोग क्या कहते हैं ?"

श्रीरामकृष्ण उठ बैठे। मणिलाल से भवनाथ की भक्ति के बारे में कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण–अहा, उसका भाव कैसा सुन्दर है ! गाना गाते आँखें आँसुओं से भर जाती हैं। हरीश को देखते ही उसे भाव हो गया। कहता है, ये लोग अच्छे हैं। हरीश घर छोड़ यहाँ कभी कभी रहता है न, इसीलिए।

मास्टर से प्रश्न कर रहे हैं, "अच्छा, भक्ति का कारण क्या है? भवनाथ आदि बालकों की उद्दीपना क्यों होती है?" मास्टर चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण–बात यह है कि बाहर से देखने में सभी मनुष्य एक ही तरह के होते हैं। पर किसी किसी में खोए का पूर भरा होता है। पकवान के भीतर उरद का पूर भी हो सकता है और खोए का भी, पर देखने में दोनों एक-से हैं। भगवान् को जानने की इच्छा, उन पर प्रेम और भक्ति, इसी का नाम खोए का पूर है।

अब आप भक्तों को अभय देते हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–कोई सोचता है कि मुझे ज्ञान-भक्ति न होगी, मैं शायद बद्धजीव हूँ। श्रीगुरु की कृपा होने पर कोई भय नहीं है। बकरियों के एक झुण्ड में बाघिन कूद पड़ी थी।

कूदते समय बाघिन को बच्चा पैदा हो गया। बाघिन तो मर गयी, पर वह बच्चा बकरियों के साथ पलने लगा। बकरियाँ घास खातीं तो वह भी घास खाता। बकरियाँ 'में में' करतीं तो वह भी करता। धीरे धीरे वह बच्चा बड़ा हो गया। एक दिन इन बकरियों के झुण्ड पर एक दूसरा बाघ झपटा। वह उस घास खानेवाले बाघ को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। दौड़कर उसने उसे पकड़ा तो वह 'में में' कर चिल्लाने लगा। उसे घसीटकर वह जल के पास ले गया और बोला, 'देख, जल में तू अपना मुँह देख। देख, मेरे ही समान तू भी है; और ले यह थोड़ासा माँस है, इसे खा ले।' यह कहकर वह उसे बलपूर्वक खिलाने लगा। पर वह किसी तरह खाने को राजी न हुआ, 'में में' चिल्लाता ही रहा। अन्त में रक्त का स्वाद पाकर वह खाने लगा। तब उस नये बाघ ने कहा, 'अब तूने समझा कि जो मैं हूँ वही तू भी है। अब आ, मेरे साथ जंगल को चल।'

"इसीलिए गुरु की कृपा होने पर फिर कोई भय नहीं। वे बतला देंगे, तुम कौन हो, तुम्हारा स्वरूप क्या है।

"थोड़ा साधन करने पर गुरु सब बातें साफ साफ समझा देते हैं। तब मनुष्य स्वयं समझ सकता है, क्या सत् है, क्या असत्। ईश्वर ही सत्य और यह संसार अनित्य है।

"एक धीवर किसी दूसरे के बाग में रात के समय चुराकर मछलियाँ पकड़ रहा था। मालिक को इसकी टोह लग गयी और दूसरे लोगों की सहायता से उसने उसे घेर लिया। मशाल जलाकर वे चोर को खोजने लगे। इधर वह धीवर शरीर में कुछ भस्म लगाये, एक पेड़ के नीचे साधु बनकर बैठ गया। उन लोगों ने बहुत ढूँढ़-तलाश की, पर केवल भभूत रमाये एक ध्यानमग्न

साधु के सिवाय और किसी को न पाया। दूसरे दिन गाँव भर में खबर फैल गयी कि अमुक के बाग में एक बड़े महात्मा आये हैं। फिर क्या था, सब लोग फल, फूल, मिठाई आदि लेकर साधु के दर्शन को आये। बहुतसे रुपये-पैसे भी साधु के सामने पड़ने लगे। धीवर ने विचारा, आश्चर्य की बात है कि मैं सच्चा साधु नहीं हूँ, फिर भी मेरे ऊपर लोगों की इतनी भक्ति है! इसलिए यदि मैं हृदय से साधु हो जाऊँ तो अवश्य ही भगवान् मुझे मिलेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

"कपट साधना से ही उसे इतना ज्ञान हुआ, सत्य साधना होने पर तो कोई बात ही नहीं। क्या सत्य है, क्या असत्य--साधना करने से तुम समझ सकोगे। ईश्वर ही सत्य हैं और सारा संसार अनित्य।"

एक भक्त चिन्ता कर रहे हैं, क्या संसार अनित्य है? धीवर तो संसार त्यागकर चला गया। फिर जो संसार में हैं उनका क्या होगा? उन लोगों को भी क्या त्याग करना होगा? श्रीरामकृष्ण अहेतुक कृपासिन्धु हैं, तत्काल कहते हैं, "यदि किसी आफिस के कर्मचारी को जेल जाना पड़े तो वह जेल में सजा काटेगा सही, पर जब जेल से मुक्त हो जायगा, तब क्या वह रास्ते में नाचता फिरेगा? वह फिर किसी आफिस की नौकरी ढूँढ़ लेगा, वही पुराना काम करता रहेगा। इसी तरह गुरु की कृपा से ज्ञानलाभ होने पर मनुष्य संसार में भी जीवन्मुक्त होकर रह सकता है।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने सांसारिक मनुष्यों को अभय प्रदान किया।

(४)

श्रीरामकृष्ण और निराकारवाद। विश्वास ही सब कुछ है।

मणिलाल (श्रीरामकृष्ण से)--उपासना के समय उनका ध्यान

किस जगह करेंगे ?

श्रीरामकृष्ण—हृदय तो खूब प्रसिद्ध स्थान है। वहीं उनका ध्यान करना।

मणिलाल निराकारवादी ब्राह्म हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें लक्ष्य कर कहते हैं, "कबीर कहते थे—

'निर्गुण तो है पिता हमारा और सगुण महतारी।
काकों निन्दौ काकों बन्दौ दोनों पल्ले भारी॥'

"हलधारी दिन में साकार भाव में और रात को निराकार भाव में रहता था। बात यह है कि चाहे जिस भाव का आश्रय करो, विश्वास पक्का होना चाहिए। चाहे साकार में विश्वास करो चाहे निराकार में, परन्तु वह ठीक ठीक होना चाहिए।

"शम्भु मल्लिक बागबाजार से पैदल अपने बाग में आया करते थे। किसी ने कहा था, 'इतनी दूर है, गाड़ी से क्यों नहीं आते ? रास्ते में कोई विपत्ति हो सकती है।' उस समय शम्भु ने नाराज होकर कहा था, 'क्या! मैं भगवान् का नाम लेकर निकला हूँ, फिर मुझे विपत्ति !'

"विश्वास से ही सब कुछ होता है। मैं कहता था यदि अमुक से भेंट हो जाय या यदि अमुक खजांची मेरे साथ बात करे तो समझूँ कि मेरी यह अवस्था सत्य है। परन्तु जो मन में आता, वही हो जाता था।"

मास्टर ने अंग्रेजी का न्यायशास्त्र पढ़ा था। उसमें लिखा है कि सबेरे के स्वप्न का सत्य होना लोगों के कुसंस्कार की ही उपज है। इसलिए उन्होंने पूछा, "अच्छा, कभी ऐसा भी हुआ है कि कोई घटना नहीं हुई ?"

श्रीरामकृष्ण—"नहीं, उस समय सब हो जाता था। ईश्वर का

नाम लेकर जो विश्वास करता था, वही हो जाता था। (मणिलाल से) पर इसमें एक बात है। सरल और उदार हुए बिना यह विश्वास नहीं होता। जिसके शरीर की हड्डियाँ दिखायी देती हैं, जिसकी आँखें छोटी और घुसी हुई हैं, जो ऐंचाताना है, उसे सहज में विश्वास नहीं होता। इसी प्रकार और भी कई लक्षण हैं।"

शाम हो गयी। दासी कमरे में धूनी दे गयी। मणिलाल आदि के चले जाने के बाद दो एक भक्त अभी बैठे हैं। कमरा शान्त और धूने से सुवासित है। श्रीरामकृष्ण अपने छोटे तख्त पर बैठे हुए जगन्माता का चिंतन कर रहे हैं। मास्टर और राखाल जमीन पर बैठे हैं।

थोड़ी देर बाद मथुरबाबू के घर की दासी भगवती ने आकर दूर से श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। आपने उसे बैठने के लिए कहा। भगवती बाबू की बहुत पुरानी दासी है। बहुत साल से बाबू के यहाँ रह रही है। श्रीरामकृष्ण उसे बहुत दिनों से जानते हैं। पहले पहल उसका स्वभाव अच्छा न था; पर श्रीरामकृष्ण दया के सागर, पतितपावन हैं, इसीलिए उससे पुरानी बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—अब तो तेरी उम्र बहुत हुई है। जो रुपये कमाये हैं उनसे साधु-वैष्णवों को खिलाती है या नहीं ?

भगवती (मुसकराकर)—यह भला कैसे कहूँ ?

श्रीरामकृष्ण—काशी, वृन्दावन यह सब तो हो आयी ?

भगवती (थोड़ा सकुचाती हुई)—कैसे बतलाऊँ ? एक घाट बनवा दिया है उसमें पत्थर पर मेरा नाम लिखा है।

श्रीरामकृष्ण—ऐसी बात !

भगवती—हाँ, नाम लिखा है, 'श्रीमती भगवती दासी।'

श्रीरामकृष्ण (मुसकराकर)—बहुत अच्छा।

भगवती ने साहस पाकर श्रीरामकृष्ण के चरण छूकर प्रणाम-

किया ।

बिच्छू के काटने से जैसे कोई चौंक उठता है और अस्थिर हो खड़ा हो जाता है, वैसे ही श्रीरामकृष्ण अधीर हो, 'गोविन्द' 'गोविन्द' उच्चारण करते हुए खड़े हो गये । कमरे के कोने में गंगाजल का एक मटका था—और अब भी है—हाँफते हाँफते, मानो घबराये हुए, उसी के पास गये और पैर के जिस स्थान को दासी ने छुआ था, उसे गंगाजल से धोने लगे ।

दो-एक भक्त जो कमरे में थे, स्तब्ध और चकित हो एकटक यह दृश्य देख रहे हैं । दासी जीवन्मृत की तरह बैठी है । दयासिन्धु पतितपावन श्रीरामकृष्ण ने दासी से करुणा से सने हुए स्वर में कहा, "तुम लोग ऐसे ही प्रणाम करना ।" यह कहकर फिर आसन पर बैठकर दासी को बहलाने की चेष्टा करते रहे । उन्होंने कहा, "कुछ गाते हैं, सुन ।" यह कहकर उसे गाना सुनाने लगे ।—

(१) (भावार्थ)—"मेरा मनमधुप श्यामापद-नीलकमल में मस्त हो गया । कामादि पुष्पों में जितने विषय-मधु थे सब तुच्छ हो गये ।. . ."

(२) (भावार्थ)—"श्यामा माँ के चरणरूपी आकाश में मन की पतंग उड़ रही थी । कलुष की कुवायु से वह चक्कर खाकर गिर पड़ी ।. . ."

(३) (भावार्थ)—"मन ! अपने आप में रहो । किसी दूसरे के घर न जाओ । जो कुछ चाहोगे वह बैठे हुए ही पाओगे, अपने अन्तःपुर में जरा खोजो तो सही ! . . ."

परिच्छेद ३७

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

(१)

पूर्वकथा—देवेन्द्र ठाकुर, दीन मुखर्जी और कुँवरसिंह

आज अमावस्या, मंगलवार का दिन है, ५ जून १८८३ ई०। श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिर में हैं। भक्त-समागम रविवार को विशेष होता है; आज अधिक लोग नहीं हैं। राखाल श्रीरामकृष्ण के पास रहते हैं। हाजरा भी हैं, श्रीरामकृष्ण के कमरे के सामने वाले बरामदे में अपना आसन लगाया है। मास्टर पिछले रविवार से यहाँ हैं।

कल सोमवार रात को कालीमन्दिर में कृष्णलीला पर नाटक हुआ था। श्रीरामकृष्ण ने कुछ देर तक देखा था। वैसे यह नाटक रविवार को होनेवाला था, पर उस दिन न हो पाया इसलिए कल सोमवार को हुआ।

दोपहर को भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण अपने प्रेमोन्माद की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—कैसी हालत बीत चुकी है! य . भोजन न करता था, वराहनगर या दक्षिणेश्वर या आरियादह में किसी ब्राह्मण के घर चला जाता, और जाता भी देर में था। जाकर बैठ जाता था, पर बोलता कुछ नहीं। घर के लोग पूछते तो केवल कहता, 'मैं यहाँ खाऊँगा।' और कोई बात नहीं करता। आलमबाजार में राम चटर्जी के यहाँ जाता। कभी दक्षिणेश्वर में सावर्ण चौधरी के मकान पर जाता। उनके यहाँ खाया तो करता था, पर अच्छा नहीं लगता था; उसमें कैसी गन्ध आती थी!

"एक दिन हठ कर बैठा, देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर जाऊँगा।

मथुरबाबू से कहा, 'देवेन्द्र ईश्वर का नाम लेते हैं, उनको देखना चाहता हूँ, मुझे ले चलोगे ?' मथुरबाबू को अपनी मान-मर्यादा का बड़ा अभिमान था, वे अपनी गरज से किसी के मकान पर क्यों जाने लगे ? आगापीछा करने लगे। बाद में बोले, 'अच्छा, देवेन्द्र और हम एक साथ पढ़ चुके हैं, चलिये, आपको ले चलेंगे।'

"एक दिन सुना कि दीन मुखर्जी नाम का एक भला आदमी बागबाजार के पुल के पास रहता है। भक्त है। मथुरबाबू को पकड़ा, दीन मुखर्जी के यहाँ जाऊँगा। मथुरबाबू क्या करते, गाड़ी पर मुझे ले गये। छोटासा मकान और इधर एक बड़ी भारी गाड़ी पर एक बड़ा आदमी आया है; वह भी शरमा गया और हम भी। फिर उसके लड़के का जनेऊ होनेवाला था। कहाँ बैठाये ! हम लोग बाजू के कमरे में जाने लगे तो वह बोल उठा, 'वहाँ न जाइये, उस कमरे में औरतें हैं।' बड़ा असमंजस था। मथुरबाबू लौटते समय बोले, 'बाबा, तुम्हारी बात अब कभी न मानूंगा।' मैं हंसने लगा।

"कैसी अनोखी अवस्था थी ! कुँवरसिंह ने साधुओं को भोजन कराना चाहा, मुझे भी न्योता दिया। जाकर देखा बहुतसे साधु आये हैं। मेरे बैठने पर साधुओं में से कोई कोई मेरा परिचय पूछने लगे--'आप गिरी हैं या पुरी ?' पर ज्योंही उन्होंने पूछा त्योंही मैं अलग जाकर बैठा। सोचा कि इतनी खबर काहे की ? बाद को ज्योंही पत्तल बिछाकर भोजन के लिए बैठाया, किसी के कुछ कहने के पहले ही मैंने खाना शुरू कर दिया। साधुओं में से किसी किसी को कहते सुना, 'अरे यह क्या !'"

(२)

साधु और अवतार में अन्तर

पाँच बजे हैं। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के बरामदे की सीढ़ी

पर बैठे हैं। राखाल, हाजरा और मास्टर पास बैठे हैं।

हाजरा का भाव है—'सोऽहं—मैं ही ब्रह्म हूँ।'

श्रीरामकृष्ण (हाजरा से)—हाँ, यह सोचने से सब गड़बड़ मिट जाती है,—वे ही आस्तिक हैं, वे ही नास्तिक; वे ही भले हैं, वे ही बुरे; वे ही नित्य वस्तु हैं, वे ही अनित्य जगत्; जागृति और निद्रा उन्हीं की अवस्थाएँ हैं; फिर वे ही इन सारी अवस्थाओं से परे भी हैं।

"एक किसान को बुढ़ापे में एक लड़का हुआ था। लड़के को वह बहुत यत्न से पालता था। धीरे धीरे लड़का बड़ा हुआ। एक दिन जब किसान खेत में काम कर रहा था, किसी ने आकर उसे खबर दी कि तुम्हारा लड़का बहुत बीमार है—अब-तब हो रहा है। उसने घर में आकर देखा, लड़का मर गया है। स्त्री खूब रो रही है; पर किसान की आँखों में आँसू तक नहीं। उसकी स्त्री अपनी पड़ोसिनों के पास इसलिए और भी शोक करने लगी कि ऐसा लड़का चला गया, पर इनकी आँखों में आँसू का नाम नहीं! बड़ी देर बाद किसान ने अपनी स्त्री को पुकारकर कहा, 'मैं क्यों नहीं रोता, जानती हो? मैंने कल स्वप्न में देखा कि राजा हो गया हूँ और सात लड़कों का बाप बना हूँ। स्वप्न में ही देखा कि वे लड़के रूप और गुण में अच्छे हैं। क्रमशः वे बड़े हुए और विद्या तथा धर्म उपार्जन करने लगे। इतने में ही नींद खुल गयी। अब सोच रहा हूँ कि तुम्हारे इस एक लड़के के लिए रोऊँ या अपने उन सात लड़कों के लिए?' ज्ञानियों के मत से स्वप्न की अवस्था जैसी सत्य है, जाग्रत् अवस्था भी वैसी ही सत्य है।

"ईश्वर ही कर्ता हैं, उन्हीं की इच्छा से सब कुछ हो रहा है।"

हाजरा-पर यह समझना बड़ा कठिन है। भू-कैलास के साधु

को कितना कष्ट दिया गया, जो एक तरह से उनकी मृत्यु का कारण हुआ। वे समाधि की हालत में मिले थे। होश में लाने के लिए लोगों ने उन्हें कभी जमीन में गाड़ा, कभी जल में डुबोया और कभी उनका शरीर दाग दिया। इस तरह उन्हें चैतन्य कराया। इन यन्त्रणाओं के कारण उनका शरीर छूट गया। लोगों ने उन्हें कष्ट भी दिया और इधर ईश्वर की इच्छा से उनकी मृत्यु भी हुई।

श्रीरामकृष्ण–जिसका जैसा कर्म है, उसका फल वह पायेगा। किन्तु ईश्वर की इच्छा से उन साधु का शरीर-त्याग हुआ। वैद्य बोतल के अन्दर मकरध्वज तैयार करते हैं। उसके चारों ओर मिट्टी लीपकर वे उसे आग में रख देते हैं। बोतल के अन्दर का सोना आग की गर्मी से और कई चीजों के साथ मिलकर मकरध्वज बन जाता है। तब वैद्य बोतल को उठाकर उसे धीरे धीरे तोड़ता है और उससे मकरध्वज निकालकर रख लेता है। उस समय बोतल रहे चाहे नष्ट हो जाय, उससे क्या? उसी तरह लोग सोचते हैं कि साधु मार डाले गये, पर शायद उनकी चीज बन चुकी होगी। भगवान् का लाभ होने के बाद शरीर रहे भी तो क्या, और जाय तो भी क्या?

"भू-कैलास के वे साधु समाधिस्थ थे। समाधि अनेक प्रकार की होती है। हृषीकेश के साधु के कथन से मेरी अवस्था मिल गयी थी। कभी शरीर में चींटी की तरह वायु चलती हुई जान पड़ती है; कभी बड़े वेग के साथ, जैसे बन्दर एक डाल से दूसरी डाल पर कूदते हैं; कभी मछली की तरह गति होती है। जिसको हो वही जान सकता है। जगत् का ख्याल जाता रहता है। मन के कुछ उतरने पर मैं कहता हूँ, 'माँ, मुझे अच्छा कर दो, मैं बातें

करना चाहता हूँ।'

"ईश्वरकोटि जैसे अवतार आदि, न होने पर कोई समाधि से नहीं लौट सकता। जीवकोटि के कोई कोई साधना के बल से समाधिस्थ होते तो हैं; पर वे फिर नहीं लौटते। जब ईश्वर स्वयं मनुष्य होकर आते हैं, अवतार रूप में आते हैं और जीवों की मुक्ति की चाभी उनके हाथ में रहती है, तब वे समाधि के बाद लौटते हैं——लोगों के कल्याण के लिए।"

मास्टर (मन ही मन)—क्या श्रीरामकृष्ण के हाथ में जीवों की मुक्ति की चाभी है?

हाजरा—ईश्वर को सन्तुष्ट करने से सब कुछ हुआ। अवतार हों या न हों।

श्रीरामकृष्ण (हँसकर)—हाँ, हाँ। विष्णुपुर में रजिस्टरी का बड़ा दफ्तर है, वहाँ रजिस्टरी हो जाने पर फिर गोघाट में कोई बखेड़ा नहीं होता।

शाम हुई। मन्दिर में आरती हो रही है। बारह शिव-मन्दिरों तथा श्रीराधाकान्त के और माता भवतारिणी के मन्दिर में शंख घण्टा आदि मंगल-वाद्य बज रहे हैं। आरती समाप्त होने के कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण अपने कमरे से दक्षिण के बरामदे में आ बैठे। चारों ओर घना अन्धकार है, केवल मन्दिर में स्थान स्थान पर दीपक जल रहे हैं। गंगाजी के वक्ष पर आकाश की काली छाया पड़ी है। आज अमावस्या है। श्रीरामकृष्ण सहज ही भावमग्न हैं, आज भाव और भी गम्भीर हो रहा है। बीच बीच में प्रणव उच्चारण कर रहे हैं और देवी का नाम ले रहे हैं। गर्मी का मौसम है, कमरे के भीतर गर्मी बहुत है। इसलिए बरामदे में आये हैं। किसी भक्त ने एक कीमती चटाई दी

है। वही बरामदे में बिछायी गयी है। श्रीरामकृष्ण को सर्वदा माँ का ध्यान लगा रहता है। लेटे हुए आप मणि से धीरे धीरे बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—देखो, ईश्वर के दर्शन होते हैं। अमुक को दर्शन मिले हैं, परन्तु किसी से कहना मत। तुम्हें ईश्वर का रूप पसन्द है या निराकार-चिन्ता ?

मणि—इस समय तो निराकार-चिन्ता कुछ अच्छी लगती है, पर यह भी कुछ कुछ समझ में आया है कि वे ही साकार हो इन अनेक रूपों में विराजते हैं।

श्रीरामकृष्ण—देखो, मुझे गाड़ी पर बेलघरिया में मोती शील की झील को ले चलोगे ? वहाँ चारा फेंक दो, मछलियाँ आकर उसे खाने लगेंगी। अहा ! मछलियों को खेलती हुई देखकर क्या आनन्द होता है! तुम्हें उद्दीपना होगी कि मानो सच्चिदानन्दरूपी सागर में आत्मारूपी मछली खेल रही है। उसी तरह लम्बे-चौड़े मैदान में खड़े होने से ईश्वरीय भाव आ जाता है, जैसे किसी हण्डी में रखी हुई मछली तालाब को पहुँच गयी हो।

"उनके दर्शन के लिए साधना चाहिए। मुझे कठोर साधनाएँ करनी पड़ीं। बिल्ववृक्ष के नीचे तरह तरह की साधनाएँ कर चुका। वृक्ष के नीचे पड़ा रहता था,—यह कहते हुए कि माँ, दर्शन दो। रोते रोते आँसुओं की झड़ी लग जाती थी।

मणि—जब आप ही इतनी साधनाएँ कर चुके तब दूसरे लोग क्या एक ही क्षण में सब कर लेंगे ? मकान के चारों ओर उँगली फेर देने ही से क्या दीवाल बन जायगी ?

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—अमृत कहता है, एक आदमी के आग जलाने पर दस आदमी उसके ताप से लाभ उठाते हैं। एक बात और

है,—नित्य को पहुँचकर लीला में रहना अच्छा है।

मणि—आपने तो कहा है कि लीला विलास के लिए है।

श्रीरामकृष्ण—नहीं, लीला भी सत्य है। और देखो, जब यहाँ आओगे तब अपने साथ थोड़ा कुछ लेते आना। खुद नहीं कहना चाहिए, इससे अभिमान होता है। अधर सेन से भी कहता हूं, एक पैसे का कुछ लेकर आना। भवनाथ से कहता हूं कि एक पैसे का पान लाना। भवनाथ की भक्ति कैसी है, देखी है तुमने? भवनाथ और नरेन्द्र मानो स्त्री और पुरुष हैं। भवनाथ नरेन्द्र का अनुगत है। नरेन्द्र को गाड़ी पर ले आना। कुछ खाने की चीज लाना। इससे बहुत भला होता है।

ज्ञानपथ और नास्तिकता

"ज्ञान और भक्ति—दोनों ही मार्ग हैं। भक्तिमार्ग में आचार कुछ अधिक पालन करना पड़ता है। ज्ञानमार्ग में यदि कोई अनाचार भी करे तो वह मिट जाता है। खूब आग जलाकर एक केले का पेड़ भी झोंक दो, तो वह भी भस्म हो जाता है।

"ज्ञानी का मार्ग विचारमार्ग है। विचार करते करते कभी कभी नास्तिकपन भी आ सकता है। पर भगवान् को जानने के लिए भक्त की यदि हार्दिक इच्छा हो, तो नास्तिकता आने पर भी वह ईश्वरचिन्तन नहीं त्यागता। जिसके बाप-दादे किसानी करते आ रहे हैं, अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण किसी साल फसल न होने पर भी वह खेती करता ही रहता है।"

श्रीरामकृष्ण लेटे लेटे बातें कर रहे हैं। बीच में मणि से बोले, "मेरा पैर थोड़ा दर्द कर रहा है, जरा हाथ फेर दो।"

अहेतुक कृपासिन्धु गुरुदेव के कमलचरणों की सेवा करते हुए, मणि उनके श्रीमुख से वे अपूर्व तत्त्व सुन रहे हैं।

परिच्छेद ३८

दक्षिणेश्वर मन्दिर में

श्रीरामकृष्ण की समाधि। भक्तों के द्वारा श्रीचरण-पूजा

श्रीरामकृष्ण आज सन्ध्या-आरती के बाद दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में देवी की प्रतिमा के सम्मुख खड़े होकर दर्शन करते और चमर लेकर कुछ देर डुलाते रहे।

ग्रीष्म ऋतु है। ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया तिथि है। शुक्रवार, ८ जून १८८३ ई०। आज शाम को राम, केदार चटर्जी और तारक श्रीरामकृष्ण के लिए फूल और मिठाई लिये कलकत्ते से गाड़ी पर आये हैं।

केदार की उम्र कोई पचीस वर्ष की होगी। बड़े भक्त हैं। ईश्वर की चर्चा सुनते ही उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। पहले ब्राह्मसमाज में आते-जाते थे। फिर कर्ताभजा, नवरसिक आदि अनेक सम्प्रदायों से मिलकर अन्त में उन्होंने श्रीरामकृष्ण के चरणों में शरण ली है। सरकारी नौकरी में हिसाबनवीस का काम करते हैं। उनका घर काँचड़ापाड़ा के निकट हालीशहर गाँव में है।

तारक की उम्र चौबीस वर्ष की होगी। विवाह के कुछ दिन बाद उनकी स्त्री की मृत्यु हो गयी। उनका मकान बारासात गाँव में है। उनके पिता एक उच्च कोटि के साधक थे, श्रीरामकृष्ण के दर्शन उन्होंने अनेक बार किये थे। तारक की माता की मृत्यु होने पर उनके पिता ने अपना दूसरा विवाह कर लिया था।

तारक राम के मकान पर सर्वदा आते-जाते रहते हैं। उनके

और नित्यगोपाल के साथ वे प्रायः श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन करने के लिए आते हैं। इस समय भी किसी आफिस में काम करते हैं। परन्तु सर्वदा विरक्ति का भाव है।

श्रीरामकृष्ण ने कालीमन्दिर से निकलकर चबूतरे पर भूमिष्ठ हो माता को प्रणाम किया। उन्होंने देखा राम, मास्टर, केदार, तारक आदि भक्त वहाँ खड़े हैं।

तारक को देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए और उनकी ठुड्डी छूकर प्यार करने लगे।

अब श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर अपने कमरे में जमीन पर बैठे हैं। उनके दोनों पैर फैले हैं। राम और केदार ने उन चरणकमलों को पुष्पमालाओं से शोभित किया है। श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हैं।

केदार का भाव नवरसिक समाज का है। वे श्रीरामकृष्ण के चरणों के अँगूठों को पकड़े हुए हैं। उनकी धारणा है कि इससे शक्ति का संचार होगा। श्रीरामकृष्ण कुछ प्रकृतिस्थ हो कह रहे हैं, "माँ! अँगूठों को पकड़कर वह मेरा क्या कर सकेगा?"

केदार विनीत भाव से हाथ जोड़े बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण (केदार से भावावेश में)—कामिनी और कांचन पर तुम्हारा मन खिचता है। मुँह से कहने से क्या होगा कि मेरा मन उधर नहीं है!

"आगे बढ़ चलो। चन्दन की लकड़ी के आगे और भी बहुत-कुछ हैं,—चाँदी की खान—सोने की खान—फिर हीरे और माणिक। थोड़ीसी उद्दीपना हुई है, इससे यह मत सोचो कि सब कुछ हो गया।"

श्रीरामकृष्ण फिर अपनी माता से बातें कर रहे हैं। कहते हैं, "माँ! इसे हटा दो।"

केदार का कण्ठ सूख गया है। भयभीत हो राम से कहते हैं, "ये यह क्या कह रहे हैं ?"

राखाल को देखकर श्रीरामकृष्ण फिर भावाविष्ट हो रहे हैं। उन्हें पुकारकर कहते हैं, "मैं यहाँ बहुत दिनों से आया हूँ। तू कब आया ?"

क्या श्रीरामकृष्ण इशारे से कहते हैं कि वे भगवान् के अवतार हैं और राखाल उनके एक अन्तरंग पार्षद ?

परिच्छेद ३९

मणिरामपुर तथा बेलघर के भक्तों के साथ

(१)

श्रीमुख-कथित चरितामृत

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर के अपने कमरे में कभी खड़े होकर, कभी बैठकर भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। आज रविवार, १० जून १८८३ ई०, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी है। दिन के दस बजे का समय होगा। राखाल, मास्टर, लाटू, किशोरी, रामलाल, हाजरा आदि अनेक व्यक्ति उपस्थित हैं।

श्रीरामकृष्ण स्वयं अपने चरित्र का वर्णन कर अपनी पूर्वकथा सुना रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)--उस देश में बचपन में मुझे स्त्री-पुरुष सभी चाहते थे। सभी मेरा गाना सुनते थे। फिर मैं लोगों की नकल उतार सकता था--लोग मेरा नकल उतारना देखते और सुनते थे। उनके घर की बहू-बेटियाँ मेरे लिए खाने की चीजें रख देती थीं। कोई मुझ पर अविश्वास न करता था। सभी घर के लड़के जैसा मानते थे।

"परन्तु मैं सुख पर लट्टू था। अच्छा सुखी घर देखकर आया-जाया करता था। जिस घर पर दुःख-विपत्ति देखता था, वहाँ से भाग जाता था।

"लड़कों में किसी को भला देखने पर उससे प्रेम करता था। और किसी किसी के साथ गहरी मित्रता जोड़ता था। परन्तु अब वे घोर संसारी बन गये हैं। अब उनमें से कोई कोई यहाँ पर आते हैं, आकर कहते हैं, 'वाह खूब! पाठशाला में भी जैसा देखा, यह

पर भी वैसा ही देख रहे हैं।'

"पाठशाला में हिसाब देखकर सिर चकराता था, परन्तु चित्र अच्छा खींच सकता था और अच्छी मूर्तियाँ गढ़ सकता था।

"जहाँ भी सदावर्त, धर्मशाला देखता था वहीं पर जाता था—जाकर बहुत देर तक खड़ा देखता रहता था।

"कहीं पर रामायण या भागवत की कथा होने पर बैठकर सुनता था, परन्तु यदि कोई मुँह-हाथ बनाकर पढ़ता, तो उसकी नकल उतारता था और लोगों को सुनाता था।

"औरतों का चालचलन खूब समझ सकता था। उनकी बातें, स्वर आदि की नकल उतारता था।

"बदचलन औरतों को पहचान सकता था। विधवा है—पर सिर पर सीधी माँग है और बड़ी लगन से शरीर पर तेल की मालिश कर रही है। लज्जा कम, बैठने का ढंग ही दूसरा है।

"रहने दो विषयी लोगों की बातें!"

रामलाल को गाना गाने के लिए कह रहे हैं। रामलाल गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"रणांगण में यह कौन मेघवर्ण नारी नाच रही है? मानो रुधिर-सरोवर में नवीन नलिनी तैर रही हो।"

अब रामलाल रावण-वध के बाद मन्दोदरी के विलाप का गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"हे कान्त, अबला के प्राणप्रिय, यह तुमने क्या किया! प्राणों का अन्त हुए बिना तो अब शान्ति नहीं मिलेगी! स्वर्णपुरी के सम्राट् होते हुए भी तुम आज धरती पर लेटे हो—यह देखकर भला तुम्हारी भार्या कैसे धीरज धर सकती है! स्वयं यमराज जहाँ दासत्व करें इतना बड़ा आधिपत्य स्वर्ग, मर्त्य, पाताल में और

किसी का देखा गया है ? जो इन्द्रादि की भी अधीश्वरी थी, वह तुम्हारी रानी आज संसार में भिखारिन बन गयी ! उन नवीन जटाधारी, वनविहारी को मनुष्य समझने के कारण तुमने सब कुछ खो डाला । स्वयं ब्रह्मा और ईशान जिनके चरणों की अभिलाषा रखते हैं, उन राम को हे राजा, तुमने माना ही नहीं । तुमने तो सुना था कि उनके चरण-स्पर्श से पाषाण भी नारी बन जाता है ।"

आखिर का गाना सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण आँसू बहा रहे हैं और कह रहे हैं--"मैंने झाऊतल्ले में शौच जाते समय सुना था, नाव के माँझी नाव में यही गाना गा रहे हैं । वहाँ जब तक बैठा रहा, केवल रो रहा था । लोग पकड़कर मुझे कमरे में लाये थे ।"

फिर गाना चलने लगा---

(भावार्थ)--"सुना है राम तारकब्रह्म हैं, जटाधारी राम मनुष्य नहीं हैं । हे पिताजी, क्या वंश का नाश करने के लिए उनकी सीता को चुराया है ?"

अक्रूर श्रीकृष्ण को रथ पर बैठाकर मथुरा ले जा रहे हैं । यह देख गोपियों ने रथचक्रों को जकड़कर पकड़ लिया है और उनमें से कोई कोई रथचक्र के सामने लेट गयी हैं । वे अक्रूर पर दोषा-रोपण कर रही हैं । वे नहीं जानतीं कि श्रीकृष्ण अपनी ही इच्छा से जा रहे हैं ।

(भावार्थ)---"रथचक्र को न पकड़ो, न पकड़ो । क्या रथ चक्र से चलता है ? जिनके चक्र से जगत् चलता है वे हरि ही इस चक्र के चक्री हैं ।"

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)--अहा, गोपियों का यह कैसा प्रेम! श्रीमती राधिका ने अपने हाथ से श्रीकृष्ण का चित्र अंकित किया है, परन्तु पैर नहीं बनाया, कहीं वे वृन्दावन से मथुरा न भाग जायें !

"मैं इन सब गानों को बचपन में खूब गाता था। एक एक नाटक सारा का सारा गा सकता था। कोई कहता था कि मैं कालीयदमन नाटक-दल-में था।"

एक भक्त नयी चद्दर ओढ़कर आये हैं। राखाल का बालक जैसा स्वभाव है—कैंची लाकर उनकी चद्दर के किनारे के सूतों को काटने जा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण बोले, "क्यों काटता है? रहने दे। शाल की तरह अच्छा दिखायी देता है। हाँ जी, इसका क्या दाम है?" उन दिनों विलायती चद्दरों का दाम कम था। भक्त ने कहा, "एक रुपया छः आना जोड़ी।" श्रीरामकृष्ण बोलेते "क्या कहते हो! जोड़ी! एक रुपया छः आना जोड़ी!"

थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण भक्त से कह रहे हैं, "जाओ, गंगा-स्नान कर लो! अरे, इन्हें तेल दो तो थोड़ा!"

स्नान के बाद जब वे लौटे तो श्रीरामकृष्ण ने ताक पर से एक आम लेकर उन्हें दिया। कहा, "यह आम इन्हें देता हूँ। तीन डिग्रियाँ पास हैं ये! अच्छा, तुम्हारा भाई अब कैसा है?"

भक्त—हाँ, दवा तो ठीक हो रही है, अब असर ठीक हो तो ठीक है!

श्रीरामकृष्ण—उसके लिए किसी नौकरी की व्यवस्था कर सकते हो? बुरा क्या है, तुम मुखिया बनोगे!

भक्त—स्वस्थ होने पर सभी सुविधाएँ हो जायेंगी।

(२)

साधन-भजन करो और व्याकुल होओ

श्रीरामकृष्ण भोजन के उपरान्त छोटे तख्त पर जरा बैठे हैं—अभी विश्राम करने का समय नहीं हुआ था। भक्तों का समागम होने लगा। पहले मणिरामपुर से भक्तों का एक दल आकर उप-

स्थित हुआ। एक व्यक्ति पी. डब्ल्यू. डी. में काम करते थे। इस समय पेन्शन पाते हैं। एक भक्त उन्हें लेकर आये हैं। धीरे धीरे बेलघर से भक्तों का एक दल आया। श्री मणि मल्लिक आदि भक्तगण भी धीरे धीरे आ पहुँचे।

मणिरामपुर के भक्तों ने कहा, "आपके विश्राम में विघ्न हुआ।"

श्रीरामकृष्ण बोले, "नहीं, नहीं, यह तो रजोगुण की बातें हैं कि वे अब सोयेंगे।"

चाणक मणिरामपुर का नाम सुनकर श्रीरामकृष्ण को अपने बचपन के मित्र श्रीराम का स्मरण हुआ। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "श्रीराम की दूकान तुम्हारे वहीं पर है। श्रीराम मेरे साथ पाठशाला में पढ़ता था। थोड़े दिन हुए यहाँ पर आया था।"

मणिरामपुर के भक्तगण कह रहे हैं, "दया करके हमें जरा बता दीजिये कि किस उपाय से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।"

श्रीरामकृष्ण—थोड़ा साधन-भजन करना होता है। 'दूध में मक्खन है' केवल कहने से ही नहीं होता, दूध से दही बनाकर, मथन करके मक्खन उठाना पड़ता है। परन्तु बीच बीच में जरा निर्जन में रहना चाहिए। ❖ कुछ दिन निर्जन में रहकर भक्ति प्राप्त करके उसके बाद फिर कहीं भी रहो। पैर में जूता पहनकर काँटेदार जंगल में भी आसानी से जाया जा सकता है।

"मुख्य बात है विश्वास। जैसा भाव वैसा लाभ, मूल बात है विश्वास। विश्वास हो जाने पर फिर भय नहीं होता।"

मणिरामपुर के भक्त—महाराज, गुरु क्या आवश्यक ही है?

श्रीरामकृष्ण—अनेकों के लिए आवश्यक है।* परन्तु गुरुवाक्य

❖ योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। —गीता, ६।१०

* आचार्यवान् पुरुषो वेद।—छान्दोग्य उपनिषद्, ६।१४।२

में विश्वास करना पड़ता है। गुरु को ईश्वर मानना पड़ता है। तभी लाभ होता है। इसीलिए वैष्णव भक्त कहते हैं,—गुरु-कृष्ण-वैष्णव।

"उनका नाम सदा ही लेना चाहिए। कलि में नाम का माहात्म्य है। प्राण अन्नगत है, इसीलिए योग नहीं होता। उनका नाम लेकर ताली बजाने से पापरूपी पक्षी भाग जाते हैं।

"सत्संग सदा ही आवश्यक है। गंगाजी के जितने ही निकट जाओगे, उतनी ही ठण्डी हवा पाओगे। आग के जितने ही निकट जाओगे उतनी ही गर्मी होगी।

"सुस्ती करने से कुछ नहीं होगा। जिनकी सांसारिक विषय-भोग की इच्छा है, वे कहते हैं, 'होगा! कभी न कभी ईश्वर को प्राप्त कर लेंगे।'

"मैंने केशव सेन से कहा था, पुत्र को व्याकुल देखकर उसके पिता उसके बालिग होने के तीन वर्ष पहले ही उसका हिस्सा छोड़ देते हैं।

"माँ भोजन बना रही है, गोदी का बच्चा सो रहा है। माँ मुँह में चूसनी दे गयी है। जब चूसनी छोड़कर चीत्कार करके बच्चा रोता है, तब माँ हण्डी उतारकर बच्चे को गोदी में लेकर स्तनपान कराती है। ये सब बातें मैंने केशव सेन से कही थीं।

"कहते हैं, कलियुग में एक दिन एक रात भर रोने से ईश्वर का दर्शन होता है।

"मन में अभिमान करो और कहो, 'तुमने मुझे पैदा किया है —दर्शन देना ही होगा!'

"गृहस्थी में रहो, अथवा कहीं भी रहो, ईश्वर मन को देखते हैं। विषयबुद्धिवाला मन मानो भीगी दियासलाई है, चाहे जितना रगड़ो कभी नहीं जलेगी। एकलव्य ने मिट्टी के बने द्रोण अर्थात्

अपने गुरु की मूर्ति को सामने रखकर बाण चलाना सीखा था।

"कदम बढ़ाओ,—लकड़हारे ने आगे बढ़कर देखा था चन्दन की लकड़ी, चाँदी की खान, सोने की खान, और आगे बढ़कर देखा हीरा-मणि !

"जो लोग अज्ञानी हैं, वे मानो मिट्टी की दीवालवाले कमरे के भीतर हैं। भीतर भी रोशनी नहीं है और बाहर की किसी चीज को भी देख नहीं सकते ! ज्ञान प्राप्त करके जो लोग संसार में रहते हैं वे मानो काँच के बने कमरे के भीतर हैं। भीतर रोशनी, बाहर भी रोशनी; भीतर की चीजों को भी देख सकते हैं और बाहर की चीजों को भी !

ब्रह्म और जगन्माता एक हैं

"एक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वे परब्रह्म जब तक 'मैं-पन' को रखते हैं, तब तक दिखाते हैं कि वे आद्याशक्ति के रूप में सृष्टि, स्थिति व प्रलय कर रहे हैं।

"जो ब्रह्म हैं, वे ही आद्याशक्ति हैं। एक राजा ने कहा था कि उसे एक ही बात में ज्ञान देना होगा। योगी ने कहा, 'अच्छा, तुम एक ही बात में ज्ञान पाओगे।' थोड़ी देर बाद राजा के यहाँ अकस्मात् एक जादूगर आ पहुँचा। राजा ने देखा, वह आकर सिर्फ दो उँगलियों को घुमा रहा है, कह रहा है, 'राजा, यह देख, यह देख।' राजा विस्मित होकर देख रहा है ! थोड़ी ही देर में दो उँगलियों की जगह एक ही उँगली रह गयी है। जादूगर एक उंगली घुमाता हुआ कह रहा है, 'राजा, यह देख, यह देख।' अर्थात् ब्रह्म और आद्याशक्ति पहले-पहल दो समझे जाते हैं, परन्तु ब्रह्मज्ञान होने पर फिर दो नहीं रह जाते। अभेद ! एक ! अद्वितीय ! अद्वैत !"

(३)

माया तथा मुक्ति

बेलघर से गोविन्द मुखोपाध्याय आदि भक्तगण आये हैं। श्रीरामकृष्ण जिस दिन उनके मकान पर पधारे थे, उस दिन गायक का "जागो, जागो, जननि" यह गाना सुनकर समाधिस्थ हुए थे। गोविन्द उस गायक को भी लाये हैं। श्रीरामकृष्ण गायक को देख आनन्दित हुए हैं और कह रहे हैं, "तुम कुछ गाना गाओ।" गायक इस आशय के गीत गा रहे हैं—

(१) "दोष किसी का नहीं है, माँ! मैं अपने ही खोदे हुए कुएँ के जल में डूबकर मर रहा हूँ।"

(२) "रे यम ! मुझे न छूना, मेरी जात बिगड़ गयी है। यदि पूछता है कि मेरी जात कैसी बिगड़ी तो सुन,—उस सत्यानासी काली ने मुझे संन्यासी बना दिया है।"

(३) "जागो, जागो, जननि ! कितने ही दिनों से कुलकुण्डलिनी मूलाधार में सो रही है। माँ, अपना काम साधने के लिए मस्तक में चलो, जहाँ पर सहस्रदल-पद्म में परमशिव विराजमान हैं। षट्चक्र को भेदकर, हे चैतन्यरूपिणि, मन के दुःख को मिटा दो।"

श्रीरामकृष्ण—इस गीत में षट्चक्र-भेद की बात है। ईश्वर बाहर भी हैं, भीतर भी हैं। वे भीतर से मन में अनेक प्रकार की लहरें उत्पन्न कर रहे हैं। षट्चक्र का भेद होने पर माया का राज्य छोड़, जीवात्मा परमात्मा के साथ एक हो जाता है। इसी का नाम है ईश्वरदर्शन।

"माया के रास्ता न छोड़ने पर ईश्वर का दर्शन नहीं होता। राम, लक्ष्मण और सीता एक साथ जा रहे हैं। सब से आगे

राम, बीच में सीता और पीछे लक्ष्मण हैं। जिस प्रकार सीता के बीच में रहने से लक्ष्मण राम को नहीं देख सकते, उसी प्रकार बीच में माया के रहने से जीव ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकता। (मणि मल्लिक के प्रति) परन्तु ईश्वर की कृपा होने पर माया दरवाजे से हट जाती है, जिस प्रकार दरवान लोग कहते हैं, 'साहब की आज्ञा हो तो इसे अन्दर जाने दूं।'❖

"दो मत हैं—वेदान्त मत और पुराण मत। वेदान्त मत में कहा है, 'यह संसार धोखे की टट्टी है' अर्थात् जगत् भूल है, स्वप्न की तरह है; परन्तु पुराण मत या भक्तिशास्त्र कहता है कि ईश्वर ही चौबीस तत्त्व बनकर विद्यमान हैं। भीतर-बाहर उन्हीं की पूजा करो।

"जब तक उन्होंने 'मैं'-पन को रखा है, तब तक सभी हैं। फिर स्वप्नवत् कहने का उपाय नहीं है। नीचे आग जल रही है, इसीलिए बर्तन में दाल, चावल और आलू उबल रहे हैं, कूद रहे हैं और मानो कह रहे हैं, 'मैं हूँ' 'मैं कूद रहा हूँ'। यह शरीर मानो बर्तन है, मन-बुद्धि जल है, इन्द्रियों के विषय मानो दाल, चावल और आलू हैं, 'अहं' मानो उनका अभिमान है कि मैं उबल रहा हूँ और सच्चिदानन्द अग्नि हैं।

"इसीलिए भक्तिशास्त्र में इस संसार को 'मजे की कुटिया' कहा है। रामप्रसाद के गाने में है, 'यह संसार धोखे की टट्टी है।' इसीलिए एक ने जवाब दिया था, 'यह संसार मजे की कुटिया है।' 'काली का भक्त जीवनमुक्त है, नित्यानन्दमय है।' भक्त देखता है, जो ईश्वर हैं, वे ही माया बने हैं, वे ही जीव-जगत् बने हैं। भक्त ईश्वर-माया-जीव-जगत् सब को एक देखता है। कोई कोई भक्त सभी कुछ राममय देखते हैं। राम ही सब बने हैं। कोई राधाकृष्णमय

❖ मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। —गीता, ७।१४

देखते हैं। कृष्ण ही ये चौबीस तत्त्व बने हुए हैं, जिस प्रकार हरा चश्मा पहनने पर सभी कुछ हरा हरा दिखायी देता है।

"भक्ति के मत में, शक्ति के प्रकाश की न्यूनाधिकता होती है। राम ही सब कुछ बने हुए हैं, परन्तु कहीं पर अधिक शक्ति है और कहीं पर कम। अवतार में उनका एक प्रकार का प्रकाश है और जीव में दूसरे प्रकार का। अवतार को भी देह और बुद्धि है। माया के कारण ही शरीर धारण कर सीता के लिए राम रोये थे। परन्तु अवतार जान-बूझकर अपनी आँखों पर पट्टी बाँधते हैं, जैसे लड़के चोर-चोर खेलते हैं और माँ के पुकारते ही खेल बन्द कर देते हैं। जीव की बात अलग है। जिस कपड़े से आँखों पर पट्टी बँधी हुई है, वह कपड़ा पीछे से आठ गाँठों से बड़ी मजबूती से बँधा हुआ है। अष्ट पाश! * लज्जा, घृणा, भय, जाति, कुल, शील, शोक, जुगुप्सा (निन्दा)—ये आठ पाश हैं। जब तक गुरु खोल नहीं देते, तब तक कुछ नहीं होता।"

(४)

सच्चे भक्त के लक्षण। हठयोग तथा राजयोग

बेलघर के भक्त—आप हम पर कृपा कीजिये।

श्रीरामकृष्ण—सभी के भीतर वे विद्यमान हैं, परन्तु गैस कम्पनी में अर्जी दो—तुम्हारे घर के साथ संयोग हो जायगा।

"परन्तु व्याकुल होकर प्रार्थना करनी होगी। कहावत है, तीन प्रकार के प्रेम के आकर्षण एक साथ होने पर ईश्वर का दर्शन होता है,—सन्तान पर माता का प्रेम, सती स्त्री का स्वामी पर प्रेम और विषयी जीवों का विषय पर प्रेम।

---

* घृणा लज्जा भयं शंका जुगुप्सा चेति पंचमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ॥—कुलार्णवतन्त्र

"सच्चे भक्त के कुछ लक्षण हैं। वह गुरु का उपदेश सुनकर स्थिर हो जाता है; सँपेरे के संगीत को विषधर साँप स्थिर होकर सुनता है, परन्तु नाग नहीं। और दूसरा लक्षण,—सच्चे भक्त की धारणा-शक्ति होती है। केवल काँच पर चित्र खींचा नहीं जाता, किन्तु रसायनयुक्त काँच पर खींचा जाता है। जैसा फोटोग्राफ। भक्ति है वह रासायनिक द्रव्य।

"एक लक्षण और है। सच्चा भक्त जितेन्द्रिय होता है, काम-जयी होता है। गोपियों में काम का संचार नहीं होता था।

"तुम लोग गृहस्थी में हो, रहो न, इससे साधन-भजन में और भी सुविधा है, मानो किले में से युद्ध करना। जिस समय शव-साधन करते हैं उस समय बीच बीच में शव मुँह खोलकर डराता है। इसलिए भुना हुआ चावल-चना रखना पड़ता है और उसके मुख में बीच बीच में देना पड़ता है। शव के शान्त होने पर निश्चिन्त होकर जप कर सकोगे। इसलिए घरवालों को शान्त रखना चाहिए। उनके खाने-पीने की व्यवस्था कर देनी पड़ती है, तब साधन-भजन की सुविधा होती है।

"जिनका भोग अभी कुछ बाकी है, वे गृहस्थी में रहकर ही ईश्वर का नाम लेंगे। नित्यानन्द कहा कहते थे, 'मागुर माछेर झोल, युवती नारीर कोल, बोल हरि बोल!'—हरिनाम लेने से मागुर मछली की रसदार तरकारी तथा युवती नारी तुम्हें मिलेगी।

"सच्चे त्यागी की बात अलग है। मधुमक्खी फूल के अतिरिक्त और किसी पर भी नहीं बैठेगी। चातक की दृष्टि में सभी जल निःस्वाद हैं। वह दूसरे किसी भी जल को नहीं पीयेगा, केवल स्वाति नक्षत्र की वर्षा के लिए ही मुँह खोले रहेगा। सच्चा त्यागी अन्य कोई भी आनन्द नहीं लेगा, केवल ईश्वर का आनन्द। मधु-

मक्खी केवल फूल पर बैठती है। सच्चे त्यागी साधु मधुमक्खी की तरह होते हैं। गृही भक्त मानो साधारण मक्खियाँ हैं। मिठाई पर भी बैठती हैं और फिर सड़े घाव पर भी।

"तुम लोग इतना कष्ट करके यहाँ पर आये हो, तुम ईश्वर को ढूँढ़ते फिर रहे हो। अधिकांश लोग वगीचा देखकर ही सन्तुष्ट रहते हैं, मालिक की खोज विरले ही लोग करते हैं। जगत् के सौन्दर्य को ही देखते हैं, इसके मालिक को नहीं ढूँढ़ते।"

श्रीरामकृष्ण (गानेवाले को दिखाकर)—इन्होंने षट्चक्र का गाना गाया। वह सब योग की बातें हैं। हठयोग और राजयोग। हठयोगी कुछ शारीरिक कसरतें करता है; सिद्धियाँ प्राप्त करना, लम्बी उम्र प्राप्त करना तथा अष्ट-सिद्धि प्राप्त करना, ये सब उद्देश्य हैं। राजयोग का उद्देश्य है भक्ति, प्रेम, ज्ञान, वैराग्य। राजयोग ही अच्छा है।

"वेदान्त की सप्तभूमि और योगशास्त्र के षट्चक्र आपस में बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। वेद की प्रथम तीन भूमियाँ और योगशास्त्र के मूलाधार, स्वाधिष्ठान तथा मणिपूर चक्र एक हैं। इन तीन भूमियों में—गुह्य, लिंग तथा नाभि में—मन का निवास है। जिस समय मन चौथी भूमि पर अर्थात् अनाहत पर उठता है, उस समय जीवात्मा का शिखा की तरह देदीप्यमान रूप में दर्शन होता है, और ज्योति का दर्शन होता है। साधक कह उठता है—'यह क्या! यह क्या!'

"मन के पाँचवीं भूमि में उठने पर केवल ईश्वर की ही बात सुनने की इच्छा होती है। यहाँ पर विशुद्ध चक्र है। षष्ठ भूमि और आज्ञा चक्र एक ही हैं। वहाँ पर मन के जाने से ईश्वर का दर्शन होता है। परन्तु वह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार लालटेन के भीतर रोशनी रहती है—छू नहीं सकते, क्योंकि बीच में काँच रहता है।

"जनक राजा पंचम भूमि पर से ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते थे। वे कभी पंचम भूमि पर और कभी षष्ठ भूमि पर रहते थे।

"षट्चक्रभेद के बाद सप्तम भूमि है। मन वहाँ जाने पर लीन हो जाता है। जीवात्मा परमात्मा एक हो जाते हैं; समाधि हो जाती है। देहबुद्धि चली जाती है, बाह्यज्ञान नहीं रहता, अनेकत्व का बोध नष्ट हो जाता है और विचार बन्द हो जाता है।

"त्रैलंग स्वामी ने कहा था, विचार करते समय ही अनेकता तथा विभिन्नता का बोध होता है। समाधि के बाद अन्त में इक्कीस दिन में मृत्यु हो जाती है।

"परन्तु कुण्डलिनी न जागने पर चैतन्य प्राप्त नहीं होता।

ईश्वर-दर्शन के लक्षण

"जिसने ईश्वर को प्राप्त किया है, उसके कुछ लक्षण हैं। वह बालक की तरह, उन्मत्त की तरह, जड़ की तरह, या पिशाच की तरह बन जाता है और उसे सच्चा अनुभव होता है कि 'मैं यन्त्र हूँ और वे यन्त्री हैं। वे ही कर्ता हैं, और सभी अकर्ता हैं।' जिस प्रकार सिक्खों ने कहा था, पत्ता हिल रहा है, वह भी ईश्वर की इच्छा है! राम की इच्छा से ही सब कुछ हो रहा है—यह ज्ञान होता है। जैसे जुलाहे ने कहा था, 'राम की इच्छा से ही कपड़े का दाम एक रुपया छः आना है; राम की इच्छा से ही डकैती हुई; राम की इच्छा से ही डाकू पकड़े गये; राम की इच्छा से ही पुलिसवाले मुझे ले गये और फिर राम की ही इच्छा से मुझे छोड़ दिया।' "

सन्ध्या निकट थी, श्रीरामकृष्ण ने थोड़ा भी विश्राम नहीं किया। भक्तों के साथ लगातार हरिकथा हो रही है। अब मणिरामपुर और बेलघर के तथा अन्य भक्तगण भूमिष्ठ होकर उन्हें प्रणाम कर देवालय में देवदर्शन के बाद अपने अपने स्थानों को लौटने लगे।

परिच्छेद ४०

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

(१)

गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में उपदेश

आज गंगापूजा, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी, शुक्रवार का दिन है; तारीख १५ जून १८८३ ई०। भक्तगण श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में आये हैं। गंगापूजा के उपलक्ष्य में अधर और मास्टर को छुट्टी मिली है।

राखाल के पिता और पिता के ससुर आये हैं। पिता ने दूसरी बार विवाह किया है। ससुर महाशय श्रीरामकृष्ण का नाम बहुत दिनों से सुनते आ रहे हैं; वे साधक पुरुष हैं, श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आये हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें रुक-रुककर देख रहे हैं। भक्त-गण जमीन पर बैठे हैं।

ससुर महाशय ने पूछा, "महाराज, क्या गृहस्थाश्रम में भगवान् का लाभ हो सकता है?"

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—क्यों नहीं हो सकता? कीचड़ में रहनेवाली मछली की तरह रहो। वह कीचड़ में रहती है, पर उसके शरीर में कीचड़ नहीं लगता। और असती स्त्री की तरह रहो जो घर का सारा कामकाज करती है, पर उसका मन अपने उपपति की ओर ही रहता है। ईश्वर से मन लगाये रखकर गृहस्थी का सब काम करो। परन्तु यह है बड़ा कठिन। मैंने ब्राह्मसमाज-वालों से कहा था कि जिस कमरे में इमली का अचार और पानी का मटका है, यदि उसी कमरे में सन्निपात का रोगी भी रहे तो बीमारी किस तरह दूर हो? फिर इमली की याद आते ही मुंह में पानी भर आता है। पुरुषों के लिए स्त्रियाँ इमली के

अचार की तरह हैं। और विषय की तृष्णा तो सदा लगी ही है; यही पानी का मटका है। इस तृष्णा का अन्त नहीं है। सन्निपात का रोगी कहता है कि मैं एक मटका पानी पीऊँगा ! बड़ा कठिन है। संसार में बहुत कठिनाइयाँ हैं। जिधर जाओ उधर ही कोई न कोई बला आ खड़ी हो जाती है। और निर्जन स्थान न होने के कारण भगवान् की चिन्ता नहीं होती। सोने को गलाकर गहना गढ़ाना है, तो यदि गलाते समय कोई दस बार बुलाये, तो सोना किस तरह गलेगा ? चावल छाँटते समय अकेले बैठकर छाँटना होता है। हर बार चावल हाथ में लेकर देखना पड़ता है कि कैसा साफ हुआ। छाँटते समय यदि कोई दस बार बुलाये तो अच्छी तरह छाँटना कैसे हो सकता है ?

तीव्र वैराग्य। पाप-पुण्य। संन्यास

एक भक्त—महाराज, फिर उपाय क्या है ?

श्रीरामकृष्ण—उपाय है। यदि तीव्र वैराग्य हो तो हो सकता है। जिसे मिथ्या समझते हो उसे हठपूर्वक उसी समय त्याग दो। जिस समय मैं बहुत बीमार था, गंगाप्रसाद सेन के पास लोग मुझे ले गये। गंगाप्रसाद ने कहा, 'यह औषधि खानी पड़ेगी पर जल नहीं पी सकते। हाँ, अनार का रस पी सकते हो।' सब लोगों ने सोचा कि बिना जल पिये मैं कैसे रह सकता हूँ। मैंने निश्चय किया कि अब जल न पीऊँगा। मैं 'परमहंस' हूँ। मैं बतख थोड़े ही हूँ,—मैं तो राजहंस हूँ ! दूध पिया करूँगा।

"कुछ काल निर्जन में रहना पड़ता है। खेल के समय पाला छू लेने पर फिर भय नहीं रहता। सोना हो जाने पर जहाँ जी चाहे रहो। निर्जन में रहकर यदि भक्ति मिली हो और भगवान् मिल चुके हों, तो फिर संसार में भी रह सकते हो। (राखाल के पिता

के प्रति) इसीलिए तो लड़कों को यहाँ रहने के लिए कहता हूँ; क्योंकि यहाँ थोड़े दिन रहने पर भगवान् में भक्ति होगी; उसके बाद सहज ही संसार में जाकर रह सकेंगे।"

एक भक्त—यदि ईश्वर ही सब कुछ करते हैं, तो फिर लोग भला और बुरा, पाप और पुण्य, यह सब क्यों कहते हैं? तब तो पाप भी उन्हीं की इच्छा से होता है!

राखाल के पिता के ससुर— उनकी इच्छा को हम कैसे समझें?

श्रीरामकृष्ण—पाप और पुण्य हैं, पर वे स्वयं निर्लिप्त हैं। वायु में सुगन्ध भी है और दुर्गन्ध भी, परन्तु वायु स्वयं निर्लिप्त है। ईश्वर की सृष्टि ऐसी ही है। भला-बुरा, सत्-असत्—दोनों हैं। जैसे पेड़ों में कोई आम का पेड़ है, कोई कटहल का, कोई किसी और चीज का। देखो न, दुष्ट आदमियों की भी आवश्यकता है। जिस तालुके की प्रजा उद्दण्ड होती है, वहाँ एक दुष्ट आदमी भेजना पड़ता है, तब कहीं तालुके का ठीक शासन होता है।

फिर गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में बात चली।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)—बात यह है, संसार करने पर मन की शक्ति का अपव्यय होता है। इस अपव्यय से जो हानि होती है वह तभी पूरी हो सकती है जब कोई संन्यास ले। पिता प्रथम जन्मदाता है। उसके बाद द्वितीय जन्म उपनयन के समय होता है। एक बार फिर जन्म होता है, संन्यास के समय। कामिनी और कांचन—ये ही दो विघ्न हैं। स्त्री की आसक्ति पुरुष को ईश्वर के मार्ग से डिगा देती है। किस तरह पतन होता है, यह पुरुष नहीं जान सकता। किले के अन्दर जाते समय यह बिलकुल न जान सका कि ढालू रास्ते से जा रहा हूँ। जब किले के अन्दर गाड़ी पहुँची तो मालूम हुआ कि कितने नीचे आ गया हूँ! स्त्रियाँ पुरुषों को कुछ नहीं समझने देतीं।

कप्तान * कहता है, मेरी स्त्री ज्ञानी है ! भूत जिस पर सवार होता है, वह नहीं जानता कि भूत सवार है, वह कहता है कि मैं आनन्द में हूँ । (सभी निस्तब्ध हैं।)

श्रीरामकृष्ण–संसार में केवल काम का ही नहीं, क्रोध का भी भय है । कामना के मार्ग में रुकावट होने से ही क्रोध पैदा हो जाता है।

मास्टर–भोजन करते समय मेरी थाली से बिल्ली कुछ खाना उठा लेने को बढ़ती है, मैं कुछ नहीं बोल सकता।

श्रीरामकृष्ण–क्यों ! एक बार मारते क्यों नहीं ? उसमें क्या दोष है ? गृहस्थ को फुफकारना चाहिए, पर विष न उगलना चाहिए । किसी को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए, पर शत्रुओं के हाथ से बचने के लिए क्रोध का आभास दिखलाना चाहिए; नहीं तो शत्रु आकर उसे हानि पहुँचायेंगे । पर त्यागी के लिए फुफकारने की भी आवश्यकता नहीं है ।

एक भक्त–महाराज, संसार में रहकर भगवान् को पाना बड़ा ही कठिन देखता हूँ । कितने आदमी ऐसे हो सकते हैं ? ऐसा तो कोई देखने में नहीं आता ।

श्रीरामकृष्ण–क्यों नहीं होगा ? उधर सुना है कि एक डिप्टी हैं। बड़ा अच्छा आदमी है। प्रतापसिंह उसका नाम है। दानशीलता, ईश्वर की भक्ति आदि बहुतसे गुण उसमें हैं। मुझे लेने के लिए आदमी भेजा था । ऐसे लोग भी तो हैं ।

(२)

साधना का प्रयोजन । गुरुवाक्य में विश्वास । व्यास का विश्वास

श्रीरामकृष्ण–साधना की बड़ी आवश्यकता है । फिर क्यों नहीं

---

* श्री विश्वनाथ उपाध्याय

होगा ? यदि ठीक ठीक विश्वास हो, तो अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। चाहिए गुरु के वचनों पर विश्वास।

"व्यासदेव यमुना के उस पार जायेंगे; इतने में वहाँ गोपियाँ आयीं। वे भी पार जायेंगी, पर नाव नहीं मिलती। गोपियों ने कहा, 'महाराज, अब क्या किया जाय?' व्यासदेव ने कहा, 'अच्छा, तुम लोगों को पार किये देता हूँ; पर मुझे बड़ी भूख लगी है, तुम्हारे पास कुछ है?' गोपियों के पास दूध, दही, मक्खन आदि था; सब कुछ उन्होंने खाया। गोपियों ने कहा, 'महाराज, अब पार जाने का क्या हुआ?' व्यासदेव तब किनारे पर जाकर खड़े हुए और कहने लगे, 'हे यमुने, यदि आज मैंने कुछ न खाया हो तो तुम्हारा जल दो भागों में बँट जाय!' यह कहते ही जल अलग-अलग हो गया। गोपियाँ यह देखकर दंग रह गयीं; सोचने लगीं, इन्होंने अभी अभी तो इतनी चीजें खायी हैं, फिर भी कहते हैं, 'यदि आज मैंने कुछ न खाया हो'!

"यही दृढ़ विश्वास है। मैंने नहीं—हृदय में जो नारायण हैं उन्होंने खाया है।

"शंकराचार्य तो ब्रह्मज्ञानी थे, पर पहले उनमें भेदबुद्धि भी थी। वैसा विश्वास न था। चाण्डाल माँस का बोझ लिये आ रहा था, वे गंगास्नान करके ही उठे थे कि चाण्डाल से स्पर्श हो गया। कह उठे, 'अरे! तूने मुझे छू लिया!' चाण्डाल ने कहा, 'महाराज, न आपने मुझे छुआ न मैंने आपको! शुद्ध आत्मा—न वह शरीर है, न पंचभूत है, और न चौबीस तत्त्व है।' तब शंकर को ज्ञान हुआ।

"जड़भरत राजा रहुगण की पालकी ले जाते समय जब आत्मज्ञान की बातें करने लगे, तब राजा ने पालकी से नीचे उतरकर कहा, 'आप कौन हैं?' जड़भरत ने कहा, 'नेति नेति—मैं शुद्ध

आत्मा हूँ ।' उनका पक्का विश्वास था कि वे शुद्ध आत्मा हैं।

ज्ञानयोग और भक्तियोग

"सोऽहम् । मैं शुद्ध आत्मा हूँ—यह ज्ञानियों का मत है। भक्त कहते हैं, यह सब भगवान् का ऐश्वर्य है। धनी का ऐश्वर्य न होने से उसे कौन जान सकता है ? पर यदि साधक की भक्ति देखकर ईश्वर कहेंगे कि जो मैं हूँ, वही तू भी है, तब दूसरी बात है। राजा बैठे हैं, उस समय नौकर यदि सिंहासन पर जाकर बैठ जाय और कहे, 'राजा, जो तुम हो वही मैं भी हूँ", तो लोग उसे पागल कहेंगे। पर यदि नौकर की सेवा से सन्तुष्ट हो राजा एक दिन यह कहें, 'आ जा, तू मेरे पास बैठ, इसमें कोई दोष नहीं; जो तू है वही मैं भी हूँ !' और तब यदि वह जाकर बैठे तो उसमें कोई दोष नहीं है। एक साधारण जीव का यह कहना कि सोऽहम्—मैं वही हूँ—अच्छा नहीं है। जल की ही तरंग होती है; तरंग का जल थोड़े ही होता है !

"बात यह है कि मन स्थिर न होने से योग नहीं होता, तुम चाहे जिस राह से चलो। मन योगी के वश में रहता है, योगी मन के वश में नहीं।

"मन स्थिर होने पर वायु स्थिर होती है—उससे कुम्भक होता है। वह कुम्भक भक्तियोग से भी होता है, भक्ति से वायु स्थिर हो जाती है। 'मेरे निताई मस्त हाथी हैं !' 'मेरे निताई मस्त हाथी हैं !' यह कहते कहते जब भाव हो जाता है, तब वह मनुष्य पूरा वाक्य नहीं कह सकता, केवल 'हाथी हैं' 'हाथी हैं' कहता है। इसके बाद सिर्फ 'हा—' इतना ही ! भाव से वायु स्थिर होती है, और उससे कुम्भक होता है।

"एक आदमी झाड़ू दे रहा था कि किसी ने आकर कहा, 'अजी,

अमुक मर गया !' जो झाड़ू दे रहा था, उसका यदि वह अपना आदमी न हुआ, तो वह झाड़ू देता ही रहता है और बीच बीच में कहता है, 'दुःख की बात है, वह आदमी मर गया ! बड़ा अच्छा आदमी था।' इधर झाड़ू भी चल रहा है। परन्तु यदि कोई अपना हुआ तो झाड़ू उसके हाथ से छूट जाता है, और 'हाय !' कहकर वह बैठ जाता है। उस समय उसकी वायु स्थिर हो जाती है; कोई काम या विचार उससे फिर नहीं हो सकता। औरतों में नहीं देखा—यदि कोई निर्वाक् होकर कुछ देखे या सुने तो दूसरी औरतें उससे कहती हैं, 'क्यों, क्या तुझे भाव हुआ है ?' यहाँ पर भी वायु स्थिर हो गयी है, इसी से निर्वाक् होकर मुँह खोले रहती है।

ज्ञानी के लक्षण। साधना-सिद्ध और नित्य-सिद्ध

"सोऽहम् सोऽहम् कहने से ही नहीं होता। ज्ञानी के लक्षण हैं। नरेन्द्र के नेत्र उभरे हुए हैं। इनके भी कपाल और नेत्र का लक्षण अच्छा है।

"फिर सब की एक-सी हालत नहीं होती। जीव चार प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य। सभी को साधना करनी पड़ती है, यह बात भी नहीं है। नित्य-सिद्ध और साधना-सिद्ध, दो तरह के साधक हैं। कोई अनेक साधनाएँ करने पर ईश्वर को पाता है; कोई जन्म से ही सिद्ध है, जैसे प्रह्लाद। 'होमा' नाम की चिड़िया आकाश में रहती है। वहीं वह अण्डा देती है। अण्डा आकाश से गिरता है और गिरते ही गिरते वह फूट जाता है, और उससे बच्चा निकलकर गिरता है। वह इतने ऊँचे पर से गिरता है कि गिरते ही गिरते उसके पंख निकल आते हैं। जब वह पृथ्वी के पास आ जाता है तब देखता है कि जमीन से टकराते ही वह चूरचूर हो जायगा। तब वह सीधे ऊपर उड़ जाता है—अपनी माँ के पास !"

"प्रह्लाद आदि नित्य-सिद्ध भक्तों की साधना बाद में होती है। साधना के पहले ही उन्हें ईश्वर का लाभ होता है, जैसे लौकी, कुम्हड़े का पहले फल, और उसके बाद फूल होता है। (राखाल के पिता से) नीच वंश में भी यदि नित्य-सिद्ध जन्म ले तो वह वही होता है, दूसरा कुछ नहीं होता। चने के मैली जगह में गिरने पर भी चने का ही पेड़ होता है।

शक्ति का तारतम्य

"ईश्वर ने किसी को अधिक शक्ति दी है, किसी को कम। कहीं पर एक दिया जल रहा है, कहीं पर एक मशाल। विद्यासागर की बात से जान लिया कि उनकी बुद्धि की पहुँच कितनी दूर है। जब मैंने शक्तिविशेष की बात कही, तब विद्यासागर ने कहा, 'महाराज, तो क्या ईश्वर ने किसी को अधिक शक्ति दी है और किसी को कम ?' मैंने भी कहा, 'फिर क्या ? शक्ति की कमी-बेशी हुए बिना तुम्हारा इतना नाम क्यों है ? तुम्हारी विद्या, तुम्हारी दया, यही सब सुनकर तो हम लोग आये हैं। तुम्हारे कोई दो सींग तो निकले नहीं हैं !' विद्यासागर की इतनी विद्या और इतना नाम होते हुए भी उन्होंने ऐसी कच्ची बात कह दी ! बात यह है कि जाल में पहले-पहल बड़ी मछलियाँ पड़ती हैं; रोहू, कातल आदि। उसके बाद मछुआ पैर से कीचड़ को घोंट देता है। तब तरह तरह की छोटी छोटी मछलियाँ निकल आती हैं, और तुरन्त फँस जाती हैं। ईश्वर को न जानने से थोड़ी ही देर में भीतर से छोटी छोटी मछलियाँ (कच्ची बातें) निकल पड़ती हैं ! केवल पण्डित होने से क्या होगा ?"

परिच्छेद ४१

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

(१)

तान्त्रिक भक्त तथा संसार। निर्लिप्त को भी भय है

श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद दक्षिणेश्वर मन्दिर के अपने कमरे में थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। अधर तथा मास्टर ने आकर प्रणाम किया। एक तान्त्रिक भक्त भी आये हैं। राखाल, हाजरा, रामलाल आदि आजकल श्रीरामकृष्ण के पास रहते हैं। आज रविवार है, १७ जून १८८३ ई०।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)–गृहस्थाश्रम में होगा क्यों नहीं ? परन्तु बहुत कठिन है। जनक आदि ज्ञान प्राप्त करने के बाद गृहस्थाश्रम में आये थे। परन्तु फिर भी भय है ! निष्काम गृहस्थ को भी भय है ! भैरवी को देखकर जनक ने मुँह नीचा कर लिया। स्त्री के दर्शन से संकोच हुआ था। भैरवी ने कहा, 'जनक ! मैं देखती हूँ कि तुम्हें अभी ज्ञान नहीं हुआ। तुममें अभी भी स्त्रीपुरुष-बुद्धि विद्यमान है।'

"कितना ही सयाना क्यों न हो, काजल की कोठरी में रहने पर शरीर पर कुछ न कुछ काला दाग लगेगा ही।

"मैंने देखा है, गृहस्थ भक्त जिस समय शुद्धवस्त्र पहनकर पूजा करते हैं उस समय उनका अच्छा भाव रहता है। यहाँ तक कि जलपान करने तक वही भाव रहता है। उसके बाद अपनी वही मूर्ति; फिर से रज, तम।

"सत्त्वगुण से भक्ति होती है। किन्तु भक्ति का सत्त्व, भक्ति का रज, भक्ति का तम है। भक्ति का सत्त्व विशुद्ध है; इसकी

प्राप्त होने पर, ईश्वर को छोड़ और किसी में भी मन नहीं लगता। देह की रक्षा हो सके, केवल इतना ही शरीर की ओर ध्यान रहता है।

परमहंस त्रिगुणातीत होते हैं

"परमहंस तीनों गुणों से अतीत होते हैं।† उनमें तीन गुण हैं और फिर नहीं भी हैं। ठीक बालक जैसा, किसी गुण के अधीन नहीं है। इसलिए परमहंस छोटे छोटे बच्चों को अपने पास आने देते हैं, जिससे उनके स्वभाव को अपना सकें।

"परमहंस संचय नहीं कर सकते। यह अवस्था गृहस्थों के लिए नहीं है। उन्हें अपनें घरवालों के लिए संचय करना पड़ता है।"

तान्त्रिक भक्त—क्या परमहंस को पाप-पुण्य का बोध रहता है?

श्रीरामकृष्ण—केशव सेन ने यह बात पूछी थी। मैंने कहा, 'और अधिक कहने पर तुम्हारा दल-बल नहीं रहेगा।' केशव ने कहा, 'तो फिर रहने दीजिये, महाराज।'

"पाप-पुण्य क्या है, जानते हो? परमहंस-अवस्था में अनुभव होता है कि वे ही सुबुद्धि देते हैं, वे ही कुबुद्धि देते हैं। फल क्या मीठे, कड़ुए नहीं होते? किसी पेड़ में मीठा फल, किसी में कड़ुआ या खट्टा फल। उन्होंने मीठे आम का वृक्ष भी बनाया है और फिर खट्टे फल का वृक्ष भी!"

तान्त्रिक भक्त—जी हाँ, पहाड़ पर गुलाब की खेती दिखायी देती है। जहाँ तक दृष्टि जाती है केवल गुलाब ही गुलाब का खेत!

श्रीरामकृष्ण—परमहंस देखता है, यह सब उनकी माया का ऐश्वर्य है, सत्-असत्, भला-बुरा, पाप-पुण्य यह सब समझना बहुत

---

† मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ —गीता, १४।२६

दूर की बात है। उस अवस्था में दल-बल नहीं रहता।

कर्मफल। पाप-पुण्य

तान्त्रिक भक्त–तो फिर कर्मफल है ?

श्रीरामकृष्ण–वह भी है। अच्छा कर्म करने पर सुफल और बुरा कर्म करने पर कुफल मिलता है। मिर्च खाने पर तीखा तो लगेगा ही ! यह सब उनकी लीला है, खेल है।

तान्त्रिक भक्त–हमारे लिए क्या उपाय है ? कर्म का फल तो है न ?

श्रीरामकृष्ण–होने दो, परन्तु उनके भक्तों की बात अलग है।

यह कहकर आप गाने लगे—

(भावार्थ)—"रे मन ! तुम खेती का काम नहीं जानते हो ! ऐसी मनुष्यदेहरूपी जमीन पड़ी ही रह गयी ! यदि तुम खेती करते तो इसमें सोना फल सकता था। पहले तुम कालीनाम का घेरा लगा लो, फसल नष्ट न होगी। वह तो मुक्तकेशी का पक्का घेरा है, उसके पास यम भी नहीं आता। गुरु का दिया हुआ बीज बोकर भक्ति का जल सींच देना। हे मन, यदि तुम अकेले न कर सको, तो रामप्रसाद को साथ ले लेना।"

फिर गा रहे हैं—

(भावार्थ)—" 'यम के आने का रास्ता बन्द हो गया। मेरे मन का सन्देह मिट गया। मेरे घर के नौ दरवाजों पर चार शिव पहरेदार हैं। एक ही स्तम्भ पर घर है, जो तीन रस्सियों से बँधा हुआ है। सहस्रदल-कमल पर श्रीनाथ अभय देते हुए बैठे हैं।'

"काशी में ब्राह्मण मरे या वेश्या—सभी शिव होंगे।

"जब हरिनाम से कालीनाम से, रामनाम से, आँखों में आँसू भर आते हैं, तब सन्ध्या-कवच आदि की कुछ भी आवश्यकता नहीं

रह जाती। कर्म का त्याग हो जाता है । कर्म का फल स्पर्श नहीं करता ।"

श्रीरामकृष्ण फिर गाना गा रहे हैं--

(भावार्थ)--"चिन्तन करने पर भाव का उदय होता है। जैसा भाव, वैसी ही प्राप्ति होती है---विश्वास ही मूल बात है । यदि चित्त काली के चरणरूपी अमृत-सरोवर में डूबा रहता है, तो फिर पूजा-होम, यज्ञ आदि का कुछ भी महत्त्व नहीं है ।"

श्रीरामकृष्ण फिर गा रहे हैं--

(भावार्थ)--" 'जो त्रिसन्ध्या में काली का नाम लेता है, क्या वह पूजा-सन्ध्यादि चाहता है ? सन्ध्या स्वयं उसकी खोज में फिरती रहती है, पर उससे मिल नहीं पाती ! यदि 'काली काली' कहते हुए मेरे प्राण निकल जायँ, तो फिर गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि की कौन परवाह करता है !'

"ईश्वर में मग्न हो जाने पर फिर असद्बुद्धि, पापबुद्धि नहीं रह जाती।"

तान्त्रिक भक्त--आपने कहा है 'विद्या का मैं' रहता है।

श्रीरामकृष्ण--'विद्या का मैं', 'भक्त मैं', 'दास मैं', 'भला मैं' रहता है। 'वदमाश मैं' चला जाता है। (हंसी)

तान्त्रिक भक्त--जी महाराज, हमारे अनेक सन्देह मिट गये।

श्रीरामकृष्ण--आत्मा का साक्षात्कार होने पर सब सन्देह मिट जाते हैं।*

---

*भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

--मुण्डक उपनिषद्, २।२।८

भक्ति का तम । सन्देह । अष्टसिद्धि

"भक्ति का तम लाओ । कहो,—जब मैंने राम का नाम लिया, काली का नाम लिया, तब यह कैसे सम्भव है कि मेरा बन्धन रहे, मेरा कर्मफल रहे ?"

श्रीरामकृष्ण फिर गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"माँ, यदि मैं 'दुर्गा दुर्गा' कहता हुआ मरूँ, तो हे शंकरी, देखूँगा कि अन्त में इस दीन का तुम कैसे उद्धार नहीं करतीं ! माँ ! गो-ब्राह्मण की, भ्रूण की तथा नारी की हत्या, सुरापान आदि पापों की रत्तीभर परवाह न कर मैं ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता हूँ ।"

श्रीरामकृष्ण फिर कहते हैं—"विश्वास, विश्वास, विश्वास! गुरु ने कह दिया है, 'राम ही सब कुछ बनकर विराजमान हैं। वही राम घट-घट में लेटा ।' कुत्ता रोटी खाता जा रहा है। भक्त कहता है, 'राम ! ठहरो, ठहरो, रोटी में घी लगा दूँ ।' गुरुवाक्य में ऐसा विश्वास!

"भुक्कड़ों को विश्वास नहीं होता । सदा ही सन्देह ! आत्मा का साक्षात्कार हुए बिना सब सन्देह दूर नहीं होते ।

"शुद्ध भक्ति, जिसमें कोई कामना न हो, ऐसी भक्ति द्वारा उन्हें शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है ।

"अणिमा आदि सिद्धियाँ—ये सब कामनाएँ हैं । कृष्ण ने अर्जुन से कहा है, 'भाई, अणिमा आदि सिद्धियों में से एक के भी रहते ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती । शक्ति को थोड़ा बढ़ा भर सकती हैं वे ।'"

तान्त्रिक भक्त—महाराज, तान्त्रिक क्रिया आजकल सफल क्यों नहीं होती ?

श्रीरामकृष्ण—सर्वांगीण नहीं होती और भक्तिपूर्वक भी नहीं की जाती, इसीलिए सफल नहीं होती।

अब श्रीरामकृष्ण उपदेश समाप्त कर रहे हैं। कह रहे हैं—"भक्ति ही सार है। सच्चे भक्त को कोई भय, कोई चिन्ता नहीं। माँ सब कुछ जानती है। बिल्ली चूहा पकड़ती है एक प्रकार से, परन्तु अपने बच्चे को पकड़ती है दूसरे प्रकार से।"

परिच्छेद ४२

पानीहाटी महोत्सव में

(१)

कीर्तनानन्द में

श्रीरामकृष्ण पानीहाटी के महोत्सव में राजपथ पर बहुत लोगों से घिरे हुए संकीर्तनदल के बीच में नृत्य कर रहे हैं। दिन का एक बजा है। आज सोमवार, ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी तिथि है। तारीख १८ जून १८८३ ई०।

संकीर्तन के बीच में श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए चारों ओर लोग कतार बाँधकर खड़े हैं। श्रीरामकृष्ण प्रेम में मतवाले हो नाच रहे हैं। कोई कोई सोच रहे हैं कि क्या श्रीगौरांग फिर प्रकट हुए हैं! चारों ओर हरि-ध्वनि सागर की तरंगों के समान उमड़ रही है। चारों ओर से लोग फूल बरसा रहे हैं और बतासे लुटा रहे हैं।

श्री नवद्वीप गोस्वामी संकीर्तन करते हुए राघव पण्डित के मन्दिर की ओर आ रहे थे कि एकाएक श्रीरामकृष्ण दौड़कर उनसे आ मिले और नाचने लगे।

यह राघव पण्डित का 'चिउड़े का महोत्सव' है। शुक्लपक्ष की त्रयोदशी तिथि पर प्रतिवर्ष महोत्सव होता है। इस महोत्सव को पहले दास रघुनाथ ने किया था। उसके बाद राघव पण्डित प्रतिवर्ष करते थे। दास रघुनाथ से नित्यानन्द ने कहा था, "अरे, तू घर से केवल भाग-भागकर आता है, और हमसे छिपाकर प्रेम का स्वाद लेता रहता है! हमें पता तक नहीं लगने देता! आज तुझे दण्ड दूंगा; तू चिउड़े का महोत्सव करके भक्तों की सेवा कर।"

श्रीरामकृष्ण प्राय: प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं, आज भी यहाँ राम आदि भक्तों के साथ आनेवाले थे। राम सबेरे मास्टर के साथ कलकत्ते से दक्षिणेश्वर आये। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर वहीं उत्तरवाले बरामदे में उन्होंने प्रसाद पाया। राम कलकत्ते से जिस गाड़ी पर आये थे, उसी पर श्रीरामकृष्ण पानीहाटी आये। राखाल, मास्टर, राम, भवनाथ तथा और भी दो-एक भक्त उनके साथ थे।

गाड़ी मैगजीन रोड से होकर चानक के बड़े रास्ते पर आयी। जाते जाते श्रीरामकृष्ण बालक भक्तों से विनोद करने लगे।

पानीहाटी के महोत्सव-स्थल पर गाड़ी पहुँचते ही राम आदि भक्त यह देखकर विस्मित हुए कि श्रीरामकृष्ण, जो अभी गाड़ी में विनोद कर रहे थे, एकाएक अकेले ही उतरकर बड़े वेग से दौड़ रहे हैं। बहुत ढूँढ़ने पर उन्होंने देखा कि वे नवद्वीप गोस्वामी के संकीर्तन के दल में नृत्य कर रहे हैं और बीच बीच में समाधिस्थ भी हो रहे हैं। समाधि की दशा में कहीं वे गिर न पड़ें, इसलिए नवद्वीप गोस्वामी उन्हें बड़े यत्न से सम्हाल रहे हैं। चारों ओर भक्तगण हरि-ध्वनि कर उनके चरणों पर फूल और बतासे चढ़ा रहे हैं और एक बार उनके दर्शन पाने के लिए धक्कमधक्का कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण अर्धबाह्य दशा में नृत्य कर रहे हैं। फिर बाह्य दशा में आकर वे गाने लगे--

(भावार्थ)--"हरि का नाम लेते ही जिनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है, वे दोनों भाई आये हैं; जो स्वयं नाचकर जगत् को नचाते हैं, वे दोनों भाई आये हैं; जो स्वयं रोकर जगत् को रुलाते हैं, और जो मार खाकर भी प्रेम की याचना करते हैं, वे आये हैं !"

श्रीरामकृष्ण के साथ सब उन्मत्त हो नाच रहे हैं, और अनुभव

कर रहे हैं कि गौरांग और निताई हमारे सामने नाच रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण फिर गाने लगे—

(भावार्थ)—"गौरांग के प्रेम के हिलोरों से नवद्वीप डाँवाडोल हो रहा है।"

संकीर्तन की तरंग राघव के मन्दिर की ओर बढ़ रही है। वहाँ परिक्रमा और नृत्य आदि करने के बाद श्रीविग्रह को प्रणाम कर वह तरंगायित जनसंघ गंगातट पर अवस्थित श्रीराधाकृष्ण के मन्दिर की ओर बढ़ रहा है।

संकीर्तनकारों में से कुछ ही लोग श्रीराधाकृष्ण के मन्दिर में घुस पाये हैं। अधिकांश लोग दरवाजे से ही एक दूसरे को ढकेलते हुए झाँक रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण श्रीराधाकृष्ण के आँगन में फिर नाच रहे हैं। कीर्तनानन्द में बिलकुल मस्त हैं! बीच बीच में समाधिस्थ हो रहे हैं और चारों ओर से फूल-बतासे चरणों पर पड़ रहे हैं। आँगन के भीतर बारम्बार हरि-ध्वनि हो रही है। वही ध्वनि सड़क पर आते ही हजारों कण्ठों से उच्चारित होने लगी। गंगा पर नावों से आने-जानेवाले लोग चकित होकर इस सागर-गर्जन के समान उठती हुई ध्वनि को सुनने लगे और वे स्वयं भी 'हरिबोल' 'हरिबोल' कहने लगे।

पानीहाटी के महोत्सव में एकत्रित हजारों नर-नारी सोच रहे हैं कि इन महापुरुष के भीतर निश्चित ही श्रीगौरांग का आविर्भाव हुआ है। दो-एक आदमी यह विचार कर रहे हैं कि शायद ये ही साक्षात् गौरांग हों।

छोटेसे आँगन में बहुतसे लोग एकत्रित हुए हैं। भक्तगण बड़े यत्न से श्रीरामकृष्ण को बाहर लाये।

श्रीरामकृष्ण श्री मणि सेन की बैठक में आकर बैठे। इन्हीं

सेन परिवारवालों की ओर से पानीहाटी में श्रीराधाकृष्ण की सेवा होती है। वे ही प्रतिवर्ष महोत्सव का आयोजन करते हैं और श्रीरामकृष्ण को निमन्त्रण देते हैं।

श्रीरामकृष्ण के कुछ विश्राम करने के बाद मणि सेन और उनके गुरुदेव नवद्वीप गोस्वामी ने उनको अलग ले जाकर प्रसाद लाकर भोजन कराया। कुछ देर बाद राम, राखाल, मास्टर, भवनाथ आदि भक्त एक दूसरे कमरे में बिठाये गये। भक्तवत्सल श्रीरामकृष्ण स्वयं खड़े हो आनन्द करते हुए उनको खिला रहे हैं।

(२)

श्रीगौरांग का महाभाव, प्रेम और तीन अवस्थाएँ।

दोपहर का समय है। राखाल, राम आदि भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण मणि सेन की बैठक में विराजमान हैं। नवद्वीप गोस्वामी भोजन करके श्रीरामकृष्ण के पास आ बैठे हैं।

मणि सेन ने श्रीरामकृष्ण को गाड़ी का किराया देना चाहा। श्रीरामकृष्ण बैठक में एक कोच पर बैठे हैं, और कहते हैं "गाड़ी का किराया वे लोग (राम आदि) क्यों लेंगे? वे तो पैसा कमाते हैं।"

अब श्रीरामकृष्ण नवद्वीप गोस्वामी से ईश्वरी प्रसंग करने लगे।

श्रीरामकृष्ण (नवद्वीप से)—भक्ति के परिपक्व होने पर भाव होता है, फिर महाभाव, फिर प्रेम, फिर वस्तु (ईश्वर) का लाभ होता है।

"गौरांग को महाभाव और प्रेम हुआ था।

"इस प्रेम के होने पर मनुष्य जगत् को तो भूल ही जाता है, बल्कि अपना शरीर, जो इतना प्रिय है, उसकी भी सुधि नहीं रहती। गौरांग को यह प्रेम हुआ था। समुद्र को देखते ही यमुना समझकर वे उसमें कूद पड़े!

"जीवों को महाभाव या प्रेम नहीं होता, उनको भाव तक ही होता है। फिर गौरांग को तीन अवस्थाएँ होती थीं।"

नवद्वीप—जी हाँ। अन्तर्दशा, अर्धबाह्य दशा और बाह्य दशा।

श्रीरामकृष्ण—अन्तर्दशा में वे समाधिस्थ रहते थे, अर्धबाह्य दशा में केवल नृत्य कर सकते थे, और बाह्य दशा में नाम-संकीर्तन करते थे।

नवद्वीप ने अपने लड़के को लाकर श्रीरामकृष्ण से परिचित करा दिया। वे तरुण हैं—शास्त्र का अध्ययन करते हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

नवद्वीप—यह घर में शास्त्र पढ़ता है। इस देश में वेद एक प्रकार से अप्राप्य ही थे। मैक्समूलर ने उन्हें छपवाया, इसी से तो लोग अब उनको पढ़ सकते हैं।

पाण्डित्य और शास्त्र

श्रीरामकृष्ण—अधिक शास्त्र पढ़ने से और भी हानि होती है।

"शास्त्र का सार जान लेना चाहिए। फिर ग्रन्थ की क्या आवश्यकता है?

"शास्त्र का सार जान लेने पर डुबकी लगानी चाहिए—ईश्वर का लाभ करने के लिए।

"मुझे माँ ने बतला दिया है कि वेदान्त का सार है—'ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या।' गीता का सार क्या है? दस बार 'गीता' शब्द कहने से जो हो वही—अर्थात् त्यागी, त्यागी।

नवद्वीप—ठीक 'त्यागी' नहीं बनता, 'तागी' होता है। फिर उसका भी अर्थ वही है। 'तग्' धातु और 'घञ्' प्रत्यय = ताग; उस पर 'इन्' प्रत्यय लगाने पर 'तागी' बनता है। 'त्यागी' का अर्थ जो है, 'तागी' का भी वही है।

श्रीरामकृष्ण—गीता का सार यही है कि हे जीव, सब त्यागकर भगवान् का लाभ करने के लिए साधना करो।

नवद्वीप—त्याग की ओर तो मन नहीं जाता !

श्रीरामकृष्ण—तुम लोग गोस्वामी हो, तुम्हारे यहाँ देवसेवा होती है,—तुम्हारे संसार-त्याग करने पर काम नहीं चलेगा। ऐसा करने से देवसेवा कौन करेगा ? तुम लोग मन से त्याग करना।

"ईश्वर ही ने लोकशिक्षा के लिए तुम लोगों को संसार में रखा है। तुम हजार संकल्प करो, त्याग नहीं कर सकोगे। उन्होंने तुम्हें ऐसी प्रकृति दी है कि तुम्हें संसार का कामकाज करना ही पड़ेगा।

"श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'युद्ध नहीं करूँगा' यह तुम क्या कह रहे हो ? इच्छा करने ही से तुम युद्ध से निवृत्त न हो सकोगे। तुम्हारी प्रकृति तुमसे युद्ध करायेगी।"

श्रीकृष्ण अर्जुन से बातें कर रहे हैं—यह कहते ही श्रीरामकृष्ण फिर समाधिस्थ हो रहे हैं। बात ही बात में सब अंग स्थिर हो गये। आँखें एकटक हो गयीं। साँस चल रही है कि नहीं—जान नहीं पड़ता।

नवद्वीप गोस्वामी, उनके लड़के और भक्तगण निर्वाक् हो यह दृश्य देख रहे हैं।

कुछ प्रकृतिस्थ हो श्रीरामकृष्ण नवद्वीप से कहते हैं—

"योग और भोग। तुम लोग गोस्वामी वंश के हो, तुम लोगों के लिए दोनों हैं।

"अब केवल प्रार्थना, हार्दिक प्रार्थना करो कि हे ईश्वर, तुम्हारी इस भुवनमोहिनी माया के ऐश्वर्य को मैं नहीं चाहता,—मैं तुम्हें चाहता हूँ।

"ईश्वर तो सब प्राणियों में हैं। फिर भक्त किसे कहते हैं ?

जो ईश्वर में रहता है, जिसका मन, प्राण, अन्तरात्मा—सब कुछ उसमें लीन हो गया है।"

अब श्रीरामकृष्ण सहज दशा में आ गये हैं। नवद्वीप से कहते हैं—

"मुझे यह जो अवस्था (समाधि-अवस्था) होती है, इसे कोई कोई रोग कहते हैं। इस पर मेरा कहना यह है कि जिसके चैतन्य से जगत् चैतन्यमय है उसकी चिन्ता कर कोई अचैतन्य कैसे हो सकता है?"

मणि सेन अभ्यागत ब्राह्मणों और वैष्णवों को बिदा कर रहे हैं—उनकी मर्यादा के अनुसार किसी को एक रुपया, किसी को दो रुपये बिदाई देते हैं। श्रीरामकृष्ण को पाँच रुपये देने आये। आप बोले, "मुझे रुपये न लेने चाहिए।" तो भी मणि सेन नहीं मानते। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा, "यदि रुपये दोगे तो तुम्हें तुम्हारे गुरु की शपथ है।" मणि सेन इतने पर भी देने आये। तब श्रीरामकृष्ण ने अधीर होकर मास्टर से कहा, "क्यों जी, लेना चाहिए?" मास्टर ने बड़ी आपत्ति करते हुए कहा, "जी नहीं! किसी हालत में न लें!"

मणि सेन के घरवालों ने तब आम और मिठाई खरीदने के नाम पर राखाल के हाथ में रुपये दिये।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–मैंने गुरु की शपथ दी है—मैं अब मुक्त हूँ। राखाल ने रुपये लिए हैं—अब वह जाने!

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ गाड़ी पर बैठे—दक्षिणेश्वर लौट जायेंगे।

निराकार ध्यान और श्रीरामकृष्ण

मार्ग में मोती शील का मन्दिर है। श्रीरामकृष्ण बहुत दिनों से मास्टर से कहते आये हैं कि एक साथ आकर इस मन्दिर की झील को देखेंगे—यह सिखलाने के लिए कि निराकार ध्यान कैसे

करना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण को खूब सर्दी हुई है, तथापि भक्तों के साथ मन्दिर देखने के लिए गाड़ी से उतरे।

मन्दिर में श्रीगौरांग की पूजा होती है। अभी सन्ध्या होने में कुछ देर है। श्रीरामकृष्ण ने भक्तों के साथ गौरांग-मूर्ति के सम्मुख भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

अब मन्दिर के पूर्व की ओर जो झील है, उसके घाट पर आकर झील का पानी और मछलियों को देख रहे हैं। कोई इन मछलियों की हिंसा नहीं करता। कुछ चारा फेंकने पर बड़ी बड़ी मछलियाँ झुण्ड के झुण्ड सामने आकर खाने लगती हैं—फिर निर्भय होकर आनन्द से पानी में घूमती-फिरती हैं।

श्रीरामकृष्ण मास्टर से कहते हैं, "यह देखो कैसी मछलियाँ हैं! चिदानन्द-सागर में इन मछलियों की तरह आनन्द से विचरण करो।"

परिच्छेद ४३

बलराम के मकान पर

आत्मदर्शन का उपाय । नित्यलीला-योग

श्रीरामकृष्ण ने आज कलकत्ते में बलराम के मकान पर शुभागमन किया है। मास्टर पास बैठे हैं, राखाल भी हैं। श्रीरामकृष्ण भावमग्न हुए हैं। आज ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी, सोमवार, २५ जून १८८३ ई०। समय दिन के पाँच बजे का होगा।

श्रीरामकृष्ण (भाव के आवेश में)—देखो, अन्तर से पुकारने पर अपने स्वरूप को देखा जाता है, परन्तु विषयभोग की वासना जितनी रहती है, उतनी ही बाधा होती है।

मास्टर—जी, आप जैसा कहते हैं, डुबकी लगाना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण (आनन्दित होकर)—बहुत ठीक।

सभी चुप हैं; श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—देखो सभी को आत्मदर्शन हो सकता है।

मास्टर—जी, परन्तु ईश्वर कर्ता हैं; वे अपनी इच्छानुसार भिन्न भिन्न प्रकार से लीला कर रहे हैं। किसी को चैतन्य दे रहे हैं, किसी को अज्ञानी बनाकर रखा है।

श्रीरामकृष्ण—नहीं, उनसे व्याकुल होकर प्रार्थना करनी पड़ती है। आन्तरिक होने पर वे प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।

एक भक्त—जी हाँ, 'मैं' है, इसलिए प्रार्थना करनी होगी।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—लीला के सहारे नित्य में जाना होता है—जिस प्रकार सीढ़ी पकड़-पकड़कर छत पर चढ़ना होता

है। नित्यदर्शन के बाद नित्य से लीला में आकर रहना होता है, भक्ति-भक्त लेकर। यही मेरा परिपक्व मत है।

"उनके अनेक रूप, अनेक लीलाएं हैं। ईश्वर-लीला, देव-लीला, नर-लीला, जगत्-लीला। वे मानव बनकर, अवतार होकर युग युग में आते हैं—प्रेम-भक्ति सिखाने के लिए। देखो न चैतन्यदेव को। अवतार द्वारा ही उनके प्रेम तथा भक्ति का आस्वादन किया जा सकता है। उनकी अनन्त लीलाएं हैं—परन्तु मुझे आवश्यकता है प्रेम तथा भक्ति की। मुझे तो सिर्फ दूध चाहिए। गाय के स्तनों से ही दूध आता है। अवतार गाय के स्तन हैं।"

क्या श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं कि वे अवतीर्ण हुए हैं, उनका दर्शन करने से ही ईश्वर का दर्शन होता है? चैतन्यदेव का उल्लेख कर क्या श्रीरामकृष्ण अपनी ओर संकेत कर रहे हैं?

परिच्छेद ४४

दक्षिणेश्वर में

जे. एस. मिल और श्रीरामकृष्ण । मानव की सीमाबद्धता

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में शिवमन्दिर की सीढ़ी पर बैठे हैं। ज्येष्ठ मास, १८८३ ई०। खूब गर्मी पड़ रही है। थोड़ी देर बाद सन्ध्या होगी। बर्फ आदि लेकर मास्टर आये और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर उनके चरणों के पास शिवमन्दिर की सीढ़ी पर बैठे।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—मणि मल्लिक की नातिन का स्वामी आया था। उसने किसी पुस्तक* में पढ़ा है, ईश्वर वैसे ज्ञानी, सर्वज्ञ नहीं जान पड़ते। नहीं तो इतना दुःख क्यों? और यह जो जीव की मौत होती है, उन्हें एक बार में मार डालना ही अच्छा होता, धीरे धीरे अनेक कष्ट देकर मारना क्यों? जिसने पुस्तक लिखी है, उसने कहा है कि यदि वह होता तो इससे बढ़िया सृष्टि कर सकता था!

मास्टर विस्मित होकर श्रीरामकृष्ण की बातें सुन रहे हैं और चुप बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—उन्हें क्या समझा जा सकता है जी? मैं भी कभी उन्हें अच्छा मानता हूं और कभी बुरा। अपनी महामाया के भीतर हमें रखा है। कभी वह होश में लाते हैं, तो कभी बेहोश कर देते हैं। एक बार अज्ञान दूर हो जाता है, दूसरी बार फिर आकर घेर लेता है। तालाब का जल काई से ढँका हुआ

---

* John Stuart Mill's Autobiography

है। पत्थर फेंकने पर कुछ जल दिखायी देता है, फिर थोड़ी देर बाद काई नाचते नाचते आकर उस जल को भी ढंक लेती है।

"जब तक देहबुद्धि है, तभी तक सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, रोग-शोक हैं। ये सब देह के हैं, आत्मा के नहीं। देह की मृत्यु के बाद सम्भव है वे अच्छे स्थान पर ले जायें—जिस प्रकार प्रसव-वेदना के बाद सन्तान की प्राप्ति ! आत्मज्ञान होने पर सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु स्वप्न जैसे लगते हैं।

"हम क्या समझेंगे ? क्या एक सेर के लोटे में दस सेर दूध आ सकता है ? नमक का पुतला समुद्र नापने जाकर फिर खबर नहीं देता। गलकर उसी में मिल जाता है।"

सन्ध्या हुई, मन्दिरों में आरती हो रही है। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटे तख्त पर बैठकर जगज्जननी का चिन्तन कर रहे हैं। राखाल, लाटू, रामलाल, किशोरी गुप्त आदि भक्तगण उपस्थित हैं। मास्टर आज रात को ठहरेंगे। कमरे के उत्तर की ओर एक छोटे बरामदे में श्रीरामकृष्ण एक भक्त के साथ एकान्त में बातें कर रहे हैं। कह रहे हैं, "भोर में तथा उत्तर-रात्रि में ध्यान करना अच्छा है और प्रतिदिन सन्ध्या के बाद।" किस प्रकार ध्यान करना चाहिए, साकार ध्यान, अरूप ध्यान, यह सब बता रहे हैं।

थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण पश्चिम के गोल बरामदे में बैठ गये। रात के नौ बजे का समय होगा। मास्टर पास बैठे हैं, राखाल आदि बीच बीच में कमरे के भीतर आ-जा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—देखो, यहाँ पर जो लोग आयेंगे, उन सभी का सन्देह मिट जायगा; क्या कहते हो ?

मास्टर—जी हाँ।

उसी समय गंगा में काफी दूरी पर माँझी अपनी नाव खेता

हुआ गाना गा रहा था। गीत की वह ध्वनि मधुर अनाहत ध्वनि की तरह अनन्त आकाश के बीच में से होकर मानो गंगा के विशाल वक्ष को स्पर्श करती हुई श्रीरामकृष्ण के कानों में प्रविष्ट हुई। श्रीरामकृष्ण उसी समय भावाविष्ट हो गये! सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो उठे। श्रीरामकृष्ण मास्टर का हाथ पकड़कर कह रहे हैं, "देखो, देखो, मुझे रोमांच हो रहा है। मेरे शरीर पर हाथ रखकर देखो।" प्रेम से आविष्ट उनके उस रोमांचपूर्ण शरीर को छूकर वे विस्मित हो गये। 'पुलकपूरित अंग!' उपनिषद् में कहा गया है कि वे विश्व में आकाश में 'ओतप्रोत' होकर विद्यमान हैं। क्या वे ही शब्द के रूप में श्रीरामकृष्ण को स्पर्श कर रहे हैं? क्या यही शब्दब्रह्म है?*

थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण फिर वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—जो लोग यहाँ पर आते हैं, उनके शुभ संस्कार हैं; क्या कहते हो?

मास्टर—जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण—अधर के वैसे संस्कार थे।

मास्टर—इसमें क्या कहना है!

श्रीरामकृष्ण—सरल होने पर ईश्वर शीघ्र प्राप्त होते हैं। फिर दो पथ हैं,—सत् और असत्, सत् पथ से जाना चाहिए।

मास्टर—जी हाँ, धागे में यदि रेशा निकला हो तो वह सुई के भीतर नहीं जा सकता।

---

* एतस्मिन् नु खलु अक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्च।

—बृहदारण्यक उपनिषद्, ३–८–११

शब्दः खे पौरुषं नृषु। —गीता, ७।८

श्रीरामकृष्ण—कौर के साथ मुंह में केश चले जाने पर सब का सब थूककर फेंक देना पड़ता है।

मास्टर—परन्तु जैसे आप कहते हैं, जिन्होंने ईश्वर का दर्शन किया है, असत्-संग उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता; प्रखर अग्नि में केले का पेड़ तक जल जाता है!

परिच्छेद ४५

अधर के मकान पर

श्रीरामकृष्ण कलकत्ते के बेनेटोला में अधर के मकान पर पधारे हैं। आषाढ़ शुक्ला दशमी, १४ जुलाई १८८३, शनिवार। अधर श्रीरामकृष्ण को राजनारायण का चण्डी-संगीत सुनायेंगे। राखाल, मास्टर आदि साथ हैं। मन्दिर के बरामदे में गाना हो रहा है। राजनारायण गाने लगे---

(भावार्थ)---"अभय पद में प्राणों को सौंप दिया है, फिर मुझे यम का क्या भय है ? अपने सिर की शिखा में कालीनाम का महामन्त्र बाँध लिया है। मैं इस संसाररूपी बाजार में अपने शरीर को बेचकर श्रीदुर्गानाम खरीद लाया हूँ। काली-नामरूपी कल्पतरु को हृदय में बो दिया है। अब यम के आने पर हृदय खोलकर दिखाऊँगा, इसलिए बैठा हूँ। देह में छः दुर्जन हैं, उन्हें भगा दिया है। मैं जय दुर्गा, श्रीदुर्गा कहकर रवाना होने के लिए बैठा हूँ।"

श्रीरामकृष्ण थोड़ा सुनकर भावाविष्ट हो खड़े हो गये और मण्डली के साथ सम्मिलित होकर गाने लगे।

श्रीरामकृष्ण पद जोड़ रहे हैं—"ओ माँ, रखो माँ !" पद जोड़ते जोड़ते एकदम समाधिस्थ ! बाह्यज्ञानशून्य, निस्पन्द होकर खड़े हैं। गायक फिर गा रहे हैं--

(भावार्थ)—"यह किसकी कामिनी रणांगण को आलोकित कर रही है? मानो इसकी देहकान्ति के सामने जलधर बादल हार मानता है और दन्तपंक्ति मानो बिजली की चमक है !"

श्रीरामकृष्ण फिर समाधिस्थ हुए ।

गाना समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण अधर के बैठकघर में जाकर भक्तों के साथ बैठ गये । ईश्वरीय चर्चा हो रही है । इस प्रकार भी वार्तालाप हो रहा है कि कोई कोई भक्त मानो 'अन्तः-सार फल्गु नदी' है, ऊपर भाव का कोई प्रकाश नहीं !

परिच्छेद ४६

भक्तों के साथ

(१)

कलकत्ते की राह पर

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर से गाड़ी पर कलकत्ते की ओर जा रहे हैं। साथ में रामलाल और दो-एक भक्त हैं। फाटक से निकलते ही आपने देखा कि मणि हाथ में चार फजली आम लिये हुए पैदल आ रहे हैं। मणि को देखकर गाड़ी को रोकने के लिए कहा। मणि ने गाड़ी पर सिर टेककर प्रणाम किया।

आज शनिवार, २१ जुलाई १८८३ ई०, आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा है। दिन के चार बजे हैं। श्रीरामकृष्ण अधर के मकान पर जायेंगे, उसके बाद यदु मल्लिक के घर; और फिर खेलात घोष के यहाँ जायेंगे।

श्रीरामकृष्ण (मणि से हँसते हुए)—तुम भी आओ न, हम अधर के यहाँ जा रहे हैं।

मणि 'जैसी आपकी आज्ञा' कहकर गाड़ी पर बैठ गये।

मणि अंग्रेजी पढ़े-लिखे हैं, इसी से संस्कार नहीं मानते थे; पर कुछ दिन हुए श्रीरामकृष्ण के पास यह स्वीकार कर गये थे कि अधर के संस्कार थे, इसी से वे उनकी इतनी भक्ति करते हैं। घर लौटकर विचार करने पर मास्टर ने देखा कि संस्कार के बारे में अभी तक उनको पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। यही कहने के लिए आज श्रीरामकृष्ण से मिलने आये हैं। श्रीरामकृष्ण बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, अधर को तुम कैसा समझते हो?

मणि–उनमें बहुत अनुराग है।

श्रीरामकृष्ण–अधर भी तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करता है।

मणि कुछ देर तक चुप रहे, फिर पूर्वजन्म के संस्कार की बात उठायी।

ईश्वर के कार्य समझना असम्भव है

मणि–मुझे 'पूर्वजन्म' और 'संस्कार' आदि पर उतना विश्वास नहीं है; क्या इससे मेरी भक्ति में कोई बाधा आयेगी?

श्रीरामकृष्ण–ईश्वर की सृष्टि में सब कुछ हो सकता है—यह विश्वास ही पर्याप्त है। मैं जो सोचता हूँ वही सत्य है, और सब का मत मिथ्या है—ऐसा भाव मन में न आने देना। बाकी ईश्वर ही समझा देंगे।

"ईश्वर के कार्यों को मनुष्य क्या समझेगा? उनके कार्य अनन्त हैं! इसलिए मैं इनको समझने का थोड़ा भी प्रयत्न नहीं करता। मैंने सुन रखा है कि उनकी सृष्टि में सब कुछ हो सकता है। इसीलिए मैं इन सब बातों की चिन्ता न कर केवल ईश्वर ही की चिन्ता करता हूँ। हनुमान से पूछा गया था, आज कौनसी तिथि है; हनुमान ने कहा था, मैं तिथि, नक्षत्र आदि नहीं जानता, केवल एक राम की चिन्ता करता हूँ।

"ईश्वर के कार्य क्या समझ में आ सकते हैं? वे तो पास ही हैं—पर यह समझना कितना कठिन है! बलराम कृष्ण को भगवान् नहीं जानते थे।"

मणि–जी हाँ! जैसे आपने भीष्मदेव की बात कही थी।

श्रीरामकृष्ण–हाँ, हाँ! क्या कहा था, कहो तो!

मणि–भीष्मदेव शरशय्या पर पड़े रो रहे थे। पाण्डवों ने श्रीकृष्ण से कहा, 'भाई, यह कैसा आश्चर्य है! पितामह इतने

ज्ञानी होकर भी मृत्यु का विचार कर रो रहे हैं !' श्रीकृष्ण ने कहा, 'उनसे पूछो न, क्यों रोते हैं।' भीष्मदेव बोले, 'मैं यह विचार कर रोता हूं कि भगवान् के कार्य को कुछ भी न समझ सका। हे कृष्ण, तुम इन पाण्डवों के साथ साथ फिरते हो, पग पग पर इनकी रक्षा करते हो, फिर भी इनकी विपद् का अन्त नहीं !'

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर ने अपनी माया से सब कुछ ढक रखा है—कुछ जानने नहीं देते। कामिनी और कांचन ही माया है। इस माया को हटाकर जो ईश्वर के दर्शन करता है, वही उन्हें देख पाता है। एक आदमी को समझाते समय मुझे ईश्वर ने एक अद्भुत दृश्य दिखलाया। अचानक सामने देखा उस देश का एक तालाब, और एक आदमी ने काई हटाकर उससे जल पी लिया। जल स्फटिक की तरह साफ था। इससे यह सूचित हुआ कि वह सच्चिदानन्द मायारूपी काई से ढका हुआ है,—जो काई हटाकर जल पीता है, वही पाता है।

"सुनो, तुमसे बड़ी गूढ़ बातें कहता हूँ। झाउओं के तले बैठे हुए देखा कि चोरदरवाज़े का-सा एक दरवाजा सामने है। कोठरी के अन्दर क्या है, यह मुझे दिखायी नहीं पड़ा। मैं एक नहरनी से छेद करने लगा, पर कर न सका। मैं छेदता रहा, पर वह बार बार भर जाता था। परन्तु एक बार इतना बड़ा छेद बना !"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण चुप रहे। फिर बोलने लगे—"ये सब बड़ी ऊंची बातें हैं। यह देखो, कोई मानो मेरा मुँह दबा देता है।

"योनि में ईश्वर का वास प्रत्यक्ष देखा था !—कुत्ता और कुतिया के समागम के समय देखा था।

"ईश्वर के चैतन्य से जगत् चैतन्यमय है। कभी कभी देखता हूँ कि छोटी छोटी मछलियों में वही चैतन्य खेल रहा है।"

गाड़ी शोभाबाजार के चौराहे पर से दरमाहट्टा के निकट पहुँची। श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं—

"कभी कभी देखता हूँ कि वर्षा में जिस प्रकार पृथ्वी जल से ओतप्रोत रहती है, उसी प्रकार इस चैतन्य से जगत् ओतप्रोत है।

"इतना सब दिखलायी तो पड़ता है, पर मुझे अभिमान नहीं होता।"

मणि (सहास्य)–आपका अभिमान कैसा!

श्रीरामकृष्ण–शपथ खाकर कहता हूँ, थोड़ा भी अभिमान नहीं होता।

मणि–ग्रीस देश में सुकरात नाम का एक आदमी था। यह दैववाणी हुई थी कि सब लोगों में वही ज्ञानी है। उसे आश्चर्य हुआ। बहुत देर तक निर्जन में चिन्ता करने पर उसे भेद मालूम हुआ। तब उसने अपने मित्रों से कहा, 'केवल मुझे ही मालूम हुआ है कि मैं कुछ नहीं जानता; पर दूसरे सब लोग कहते हैं कि हमें खूब ज्ञान हुआ है। परन्तु वास्तव में सभी अज्ञान हैं।'

श्रीरामकृष्ण–मैं कभी कभी सोचता हूँ कि मैं जानता ही क्या हूँ कि इतने लोग यहाँ आते हैं! वैष्णवचरण बड़ा पण्डित था। वह कहता था कि तुम जो कुछ कहते हो वह सब शास्त्रों में पाया जाता है। तो फिर तुम्हारे पास क्यों आता हूँ? तुम्हारे मुँह से वही सब सुनने के लिए।

मणि–आपकी सब बातें शास्त्र से मिलती हैं। नवद्वीप गोस्वामी भी उस दिन पानीहाटी में यही बात कहते थे। आपने कहा कि 'गीता' 'गीता' बार बार कहने से 'त्यागी' 'त्यागी' हो जाता है। वास्तव में 'तागी' होता है, परन्तु नवद्वीप गोस्वामी ने कहा कि 'तागी' और 'त्यागी' दोनों का एक ही अर्थ है; 'तग्' एक धातु

हैं, उसी से 'तागी' बनता है।

श्रीरामकृष्ण—मेरे साथ क्या दूसरों का कुछ मिलता-जुलता है ? किसी पण्डित या साधु का ?

मणि—आपको ईश्वर ने स्वयं अपने हाथों से बनाया है। और दूसरों को मशीन में डालकर।—जैसे नियम के अनुसार सृष्टि होती है।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य, रामलाल आदि से)—अरे, कहता क्या है !

श्रीरामकृष्ण की हँसी रुकती ही नहीं। अन्त में उन्होंने कहा, "शपथ खाता हूँ, मुझे तनिक भी अभिमान नहीं होता।"

मणि—विद्या से एक लाभ होता है। उससे यह मालूम हो जाता है कि मैं कुछ नहीं जानता, और मैं कुछ नहीं हूँ।

श्रीरामकृष्ण—ठीक है, ठीक है। मैं कुछ नहीं हूँ ! मैं कुछ नहीं हूँ ! अच्छा, अंग्रेजी ज्योतिष पर तुम्हें विश्वास है ?

मणि—उन लोगों के नियम के अनुसार नये आविष्कार हो सकते हैं; यूरेनस (Uranus) ग्रह की अनियमित चाल देखकर उन्होंने दूरबीन से पता लगाकर देखा कि एक नया ग्रह (Neptune) चमक रहा है। फिर उससे ग्रहण की गणना भी हो सकती है।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, सो तो होती है।

गाड़ी चल रही है—प्रायः अधर के मकान के पास आ गयी है। श्रीरामकृष्ण मणि से कहते हैं, "सत्य में रहना, तभी ईश्वर मिलेंगे।"

मणि—एक और बात आपने नवद्वीप गोस्वामी से कही थी—'हे ईश्वर, मैं तुम्हीं को चाहता हूँ। देखना, अपनी भुवनमोहिनी माया के ऐश्वर्य से मुझे मुग्ध न करना। मैं तुम्हीं को चाहता हूँ।'

श्रीरामकृष्ण—हाँ, यह दिल से कहना होगा।

(२)

अधर सेन के मकान पर कीर्तनानन्द में

श्रीरामकृष्ण अधर के मकान पर आये हैं। बैठकखाने में रामलाल, मास्टर, अधर तथा कुछ और भक्त आपके पास बैठे हुए हैं। मुहल्ले के दो-चार लोग श्रीरामकृष्ण को देखने आये हैं। राखाल के पिता कलकत्ते में रहते हैं—राखाल वहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण (अधर के प्रति)—क्यों, राखाल को खबर नहीं दी ?

अधर—जी, उन्हें खबर दी है।

राखाल के लिए श्रीरामकृष्ण को व्यग्र देखकर अधर ने राखाल को लिवा लाने के लिए एक आदमी के साथ अपनी गाड़ी भिजवा दी।

अधर श्रीरामकृष्ण के पास आ बैठे। आप के दर्शन के लिए अधर आज व्याकुल हो रहे थे। आज आपके यहाँ आने के बारे में पहले से कुछ निश्चित नहीं था। ईश्वर की इच्छा से ही आप आ पहुंचे हैं।

अधर—बहुत दिन हुए आप नहीं आये थे। मैंने आज आपको पुकारा था,—यहाँ तक कि आँखों से आँसू भी गिरे थे।

श्रीरामकृष्ण (प्रसन्न होकर हंसते हुए)—क्या कहते हो !

शाम हुई। बैठकखाने में बत्ती जलायी गयी। श्रीरामकृष्ण ने हाथ जोड़कर जगज्जननी को प्रणाम कर मन ही मन शायद मूलमन्त्र का जाप किया। अब मधुर स्वर से नाम-उच्चारण कर रहे हैं—'गोविन्द ! गोविन्द ! सच्चिदानन्द ! हरि बोल ! हरि बोल!' आप इतना मधुर नाम-उच्चारण कर रहे हैं कि मानो मधु बरस रहा है ! भक्तगण निर्वाक् होकर उस नामसुधा का पान कर रहे हैं।

रामलाल गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"हे माँ हरमोहिनी, तूने संसार को भुलावे में डाल रखा है। मूलाधार महाकमल में तू वीणावादन करती हुई चित्तविनोदन करती है। महामन्त्र का अवलम्बन कर तू शरीर-रूपी यन्त्र के सुषुम्नादि तीन तारों में तीन गुणों के अनुसार तीन ग्रामों में संचरण करती है। मूलाधारचक्र में तू भैरव राग के रूप में अवस्थित है; स्वाधिष्ठानचक्र के षड्दल कमल में तू श्री राग तथा मणिपूरचक्र में मल्हार राग है। तू वसन्त राग के रूप में हृदयस्थ अनाहतचक्र में प्रकाशित होती है। तू विशुद्धचक्र में हिण्डोल तथा आज्ञाचक्र में कर्णाटक राग है। तान-मान-लय-सुर के सहित तू मन्द्र-मध्य-तार इन तीन सप्तकों का भेदन करती है। हे महामाया, तूने मोहपाश के द्वारा सब को अनायास बाँध लिया है। तत्त्वाकाश में तू मानो स्थिर सौदामिनी की तरह विराजमान है। 'नन्दकुमार' कहता है कि तेरे तत्त्व का निश्चय नहीं किया जा सकता। तीन गुणों के द्वारा तूने जीव की दृष्टि को आच्छादित कर रखा है।"

रामलाल ने फिर गाया—

(भावार्थ)—"हे भवानी, मैंने तुम्हारा भयहर नाम सुना है, इसीलिए तो अब मैंने तुम पर अपना भार सौंप दिया है। अब तुम मुझे तारो या न तारो! माँ, तुम ब्रह्माण्डजननी हो, ब्रह्माण्डव्यापिनी हो। तुम काली हो या राधिका—यह कौन जाने! हे जननी, तुम घट घट में विराजमान हो। मूलाधार-चक्र के चतुर्दल कमल में तुम कुलकुण्डलिनी के रूप में विद्यमान हो। तुम्हीं सुषुम्ना मार्ग से ऊपर उठती हुई स्वाधिष्ठानचक्र के षड्दल तथा मणिपूरचक्र के दशदल कमल में पहुँचती हो। हे कमल-कामिनी, तुम ऊर्ध्वोर्ध्व कमलों में निवास करती हो। हृदयस्थित

अनाहतचक्र के द्वादशदल कमल को अपने पादपद्म के द्वारा प्रस्फुटित कर तुम हृदय के अज्ञानतिमिर का विनाश करती हो। इसके ऊपर कण्ठस्थित विशुद्धचक्र में धूम्रवर्ण षोडशदल कमल है। इस कमल के मध्यभाग में जो आकाश है, वह यदि अवरुद्ध हो जाय तो सर्वत्र आकाश ही रह जाता है। इसके ऊपर ललाट में अवस्थित आज्ञाचक्र के द्विदल कमल में पहुँचकर मन आबद्ध हो जाता है--वह वहीं रहकर मजा देखना चाहता है, और ऊपर नहीं उठना चाहता। इससे ऊपर मस्तक में सहस्रारचक्र है। वहाँ अत्यन्त मनोहर सहस्रदल कमल है, जिसमें परमशिव स्वयं विराजमान हैं। हे शिवानी, तुम वहीं शिव के निकट जा विराजो! हे माँ, तुम आद्याशक्ति हो। योगी तथा मुनिगण तुम्हारा नगेन्द्रनन्दिनी उमा के रूप में ध्यान करते हैं। तुम शिव की शक्ति हो। तुम मेरी वासनाओं का हरण करो ताकि मुझे फिर इस भवसागर में पतित न होना पड़े। माँ, तुम्हीं पंचतत्त्व हो, फिर तुम तत्त्वों के अतीत हो। तुम्हें कौन जान सकता है! हे माँ, संसार में भक्तों के हेतु तुम साकार बनी हो, परन्तु पंचेन्द्रियाँ पंचतत्त्व में विलीन हो जाने पर तुम्हारे निराकार स्वरूप का ही अनुभव होता है।"

रामलाल जिस समय गा रहे थे--'इसके ऊपर कण्ठस्थित विशुद्धचक्र में धूम्रपर्ण षोडशदल कमल है। इस कमल के मध्यभाग में जो आकाश है वह यदि अवरुद्ध हो जाय तो सर्वत्र आकाश ही रह जाता है'—उस समय श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से कहा—

"यह सुनो, इसी का नाम है निराकार सच्चिदानन्द-दर्शन। विशुद्धचक्र का भेदन होने पर 'सर्वत्र आकाश ही रह जाता है।'"

मास्टर—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—इस मायामय जीव-जगत् के पार हो जाने पर तब कहीं नित्य स्वरूप में पहुँचा जा सकता है। नादभेद होने पर ही समाधि लगती है। ओंकार-साधना करते करते नादभेद होता है और समाधि लगती है।

अधर ने फलमिष्टान्न आदि के द्वारा श्रीरामकृष्ण की सेवा की। श्रीरामकृष्ण ने कहा, "आज यदु मल्लिक के यहाँ जाना पड़ेगा।"

(३)

यदु मल्लिक के मकान पर

श्रीरामकृष्ण यदु मल्लिक के मकान पर आये। कृष्णा प्रतिपदा है। चाँदनी रात है।

जिस कमरे में सिंहवाहिनी देवी की नित्यसेवा होती है उस कमरे में श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ उपस्थित हुए। सचन्दन पुष्पों और मालाओं द्वारा पूजित और विभूषित होकर देवी ने अपूर्व शोभा धारण की है। सामने पुजारी बैठे हुए हैं। प्रतिमा के सम्मुख दीप जल रहा है। सहचरों में से एक को श्रीरामकृष्ण ने रुपया चढ़ाकर प्रणाम करने कहा, क्योंकि देवता के दर्शन के लिए आने पर कुछ प्रणामी चढ़ानी चाहिए।

श्रीरामकृष्ण सिंहवाहिनी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। आपके पीछे भक्तगण हाथ जोड़कर खड़े हैं। श्रीरामकृष्ण बड़ी देर तक दर्शन कर रहे हैं।

क्या आश्चर्य है! दर्शन करते हुए आप सहसा समाधिमग्न हो गये! पत्थर की मूर्ति की तरह निःस्तब्ध खड़े हैं! नेत्र निष्पलक हैं।

काफी समय के बाद आपने लम्बी साँस छोड़ी। समाधि छूटी। नशे में मस्त हुए-से कह रहे हैं—"माँ, चलता हूँ!" परन्तु

चल नहीं पाते---उसी प्रकार खड़े हैं।

फिर रामलाल से कहा, "तुम वह गाना गाओ---तभी मैं ठीक होऊँगा।"

रामलाल गाने लगे--"हे माँ हरमोहिनी, तूने संसार को भुलावे में डाल रखा है।"

गीत समाप्त हुआ। अब श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठकखाने की ओर आ रहे हैं। चलते हुए बीच बीच में कहते हैं---"माँ, मेरे हृदय में रहो, माँ।"

यदु मल्लिक अपने लोगों के साथ बैठकखाने में बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण भावावस्था में ही हैं। आकर गा रहे हैं---

(भावार्थ)---"हे माँ, तुम आनन्दमयी होते हुए मुझे निरानन्द मत करना।"

गीत समाप्त होने पर भावोन्मत्त होकर यदु से कहते हैं, "क्यों बाबू, क्या गाऊँ? 'माँ, आमि कि आटाशे छेले'---यह गाना गाऊँ?" यह कहकर आप गाने लगे---

(भावार्थ)---"माँ, क्या मैं तेरा अठवाँसा* बालक हूँ? तेरे आँखें तरेरने से मैं नहीं डरता। शिव जिन्हें अपने हृदयकमल पर धारण करते हैं वे तेरे आरक्त चरण मेरी सम्पदा हैं।..."

भाव का किंचित उपशम होने पर श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "माँ का प्रसाद खाऊँगा।" तब आपको सिंहवाहिनी का प्रसाद ला दिया गया।

यदु मल्लिक बैठे हैं। पास ही कुछ मित्र बैठे हुए हैं; कुछ खुशामद करनेवाले मुसाहब भी हैं।

यदु मल्लिक की ओर मुँह कर श्रीरामकृष्ण कुर्सी पर बैठे हैं

* आठ महीने में जन्म लेनेवाला बच्चा दुर्बल और भीरु होता है।

और हँसते हुए बातचीत कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण के साथ आये हुए भक्तों में से कोई कोई बाजू के कमरे में हैं। मास्टर तथा और दो-एक भक्त श्रीरामकृष्ण के पास ही बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—अच्छा, तुम मुसाहब क्यों रखते हो?

यदु (सहास्य)—मुसाहब रखने में क्या हर्ज है! क्या तुम उद्धार नहीं करोगे?

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—शराब की बोतलों के आगे गंगा भी हार मानती हैं!

यदु ने श्रीरामकृष्ण के सम्मुख घर में चण्डी-गान का आयोजन करने का वचन दिया था। बहुत दिन बीत गये, पर चण्डी-गान नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण—क्यों जी, चण्डी-गान का क्या हुआ?

यदु—कई तरह के काम-काज थे, इसीलिए इतने दिन नहीं हो पाया।

श्रीरामकृष्ण—यह क्या! मर्द आदमी की एक जबान चाहिए! 'पुरुष की बात, हाथी का दाँत।' मर्द की जबान एक चाहिए—क्यों, ठीक है न?

यदु (सहास्य)—सो तो ठीक है।

श्रीरामकृष्ण—तुम बड़े हिसाबी आदमी हो। बहुत हिसाब करके काम करते हो। ब्राह्मण की गाय—खाये कम, गोबर ज्यादा करे, और धर-धर दूध दे! (सब हँसते हैं।)

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण यदु से कहते हैं, "समझ गया। तुम रामजीवनपुर की सिल के जैसे हो—आधी गरम, आधी ठण्डी। तुम्हारा मन ईश्वर की भी ओर है, और संसार की भी ओर।

श्रीरामकृष्ण में एक-दो भक्तों के साथ यदु के मकान पर फल,

मिष्टान्न, खीर आदि प्रसाद ग्रहण किया। अब आप खेलात घोष के यहाँ जायेंगे।

(४)

खेलात घोष के मकान पर

श्रीरामकृष्ण खेलात घोष के मकान में प्रवेश कर रहे हैं। रात के दस बजे होंगे। मकान और बड़ा आँगन चन्द्र के प्रकाश से आलोकित हो रहा है। भीतर प्रवेश करते हुए श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गये। साथ में रामलाल, मास्टर तथा और भी एक-दो भक्त हैं। मकान बहुत बड़ा और पक्का है। दुमंजले पर पहुँचने पर ऐसा मालूम होने लगा कि मानो घर में कोई नहीं है—बड़े बड़े कमरे और सामने लम्बा बरामदा—सब खाली पड़ा है।

श्रीरामकृष्ण को उत्तर-पूर्व ओर के एक कमरे में बैठाया गया। आप अब भी भावमग्न हैं। घर के जिन भक्त ने आपको बुला लाया है, उन्होंने आकर स्वागत किया। ये वैष्णव हैं। देह पर तिलक की छाप है और हाथ में जपमाला की गोमुखी। ये प्रौढ़ हैं। खेलात घोष के सम्बन्धी हैं। ये बीच बीच में दक्षिणेश्वर जाकर श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर आते हैं। परन्तु किसी किसी वैष्णव का भाव अत्यन्त संकीर्ण होता है। वे शाक्तों या ज्ञानियों की बड़ी निन्दा किया करते हैं। श्रीरामकृष्ण अब वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण का सर्वधर्मसमन्वय

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)—मेरा धर्म ठीक है और दूसरों का गलत—यह मत अच्छा नहीं। ईश्वर एक ही हैं, दो नहीं। उन्हीं को भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। कोई कहता है गाड तो कोई अल्लाह, कोई कहता है कृष्ण, कोई

शिव तो कोई ब्रह्म। जैसे तालाब में जल है। एक घाट पर लोग उसे कहते हैं 'जल', दूसरे घाट पर कहते हैं 'वाटर', और तीसरे घाट पर 'पानी'। हिन्दू कहते हैं 'जल', ख्रिश्चन कहते हैं 'वाटर' और मुसलमान 'पानी'--परन्तु वस्तु एक ही है। मत तो पथ हैं। एक-एक धर्ममत एक-एक पथ है जो ईश्वर की ओर ले जाता है। जैसे नदियाँ नाना दिशाओं से आकर सागर में मिल जाती हैं।

"वेद, पुराण, तन्त्र---सब का प्रतिपाद्य विषय वही एक सच्चिदानन्द है। वेदों में सच्चिदानन्द ब्रह्म, पुराणों में सच्चिदानन्द कृष्ण, तन्त्रों में सच्चिदानन्द शिव कहा है। सच्चिदानन्द ब्रह्म, सच्चिदानन्द कृष्ण, सच्चिदानन्द शिव---एक ही हैं।"

सब चुप हैं।

वैष्णव भक्त–महाराज, ईश्वर का चिन्तन भला क्यों करें?

जीवन्मुक्त। उत्तम भक्त। ईश्वरदर्शन के लक्षण

श्रीरामकृष्ण–यह बोध यदि रहे तो फिर वह जीवन्मुक्त ही है। परन्तु सब में यह विश्वास नहीं होता, केवल मुँह से कहते हैं। ईश्वर हैं, उन्हीं की इच्छा से सब कुछ हो रहा है--यह विषयासक्त लोग सुन भर लेते हैं, इस पर विश्वास नहीं रखते।

"विषयासक्त लोगों का ईश्वर कैसा होता है, जानते हो? जैसे माँ-काकी का झगड़ा सुनकर बच्चे भी झगड़ते हुए कहते हैं, मेरे ईश्वर हैं।

"क्या सभी लोग ईश्वर की धारणा कर सकते हैं? उन्होंने भले आदमी भी बनाये हैं और बुरे आदमी भी, भक्त भी बनाये हैं और अभक्त भी, विश्वासी भी बनाये हैं और अविश्वासी भी। उनकी लीला में सर्वत्र विविधता है। उनकी शक्ति कहीं अधिक प्रकाशित है तो कहीं कम। सूर्य का तेज मिट्टी की अपेक्षा जल

में अधिक प्रकाशित होता है, फिर जल की अपेक्षा दर्पण में अधिक प्रकाशित होता है।

"फिर भक्तों के बीच अलग अलग श्रेणियाँ हैं--उत्तम भक्त, मध्यम भक्त, अधम भक्त। गीता में ये सब बातें हैं।"

वैष्णव भक्त--जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण--अधम भक्त कहता है,--ईश्वर बहुत दूर आकाश में हैं। मध्यम भक्त कहता है,--ईश्वर सर्वभूतों में चेतना के रूप में, प्राण के रूप में विद्यमान हैं। उत्तम भक्त कहता है,--ईश्वर स्वयं ही सब कुछ हुए हैं; जो भी कुछ दीख पड़ता है वह उन्हीं का एक एक रूप है; वे ही माया, जीव, जगत् आदि बने हैं; उनके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है।

वैष्णव भक्त--क्या ऐसी अवस्था किसी को प्राप्त होती है?

श्रीरामकृष्ण--उनके दर्शन हुए बिना ऐसी अवस्था नहीं हो सकती। परन्तु दर्शन हुए हैं या नहीं इसके लक्षण हैं। दर्शन होने पर मनुष्य कभी उन्मत्तवत् हो जाता है--हँसता, रोता, नाचता, गाता है। फिर कभी बालकवत् हो जाता है--पाँच साल के बच्चे जैसी अवस्था! सरल, उदार, अहंकार नहीं, किसी चीज पर आसक्ति नहीं, किसी गुण का वशीभूत नहीं, सदा आनन्दमय अवस्था है! कभी वह पिशाचवत् बन जाता है--शुचि-अशुचि का भेद नहीं रहता, आचार-अनाचार सब एक हो जाता है। फिर कभी वह जड़वत् हो जाता है--मानो कुछ देखकर स्तब्ध हो गया है! इसी से किसी भी प्रकार का कर्म, किसी भी प्रकार की चेष्टा नहीं कर सकता।

क्या श्रीरामकृष्ण स्वयं की ही अवस्थाओं की ओर संकेत कर रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण (वैष्णव भक्त से)--'तुम और तुम्हारा'--यह

ज्ञान है; 'मैं और मेरा'—यह अज्ञान।

" 'हे ईश्वर, तुम कर्ता हो, मैं अकर्ता'—यही ज्ञान है। 'हे ईश्वर, सब कुछ तुम्हारा है; देह, मन, घर, परिवार, जीव, जगत्—यह सब तुम्हारा ही है, मेरा कुछ नहीं'—इसी का नाम ज्ञान है।

"जो अज्ञानी है, वही कहता है कि ईश्वर 'वहाँ'—बहुत दूर हैं। जो ज्ञानी है, वह जानता है कि ईश्वर 'यहाँ'—अत्यन्त निकट, हृदय के बीच अन्तर्यामी के रूप में विराजमान हैं, फिर उन्होंने स्वयं भिन्न भिन्न रूप भी धारण किये हैं।"

परिच्छेद ४७

ब्रह्मतत्त्व तथा आद्याशक्ति

(१)

पण्डित पद्मलोचन। विद्यासागर

आषाढ़ की कृष्णा तृतीया तिथि है, २२ जुलाई १८८३ ई०। आज रविवार है। भक्त लोग अवसर पाकर श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए फिर आये हैं। अधर, राखाल और मास्टर कलकत्ते से एक गाड़ी पर दिन के एक-दो बजे दक्षिणेश्वर पहुँचे। श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद थोड़ी देर आराम कर चुके हैं। कमरे में मणि मल्लिक आदि भक्त भी बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण अपने छोटे तख्त पर उत्तर की ओर मुँह किये बैठे हैं। भक्त लोग जमीन पर—कोई चटाई और कोई आसन पर—बैठे हैं। सभी महापुरुष की आनन्दमूर्ति को एकटक देख रहे हैं। कमरे के पास ही, पश्चिम की ओर गंगाजी दक्षिणवाहिनी होकर बही जा रही हैं। वर्षा-ऋतु के कारण स्रोत बड़ा प्रबल है; मानो गंगाजी सागर-संगम पर पहुँचने के लिए बड़ी व्यग्र हों, केवल राह में क्षण भर के लिए महापुरुष के ध्यान-मन्दिर के दर्शन और स्पर्श करती हुई जा रही हैं।

श्री मणि मल्लिक पुराने ब्राह्मभक्त हैं। उनकी उम्र साठ-पैंसठ वर्ष की है। कुछ दिन हुए वे काशीजी गये थे। आज श्रीरामकृष्ण से मिलने आये हैं और उनसे काशी-दर्शन का वर्णन कर रहे हैं।

मणि मल्लिक—एक और साधु को देखा। वे कहते हैं कि

इन्द्रिय-संयम के बिना कुछ नहीं होगा। सिर्फ ईश्वर की रट लगाने से क्या होगा?

श्रीरामकृष्ण—इन लोगों का मत यह है कि पहले साधना चाहिए—शम, दम, तितिक्षा चाहिए। ये निर्वाण के लिए चेष्टा कर रहे हैं। ये वेदान्ती हैं, सदैव विचार करते हैं, 'ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या।' बड़ा कठिन मार्ग है। यदि जगत् मिथ्या हुआ तो तुम भी मिथ्या हुए। जो कह रहे हैं वे स्वयं मिथ्या हैं, उनकी बातें भी स्वप्नवत् हैं। बड़ी दूर की बात है।

"यह कैसा है जानते हो? जैसे कपूर जलाने पर कुछ भी शेष नहीं रहता, लकड़ी जलाने पर राख तो बाकी रह जाती है। अन्तिम विचार के बाद समाधि होती है। तब 'मैं' 'तुम' 'जगत्' इन सब का कोई पता ही नहीं रहता।

"पद्मलोचन बड़ा ज्ञानी था, परन्तु मैं 'माँ माँ' कहकर प्रार्थना करता था, तो भी मुझे खूब मानता था। वह बर्दवानराज का सभापण्डित था। कलकत्ते में आया था—कामारहाटी के पास एक बाग में रहता था। पण्डित को देखने की मेरी इच्छा हुई। मैंने हृदय को यह जानने के लिए भेजा कि पण्डित को अभिमान है या नहीं। सुना कि अभिमान नहीं है। मुझसे उसकी भेंट हुई। वह तो उतना ज्ञानी और पण्डित था, परन्तु मेरे मुँह से रामप्रसाद के गाने सुनकर रो पड़ा! बातें करके ऐसा सुख मुझे कहीं और नहीं मिला। उसने मुझसे कहा, 'भक्तों का संग करने की कामना त्याग दो, नहीं तो तरह तरह के लोग हैं, वे तुमको गिरा देंगे।' वैष्णवचरण के गुरु उत्सवानन्द से उसने पत्र-व्यवहार करके विचार किया था, मुझसे कहा, 'आप भी जरा सुनिये।' एक सभा में विचार हुआ था—शिव बड़े हैं या ब्रह्मा। अन्त में पण्डितों ने

पद्मलोचन से पूछा। पद्मलोचन ऐसा सरल था कि उसने कहा, 'मेरे चौदह पुरखों में से किसी ने न तो शिव को देखा और न ब्रह्मा को ही।' 'कामिनी-कांचन का त्याग' सुनकर एक दिन उसने मुझसे कहा, 'उन सब का त्याग क्यों कर रहे हो? यह रुपया है, वह मिट्टी है,—यह भेदबुद्धि तो अज्ञान से पैदा होती है।' में क्या कह सकता था, बोला, 'क्या मालूम, पर मुझे रुपया-पैसा आदि रुचता ही नहीं।'

"एक पण्डित को बड़ा अभिमान था। वह ईश्वर का रूप नहीं मानता था। परन्तु ईश्वर का कार्य कौन समझे? वे आद्याशक्ति के रूप में उसके सामने प्रकट हुए। पण्डित बड़ी देर तक बेहोश रहा। जरा होश सम्हालने पर लगातार 'का, का, का' (अर्थात्, काली) की रट लगाता रहा।

भक्त—महाराज, आपने विद्यासागर को देखा है? कैसा देखा?

श्रीरामकृष्ण—विद्यासागर के पाण्डित्य है, दया है, परन्तु अन्तर्दृष्टि नहीं है। भीतर सोना दबा पड़ा है, यदि इसकी खबर उसे होती तो इतना बाहरी काम जो वह कर रहा है, वह सब घट जाता और अन्त में एकदम त्याग हो जाता। भीतर, हृदय में ईश्वर हैं यह बात जानने पर उन्हीं के ध्यान और चिन्तन में मन लग जाता। किसी किसी को बहुत दिन तक निष्काम कर्म करते करते अन्त में वैराग्य होता हैं और मन उधर मुड़ जाता है—ईश्वर से लग जाता है।

"जैसा काम ईश्वर विद्यासागर कर रहा है वह बहुत अच्छा है। दया बहुत अच्छी है। दया और माया में बड़ा अन्तर है। दया अच्छी है, माया अच्छी नहीं। माया का अर्थ है आत्मीयों से प्रेम—अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बहन, भतीजा, भानजा, माँ, बाप

इन्हीं से प्रेम। दया अर्थात् सब प्राणियों से समान प्रेम।"

(२)

ब्रह्म त्रिगुणातीत है। 'मुंह से नहीं बताया जा सकता।'

मास्टर—क्या दया भी एक बन्धन है?

श्रीरामकृष्ण—वह तो बहुत दूर की बात ठहरी। दया सतोगुण से होती है। सतोगुण से पालन, रजोगुण से सृष्टि और तमोगुण से संहार होता है, परन्तु ब्रह्म सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से परे है—प्रकृति से परे है।

"जहाँ यथार्थ तत्त्व है वहाँ तक गुणों की पहुंच नहीं। जैसे चोर-डाकू किसी ठीक जगह पर नहीं जा सकते; वे डरते हैं कि कहीं पकड़े न जायें। सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण डाकू हैं। एक कहानी सुनाता हूँ, सुनो—

"एक आदमी जंगल की राह से जा रहा था कि तीन डाकुओं ने उसे पकड़ा। उन्होंने उसका सब कुछ छीन लिया। एक डाकू ने कहा, 'अब इसे जीवित रखने से क्या लाभ?' यह कहकर वह तलवार से उसे काटने आया। तब दूसरे डाकू ने कहा, 'नहीं जी, काटने से क्या होगा? इसके हाथ-पैर बाँधकर यहीं छोड़ दो।' वैसा करके डाकू उसे वहीं छोड़कर चले गये। थोड़ी देर बाद उनमें से एक लौट आया और बोला, 'ओह! तुम्हें चोट लगी? आओ, मैं तुम्हारा बन्धन खोल देता हूँ।' उसे मुक्त कर डाकू ने कहा, 'आओ मेरे साथ, तुम्हें सड़क पर पहुंचा दूं।' बड़ी देर में सड़क पर पहुँचकर उसने कहा, 'इस रास्ते से चले जाओ, वह तुम्हारा मकान दिखता है।' तब उस आदमी ने डाकू से कहा, 'भाई, आपने बड़ा उपकार किया; अब आप भी चलिये मेरे मकान तक; आइये।' डाकू ने कहा, 'नहीं मैं वहाँ नहीं आ सकता;

पुलिस को खबर लग जायगी।'

"यह संसार ही जंगल है। इसमें सत्त्व, रज, तम ये तीन डाकू रहते हैं—ये जीवों का तत्त्वज्ञान छीन लेते हैं। तमोगुण मारना चाहता है; रजोगुण संसार में फँसाता है; पर सतोगुण रज और तम से बचाता है। सत्त्वगुण का आश्रय मिलने पर काम, क्रोध आदि तमोगुण से रक्षा होती है। फिर सतोगुण जीवों का संसार-बन्धन तोड़ देता है। पर सतोगुण भी डाकू है—वह तत्त्वज्ञान नहीं दे सकता। हाँ, वह जीव को उस परमधाम में जाने की राह तक पहुँचा देता है और कहता है, 'वह देखो, तुम्हारा मकान वह दीख रहा है!' जहाँ ब्रह्मज्ञान है, वहाँ से सतोगुण भी बहुत दूर है।

"ब्रह्म क्या है, यह मुँह से नहीं बताया जा सकता। जिसे उसका ज्ञान होता है वह फिर खबर नहीं दे सकता। लोग कहते हैं कि कालेपानी में जाने पर जहाज फिर नहीं लौटता।

"चार मित्रों ने घूमते-फिरते हुए ऊँची दीवार से घिरी एक जगह देखी। भीतर क्या है यह देखने के लिए सभी बहुत ललचाये। एक दीवार पर चढ़ गया। झाँककर उसने जो देखा तो दंग रह गया, और 'हा हा हा हा' करते हुए भीतर कूद पड़ा। फिर कोई खबर नहीं दी। इस तरह जो चढ़ा वही 'हा हा हा हा' करते हुए कूद गया! फिर खबर कौन दे?

"जड़भरत, दत्तात्रेय—ये ब्रह्मदर्शन के बाद फिर ख़बर नहीं दे सके। ब्रह्मज्ञान के उपरान्त, समाधि होने से फिर 'अहं' नहीं रहता। इसीलिए रामप्रसाद ने कहा है, 'यदि अकेले सम्भव न हो तो मन, रामप्रसाद को साथ ले।' मन का लय होना चाहिए, फिर 'रामप्रसाद' का, अर्थात् अहं-तत्त्व का भी, लय होना चाहिए। तब कहीं वह ब्रह्मज्ञान मिल सकता है।"

एक भक्त—महाराज, क्या शुकदेव को ज्ञान नहीं हुआ था ?

श्रीरामकृष्ण—कितने कहते हैं कि शुकदेव ने ब्रह्मसमुद्र को देखा और छुआ भर था, उसमें पैठकर गोता नहीं लगाया। इसीलिए लौटकर उतना उपदेश दे सके। कोई कहता है, ब्रह्मज्ञान के बाद वे लौट आये थे—लोकशिक्षा देने के लिए। परीक्षित् को भागवत सुनाना था और कितनी ही लोकशिक्षा देनी थी—इसीलिए ईश्वर ने उनके सम्पूर्ण अहं-तत्त्व का लय नहीं किया। एकमात्र 'विद्या का अहं' रख छोड़ा था।

केशव को शिक्षा—'दल (साम्प्रदायिकता) अच्छा नहीं'

एक भक्त—क्या ब्रह्मज्ञान होने के बाद सम्प्रदाय आदि चलाया जा सकता है ?

श्रीरामकृष्ण—केशव सेन से ब्रह्मज्ञान की चर्चा हो रही थी। केशव ने कहा, आगे कहिये। मैंने कहा, और आगे कहने से सम्प्रदाय आदि नहीं रहेगा। इस पर केशव ने कहा, तो फिर रहने दीजिये। (सब हँसे।) तो भी मैंने कहा, 'मैं' और 'मेरा' यह कहना अज्ञान है। 'मैं कर्ता हूँ, यह स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति, मान, प्रतिष्ठा—यह सब मेरा है' यह विचार बिना अज्ञान के नहीं होता। तब केशव ने कहा, महाराज, 'अहं' को त्याग देने से तो फिर कुछ रहता ही नहीं। मैंने कहा, केशव, मैं तुमसे पूरा 'अहं' त्यागने को नहीं कहता हूँ, तुम 'कच्चा अहं' छोड़ दो। 'मैं कर्ता हूँ', 'यह स्त्री और पुत्र मेरा है', 'मैं गुरु हूँ'—इस तरह का अभिमान 'कच्चा अहं' है—इसी को छोड़ दो। इसे छोड़कर 'पक्का अहं' बनाये रखो। 'मैं ईश्वर का दास हूँ, उनका भक्त हूँ; मैं अकर्ता हूँ और वे ही कर्ता हैं'—ऐसा सोचते रहो।

एक भक्त—क्या 'पक्का अहं' सम्प्रदाय बना सकता है ?

श्रीरामकृष्ण—मैंने केशव सेन से कहा, 'मैं सम्प्रदाय का नेता हूँ, मैंने सम्प्रदाय बनाया है, मैं लोगों को शिक्षा दे रहा हूँ'—इस तरह का अभिमान 'कच्चा अहं' है। किसी मत का प्रचार करना बड़ा कठिन काम है। वह ईश्वर की आज्ञा बिना नहीं हो सकता। ईश्वर का आदेश होना चाहिए। शुकदेव को भागवत की कथा सुनाने के लिए आदेश मिला था। यदि ईश्वर का साक्षात्कार होने के बाद किसी को आदेश मिले और तब यदि वह प्रचार का बीड़ा उठाये—लोगों को शिक्षा दे, तो कोई हानि नहीं। उसका अहं 'कच्चा अहं' नहीं, 'पक्का अहं' है।

"मैंने केशव से कहा था, 'कच्चा अहं' छोड़ दो। 'दास अहं' 'भक्त का अहं'—इसमें कोई दोष नहीं। तुम सम्प्रदाय की चिन्ता कर रहे हो, पर तुम्हारे सम्प्रदाय से लोग अलग होते जा रहे हैं। केशव ने कहा, महाराज, तीन वर्ष हमारे सम्प्रदाय में रहकर फिर दूसरे सम्प्रदाय में चला गया और जाते समय उलटे गालियाँ दे गया। मैंने कहा, तुम लक्षणों का विचार क्यों नहीं करते? क्या चाहे जिसको चेला बना लेने से ही काम हो जाता है!

"केशव से मैंने और भी कहा था कि तुम आद्याशक्ति को मानो। ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं—जो ब्रह्म हैं वे ही शक्ति हैं। जब तक 'मैं देह हूँ' यह बोध रहता है, तब तक दो अलग अलग प्रतीत होते हैं। कहने के समय दो आ ही जाते हैं। केशव ने काली (शक्ति) को मान लिया था।

"एक दिन केशव अपने शिष्यों के साथ आया। मैंने कहा, मैं तुम्हारा लेक्चर सुनूंगा। उसने चाँदनी में बैठकर लेक्चर दिया। फिर घाट पर आकर बहुत-कुछ बातचीत की। मैंने कहा, जो भगवान् हैं वे ही दूसरे रूप में भक्त हैं, फिर वे ही एक दूसरे रूप में भागवत

हैं। तुम लोग कहो, भागवत-भक्त-भगवान् । केशव ने और साथ ही भक्तों ने भी कहा, भागवत-भक्त-भगवान् । फिर जब मैंने कहा, कहो, गुरु-कृष्ण-वैष्णव, तब केशव ने कहा, महाराज, अभी इतनी दूर बढ़ना ठीक नहीं। लोग मुझे कट्टर कहेंगे।

"त्रिगुणातीत होना बड़ा कठिन है। ईश्वरलाभ किये बिना वह सम्भव नहीं। जीव माया के राज्य में रहता है। यही माया ईश्वर को जानने नहीं देती। इसी माया ने मनुष्य को अज्ञानी बना रखा है। हृदय एक बछड़ा लाया था। एक दिन मैंने देखा कि उसे उसने बाग में बाँध दिया है, चारा चुगाने के लिए। मैंने पूछा, 'हृदय, तू रोज उसे वहाँ क्यों बाँध रखता है?' हृदय ने कहा, 'मामा, बछड़े को घर भेजूँगा। बड़ा होने पर वह हल में जोता जायगा।' ज्योंही उसने यह कहा, मैं मूच्छित हो गिर पड़ा! सोचा, कैसा माया का खेल है! कहाँ तो कामारपुकुर सिहोड़ और कहाँ कलकत्ता! यह बछड़ा उतना रास्ता चलकर जायगा, वहाँ बढ़ता रहेगा, फिर कितने दिन बाद हल खींचेगा! इसी का नाम संसार है—इसी का माया है।

"बड़ी देर बाद मेरी मूर्च्छा टूटी थी।"

(३)

समाधि में

श्रीरामकृष्ण प्रायः रातदिन समाधिस्थ रहते हैं—उनका बाहरी ज्ञान नहीं के बराबर होता है, केवल बीच बीच में भक्तों के साथ ईश्वरीय प्रसंग और संकीर्तन करते हैं। करीव तीन-चार बजे मास्टर ने देखा कि वे अपने छोटे तख्त पर बैठे हैं—भावाविष्ट हैं। थोड़ी देर बाद जगन्माता से बातें करते हैं।

माता से वार्तालाप करते हुए एक बार उन्होंने कहा, "माँ, उसे

एक कला भर शक्ति क्यों दी ?" थोड़ी देर चुप रहने के बाद फिर कहते हैं, "माँ, समझ गया, एक कला ही पर्याप्त होगी। उसी से तेरा काम हो जायगा—जीवशिक्षण होगा।"

क्या श्रीरामकृष्ण इसी तरह अपने अन्तरंग भक्तों में शक्ति-संचार कर रहे हैं ? क्या यह सब तैयारी इसीलिए हो रही है कि आगे चलकर वे जीवों को शिक्षा देंगे ?

मास्टर के अलावा कमरे में राखाल भी बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण अब भी भावमग्न हैं, राखाल से कहते हैं, "तू नाराज हो गया था ? मैंने तुझे क्यों नाराज किया, इसका कारण है; दवा अपना ठीक असर करेगी समझकर। पेट में तिल्ली अधिक बढ़ जाने पर मदार के पत्ते आदि लगाने पड़ते हैं।"

कुछ देर बाद कहते हैं, "हाजरा को देखा, शुष्क काष्ठवत् है। तब यहाँ रहता क्यों है ? इसका कारण है, जटिला कुटिला * के रहने से लीला की पुष्टि होती है।

(मास्टर के प्रति) "ईश्वर का रूप मानना पड़ता है। जगद्धात्री रूप का अर्थ जानते हो ? जिन्होंने जगत् को धारण कर रखा है—उनके धारण न करने से, उनके पालन न करने से जगत् नष्टभ्रष्ट हो जाय। मनरूपी हाथी को जो वश में कर सकता है, उसी के हृदय में जगद्धात्री उदित होती हैं।"

राखाल—मन मतवाला हाथी है।

श्रीरामकृष्ण—सिंहवाहिनी का सिंह इसीलिए हाथी को दबाये हुए है।

सन्ध्यासमय मन्दिर में आरती हो रही है। श्रीरामकृष्ण भी

---

* श्रीराधा की सास और ननद—आयान घोष की माता और बहन।

अपने कमरे में ईश्वर का नाम ले रहे हैं। कमरे में धूनी दी गयी। श्रीरामकृष्ण हाथ जोड़कर छोटे तख्त पर बैठे हैं—माता का चिन्तन कर रहे हैं। बेलघरिया के गोविन्द मुकर्जी और उनके कुछ मित्रों ने आकर उनको प्रणाम किया और जमीन पर बैठे। मास्टर और राखाल भी बैठे हैं।

बाहर चाँद निकला हुआ है। जगत् चुपचाप हँस रहा है। कमरे के भीतर सब लोग चुपचाप बैठे श्रीरामकृष्ण की शान्त मूर्ति देख रहे हैं। आप भावमग्न हैं। कुछ देर बाद बातें कीं। अब भी भावाविष्ट हैं।

श्यामारूप। उत्तम भक्त। विचारपथ

श्रीरामकृष्ण (भावमग्न)—तुम लोगों को कोई शंका हो तो पूछो। मैं समाधान करता हूँ।

गोविन्द तथा अन्यान्य भक्त लोग सोचने लगे।

गोविन्द—महाराज, श्यामारूप क्यों हुआ?

श्रीरामकृष्ण—वह तो सिर्फ दूर से वैसा दिखता है। पास जाने पर कोई रंग ही नहीं! तालाब का पानी दूर से काला दिखता है। पास जाकर हाथ से उठाकर देखो, कोई रंग नहीं। आकाश दूर से नीले रंग का दिखता है। पास के आकाश को देखो, कोई रंग नहीं। ईश्वर के जितने ही समीप जाओगे उतनी ही धारणा होगी कि उनके नाम-रूप नहीं। कुछ दूर हट आने से फिर वही 'मेरी श्यामा माता'। जैसे घासफूल का रंग।

"श्यामा पुरुष है या प्रकृति? किसी भक्त ने पूजा की थी। कोई दर्शन करने आया तो उसने देवी के गले में जनेऊ देखकर कहा, 'तुमने माता के गले में जनेऊ पहनाया है!' भक्त ने कहा, 'भाई, तुम्हीं ने माता को पहचाना है। मैं अब तक नहीं पहचान सका

कि वे पुरुष हैं या प्रकृति ! इसीलिए जनेऊ पहना दिया था ।'

"जो श्यामा हैं वे ही ब्रह्म हैं। जिनका रूप है वे ही रूपहीन भी हैं। जो सगुण हैं वे ही निर्गुण हैं। ब्रह्म ही शक्ति है और शक्ति ही ब्रह्म। दोनों में कोई भेद नहीं। एक सच्चिदानन्दमय है और दूसरी सच्चिदानन्दमयी।"

गोविन्द—योगमाया क्यों कहते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—योगमाया अर्थात् पुरुष-प्रकृति का योग। जो कुछ देखते हो वह सब पुरुष-प्रकृति का योग है। शिव-काली की मूर्ति में शिव के ऊपर काली खड़ी हैं। शिव शव की भाँति पड़े हैं, काली शिव की ओर देख रही हैं,—यह सब पुरुष-प्रकृति का योग है। पुरुष निष्क्रिय है, इसीलिए शिव शव हो रहे हैं। पुरुष के योग से प्रकृति सब काम करती है—सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती है।

"राधाकृष्ण की युगलमूर्ति का भी यही अभिप्राय है। इसी योग के लिए वक्रभाव है। और यही योग दिखाने के लिए श्रीकृष्ण की नाक में मुक्ता और श्रीमती की नाक में नीलम है। श्रीमती का रंग गोरा, मुक्ता जैसा उज्ज्वल है। श्रीकृष्ण का रंग साँवला है, इसीलिए श्रीमती नीलम धारण करती है। फिर श्रीकृष्ण के वस्त्र पीले और श्रीमती के नीले हैं।

"उत्तम भक्त कौन है ? जो ब्रह्मज्ञान के बाद देखता है कि ईश्वर ही जीव, जगत् और चौबीस तत्त्व हुए हैं। पहले 'नेति नेति' (यह नहीं, यह नहीं) करके विचार करते हुए छत पर पहुँचना पड़ता है। फिर वही आदमी देखता है कि छत जिन चीजों—ईंट, चूने और सुरखी—से बनी है, सीढ़ी भी उन्हीं से बनी है। तब वह देखता है कि ब्रह्म ही जीव, जगत् और सब कुछ है।

"केवल शुष्क विचार ! मैं उस पर थूकता हूँ। (आप जमीन

पर थूकते हैं ।)

"क्यों विचार कर शुष्क बना रहूँगा ! जब तक 'मैं' और 'तुम' है, तब तक प्रार्थना है कि ईश्वर के चरणकमलों में शुद्धा भक्ति बनी रहे ।

(गोविन्द से) "कभी कहता हूँ, तुम्हीं 'मैं' हो और 'मैं' ही 'तुम' हूँ । फिर कभी 'तुम्हीं तुम हो'—ऐसा हो जाता है ! उस समय अपने अहं को ढूँढ़ नहीं पाता ।

"शक्ति का ही अवतार होता है । एक मत से राम और कृष्ण चिदानन्द समुद्र की दो लहरें हैं ।

"अद्वैतज्ञान के बाद चैतन्य होता है । तब मनुष्य देखता है कि ईश्वर ही सब प्राणियों में चैतन्य रूप से विद्यमान हैं । चैतन्यलाभ के बाद आनन्द होता है—'अद्वैत-चैतन्य-नित्यानन्द' ।*

(मास्टर से) "और तुमसे कहता हूँ—ईश्वर के रूप पर अविश्वास मत करना । यह विश्वास करना कि ईश्वर के रूप हैं, फिर जो रूप तुम्हें पसन्द हो उसी का ध्यान करना ।

(गोविन्द से) "बात यह है कि जब तक भोग-वासना बनी रहती है, तब तक ईश्वर को जानने या उनके दर्शन करने के लिए प्राण व्याकुल नहीं होते । बच्चा खेल में मग्न रहता है । मिठाई देकर बहलाओ तो थोड़ीसी खा लेगा । जब उसे न खेल अच्छा लगता है न मिठाई, तब वह कहता है, 'माँ के पास जाऊँगा' । फिर वह मिठाई नहीं चाहता । अगर कोई आदमी, जिसे उसने

---

* पन्द्रहवीं शताब्दी में नदिया में तीन महापुरुष भी इन्हीं नामों के हुए थे । उनमें श्रीचैतन्य भगवान् के अवतार समझे जाते हैं । शेष दो उनके पार्षद थे ।

न कभी देखा है और न पहचानता है, आकर कहे, 'आ, तुझे माँ के पास ले चलूँ', तो वह उसके साथ चला जायगा। जो कोई उसे गोद में बिठाकर ले जायगा, वह उसी के साथ जायगा।

"संसार के भोग समाप्त हो जाने के बाद ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होते हैं। उस समय केवल एक चिन्ता रहती है कि किस तरह उन्हें पाऊँ। उस समय जो जैसा बताता है, मनुष्य वैसा ही करने लगता है।"

मास्टर (स्वगत)—भोगवासना समाप्त हो चुकने के बाद ही ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होते हैं।

(४)

समाधि में जगन्माता के साथ वार्तालाप

एक दूसरे दिन श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में अपने कमरे के दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे की सीढ़ी पर बैठे हैं। साथ में राखाल, मास्टर तथा हाजरा हैं। श्रीरामकृष्ण हँसी हंसी में बचपन की अनेक बातें कह रहे हैं।

सायंकाल हुआ। श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हैं। अपने कमरे में छोटे तख्त पर बैठे जगन्माता के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। कह रहे हैं, "माँ, तू इतना झमेला क्यों करती है? माँ, क्या मैं वहाँ पर जाऊँ? यदि तू ले जायगी तो जाऊँगा।"

श्रीरामकृष्ण का किसी भक्त के घर पर जाना तय हुआ था। क्या वे इसीलिए जगन्माता की आज्ञा के लिए इस प्रकार कह रहे हैं?

जगन्माता के साथ श्रीरामकृष्ण फिर वार्तालाप कर रहे हैं। सम्भव है अब किसी अन्तरंग भक्त के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। कह रहे हैं, "माँ, उसे शुद्ध बना दो। अच्छा माँ, उसे एक कला क्यों दी?"

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप हैं। फिर कह रहे हैं, "ओफ! समझा। इसी से तेरा काम होगा।" सोलह कलाओं में से एक कला शक्ति द्वारा तेरा काम अर्थात् लोकशिक्षा होगी—क्या श्रीरामकृष्ण यही कह रहे हैं?

अब भावविभोर स्थिति में मास्टर आदि से आद्याशक्ति तथा अवतार-तत्त्व के सम्बन्ध में कह रहे हैं—

"जो ब्रह्म है, वही शक्ति है। मैं उन्हीं को माँ कहकर पुकारता हूँ। जब वे निष्क्रिय रहते हैं तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं, और जब वे सृष्टि, स्थिति, संहार कार्य करते हैं, तब उन्हें शक्ति कहते हैं। जिस प्रकार स्थिर जल और हिलता-डुलता जल। शक्ति की लीला से ही अवतार होते हैं। अवतार प्रेम-भक्ति सिखाने आते हैं। अवतार मानो गाय का स्तन है। दूध स्तन से ही मिलता है। मनुष्य रूप में वे अवतीर्ण होते हैं।"

कोई कोई भक्त सोच रहे हैं, क्या श्रीरामकृष्ण अवतारी पुरुष हैं, जैसे श्रीकृष्ण, चैतन्यदेव, ईसा?

परिच्छेद ४८

बलराम के मकान पर

ईश्वरदर्शन की बात । जीवन का उद्देश्य

एक दिन, १८ अगस्त १८८३ ई०, शनिवार को तीसरे पहर श्रीरामकृष्ण बलराम के घर आये हैं। आप अवतार-तत्त्व समझा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)—अवतार लोकशिक्षा के लिए भक्ति और भक्त लेकर रहते हैं। मानो छत पर चढ़कर सीढ़ी से आते-जाते रहना। जब तक ज्ञान नहीं होता, जब तक सभी वासनाएँ नष्ट नहीं होतीं, तब तक दूसरे लोग छत पर चढ़ने के लिए भक्ति-पथ पर रहेंगे। सब वासनाएँ मिट जाने पर ही छत पर पहुँचा जाता है। दूकानदार का हिसाब जब तक नहीं मिलता, तब तक वह नहीं सोता। खाते का हिसाब ठीक करके ही सोता है!

(मास्टर के प्रति) "मनुष्य यदि डुबकी लगाये तो अवश्य सफल होगा। डुबकी लगाने पर सफलता निश्चित है।

"अच्छा, केशव सेन, शिवनाथ,—ये लोग जो उपासना करते हैं, वह तुम्हें कैसी लगती है?"

मास्टर—जी, जैसा आप कहते हैं,—वे बगीचे का ही वर्णन करते हैं, परन्तु बगीचे के मालिक के दर्शन करने की बात बहुत कम कहते हैं। प्रायः बगीचे के वर्णन से ही प्रारम्भ और उसी में समाप्ति हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण—ठीक। बगीचे के मालिक की खोज करना और उनसे बातचीत करना, यही असल काम है। ईश्वर का दर्शन ही

जीवन का उद्देश्य है।†

बलराम के घर से अब अधर के घर पधारे हैं। सायंकाल के बाद अधर के बैठकघर में नाम-संकीर्तन और नृत्य कर रहे हैं; कीर्तनकार वैष्णवचरण गाना गा रहे हैं। अधर, मास्टर, राखाल आदि उपस्थित हैं।

कीर्तन के बाद श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर होकर बैठे हैं। राखाल से कह रहे हैं, "यहाँ का जल श्रावण मास का जल नहीं है। श्रावण मास का जल काफी तेजी के साथ आता है और फिर निकल जाता है। यहाँ पर पाताल से निकले हुए स्वयम्भू शिव हैं, स्थापित किये हुए शिव नहीं हैं। तू क्रोध में दक्षिणेश्वर से चला आया; मैंने माँ से कहा, 'माँ, इसके अपराध पर ध्यान न देना।'"

क्या श्रीरामकृष्ण अवतार हैं ? स्वयम्भू शिव हैं ?

फिर भावविभोर होकर अधर से कह रहे हैं—"भैया, तुमनें जो नाम लिया था, उसी का ध्यान करो।" ऐसा कहकर अधर की जिह्वा अपनी उँगली से छूकर उस पर न जाने क्या लिख दिया। क्या यही अधर की दीक्षा हुई ?

---

† आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
—बृहदारण्यक उपनिषद्, २।४।५

परिच्छेद ४९

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

(१)

वेदान्तवादियों का मत। माया अथवा दया ?

आज रविवार का दिन है। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, १९ अगस्त १८८३ ई०। अभी कुछ ही देर पहले देवी का भोग लगा और आरती हुई। अब मन्दिर बन्द हो गया है। श्रीरामकृष्ण देवी का प्रसाद पाने के बाद कुछ आराम कर रहे थे। विश्राम के बाद—अभी दोपहर का समय ही है—वे अपने कमरे में तख्त पर बैठे हुए हैं। इसी समय मास्टर ने आकर उन्हें प्रणाम किया। थोड़ी देर बाद उनके साथ वेदान्त-सम्बन्धी चर्चा होने लगी।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—देखो, 'अष्टावक्र-संहिता' में आत्मज्ञान की बातें हैं। आत्मज्ञानी कहते हैं, 'सोऽहम्' अर्थात् मैं ही वह परमात्मा हूँ। यह वेदान्तवादी संन्यासियों का मत है। सांसारिक व्यक्तियों के लिए यह मत ठीक नहीं है। सब कुछ किया जा रहा है, फिर भी 'मैं ही वह निष्क्रिय परमात्मा हूँ' यह कैसे हो सकता है ? वेदान्तवादी कहते हैं कि आत्मा निर्लिप्त है। सुख-दुःख, पाप-पुण्य—ये सब आत्मा का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते; परन्तु देहाभिमानी व्यक्तियों को कष्ट दे सकते हैं। धुआँ दीवार को मैला करता है, पर आकाश का कुछ नहीं कर सकता। कृष्णकिशोर ज्ञानियों की तरह कहा करता था कि मैं 'ख' अर्थात्

आकाशवत् हूँ। वह परम भक्त था; उसके मुँह में यह बात भले ही शोभा दे, पर सब के मुँह में यह शोभा नहीं देती।

"पर 'मैं मुक्त हूँ' यह अभिमान बड़ा अच्छा है। 'मैं मुक्त हूँ' कहते रहने से कहनेवाला मुक्त हो जाता है। और 'मैं बद्ध हूँ' कहते रहने से कहनेवाला बद्ध ही रह जाता है। जो केवल यह कहता है कि 'मैं पापी हूँ' वही सचमुच गिरता है। कहते यही रहना चाहिए--'मैंने उनका नाम लिया है, अब मेरे पाप कहाँ? मेरा बन्धन कैसा?'

"देखो, मेरा चित्त बड़ा अप्रसन्न हो रहा है। हृदय* ने चिट्ठी लिखी है कि वह बहुत बीमार है। यह क्या है---माया या दया?"

मास्टर भी क्या कहें---मौन रह गये।

श्रीरामकृष्ण--माया किसे कहते हैं, पता है? माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, भानजे-भानजी, भतीजे-भतीजी आदि आत्मीयजनों के प्रति प्रेम--यही माया है। और प्राणिमात्र से प्रेम का नाम दया है। मुझे यह क्या हुई---माया या दया! हृदय ने मेरे लिए बहुत-कुछ किया था---बड़ी सेवा की थी---अपने हाथों मेरा मैला तक साफ किया था; पर अन्त में उसने उतना ही कष्ट भी दिया था। वह इतना अधिक कष्ट देता था, कि एक बार मैं बाँध पर जाकर गंगा में डूबकर देहत्याग करने तक को तैयार हो

---

* हृदय श्रीरामकृष्णदेव के भानजे थे और १८८१ ई० तक काली-मन्दिर में रहकर लगभग २३ वर्ष तक इनकी सेवा की थी। उनका जन्मस्थान हुगली जिले के अन्तर्गत सिहोड़ ग्राम में था। श्रीरामकृष्ण का जन्मस्थान कामारपुकुर, यहाँ से दो कोस दूर है। ६२ वर्ष की अवस्था में हृदय का देहावसान हुआ।

गया था। पर फिर भी उसने मेरा बहुत-कुछ किया था। इस समय यदि उसे कुछ रुपये मिल जाते, तो मेरा चित्त स्थिर हो जाता। पर मैं किस बाबू से कहूँ! कौन कहता फिरे!

(२)

'मृण्मयी आधार में चिन्मयी देवी'—विष्णुपुर में मृण्मयी का दर्शन

लगभग दो या तीन बजे होंगे। इसी समय भक्तवीर अधर सेन तथा बलराम आ पहुँचे और भूमिष्ठ हो प्रणाम कर बैठ गये। उन्होंने पूछा, "आपकी तबीयत कैसी है?" श्रीरामकृष्ण ने कहा, "हाँ, शरीर तो अच्छा ही है, पर मेरे मन में थोड़ी व्यथा हो रही है।" इस अवसर पर हृदय की तकलीफ के सम्बन्ध में कोई बात ही नहीं उठायी।

बड़ेबाजार (कलकत्ते) के मल्लिक-घराने की सिंहवाहिनी देवी की चर्चा छिड़ी।

श्रीरामकृष्ण—मैं भी सिंहवाहिनी के दर्शन करने गया था। चासाधोबीपाड़ा के एक मल्लिक के यहाँ देवी विराजमान थीं। मकान टूटा-फूटा था, क्योंकि मालिक गरीब हो गये थे। कहीं कबूतर की विष्ठा पड़ी थी, कहीं काई जम गयी थी, और कहीं छत से सुरखी और रेत ही झर-झरकर गिर रही थी। दूसरे मल्लिक-घरानेवालों के मकान में जो श्री देखी वह श्री इसमें नहीं थी।

(मास्टर से) "अच्छा, इसका क्या अर्थ है, बतलाओ तो सही।"

मास्टर चुप्पी साधे बैठे रहे।

श्रीरामकृष्ण—बात यह है कि जिसके कर्म का जैसा भोग है, उसे वैसा ही भोगना पड़ता है। संस्कार, प्रारब्ध आदि बातें माननी ही पड़ती हैं।

"उस टूटे-फूटे मकान में भी मैंने देखा कि सिंहवाहिनी का

चेहरा जगमगा रहा है ! आविर्भाव मानना ही पड़ता है ।

"मैं एक बार विष्णुपुर गया था । वहाँ राजासाहब के अच्छे अच्छे मन्दिर आदि हैं । वहाँ मृण्मयी नाम की भगवती की एक मूर्ति है । मन्दिर के पास ही कृष्णबाँध, लालबाँध नाम के बड़े बड़े तालाब हैं । तालाब में मुझे उबटन के मसाले की गन्ध मिली ! भला ऐसा क्यों हुआ ? मुझे तो मालूम भी नहीं था कि स्त्रियाँ जब मृण्मयी देवी के दर्शन के लिए जाती हैं तो उन्हें वे वह मसाला चढ़ाती हैं ! तालाब के पास मेरी भाव-समाधि हो गयी । उस समय तक विग्रह नहीं देखा था—भावावेश में मुझे वहीं पर मृण्मयी देवी के दर्शन हुए—कटि तक ।"

भक्त का सुख-दुःख

इसी बीच में दूसरे भक्त आ जुटे और काबुल के विद्रोह तथा लड़ाई की बातें होने लगीं । किसी एक ने कहा कि याकूब खाँ (काबुल के अमीर) राजसिंहासन से उतार दिये गये हैं । श्रीरामकृष्णदेव को सम्बोधन करके उन्होंने कहा कि याकूब खाँ भी ईश्वर का एक बड़ा भक्त है ।

श्रीरामकृष्ण—बात यह है कि सुख-दुःख देह के धर्म हैं । कवि-कंकण-चण्डी में लिखा है कि कालूवीर को कैद की सजा हुई थी और उसकी छाती पर पत्थर रखा गया था । कालूवीर भगवती का वरपुत्र था फिर भी उसे यह दुःख भोगना पड़ा । देहधारण करने से ही सुख-दुःख का भोग करना पड़ता है ।

"श्रीमन्त भी तो बड़ा भक्त था । उसकी माँ खुल्लना को भगवती कितना अधिक चाहती थीं ! पर देखो, उस श्रीमन्त पर कितनी विपत्ति पड़ी ! यहाँ तक कि वह श्मशान में काट डालने के लिए ले जाया गया ।

"एक लकड़हारा परम भक्त था। उसे भगवती के साक्षात् दर्शन हुए, उन्होंने उसे खूब चाहा और उस पर अत्यन्त कृपा की; परन्तु इतने पर भी उसका लकड़हारे का काम नहीं छूटा! उसे पहले की तरह लकड़ी काटकर ही रोटी कमानी पड़ी। कारागार में देवकी को चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् के दर्शन हुए, पर तो भी उनका कारावास नहीं छूटा।"

मास्टर—केवल कारावास ही क्यों? शरीर ही तो सारे अनर्थ का मूल है। उसी को छूट जाना चाहिए था।

श्रीरामकृष्ण—बात यह है कि प्रारब्ध कर्मों का भोग होता ही है। जब तक वह है, तब तक देहधारण करना ही पड़ेगा। एक काने आदमी ने गंगास्नान किया। उसके सारे पाप तो छूट गये, पर कानापन दूर नहीं हुआ! (सभी हँसे।) उसे अपना पूर्वजन्म का फल भोगना था, वही वह भोगता रहा।

मास्टर—जो बाण एक बार छोड़ा जा चुका उस पर फिर किसी तरह का वश नहीं रहता।

श्रीरामकृष्ण—देह का सुख-दुःख चाहे जो कुछ हो, पर भक्त को ज्ञान-भक्ति का ऐश्वर्य रहता है। वह ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होता। देखो, पाण्डवों पर कितनी विपत्ति पड़ी, पर इतने पर भी उनका चैतन्य एक बार भी नष्ट नहीं हुआ। उनकी तरह ज्ञानी, उनकी तरह भक्त कहाँ मिल सकते हैं?

(३)

कप्तान और नरेन्द्र का आगमन

इसी समय नरेन्द्र और विश्वनाथ उपाध्याय आये। विश्वनाथ नेपालराजा के वकील थे—राजप्रतिनिधि थे। श्रीरामकृष्ण इन्हें कप्तान कहा करते थे। नरेन्द्र की आयु लगभग इक्कीस वर्ष की

है—इस समय वे बी. ए. में पढ़ते हैं। बीच बीच में, विशेषतः रविवार को दर्शन के लिए आ जाते हैं।

जब वे प्रणाम करके बैठ गये तो श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्र से गाना गाने के लिए कहा। कमरे के पश्चिम ओर एक तम्बूरा लटका हुआ था। यन्त्रों का सुर मिलाया जाने लगा। सब लोग एकाग्र होकर गवैये की ओर देखने लगे कि कब गाना आरम्भ होता है।

श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्र से)—देख, यह अब वैसा नहीं बजता।

कप्तान—यह पूर्ण होकर बैठा है, इसी से इसमें शब्द नहीं होता! (सब हंसे।) पूर्णकुम्भ है!

श्रीरामकृष्ण (कप्तान से)—पर नारदादि कैसे बोले?

कप्तान—उन्होंने दूसरों के दुःख से कातर होकर उपदेश दिये थे।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, नारद, शुकदेव आदि समाधि के बाद नीचे उतर आये थे। दया के कारण, दूसरों के हित की दृष्टि से उन्होंने उपदेश दिये थे।

नरेन्द्र ने गाना शुरू किया। गाने का आशय इस प्रकार था—"सत्य-शिव-सुन्दर का रूप हृदय-मन्दिर में चमक रहा है। उसे देख-देखकर हम उस रूप के समुद्र में डूब जायेंगे। वह दिन कब होगा? हे नाथ, जब अनन्त ज्ञान के रूप में तुम हमारे हृदय में प्रवेश करोगे, तब हमारा अस्थिर मन निर्वाक् होकर तुम्हारे चरणों में शरण लेगा। आनन्द और अमृतत्व के रूप में जब तुम हमारे हृदयाकाश में उदित होगे, तब चन्द्रोदय में जैसे चकोर उमंग से खेलता फिरता है, वैसे हम भी, नाथ, तुम्हारे प्रकाशित होने पर आनन्द मनायेंगे।" इत्यादि।

'आनन्द और अमृतत्व के रूप में' ये शब्द सुनते ही श्रीरामकृष्ण

गम्भीर समाधि में मग्न हो गये। आप हाथ बाँधे पूर्व की ओर मुँह किये बैठे हैं। देह सरल और निश्चल है। आनन्दमयी के रूपसमुद्र में आप डूब गये हैं। बाह्यज्ञान बिलकुल नहीं है। साँस अत्यन्त मन्द चल रही है। नेत्र पलकहीन हैं। आप चित्रवत् बैठ हैं। मानो इस राज्य को छोड़ कहीं और चले गये हैं।

(४)

सच्चिदानन्द-लाभ का उपाय। ज्ञानी और भक्त में अन्तर

समाधि टूटी। इसी बीच में नरेन्द्र उन्हें समाधिस्थ देखकर कमरे से बाहर पूर्ववाले बरामदे में चले गये हैं। वहाँ हाजरा महाशय एक कम्बल के आसन पर हरिनाम की माला हाथ में लिये बैठे हैं। नरेन्द्र उनसे बातें कर रहे हैं। इधर कमरा दर्शकों से भरा है। समाधि-भंग के बाद श्रीरामकृष्ण ने भक्तों की ओर दृष्टि डाली तो देखा कि नरेन्द्र वहाँ नहीं हैं। तम्बूरा सूना पड़ा है। सब भक्त उनकी ओर उत्सुक होकर देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—आग लगा गया है, अब चाहे वह रहे या न रहे!

(कप्तान आदि से) "चिदानन्द का आरोप करो तो तुम्हें भी आनन्द मिलेगा। चिदानन्द तो है ही,—केवल आवरण और विक्षेप है।* विषय पर आसक्ति जितनी घटेगी, उतनी ही ईश्वर पर रुचि बढ़ेगी।

कप्तान—कलकत्ते के घर की ओर जितना ही बढ़ोगे, वाराणसी से उतनी ही दूर होते जाओगे।

श्रीरामकृष्ण—श्रीमती (राधिका) कृष्ण की ओर जितना बढ़ती

---

* अर्थात् वह ढक गया है और उसकी जगह दूसरी चीज का आभास हो रहा है।

थीं उतनी ही कृष्ण की देहगन्ध उन्हें मिलती जाती थी। मनुष्य जितना ही ईश्वर के पास जाता है उतनी ही उसकी उन पर भाव-भक्ति होती जाती है। नदी जितनी ही समुद्र के समीप होती है उतना ही उसमें ज्वार-भाटा होता है।

"ज्ञानी के भीतर मानो गंगा एक-सी बहती रहती है। उसके लिए सभी स्वप्नवत् है। वह सदा स्व-स्वरूप में स्थित रहता है। पर भक्त की गंगा एक गति से नहीं बहती। भक्त कभी हँसता, कभी रोता है; कभी नाचता और कभी गाता है। भक्त ईश्वर के साथ विलास करना चाहता है—वह कभी तैरता है, कभी डूबता है और कभी फिर ऊपर आता है—जैसे बर्फ का टुकड़ा पानी में कभी ऊपर और कभी नीचे आता-जाता रहता है! (हँसी)

ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं

"ज्ञानी ब्रह्म को जानना चाहता है। भक्त के लिए भगवान्—सर्वशक्तिमान् षड़ैश्वर्यपूर्ण भगवान् हैं। परन्तु वास्तव में ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। जो सच्चिदानन्दमय हैं, वे ही सच्चिदानन्दमयी हैं। जैसे मणि और उसकी ज्योति। मणि की ज्योति कहने से ही मणि का बोध होता है और मणि कहने से ही उसकी ज्योति का। बिना मणि को सोचे उसकी ज्योति की धारणा नहीं हो सकती, वैसे ही बिना मणि की ज्योति को सोचे मणि को भी सोचा नहीं जा सकता।

"एक ही सच्चिदानन्द का शक्ति के भेद से उपाधिभेद होता है। इसलिए उनके विविध रूप होते हैं। 'तारा, वह तो तुम्हीं हो।' जहाँ कहीं कार्य (सृष्टि, स्थिति, प्रलय) हैं वहीं शक्ति है। परन्तु जल स्थिर रहने पर भी जल है और हिलोरें, बुलबुले आदि उठते पर भी जल ही है। सच्चिदानन्द ही आद्याशक्ति

हैं—जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती हैं। जैसे कप्तान जब कोई काम नहीं करते तब भी वही हैं, जब पूजा करते हैं तब भी वही हैं, और जब वे लाटसाहब के पास जाते हैं तब भी वही हैं, केवल उपाधि का भेद है।"

कप्तान—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—मैंने यही बात केशव सेन से कही थी।

कप्तान—केशव सेन भ्रष्टाचार, स्वेच्छाचार हैं; वे बाबू हैं, साधु नहीं।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)—कप्तान मुझे केशव सेन के यहाँ जाने को मना करता है।

कप्तान—महाराज, आप तो जायेंगे ही, भला उस पर मैं क्या करूँ?

श्रीरामकृष्ण (नाराज होकर)—तुम लाटसाहब के पास रुपये के लिए जा सकते हो, और मैं केशव सेन के पास नहीं जा सकता? वह तो ईश्वरचिन्तन करता है, हरि का नाम लेता है। इधर तुम्हीं तो कहते हो, 'ईश्वर ही अपनी माया से जीव और जगत् हुए हैं।'

(५)

ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय

यह कहकर श्रीरामकृष्ण एकाएक कमरे से उत्तर-पूर्ववाले बरामदे में चले गये। कप्तान और अन्य भक्त कमरे में ही बैठे उनकी प्रतीक्षा करने लगे। मास्टर भी उनके साथ बरामदे में आये। बरामदे में नरेन्द्र हाजरा से बातें कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण जानते थे कि हाजरा को शुष्क ज्ञानविचार बड़ा प्यारा है; वे कहा करते हैं, 'जगत् स्वप्नवत् है, पूजा और चढ़ावा आदि सब मन का भ्रम है, केवल अपने यथार्थ रूप की चिन्ता करना ही हमारा लक्ष्य है, और मैं ही वह परमात्मा हूँ—सोऽहम्।'

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)–तुम लोगों की क्या बातचीत हो रही है ?

नरेन्द्र (हँसते हुए)–कितनी लम्बी लम्बी बातें हो रही हैं ।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)–किन्तु शुद्ध ज्ञान और शुद्धा भक्ति एक ही हैं । शुद्ध ज्ञान जहाँ ले जाता है वहीं शुद्धा भक्ति भी ले जाती है । भक्ति का मार्ग बड़ा सरल है ।

नरेन्द्र–'ज्ञानविचार का और प्रयोजन नहीं; माँ, अब मुझे पागल बना दो !' (मास्टर से) देखिये, हैमिल्टन की एक किताब में मैंने पढ़ा—'A learned ignorance is the end of Philosophy and beginning of Religion.'

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–इसका अर्थ क्या है ?

नरेन्द्र–दर्शनशास्त्रों का पठन समाप्त होने पर मनुष्य पण्डित-मूर्ख बन बैठता है; और 'धर्म धर्म' करने लगता है । तब धर्म का आरम्भ होता है ।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)–थैंक यू, थैंक यू (धन्यवाद, धन्य-वाद) । (सब लोग हँसे ।)

(६)

नरेन्द्र के अनेक गुण

थोड़ी देर में सन्ध्या होते देखकर अधिकांश लोग अपने अपने घर लौटे । नरेन्द्र ने भी बिदा ली ।

दिन ढलने लगा । सन्ध्या होने ही वाली है । देवस्थान में चारों ओर बत्तियाँ जलाने का प्रबन्ध होने लगा । कालीमन्दिर और विष्णुमन्दिर के पुजारी गंगाजी में अर्धनिमग्न होकर अन्तर-बाह्य शुद्धि कर रहे हैं—शीघ्र ही आरती करनी होगी तथा देवताओं को रात्रिकालीन नैवेद्य चढ़ाना होगा । दक्षिणेश्वर ग्राम

के निवासी युवकगण बगीचे में टहलने आये हुए हैं––किसी के हाथ में छड़ी है, तो कोई मित्रों के साथ घूम रहा है। वे लोग गंगा के किनारे पुश्ते पर टहल रहे हैं तथा पुष्पों की सुगन्ध से भरे निर्मल सन्ध्या-समीरण का आनन्द लेते हुए श्रावण की गंगा के तरंगमय प्रवाह को देख रहे हैं। उनमें से जो कुछ चिन्तनशील हैं वे पंचवटी की निर्जन भूमि में अकेले टहल रहे हैं। भगवान् श्रीरामकृष्ण भी पश्चिमवाले बरामदे से थोड़ी देर के लिए गंगादर्शन करने लगे।

सन्ध्या हुई। नौकर वत्तियाँ जला गया। दासी ने श्रीराम-कृष्ण के कमरे में दीप जलाकर धूनी दी। बारह शिवमन्दिरों में आरती होते ही विष्णु तथा काली के मन्दिर में आरती होने लगी। घण्टा, घड़ियाल आदि का मधुर गम्भीर नाद उठने लगा—मन्दिर के निकट ही बहती हुई गंगा का कलकलनिनाद तो गूँज ही रहा था।

श्रावण की कृष्णा प्रतिपदा है। थोड़ी ही देर में चाँद निकला। विशाल प्रांगण तथा उद्यान के वृक्ष धीरे धीरे चन्द्रकिरण से आप्लावित हो गये। ज्योत्स्ना के स्पर्श से भागीरथी का जल मानो प्रफुल्लित होकर बह रहा है।

सन्ध्या होते ही श्रीरामकृष्ण जगन्माता को प्रणाम करके तालियाँ बजाते हुए हरिध्वनि करने लगे। कमरे में बहुतसे देव-देवियों की तस्वीरें थी––जैसे ध्रुव और प्रह्लाद की, राजाराम की, कालीमाता की, राधाकृष्ण की––आपने सभी देवताओं को उनके नाम ले-लेकर प्रणाम किया। फिर कहने लगे, 'ब्रह्म-आत्मा-भगवान्, भागवत-भक्त-भगवान्, ब्रह्म-शक्ति, शक्ति-ब्रह्म; वेद-पुराण-तन्त्र; गीता-गायत्री; मैं शरणागत हूँ, शरणागत हूँ; नाहं नाहं (मैं नहीं,

मैं नहीं), तू ही, तू ही; मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो'; इत्यादि।

नामोच्चारण के बाद श्रीरामकृष्ण हाथ जोड़कर जगन्माता का चिन्तन करने लगे। सन्ध्या समय दो-चार भक्त बगीचे में गंगा के किनारे टहल रहे थे। आरती के बाद वे एक-एक करके श्रीरामकृष्ण के कमरे में इकट्ठे होने लगे।

श्रीरामकृष्ण तख्त पर बैठे हैं। मास्टर, अधर, किशोरी आदि नीचे, उनके सामने बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)--नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल ये सब नित्यसिद्ध और ईश्वरकोटि के हैं। इनकी जो शिक्षा होती है वह बिना प्रयोजन के ही होती है। तुम देखते नहीं, नरेन्द्र किसी की 'केयर' (परवाह) नहीं करते ? मेरे साथ वह कप्तान गाड़ी पर जा रहा था। कप्तान ने उसे अच्छी जगह पर बैठने को कहा, परन्तु उसने उस तरफ देखा तक नहीं। वह मेरा ही मुँह नहीं ताकता। फिर जितना जानता है उतना प्रकट नहीं करता---कहीं मैं लोगों से कहता न फिरूँ कि नरेन्द्र इतना विद्वान् है। उसके माया-मोह नहीं हैं---मानो कोई बन्धन ही नहीं है। बड़ा अच्छा आधार है। एक ही आधार में बहुतसे गुण रखता है---गाने-बजाने, लिखने-पढ़ने सब में बहुत प्रवीण है। इधर जितेन्द्रिय भी है---कहता है, विवाह नहीं करूँगा ! नरेन्द्र और भवनाथ इन दोनों में बड़ा मेल है---जैसा स्वामी-स्त्री में होता है। नरेन्द्र यहाँ ज्यादा नहीं आता। यह अच्छा है। ज्यादा आने से मैं विह्वल हो जाता हूँ।

परिच्छेद ५०

दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ

श्रीरामकृष्ण अपनी छोटी खाट पर बैठे मसहरी के भीतर ध्यान कर रहे हैं। रात के सात-आठ बजे होंगे। मास्टर और उनके एक मित्र हरिबाबू जमीन पर बैठे हैं। आज सोमवार, तारीख २० अगस्त १८८३ ई० है।

आजकल हाजरा महाशय यहाँ रहते हैं। राखाल भी प्रायः रहा करते हैं—और कभी कभी अधर के यहाँ रहते हैं। नरेन्द्र, भवनाथ, अधर, बलराम, राम, मनोमोहन, मास्टर आदि प्रायः प्रति सप्ताह आया करते हैं।

हृदय ने श्रीरामकृष्ण की बड़ी सेवा की थी। वे घर पर बीमार हैं, यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बहुत चिन्तित हुए हैं। इसीलिए एक भक्त ने राम चटर्जी के हाथ आज दस रुपये भेजे हैं—हृदय को भेजने के लिए। देने के समय श्रीरामकृष्ण वहाँ उपस्थित नहीं थे। वही भक्त एक लोटा भी लाये हैं। श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा था, "यहाँ के लिए एक लोटा लाना; भक्त लोग पानी पीयेंगे।"

मास्टर के मित्र हरिबाबू को लगभग ग्यारह वर्ष हुए, पत्नी-वियोग हुआ है। फिर उन्होंने विवाह नहीं किया। उनके माता-पिता, भाई-बहन, सभी हैं। उन पर उनका बड़ा स्नेह है, और उनकी सेवा वे करते हैं। उनकी आयु अट्ठाईस-उनतीस वर्ष होगी। भक्तों के आते ही श्रीरामकृष्ण मसहरी से बाहर आये। मास्टर आदि ने उनको भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। मसहरी उठा दी गयी। आप छोटे तख्त पर बैठकर बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–मसहरी के भीतर ध्यान कर रहा था। फिर सोचा कि यह तो केवल एक रूप की कल्पना ही है; इसीलिए फिर अच्छा न लगा। अच्छा होता यदि ईश्वर बिजली की चमक की तरह अपने आपको झट से प्रकट करते। फिर मैंने सोचा, कौन ध्यान करनेवाला है, और ध्यान करूँ ही किसका ?

मास्टर–जी हाँ। आपने कह दिया है कि ईश्वर ही जीव और जगत् आदि सब कुछ हुए हैं। जो ध्यान कर रहा है वह भी तो ईश्वर ही है।

श्रीरामकृष्ण–फिर बिना ईश्वर के कराये तो कुछ होनेवाला नहीं। वे अगर ध्यान करायें, तो ध्यान होगा। इस पर तुम्हारा क्या मत है ?

मास्टर–जी, आप के भीतर 'अहं' का भाव नहीं है, इसीलिए ऐसा प्रतीत हो रहा है। जहाँ 'अहं' नहीं रहता वहाँ ऐसा ही हुआ करता है।

श्रीरामकृष्ण–पर 'मैं दास हूँ, सेवक हूँ'—इतना अहंभाव रहना अच्छा है। जहाँ यह बोध रहता है कि मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ वहाँ 'मैं दास हूँ और तुम प्रभु हो'—यह भाव बहुत अच्छा है। जब सभी कुछ किया जा रहा है, तो सेव्यसेवक-भाव से रहना ही अच्छा है।

मास्टर सदा परब्रह्म के स्वरूप का चिन्तन करते हैं। इसीलिए श्रीरामकृष्ण उनको लक्ष्य करके फिर कह रहे हैं—

"ब्रह्म आकाश की तरह हैं। उनमें कोई विकार नहीं है। जैसे आग के कोई रंग नहीं है। पर हाँ, अपनी शक्ति के द्वारा वे विविध आकार के हुए हैं। सत्त्व, रज, तम—ये तीन गुण शक्ति ही के गुण हैं। आग में यदि सफ़ेद रंग डाल दो, तो वह

सफेद दिखेगी। यदि लाल रंग डाल दो, तो वह लाल दिखेगी। यदि काला रंग डाल दो, तो वह काली दिखेगी। ब्रह्म सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणों से परे हैं। वे यथार्थ में क्या हैं, यह मुँह से नहीं कहा जा सकता। वे वाक्य से परे हैं। 'नेति नेति' (ब्रह्म यह नहीं, वह नहीं) करके विचार करते हुए जो बाकी रह जाता है, और जहाँ आनन्द है, वही ब्रह्म हैं।

"एक लड़की का पति आया है। वह अपने बराबरी के युवकों के साथ बाहरवाले कमरे में बैठा है। इधर वह लड़की और उसकी सहेलियाँ खिड़की से देख रही हैं। सहेलियाँ उसके पति को नहीं पहचानतीं। वे उस लड़की से पूछ रही हैं, 'क्या वह तेरा पति है?' लड़की मुसकराकर कहती है,—'नहीं।' एक दूसरे युवक को दिखलाकर वे पूछती हैं, 'क्या वह तेरा पति है?' वह फिर कहती है—'नहीं।' एक तीसरे युवक को दिखाकर वे फिर पूछती हैं, 'क्या वह तेरा पति है?' वह फिर कहती है—'नहीं।' अन्त में उसके पति की ओर इशारा करके उन्होंने पूछा, 'क्या वह तेरा पति है?' तब उसने 'हाँ' या 'नहीं' कुछ नहीं कहा; केवल मुसकरायी और चुप्पी साध ली! तब सहेलियों ने समझा कि वही इसका पति है। जहाँ ठीक ब्रह्मज्ञान होता है, वहाँ सब चुप हो जाते हैं।

सत्संग। गृहस्थ के कर्तव्य

(मास्टर से) "अच्छा, मैं बकता क्यों हूँ?"

मास्टर—जैसा आपने कहा कि पके हुए घी में अगर कच्ची पूड़ी छोड़ दी जाय, तो फिर आवाज होने लगती है। आप बोलते हैं भक्तों का चैतन्य कराने के लिए।

श्रीरामकृष्ण मास्टर से हाजरा महाशय की चर्चा करते हैं।

श्रीरामकृष्ण—अच्छे मनुष्य का स्वभाव कैसा है, मालूम है ? वह किसी का दुःख नहीं देता—किसी को झमेले में नहीं डालता। किसी-किसी का ऐसा स्वभाव है कि कहीं न्यौता खाने गया हो तो शायद कह दिया—मैं अलग बैठूँगा ! ईश्वर पर यथार्थ भक्ति रहने से ताल के विरुद्ध पैर नहीं पड़ते—मनुष्य किसी को झूठमूठ कष्ट नहीं देता।

"दुष्ट लोगों का संग करना अच्छा नहीं। उनसे अलग रहना पड़ता है। अपने को उनसे बचाकर चलना पड़ता है। (मास्टर से) तुम्हारा क्या मत है ?"

मास्टर—जी, दुष्टों के संग रहने से मन बहुत गिर जाता है। हाँ, जैसा आपने कहा, वीरों की बात दूसरी है।

श्रीरामकृष्ण—कैसे ?

मास्टर—कम आग में थोड़ीसी लकड़ी डाल दो तो वह बुझ जाती है। पर धधकती हुई आग में केले का पेड़ भी झोंक देने से आग का कुछ नहीं बिगड़ता। वह पेड़ ही जलकर भस्म हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण मास्टर के मित्र हरिबाबू की बात पूछ रहे हैं।

मास्टर—ये आपके दर्शन करने आये हैं। ये बहुत दिनों से विपत्नीक हैं।

श्रीरामकृष्ण (हरिबाबू से)—तुम क्या काम करते हो ?

मास्टर ने उनकी ओर से कहा, "ऐसा कुछ नहीं करते, पर अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि की बड़ी सेवा करते हैं।"

श्रीरामकृष्ण (हंसते हुए)—यह क्या है ! तुम तो 'कुम्हड़ा काटनेवाले जेठजी' बने ! तुम न संसारी हुए, न हरिभक्त। यह अच्छा नहीं। किसी किसी परिवार में एक पुरुष होता है, जो रातदिन लड़के-बच्चों से घिरा रहता है। वह बाहरवाले कमरे में

बैठकर खाली तम्बाकू पिया करता है। निकम्मा ही बैठा रहता है। हाँ, कभी कभी अन्दर जाकर कुम्हड़ा काट देता है! स्त्रियों के लिए कुम्हड़ा काटना मना है। इसीलिए वे लड़कों से कहती हैं, 'जेठजी को यहाँ बुला लाओ, वे कुम्हड़ा काट देंगे।' तब वह कुम्हड़े के दो टुकड़े कर देता है! बस, यहीं तक मर्द का व्यवहार है। इसलिए उसका नाम 'कुम्हड़ा काटनेवाले जेठजी' पड़ा है।

"तुम यह भी करो, वह भी करो। ईश्वर के चरणकमलों में मन रखकर संसार का कामकाज करो। और जब अकेले रहो तब भक्तिशास्त्र पढ़ा करो—जैसे श्रीमद्भागवत या चैतन्यचरितामृत आदि।"

रात के लगभग दस बजे हैं। अभी कालीमन्दिर बन्द नहीं हुआ है। मास्टर ने राम चटर्जी के साथ जाकर पहले राधाकान्त के मन्दिर में और फिर कालीमाता के मन्दिर में प्रणाम किया। चाँद निकला था। श्रावण की कृष्णा द्वितीया थी। आँगन और मन्दिरों के शीर्ष बड़े सुन्दर दिखते थे।

श्रीरामकृष्ण के कमरे में लौटकर मास्टर ने देखा कि वे भोजन करने बैठ रहे हैं। वे दक्षिण की ओर मुँह करके बैठे। थोड़ा सूजी का पायस और एक-दो पतली पूड़ियाँ—बस यही भोजन था। थोड़ी देर बाद मास्टर और उनके मित्र ने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके बिदा ली। वे उसी दिन कलकत्ते लौट जायेंगे।

परिच्छेद ५१

गुरुशिष्य-संवाद--गुह्य कथा

(१)

ब्रह्मज्ञान और अभेदबुद्धि । अवतार क्यों होते हैं

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में उस छोटे तख्त पर बैठे मणि से गुह्य बातें कर रहे हैं। मणि जमीन पर बैठे हैं। आज शुक्रवार, ७ सितम्बर १८८३ ई० है। भाद्र की शुक्ला षष्ठी तिथि है। रात के लगभग साढ़े सात बजे हैं।

श्रीरामकृष्ण--उस दिन कलकत्ते गया। गाड़ी पर जाते जाते देखा, सभी निम्नदृष्टि हैं। सभी को अपने पेट की चिन्ता लगी हुई थी। सभी अपना पेट पालने के लिए दौड़ रहे थे। सभी का मन कामिनी-कांचन पर था। हाँ, दो-एक को देखा कि वे ऊर्ध्व-दृष्टि हैं---ईश्वर की ओर उनका मन है।

मणि--आजकल पेट की चिन्ता और भी बढ़ गयी है। अंग्रेजों का अनुकरण करने में लगे हुए लोगों का मन विलास की ओर अधिक मुड़ गया है। इसीलिए अभावों की वृद्धि हुई है।

श्रीरामकृष्ण--ईश्वर के विषय में उनका कैसा मत है?

मणि--वे निराकारवादी हैं।

श्रीरामकृष्ण--हमारे यहाँ भी वह मत है।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। अब श्रीरामकृष्ण अपनी ब्रह्म-ज्ञानदशा का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण--मैंने एक दिन देखा कि एक ही चैतन्य सर्वत्र है---कहीं भेद नहीं है। पहले (ईश्वर ने) दिखाया कि बहुतसे मनुष्य और जीव-जन्तु हैं---उनमें बाबू लोग हैं, अंग्रेज और

मुसलमान हैं, मैं स्वयं हूँ, मेहतर है, कुत्ता है, फिर एक दाढ़ीवाला मुसलमान है—उसके हाथ में एक छोटी थाली है, जिसमें भात है। उस छोटी थाली का भात वह सब के मुँह में थोड़ा थोड़ा दे गया। मैंने भी थोड़ासा चखा।

"एक दूसरे दिन दिखाया कि विष्ठा-मूत्र, अन्न-व्यंजन, तरह तरह की खाने की चीजें पड़ी हुई हैं। एकाएक भीतर से जीवात्मा ने निकलकर आग की लौ की तरह सब चीजों को चखा,—मानो जीभ हिलाते हुए सभी चीजों का एक बार स्वाद ले लिया, विष्ठा, मूत्र, सब कुछ चखा। इससे (ईश्वर ने) दिखा दिया कि सब एक हैं—अभेद हैं।

"फिर एक बार दिखाया कि यहाँ के* अनेक भक्त हैं—पार्षद—अपने जन। ज्योंही आरती का शंख और घण्टा बज उठता, मैं कोठी की छत पर चढ़कर व्याकुल हो चिल्लाकर कहता, 'अरे, तुम लोग कौन कहाँ हो? आओ, तुम्हें देखने के लिए मेरे प्राण छटपटा रहे हैं।'—

"अच्छा, मेरे इन दर्शनों के बारे में तुम्हें क्या मालूम होता है?"

मणि—आप ईश्वर के विलास का स्थान हैं। मैंने यही समझा है कि आप यन्त्र हैं ओर वे यन्त्री (चलानेवाले) हैं। दूसरों को

---

* गुरुभाव से श्रीरामकृष्ण अपने लिए 'मैं' या 'हम' शब्द का प्रयोग साधारण दशा में कदाचित् करते थे। किसी और ढंग से वह भाव वे सूचित करते थे। जैसे—'मेरे पास' न कहकर 'यहाँ' कहते थे। 'मेरा' न कहकर 'यहाँ का' अथवा अपना शरीर दिखाकर 'इसका' कहते थे। हाँ, जगन्माता के सन्तान-भाव से वे 'मैं' या 'हम' शब्द का व्यवहार करते थे। भावावस्था में गुरुभाव के अर्थ में भी इन शब्दों का प्रयोग वे करते थे।

उन्होंने मानो साँचे में डालकर तैयार किया है, परन्तु आपको स्वयं को हाथों से गढ़ा है।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, हाजरा कहता है कि ईश्वर के दर्शन के बाद षड़ैश्वर्य मिलते हैं।

मणि—जो शुद्धा भक्ति चाहते हैं वे ईश्वर के ऐश्वर्य की इच्छा नहीं करते।

श्रीरामकृष्ण—शायद हाजरा पूर्वजन्म में गरीब था, इसीलिए उसे ऐश्वर्य देखने की उतनी तीव्र इच्छा है। हाल में हाजरा ने कहा है—'क्या मैं रसोइया ब्राह्मणों से बातचीत करता हूँ!' फिर कहता है—'मैं खजांची से कहकर तुम्हें वे सब चीजें दिला दूँगा!' (मणि का उच्च हास्य)

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—वह ये सब बातें कहता रहता है और मैं चुप रह जाता हूँ।

मणि—आप तो बहुत बार कह चुके हैं कि शुद्ध भक्त ऐश्वर्य देखना नहीं चाहता। वह ईश्वर को गोपाल रूप में देखना चाहता है। पहले ईश्वर चुम्बक-पत्थर और भक्त सुई होते हैं; फिर तो भक्त ही चुम्बक-पत्थर और ईश्वर सुई बन जाते हैं—अर्थात् भक्त के पास ईश्वर छोटे हो जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण—जैसे ठीक उदय के समय का सूर्य। अनायास ही देखा जा सकता है, वह आँखों को झुलसाता नहीं, बल्कि उनको तृप्त कर देता है। भक्त के लिए भगवान् का भाव कोमल हो जाता है—वे अपना ऐश्वर्य छोड़ भक्त के पास आ जाते हैं।

फिर दोनों चुप रहे।

मणि—मैं सोचता हूँ, क्यों ये दर्शन सत्य नहीं होंगे? यदि ये मिथ्या हुए तो यह संसार और भी मिथ्या ठहरा, क्योंकि देखने

का साधन, मन तो एक ही है। फिर वे दर्शन शुद्ध मन से होते हैं और सांसारिक पदार्थं इसी अशुद्ध मन से देखे जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण—इस बार देखता हूं कि तुम्हें खूब अनित्य का बोध हुआ है। अच्छा, कहो, हाजरा कैसा है ?

मणि—वह है एक तरह का आदमी। (श्रीरामकृष्ण हँसे।)

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, मुझसे तथा किसी और से कुछ मिलता-जुलता है ?

मणि—जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण—किसी परमहंस से ?

मणि—जी नहीं। आपकी तुलना नहीं है।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—तुमने 'अनचीन्हा पेड़' सुना है ?

मणि—जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण—वह है एक प्रकार का पेड़ जिसे कोई देखकर पहचान नहीं सकता।

मणि—जी, आपको भी पहचानना कठिन है। आपको जो जितना समझेगा वह उतना ही उन्नत होगा।

मणि शान्त होकर विचार कर रहे हैं,—श्रीरामकृष्ण ने जो 'उदय के समय का सूर्य', 'अनचीन्हा पेड़' आदि बातें कहीं, क्या यही अवतार के लक्षण हैं ? क्या इसी का नाम नरलीला है ? क्या श्रीरामकृष्ण अवतार हैं ? क्या इसीलिए वे पार्षदों को देखने के लिए व्याकुल होकर कोठी की छत पर चढ़कर पुकारते थे कि अरे, तुम लोग कौन कहाँ हो, आओ !

परिच्छेद ५२

दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ

(१)

सच्ची चालाकी कौनसी है ?

श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिरवाले अपने कमरे में प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। आपका भोजन हो चुका है, दिन के एक या दो बजे होंगे।

आज रविवार है, ९ सितम्बर १८८३, भादों की शुक्ला सप्तमी। कमरे में राखाल, मास्टर और रतन बैठे हुए हैं। रामलाल, राम चटर्जी और हाजरा भी एक-एक करके आते और आसन ग्रहण करते हैं। रतन यदु मल्लिक के बगीचे की देखभाल करते हैं। वे श्रीरामकृष्ण की भक्ति करते हैं, तथा कभी कभी उनके दर्शन कर जाया करते हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हीं से बातचीत कर रहे हैं। रतन कह रहे हैं, यदु मल्लिक के कलकत्तेवाले मकान में नीलकण्ठ का नाटक होगा।

रतन—आपको जाना होगा। उन लोगों ने कहला भेजा है अमुक दिन नाटक होगा।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा है, मेरी भी जाने की इच्छा है। अहा! नीलकण्ठ कैसे भक्तिपूर्वक गाता है!

एक भक्त—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—गाना गाते हुए वह आँसुओं से तर हो जाता है। (रतन से) सोचता हूँ रात को वहीं रह जाऊँगा।

रतन—अच्छा तो है।

राम चटर्जी आदि ने खड़ाऊँ की चोरीवाली बात पूछी।

रतन—यदुबाबू के गृहदेवता की सोने की खड़ाऊँ चोरी गयी है। इसके कारण घर में बड़ा हो-हल्ला मचा हुआ है। थाली चलायी जायगी।* सब बैठे रहेंगे, जिसने लिया है, उसकी ओर थाली चली जायगी!

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—किस तरह थाली चलती है?—अपने आप चलती है?

रतन—नहीं, हाथ से दबायी हुई रहती है।

भक्त—हाथ ही की कोई कारीगरी होगी—हाथ की चालाकी।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—जिस चालाकी से लोग ईश्वर को पाते हैं, वही चालाकी चालाकी है। 'सा चातुरी चातुरी!'

(२)

तान्त्रिक साधना और श्रीरामकृष्ण का सन्तान-भाव

बातचीत हो रही है, इसी समय कुछ बंगाली सज्जन कमरे में आये और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके उन्होंने आसन ग्रहण किया। उनमें एक व्यक्ति श्रीरामकृष्ण के पहले के परिचित हैं। ये लोग तन्त्र के मत से साधना करते हैं—पंच-मकार साधन। श्रीरामकृष्ण अन्तर्यामी हैं, उनका सम्पूर्ण भाव समझ गये। उनमें एक आदमी धर्म के नाम से पापाचरण भी करता है, यह बात श्रीरामकृष्ण सुन चुके हैं। उसने किसी बड़े आदमी के भाई की विधवा के साथ अवैध प्रेम कर लिया है और धर्म का नाम लेकर उसके साथ पंच-मकार की साधना करता है, यह भी श्रीरामकृष्ण सुन चुके हैं।

श्रीरामकृष्ण का सन्तान-भाव है। वे हरएक नारी को माता

---

* यह एक तरह का टोना है।

समझते हैं—वेश्या को भी; और स्त्रियों को भगवती का एक-एक रूप समझते हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—अचलानन्द कहाँ है ? उस दिन कालीकिंकर आया था——और एक जन था। (मास्टर आदि से) अचलानन्द और उसके शिष्यों का और ही भाव है। मेरा सन्तान-भाव है।

आये हुए बाबू लोग चुपचाप बैठे हुए हैं, कुछ बोलते नहीं।

श्रीरामकृष्ण—मेरा सन्तान-भाव है। अचलानन्द यहाँ आकर कभी कभी रहता था। खूब शराब पीता था। मेरा सन्तान-भाव है, यह सुनकर अन्त में उसने हठ पकड़ा। कहने लगा——'स्त्री को लेकर वीरभाव की साधना तुम क्यों नहीं मानोगे ? शिव की रेख भी नहीं मानोगे ? स्वयं शिवजी ने तन्त्र लिखा है। उसमें सब भावों की साधना है, वीरभाव की भी है।'

"मैंने कहा, 'मैं क्या जानूँ जी ! मुझे वह सब अच्छा नहीं लगता——मेरा सन्तान-भाव है।'

"अचलानन्द अपने बच्चों की खबर नहीं लेता था। मुझसे कहता था, 'बच्चों को ईश्वर देखेंगे——यह सब ईश्वर की इच्छा है।' मैं सुनकर चुप हो जाता था। बात यह है कि लड़कों की देखरेख कौन करे ? लड़के-बाले, घर-द्वार सब छोड़ दिया यह कहीं रुपये कमाने का साधन न बन बैठ, क्योंकि, लोग सोचेंगे, इसने तो सब कुछ त्याग कर दिया है, और इस तरह बहुतसा धन देने लगेंगे।

"मुकदमा जीतूँगा, खूब धन होगा, मुकदमा जिता दूँगा, जायदाद दिला दूँगा, क्या इसीलिए साधना है ? ये सब बड़ी ही नीच प्रकृति की बातें हैं।

"रुपये से भोजन-पान होता है, रहने की जगह होती है,

देवताओं की सेवा होती है, साधुओं का सत्कार होता है, सामने कोई गरीब आ गया तो उसका उपकार हो जाता है, ये सब रुपये के सदुपयोग हैं। रुपये ऐश्वर्य का भोग करने के लिए नहीं हैं, न देहसुख के लिए हैं, न लोकसम्मान के लिए।

"विभूतियों के लिए लोग तन्त्र के मत से पंच-मकार की साधना करते हैं। परन्तु उनकी बुद्धि कितनी हीन है! कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—भाई! अष्ट सिद्धियों में किसी एक के रहने पर तुम्हारी शक्ति तो थोड़ी बढ़ सकती है, परन्तु तुम मुझे न पाओगे। विभूति के रहते माया दूर नहीं होती। माया से फिर अहंकार होता है। कैसी हीन बुद्धि है! घृणास्पद स्थान से तीन घूंट कारणवारि (शराब) पीकर लाभ क्या हुआ?—मुकदमा जीतना।

श्रीरामकृष्ण तथा हठयोग

"शरीर, रुपया, यह सब अनित्य है। इसके लिए इतना हठ क्यों? हठयोगियों की दशा देखो न! शरीर किसी तरह दीर्घायु हो, बस इसी ओर ध्यान लगा रहता हैं। ईश्वर की ओर लक्ष्य नहीं है। नेति-धौति, बस पेट साफ कर रहे हैं! नल लगाकर दूध ग्रहण कर रहे हैं।

"एक सुनार था। उसकी जीभ उलटकर तालू पर चढ़ गयी थी। तब जड़-समाधि की तरह उसकी अवस्था हो गयी। फिर वह हिलता-डुलता न था। बहुत दिनों तक उसी अवस्था में रहा। लोग आकर उसकी पूजा करते थे। कुछ साल बाद एकाएक उसकी जीभ सीधी हो गयी। तब उसे पहले की तरह चेतना हो गयी। फिर वही सुनार का काम करने लगा! (सब हँसते हैं।)

"वे सब शरीर के कर्म हैं। उससे प्रायः ईश्वर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। शालग्राम का भाई—(उसका लड़का

वंशलोचन का व्यवसाय करता था)---बयासी तरह के आसन जानता था। वह योग-समाधि की भी बहुतसी बातें कहता था। परन्तु भीतर ही भीतर उसका कामिनी-कांचन में मन था। दीवान मदन भट्ट की कुछ हजार रुपयों की एक नोट पड़ी थी, रुपयों की लालच से वह उसे झट निगल गया। बाद में फिर किसी तर निकाल लेता। परन्तु नोट उससे वसूल हो गयी। अन्त में तीन साल के लिए वह जेल भेजा गया! मैं सरल भाव से सोचता था, शायद उसकी आध्यात्मिक उन्नति बहुत हो चुकी है, सच कहता हूँ---रामदुहाई!

श्रीरामकृष्ण तथा कामिनी-कांचन

"यहाँ सींती का महेन्द्र पाल पाँच रुपये दे गया था, रामलाल के पास। उसके चले जाने के बाद रामलाल ने मुझसे कहा। मैंने पूछा, क्यों दिया? रामलाल ने कहा, यहाँ के खर्च के लिए दिया है। तब याद आया, दूधवाले को कुछ देना है; हो न हो, इन्हीं रुपयों से कुछ दे दिया जाय। परन्तु यह क्या आश्चर्य! मैं रात को सोया हुआ था, एकाएक उठ पड़ा। छाती के भीतर मानो कोई बिल्ली की तरह खरोंचने लगा। तब रामलाल के पास जाकर मैंने कहा, किसे दिया है?---तेरी चाची को? रामलाल ने कहा, नहीं, आपके लिए। तब मैंने कहा, नहीं, रुपये जाकर अभी वापस दे आ, नहीं तो मुझे शान्ति न होगी।

"रामलाल सुबह को उठकर जब रुपये वापस दे आया, तब तबीयत ठीक हुई!

"उस देश की भगवतिया तेलिन कर्ताभजा दल की है। वे सब औरत लेकर साधना किया करते हैं। एक पुरुष के हुए बिना स्त्री की साधना होगी ही नहीं। उस पुरुष को 'रागकृष्ण' कहते हैं।

तीन बार स्त्री से पूछा जाता है, तूने कृष्ण को पाया ? वह स्त्री तीनों बार कहती है, पाया ।

"भगवतिया शूद्र है, तेलिन है, परन्तु सब उसके पास जाकर उसके पैरों की धूल लेते थे, उसे नमस्कार करते थे । तब जमींदार को इस पर बड़ा क्रोध आ गया । मैंने उसे देखा है । जमींदार ने उसके पास एक बदमाश भेज दिया । उससे वह फँस गयी और उसके गर्भ रहा ।

"एक दिन एक बड़ा आदमी आया था । मुझसे कहा, 'महाराज, इस मुकदमे में ऐसा कर दीजिये कि मैं जीत जाऊँ । आपका नाम सुनकर आया हूँ ।' मैंने कहा, 'भाई, वह मैं नहीं हूँ । तुम्हारी भूल हुई । वह अचलानन्द है ।'

"ईश्वर पर जिसकी सच्ची भक्ति है, वह शरीर, रुपया आदि की थोड़ी भी परवाह नहीं करता । वह सोचता है, देहसुख के लिए, लोकसम्मान के लिए, रुपयों के लिए, क्या जप और तप करूं ? ये सब अनित्य हैं, चार दिन के लिए हैं ।"

आये हुए सब बाबू लोग उठे । उन्होंने नमस्कार करके कहा, 'तो हम चलें ।' वे चले गये । श्रीरामकृष्ण मुसकरा रहे हैं और मास्टर से कह रहे हैं—"चोर धर्म की बात नहीं सुनते ।" (सब हँसते हैं ।)

(४)

विश्वास चाहिए

श्रीरामकृष्ण (मणि से सहास्य)—अच्छा, नरेन्द्र कैसा है ?

मणि—जी, बहुत अच्छा है ।

श्रीरामकृष्ण—देखो, उसकी जैसी विद्या है, वैसी ही बुद्धि भी है । और गाना-बजाना भी जानता है । इधर जितेन्द्रिय भी है; कहता है, विवाह न करूंगा ।

मणि—आपने कहा है, जो पाप पाप सोचता रहता है, वह पापी हो जाता है; फिर वह उठ नहीं सकता । मैं ईश्वर की सन्तान हूँ, यह विश्वास यदि हुआ तो बहुत शीघ्रता से उन्नति होती है ।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, विश्वास चाहिए ।

"कृष्णकिशोर का कैसा विश्वास है ! कहता था, 'मैं एक बार उनका नाम ले चुका, अब मुझमें पाप कहाँ रह गया? मैं शुद्ध और निर्मल हो गया हूँ ।' हलधारी ने कहा था, 'अजामिल फिर नारायण की तपस्या करने गया था; तपस्या न करने पर क्या उनकी कृपा होती है ?—केवल एक बार नारायण कहने से क्या होगा ?' यह बात सुनकर कृष्णकिशोर को इतना क्रोध आया कि बग़ीचे में फूल तोड़ने आया था—उसने हलधारी की ओर फिर एक दृष्टि भी नहीं फेरी ।

"हलधारी का बाप बड़ा भक्त था । स्नान करते हुए कमर-भर पानी में जब वह मन्त्र पढ़ता था,—'रक्तवर्णं चतुर्मुखम्' आदि कहते हुए ध्यान करता था,—तब उसकी आँखों से अनर्गल प्रेमाश्रु बह चलते थे ।

"एक दिन एँड़ेदा के घाट पर एक साधु आया । बात हुई, हम लोग भी देखने जायेंगे । हलधारी ने कहा, 'उस पंचभूतों के गिलाफ को देखकर क्या होगा ?' इसके बाद कृष्णकिशोर ने यह बात सुनकर कहा था, 'क्या ! साधु के दर्शन से क्या होगा ऐसी बात भी उसके मुँह से निकली ! जो लोग कृष्ण का नाम लेते हैं या रामनाम का जप करते हैं, उनकी देह चिन्मय होती है और वे सब चिन्मय देखते हैं—चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम !' उसने कहा था, 'एक बार कृष्ण या राम का नाम लेने पर सौ बार के सन्ध्या करने का फल होता है ।' जब उसके एक लड़के की मृत्यु

होने लगी तब मरते समय राम का नाम लेकर उसने देह छोड़ी थी। कृष्णकिशोर कहता था, 'उसने राम का नाम लिया है, उसे अब क्या चिन्ता है?' परन्तु कभी कभी रो पड़ता था। पुत्र का शोक!

"वृन्दावन में प्यास लगी थी। मोची से उसने कहा, 'तू शिव का नाम ले।' उसने शिव का नाम लेकर पानी भर दिया—उस तरह का आचारी ब्राह्मण होकर भी उसने वह पानी पी लिया! कितना बड़ा विश्वास है!

"विश्वास नहीं है, और पूजा, जप, सन्ध्यादि कर्म करता है; इससे कुछ नहीं होगा! क्यों जी?"

मास्टर—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—गंगा के घाट में नहाने के लिए लोग आते हैं। मैंने देखा है, उस समय दुनिया भर की बातें करते हैं। किसी की विधवा बुआ कह रही हैं—"बहू, मेरे विना रहे दुर्गा-पूजा नहीं होती। मैं न रहूँ तो 'श्री'मूर्ति भी सुडौल न हो! घर में शादी-ब्याह कुछ हुआ तो सब काम मुझे ही करना पड़ता है, नहीं तो अधूरा रह जाय। फूलशय्या का बन्दोबस्त, कत्थे के बगीचे† की तैयारी सब मैं ही करती हूँ।"

मणि—जी, इनका भी क्या दोष—क्या लेकर रहें!

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—छत पर ठाकुरजी के लिए घर बनाया है। नारायण की पूजा हो रही है। पूजा का नैवेद्य, चन्दन यह सब तैयार किया जा रहा है। परन्तु ईश्वर की बात कहीं एक भी नहीं होती। 'क्या पकाना चाहिए,—आज बाजार में कोई अच्छी चीज नहीं मिली,—कल अमुक व्यंजन अच्छा बना

† ये सब बंगाल के विवाह के लोकाचार हैं।

था,—वह लड़का मेरा चचेरा भाई है,—क्यों रे, तेरी वह नौकरी है न ?—और मैं अब कैसी हूँ !—मेरा हरि चल बसा !' बस यही सब बातें होती हैं !

"देखो भला, ठाकुरजी की पूजा के समय ये सब दुनिया भर की बातें !"

मणि—जी, अधिक संख्या ऐसे ही लोगों की है । आप जैसा कहते हैं, ईश्वर पर जिसका अनुराग है, उसे अधिक दिनों तक पूजा और सन्ध्या थोड़े ही करनी पड़ती है !

(३)

चिन्मय रूप । ज्ञान और विज्ञान । 'ईश्वर ही वस्तु हैं'

श्रीरामकृष्ण एकान्त में मणि के साथ बातचीत कर रहे हैं ।

मणि—अच्छा, वही अगर सब कुछ हुए हैं, तो इस तरह के अनेक भाव क्यों दीख पड़ते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—विभु के स्वरूप से वे सर्वभूतों में हैं, परन्तु शक्ति की विशेषता है । कहीं तो उनकी विद्याशक्ति है और कहीं अविद्याशक्ति; कहीं ज्यादा शक्ति है और कहीं कम । देखो न, आदमियों के भीतर ठग-चोर भी हैं और बाघ जैसे भयानक प्रकृतिवाले भी हैं । मै कहता हूँ, ठगनारायण हैं, बाघनारायण हैं ।

मणि (सहास्य)—जी, उन्हें तो दूर ही से नमस्कार करना चाहिए । बाघनारायण के पास जाकर अगर कोई उन्हें भर बाँह भेंटने लगे, तब तो वे उसे कलेवा ही कर जायें ।

श्रीरामकृष्ण—वे और उनकी शक्ति—ब्रह्म और शक्ति—इसके सिवाय और कुछ नहीं है । नारद ने रामचन्द्रजी से स्तव करते हुए कहा—हे राम, तुम्हीं शिव हो, सीता भगवती हैं; तुम ब्रह्मा हो, सीता ब्रह्माणी हैं; तुम इन्द्र हो, सीता इन्द्राणी हैं; तुम

नारायण हो, सीता लक्ष्मी; पुरुषवाचक जो कुछ हैं, सब तुम्हीं हो, स्त्रीवाचक जो कुछ है, सब सीता।

मणि—और चिन्मय रूप?

श्रीरामकृष्ण कुछ देर बाद विचार करने लगे। फिर धीमे स्वर में कहा, "वह किस तरह है बताऊँ—जैसे पानी का...। ये सब बातें साधना करने पर समझ में आती हैं।

"रूप पर विश्वास करना। जब ब्रह्मज्ञान होता है, अभेदता तब होती है। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि को सोचने पर साथ ही उसकी दाहिका शक्ति को भी सोचना पड़ता है; और दाहिका शक्ति को सोचने पर अग्नि को भी सोचना पड़ता है; जैसे दूध और दूध की धवलता, जल और उसकी हिमशक्ति।

"परन्तु ब्रह्मज्ञान के बाद भी अवस्था है। ज्ञान के बाद विज्ञान है। जिसे ज्ञान है, जिसे बोध हो गया, उसमें अज्ञान भी है। शत पुत्रों के शोक से वशिष्ठ को भी रोना पड़ा था। लक्ष्मण के पूछने पर राम ने कहा, भाई, ज्ञान और अज्ञान के पार जाओ; जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। पैर में अगर काँटा चुभ जाय, तो एक दूसरा काँटा लेकर वह निकाल दिया जाता है, फिर उसके साथ दूसरा काँटा भी फेंक दिया जाता है।

मणि—क्या अज्ञान और ज्ञान दोनों फेंक दिये जाते हैं?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, इसीलिए विज्ञान की आवश्यकता है।

"देखो न, जिसे उजाले का ज्ञान है, उसे अँधेरे का भी है; जिसे सुख का बोध है, उसे दुःख का भी है; जिसे पुण्य का विचार है, उसे पाप का भी है; जिसे भले का स्मरण है, उसे बुरे का भी है; जिसे शुचिता का अनुभव है, उसे अशुचिता का भी है; जिसे

'अहं' का ध्यान है, उसे 'तुम' का भी है!

"विज्ञान——अर्थात् उन्हें विशेष रूप से जानना। लकड़ी में आग है, इस बोध——इस विश्वास——का नाम है ज्ञान, और उस आग से खाना पकाना, खाना खाकर हृष्ट-पुष्ट होना, इसका नाम है विज्ञान। ईश्वर हैं, हृदय में यह बोध होना इसका नाम है ज्ञान और उनके साथ वार्तालाप, उन्हें लेकर आनन्द करना——चाहे जिस भाव से हो, दास्य या सख्य या वात्सल्य या मधुर से——इसका नाम है विज्ञान। जीव और यह प्रपंच वे ही हुए हैं, इसके दर्शन करने का नाम है विज्ञान। एक विशेष मत के अनुसार कहा जाता है कि दर्शन हो नहीं सकते, कौन किसके दर्शन करे? वह तो अपने ही स्वरूप के दर्शन करता है। कालेपानी में जहाज जब चला जाता है, तब लौट नहीं सकता, लौटकर खबर नहीं दे सकता।"

मणि–जैसा आप कहते हैं, मानूमेण्ट के ऊपर चढ़ जाने पर फिर नीचे की खबर नहीं रहती कि गाड़ी, घोड़े, मेम, साहब, घर-द्वार, दूकानें, आफिस कहाँ हैं।

श्रीरामकृष्ण–अच्छा, आजकल कालीमन्दिर मैं नहीं जाया करता, कुछ अपराध तो न होगा? नरेन्द्र कहता था, ये अब भी कालीमन्दिर जाया करते हैं?

मणि–जी, आपकी नयी नयी अवस्थाएँ हुआ करती हैं। आपका भला अपराध क्या है!

श्रीरामकृष्ण–अच्छा, हृदय के लिए उन लोगों ने सेन से कहा था, 'हृदय बहुत बीमार है, उसके लिए आप दो धोतियाँ और दो कमीज लेते आइयेगा, हम लोग उसके गाँव में भेज देंगे।' सेन बस दो ही रुपये लाया! यह भला क्या है? इतना धन है और यह दान! कहो जी!

मणि—जी, मेरी समझ में तो यह आता है कि जिसे ईश्वर की जिज्ञासा है, ज्ञानलाभ जिसका उद्देश्य है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु।

परिच्छेद ५३

अधर के मकान पर ईशान आदि भक्तों के स१ में

(१)

बालक का विश्वास। अछूत जाति और शंकराचार्य।

साधु का हृदय

श्रीरामकृष्ण ने कलकत्ते में अधर के मकान पर शुभागमन किया है। आप अधर के बैठकघर में बैठे हैं। दिन के तीसरे पहर का समय है। राखाल, अधर, मास्टर, ईशान आदि तथा अनेक पड़ोसी भी उपस्थित हैं।

श्री ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय को श्रीरामकृष्ण प्यार करते थे। वे अकाउण्टेण्ट जनरल के आफिस में सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। पेन्शन लेने के बाद वे दान-ध्यान, धर्म-कर्म करते रहते थे और बीच बीच में श्रीरामकृष्ण का दर्शन करते थे। मछुआबाजार स्ट्रीट में उनके मकान पर श्रीरामकृष्ण ने एक दिन आकर नरेन्द्र आदि भक्तों के साथ भोजन किया था और लगभग पूरे दिन रहे थे। उस उपलक्ष्य में ईशान ने अनेक लोगों को भी आमन्त्रित किया था।

श्री नरेन्द्र आनेवाले थे, परन्तु आ न सके। ईशान पेन्शन लेने के बाद श्रीरामकृष्ण के पास दक्षिणेश्वर में सर्वदा जाया करते हैं, और भाटपाड़ा में गंगातट पर निर्जन में बीच बीच में ईश्वर-चिन्तन करते हैं। इस समय उनके मन में भाटपाड़ा में गायत्री का पुरश्चरण करने की इच्छा थी।

आज शनिवार, २२ सितम्बर १८८३ ई० है।

श्रीरामकृष्ण (ईशान के प्रति)—अपनी वह कहानी कहो तो— बालक ने पत्र भेजा था।

ईशान (हँसकर)—एक बालक ने सुना कि ईश्वर ने हमें पैदा किया है। इसलिए उसने अपनी प्रार्थना जताने के लिए ईश्वर के नाम पर एक पत्र लिखकर लेटर बक्स में डाल दिया। पता लिखा था—स्वर्ग ! (सभी हँसे।)

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—देखा ! इसी बालक की तरह विश्वास चाहिए।* तब होता है। (ईशान के प्रति) और वह कर्मत्याग की कहानी सुनाओ तो।

ईशान—भगवान् की प्राप्ति होने पर सन्ध्या आदि कर्मों का त्याग हो जाता है। गंगा के तट पर सभी सन्ध्योपासना कर रहे हैं, एक व्यक्ति नहीं कर रहा है। उससे पूछने पर उसने कहा, "मुझे अशौच हुआ है, सन्ध्योपासना करने की मनाई है। मृताशौच तथा जन्माशौच, दोनों ही हुए हैं। अविद्यारूपी माता की मृत्यु हुई है और आत्माराम का जन्म हुआ है।"§

श्रीरामकृष्ण—अच्छा वह कहानी सुनाना,—जिसमें कहा है कि आत्मज्ञान होने पर जातिभेद नहीं रह जाता।

ईशान—वाराणसी में गंगास्नान करके शंकराचार्य घाट की

---

* "The kingdom of heaven is revealed unto babes but is hidden from the wise and the pruden:"—Bible

§ मृता मोहमयी माता जातो बोधमयः सुतः।
सूतकद्वयसम्प्राप्तौ कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥
हृदाकाशे चिदादित्यः सदा भासति भासति।
नास्तमेति न चोदेति कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥

—मैत्रेयी उपनिषद्, २।१३,१४

सीढ़ी पर चढ़ रहे थे—उस समय कुत्ते पालनेवाले एक चाण्डाल को सामने बिलकुल पास ही देखकर बोले, "यह क्या, तूने मुझे छू लिया !" चाण्डाल बोला, "महाराज, तुमने भी मुझे नहीं छुआ और मैंने भी तुम्हें नहीं छुआ। आत्मा सभी के अन्तर्यामी और निर्लिप्त हैं। शराब में पड़ा हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब और गंगाजल में पड़ा हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब, क्या इन दोनों में भेद है ?

श्रीरामकृष्ण (हँसकर)—और वह समन्वय की कथा कैसी है ? सभी मतों से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

ईशान (हँसकर)—हरि और हर में एक ही धातु 'हृ' है। केवल प्रत्यय का भेद है। जो हरि हैं, वही हर हैं। विश्वास भर रहना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण (हँसकर)—अच्छा वह कहानी—साधु का हृदय सब से बड़ा है।

ईशान (हँसकर)—सब से बड़ी है पृथ्वी, उससे बड़ा है समुद्र, उससे बड़ा है आकाश। परन्तु भगवान् विष्णु ने एक पैर से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल—त्रिभुवन पर अधिकार कर लिया था। पर उस विष्णु का पद साधु के हृदय में है ! इसलिए साधु का हृदय सब से बड़ा है।

इन सब बातों को सुनकर भक्तगण आनन्दित हो रहे हैं।

(२)

आद्याशक्ति की उपासना से ही ब्रह्म की उपासना होती है—ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं

ईशान भाटपाड़ा में गायत्री का पुरश्चरण करेंगे। गायत्री ब्रह्ममन्त्र है। विषयबुद्धि बिलकुल लुप्त हुए बिना ब्रह्मज्ञान नहीं होता। परन्तु कलियुग में अन्नगत प्राण है—विषयबुद्धि छूटती

नहीं। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श—मन सदा इन्हीं विषयों को लेकर रहता है। इसलिए श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'कलि में वेद का मत नहीं चलता। जो ब्रह्म हैं, वे ही शक्ति हैं। शक्ति की उपासना करने से ही ब्रह्म की उपासना होती है। जिस समय वे सृष्टि, स्थिति, प्रलय करते हैं, उस समय उन्हें शक्ति कहते हैं। दो अलग अलग नहीं—एक ही हैं।'

श्रीरामकृष्ण (ईशान के प्रति)—क्यों 'नेति नेति' करके भटक रहे हो? ब्रह्म के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। केवल कहा जा सकता है, 'अस्तिमात्रम्'❋ 'केवल: राम:'।

"हम जो कुछ देख रहे हैं, सोच रहे हैं, सभी उस आद्याशक्ति का, उस चित्शक्ति का ही ऐश्वर्य है—सृजन, पालन, संहार, जीव, जगत्; फिर ध्यान, ध्याता; भक्ति, प्रेम,—सब उन्हीं का ऐश्वर्य है।

"परन्तु ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। लंका से लौटने के बाद हनुमान ने राम की स्तुति की थी। कहा था, 'हे राम, तुम्हीं परब्रह्म हो और सीता तुम्हारी शक्ति हैं। परन्तु तुम दोनों अभिन्न हो, जिस प्रकार सर्प और उसकी टेढ़ी गति,—साँप जैसी गति को सोचना हो तो साँप को सोचना होगा, और साँप को सोचने पर साँप की गति को भी सोचना पड़ता है। दूध का विचार करने पर दूध के रंग का—धवलत्व का विचार करना पड़ता है, और दूध की तरह सफेद अर्थात् धवलत्व को सोचने पर दूध का स्मरण लाना पड़ता है। जल की शीतलता का चिन्तन करते ही जल का स्मरण आता है और फिर जल के चिन्तन के साथ ही

❋ नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभाव: प्रसीदति।।

—कठ उपनिषद्, २।३

जल की शीतलता का भी चिन्तन करना पड़ता है।

"इस आद्याशक्ति या महामाया ने ब्रह्म को आवृत कर रखा है। आवरण हट जाते ही 'मैं जो था, वही बन गया।' 'मैं ही तुम, तुम ही मैं हूँ!'

"जब तक आवरण है, तब तक वेदान्तवादी की 'सोऽहम्' अर्थात् 'मैं ही परब्रह्म हूँ' यह बात नहीं चलती। जल की ही तरंग है, तरंग का जल नहीं कहलाता। जब तक आवरण है, तब तक 'माँ माँ' कहकर पुकारना अच्छा है। तुम माँ हो, मैं तुम्हारी सन्तान हूँ। तुम प्रभु हो, मैं तुम्हारा दास हूँ। सेव्यसेवक-भाव अच्छा है। इसी दासभाव से फिर सभी भाव आते हैं—शान्त, सख्य आदि। मालिक यदि नौकर से प्यार करता है, तो उसे बुलाकर कहता है, 'आ, मेरे पास बैठ, तू जो है, मैं भी वही हूँ'; परन्तु नौकर यदि अपनी इच्छा से मालिक के पास बैठने जाय तो क्या मालिक नाराज न होंगे?

आद्याशक्ति तथा अवतार-लीला। वेद, पुराण एवं तन्त्रों का समन्वय

"अवतार-लीला—ये सब चित्शक्ति के ऐश्वर्य हैं। जो ब्रह्म हैं, वे ही फिर राम, कृष्ण तथा शिव हैं।"

ईशान—हरि और हर, एक ही धातु है, केवल प्रत्यय का भेद है। (सभी हँस पड़े।)

श्रीरामकृष्ण—हाँ, एक के अतिरिक्त दो कुछ भी नहीं है। वेद में कहा है—ॐ सच्चिदानन्दं ब्रह्म; पुराण में कहा है—ॐ सच्चिदानन्दः कृष्णः; और तन्त्र में कहा है—ॐ सच्चिदानन्दः शिवः।

"उस चित्शक्ति ने महामाया के रूप में सभी को अज्ञानी बना रखा है। अध्यात्मरामायण में है, राम के दर्शन जितने ऋषियों ने किये वे सभी एक बात कहते थे,—'हे राम, हमें अपनी भुवन-

मोहिनी माया द्वारा मुग्ध न करो।''*

ईशान–यह माया क्या है ?

श्रीरामकृष्ण–जो कुछ देखते हो, सुनते हो, सोचते हो, सभी माया है। एक बात में कहना हो तो, कामिनी-कांचन ही माया का आवरण है।

"पान खाना, तम्बाकू पीना, तेल मालिश करना—इनमें दोष नहीं है। केवल इन्हीं का त्याग करने से क्या होगा ? कामिनीकांचन के त्याग की आवश्यकता है। वही त्याग है ! गृहस्थ लोग बीच बीच में निर्जन स्थान में जाकर साधन-भजन कर भक्ति प्राप्त करके मन से त्याग करें। संन्यासी बाहर भीतर दोनों ओर से त्याग करें।

"केवल सेन से मैंने कहा था, 'जिस कमरे में जल का घड़ा और इमली का अचार है, उसी कमरे में यदि सन्निपात का रोगी रहे तो भला वह कैसे अच्छा हो सकता है ? बीच बीच में निर्जन स्थान में जाना ही चाहिए।'"

एक भक्त–महाराज, नवविधान ब्राह्मसमाज किस प्रकार है—मानो खिचड़ी जैसा !

श्रीरामकृष्ण–कोई कोई कहते हैं आधुनिक। मैं सोचता हूँ, क्या ब्राह्मसमाजवालों का ईश्वर दूसरा है ? कहते हैं नवविधान, नया विधान; सो होगा। जिस प्रकार छः दर्शन हैं, षड्दर्शन, उसी प्रकार एक और कुछ होगा।

"परन्तु निराकारवादियों की भूल क्या है जानते हो ? भूल यह है कि वे कहते हैं, 'ईश्वर निराकार हैं, और बाकी सारे मत गलत हैं।'"

---

* अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।—गीता, ५।१५

"मैं जानता हूँ, वे साकार निराकार दोनों ही हैं, और भी कितने प्रकार के बन सकते हैं ! वे सब कुछ बन सकते हैं।"

(ईशान के प्रति)–"वही चित्शक्ति, वही महामाया चौबीस तत्त्व बनी हुई है। मैं ध्यान कर रहा था, ध्यान करते करते मन चला गया रसके के घर में। रसके मेहतर है। मन से कहा, 'अरे, रह, वहीं पर रह।' माँ ने दिखा दिया, उसके घर में जो लोग घूम रहे हैं, वे बाहर का आवरण मात्र हैं, भीतर वही एक कुलकुण्डलिनी, एक षट्चक्र है !

"वह आद्याशक्ति स्त्री है या पुरुष ? मैंने उस देश में देखा, लाहाओं के घर पर कालीपूजा हो रही है। माँ के गले में जनेऊ दिया है। एक व्यक्ति ने पूछा, 'माँ का जनेऊ क्यों है ?' जिसके घर में पूजा है उसने कहा, 'भाई, तूने माँ को ठीक पहचाना है, परन्तु मैं तो कुछ भी नहीं जानता कि माँ पुरुष है या स्त्री !'

"इस प्रकार कहा जाता है कि महामाया शिव को निगल गयी। माँ के भीतर षट्चक्र का ज्ञान होने पर शिव माँ की जाँघ में से निकल आये। फिर शिव ने तन्त्रों की रचना की।

"उस चित्शक्ति के, उस महामाया के शरणागत होना चाहिए।"

ईशान–आप कृपा कीजिये।

'डुबकी लगाओ'। गुरु का प्रयोजन। शास्त्राध्ययन

श्रीरामकृष्ण–सरल भाव से कहो, 'हे ईश्वर, दर्शन दो' और रोओ; और कहो, 'हे ईश्वर, कामिनी-कांचन से मन को हटा दो।'

"और डुबकी लगाओ। ऊपर ऊपर बहने से या तैरने से क्या रत्न मिलता है ? डुबकी लगानी पड़ती है।

"गुरु से पता लेना चाहिए। एक व्यक्ति बाणलिंग शिव की खोज कर रहा था। किसी ने कह दिया, 'अमुक नदी के किनारे

जाओ, वहाँ पर एक वृक्ष देखोगे, उस वृक्ष के पास एक भँवर है। वहाँ पर डुबकी लगानी होगी, तब बार्णालिग शिव मिलेगा।' इसीलिए गुरु से पता जान लेना चाहिए।"

ईशान—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—सच्चिदानन्द ही गुरु के रूप में आते हैं। मनुष्य गुरु से यदि कोई दीक्षा लेता है, तो उन्हें मनुष्य मानने से कुछ नहीं होगा। उन्हें साक्षात् ईश्वर मानना होगा, तभी मन्त्र पर विश्वास होगा। विश्वास हुआ कि सब कुछ हो गया! शूद्र एकलव्य ने मिट्टी के द्रोणाचार्य बनाकर वन में बाण चलाना सीखा था। मिट्टी के द्रोण की पूजा करता था—साक्षात् द्रोणाचार्य मानकर। इसी से वह धनुर्विद्या में सिद्ध हो गया!

"और तुम ब्राह्मण-पण्डितों को लेकर अधिक झमेला न किया करो। उन्हें चिन्ता है दो पैसे पाने की!

"मैंने देखा है, ब्राह्मण स्वस्त्ययन करने आया है; चण्डीपाठ या और कुछ पाठ कर रहा है—पर आधे पन्ने वैसे ही उलटता जा रहा है। (सभी हँस पड़े।)

"अपनी हत्या एक छोटी नहरनी से भी हो सकती है। दूसरों को मारने के लिए ढाल-तलवार चाहिए।—शास्त्रग्रन्थादि का यही हेतु है।

"बहुतसे शास्त्रों की भी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि विवेक न हो तो केवल पाण्डित्य से कुछ नहीं होता, षट्शास्त्र पढ़कर भी कुछ नहीं होता। निर्जन में, एकान्त में, गुप्त रूप से रो-रोकर उन्हें पुकारो, वे ही सब कुछ कर देंगे।"

श्रीरामकृष्ण ने सुना है, ईशान भाटपाड़ा में पुरश्चरण करने के लिए गंगा के तट पर कुटिया बना रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (व्यग्र भाव से ईशान के प्रति)–क्यों जी, क्या कुटिया बन गयी ? जानते हो, ये सब काम लोगों से जितने छिपे रहें, उतना ही अच्छा है । जो लोग सतोगुणी हैं, वे ध्यान करते हैं मन में, कोने में, वन में; कभी तो मच्छरदानी के भीतर ही बैठे ध्यान करते हैं ।

हाजरा महाशय को ईशान बीच बीच में भाटपाड़ा ले जाते हैं। हाजरा महाशय छूतधर्मी की तरह आचरण करते हैं । श्रीरामकृष्ण ने उन्हें वैसा करने से मना किया था ।

श्रीरामकृष्ण (ईशान के प्रति)–और देखो, अधिक छूतधर्म का आचरण मत करो । एक साधु को बड़ी प्यास लगी थी। भिश्ती जल लेकर जा रहा था; उसने साधु को जल देना चाहा । साधु ने कहा, 'क्या तुम्हारी मशक साफ है ?' भिश्ती बोला, 'महाराज, मेरी मशक खूब साफ है ! परन्तु आपकी मशक के भीतर मल-मूत्र आदि अनेक प्रकार के मैल हैं । इसलिए कहता हूं, मेरी मशक से जल पीजिये, इससे दोष न लगेगा ।' आपकी मशक अर्थात् आपकी देह, आपका पेट ।

"और उनके नाम पर विश्वास रखो । तो फिर तीर्थ आदि की भी आवश्यकता न होगी ।" यह कहकर श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर होकर गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"यदि 'काली काली' कहते हुए मेरे शरीर का अन्त हो तो गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि कौन चाहता है ? जो तीनों समय काली का नाम लेता है, वह क्या पूजा-सन्ध्या चाहता है ? सन्ध्या स्वयं उसकी खोज में रहकर भी पता नहीं पाती । कालीनाम के इतने गुण हैं कि कौन उसका पार पा सकता है ! उन गुणों को देवाधिदेव महादेव पंचमुखों से गाते हैं ।

दया, व्रत, दान आदि और किसी में भी मन नहीं जाता, मदन का यज्ञ-याग ब्रह्ममयी के पादपद्म में है।"

ईशान सब सुनकर चुप होकर बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण (ईशान के प्रति)–और भी सन्देह हो तो पूछ लो।

ईशान–जी, आपने जो कहा है––विश्वास!

श्रीरामकृष्ण–हाँ, ठीक विश्वास के द्वारा ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। और पूरा विश्वास करने पर और भी शीघ्र प्रगति होती है। गौ यदि चुन-चुनकर खाती है तो दूध कम देती है, सभी प्रकार के घास-पत्ते खाने पर वह अधिक दूध देती है।

"राजकृष्ण बनर्जी के लड़के ने एक कहानी सुनायी थी कि एक व्यक्ति को आदेश हुआ कि इस भेड़ में ही तू अपना इष्ट देखना। उसने इसी पर विश्वास किया। सर्वभूतों में वे ही विराजमान हैं।

"गुरु ने भक्त से कह दिया कि राम ही घट घट में विराजमान हैं। भक्त का उसी समय विश्वास हो गया! जब देखा एक कुत्ता मुँह में रोटी लेकर भाग रहा है, तो भक्त घी का पात्र हाथ में लेकर पीछे पीछे दौड़ता है और कहता है, 'राम, थोड़ा ठहरो, रोटी में घी तो लगा दूं!'

"अहा! कृष्णकिशोर का क्या ही विश्वास था! कहा करता था, 'ॐ कृष्ण ॐ राम' इस मन्त्र का उच्चारण करने पर करोड़ों सन्ध्या-वन्दन का फल होता है।'

"फिर मुझे कृष्णकिशोर कान में कहा करता था, 'कहना नहीं किसी से; मुझे सन्ध्या-पूजा अच्छी नहीं लगती।'

"मुझे भी वैसा ही होता है। माँ दिखा देती हैं कि वे ही सब कुछ बनी हुई हैं। शौच के बाद मैदान से आ रहा था पंचवटी को

ओर, देखा साथ साथ एक कुत्ता आ रहा है; तब पंचवटी के पास आकर थोड़ी देर खड़ा रहा; सोचा, शायद माँ इसके द्वारा कुछ कहलाय !

"इसलिए जैसा तुमने कहा, विश्वास से ही सब कुछ मिलता है।"

ईशान–परन्तु हम तो गृहस्थाश्रम में हैं।

श्रीरामकृष्ण–क्या हानि है ! उनकी कृपा होने पर असम्भव भी सम्भव हो जाता है। रामप्रसाद ने गाना गाया था, यह संसार धोखे की टट्टी है। उसका उत्तर किसी दूसरे ने एक दूसरे गाने में दिया था—

(भावार्थ)—" 'यह संसार आनन्द की कुटिया है। मैं खाता, पीता और आनन्द करता हूँ। जनक राजा बड़े तेजस्वी थे, उन्हें किस बात की कमी थी, वे तो दोनों ओर सँभाले रखकर आनन्द से दूध पीते थे।'

"परन्तु पहले निर्जन में गुप्त रूप से साधन-भजन करके ईश्वर को प्राप्त करने के बाद संसार में रहने से मनुष्य 'जनक राजा बन सकता है। नहीं तो कैसे होगा ?

"देखो न, कार्तिक, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती सभी विद्यमान हैं, परन्तु शिव कभी समाधिस्थ, तो कभी 'राम राम' कहते हुए नृत्य कर रहे हैं।"

परिच्छेद ५४

दक्षिणेश्वर में राम आदि भक्तों के साथ

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ बैठे हैं। राखाल, मास्टर, राम, हाजरा आदि भक्तगण उपस्थित हैं। हाजरा महाशय बाहर के बरामदे में बैठे हैं। आज रविवार, २३ सितम्बर १८८३, भाद्रपदी कृष्णा सप्तमी है।

नित्यगोपाल, तारक आदि भक्तगण राम के घर पर रहते हैं। उन्होंने उन्हें आदर-सत्कार के साथ रखा है।

राखाल बीच बीच में अधर सेन के मकान पर जाया करते हैं। नित्यगोपाल सदा ही भाव में विभोर रहते हैं। तारक की भी स्थिति अन्तर्मुखी है। आजकल वे लोगों से विशेष वार्तालाप नहीं करते।

श्रीरामकृष्ण अब नरेन्द्र की बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (एक भक्त के प्रति) —आजकल नरेन्द्र तुम्हें भी 'लाइक' (like—पसन्द) नहीं करता। (मास्टर के प्रति) अधर के घर पर नरेन्द्र नहीं आया?

"एक साथ ही नरेन्द्र में कितने गुण हैं। गाने-बजाने में, लिखने-पढ़ने में, सभी में प्रवीण है। उस दिन यहाँ से कप्तान की गाड़ी से जा रहा था। गाड़ी में कप्तान भी बैठे थे। उन्होंने उससे अपने पास बैठने के लिए कितना कहा। पर नरेन्द्र अलग ही जाकर बैठा; कप्तान की ओर ताककर देखा तक नहीं।

"केवल पाण्डित्य से क्या होगा? साधन-भजन चाहिए, इन्देश

का गौरी पण्डित विद्वान् था और साधक भी। शक्ति-साधक। माँ के भाव में कभी कभी पागल हो जाता था। बीच बीच में कह उठता था, 'हा रे रे रे, निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्।' उस समय सब पण्डित निष्प्रभ हो जाते थे। मैं भी भावाविष्ट हो जाता था। मेरा भोजन देखकर पूछता, 'तुमने भैरवी लेकर साधना की है?'

"एक कर्ताभजा सम्प्रदाय के पण्डित ने निराकार की व्याख्या करते हुए कहा, 'निराकार अर्थात् नीर का आकार!' यह व्याख्या सुनकर गौरी बहुत क्रुद्ध हुआ।

"पहले-पहल कट्टर शाक्त था; तुलसी का पत्ता दो लकड़ियों के सहारे उठाता था—छूता न था! (सभी हँसे।) इसके बाद घर गया। घर से लौट आने के पश्चात् फिर वैसा नहीं करता था।

"मैंने कालीमन्दिर के सामने एक तुलसी का पौधा लगाया था। पर कुछ समय में वह सूख गया। कहते हैं, जहाँ पर बकरों की बलि होती है, वहाँ पर तुलसी नहीं रहती।

"गौरी सभी बातों की सुन्दर व्याख्या करता था। रावण के दस शिरों के बारे में कहता था, दस इन्द्रियाँ! तमोगुण को कुम्भकर्ण, रजोगुण को रावण और सतोगुण को विभीषण कहता था। इसीलिए विभीषण ने राम को प्राप्त किया था।"

श्रीरामकृष्ण मध्याह्न के भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम कर रहे हैं। कलकत्ते से राम, तारक (शिवानन्द) आदि भक्तगण आकर उपस्थित हुए। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर वे जमीन पर बैठ गये। मास्टर भी जमीन पर बैठे हैं। राम कह रहे हैं, "हम लोग मृदंग बजाना सीख रहे हैं।"

श्रीरामकृष्ण (राम के प्रति)–नित्यगोपाल ने भी कुछ

सीखा है ?

राम—जी नहीं, वह कुछ ऐसा ही मामूली बजा सकता है।

श्रीरामकृष्ण—और तारक ?

राम—वह अच्छा बजा सकेगा।

श्रीरामकृष्ण— तो फिर वह मुंह उतना नीचा किये न रहेगा। किसी दूसरी ओर मन अधिक लगा देने पर फिर ईश्वर पर उतना नहीं रह जाता।

राम—मैं समझता हूँ, मैं जो सीख रहा हूँ, वह केवल संकीर्तन के लिए है।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)—सुना है तुमने गाना सीखा है ?

मास्टर (हँसकर)—जी नहीं, यों ही ऊँ आँ करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण—तुम वह गाना जानते हो ? जानते हो तो गाओ न। 'आर काज नाइ ज्ञानविचारे, दे माँ पागल करे।' *

"देखो, यही मेरा असली भाव है।"

हाजरा को उपदेश—घृणा व निन्दा छोड़ दो

हाजरा महाशय कभी कभी किसी के सम्बन्ध में घृणा प्रकट करते थे।

श्रीरामकृष्ण (राम आदि भक्तों के प्रति)— कामारपुकुर में किसी मकान पर मैं अक्सर जाया करता था। उस घर के लड़के मेरी ही बराबरी के थे, वे लड़के उस दिन यहाँ आये थे और दो-तीन दिन रहे भी। हाजरा की तरह उनकी माँ सब से घृणा करती थी। अन्त में उसके पैर में न जाने क्या हो गया। पैर सड़ने लगा। कमरे में इतनी दुर्गन्ध हुई कि लोग अन्दर तक नहीं जा सकते थे।

* 'अब मुझे ज्ञान-विचार से काम नहीं है, हे माँ, मुझे तू पागल बना दे।'

"इसीलिए मैंने हाजरा से यह बात कही और उसे चेतावनी दे दी कि किसी की निन्दा न करो।"

दिन के चार बजे का समय हुआ। श्रीरामकृष्ण मुँह-हाथ धोने के लिए झाऊतल्ले की ओर गये। उनके कमरे के दक्षिणपूर्ववाले बरामदे में दरी बिछायी गयी। श्रीरामकृष्ण झाऊतल्ले से लौटकर उस पर बैठे। राम आदि उपस्थित हैं। अधर सेन जाति के सुनार हैं। उनके घर राखाल ने अन्नग्रहण कर लिया, इसलिए रामबाबू ने कुछ कहा है। अधर परम भक्त हैं। यही बातें हो रही हैं।

एक भक्त हँसी हँसी में सुनारों में से किसी किसी के स्वभाव का वर्णन कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण हंस रहे हैं--स्वयं कोई राय प्रकट नहीं कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण की कर्मत्याग की स्थिति। जगन्माता के साथ वार्तालाप

सायंकाल हुआ। आँगन में उत्तर-पश्चिम के कोने में श्रीरामकृष्ण खड़े हैं, वे समाधिस्थ हैं।

काफी देर बाद उनका मन बाह्य जगत् में लौटा। श्रीरामकृष्ण की कैसी अद्भुत स्थिति है! आजकल प्रायः समाधिमग्न रहते हैं। थोड़े ही उद्दीपन से बाह्यज्ञानशून्य हो जाते हैं। जब भक्तगण आते हैं, तब थोड़ा वार्तालाप करते हैं; अन्यथा सदा ही अन्तर्मुख रहते हैं। अत्र पूजा, जप आदि नहीं कर सकते।

समाधि भंग होने के बाद खड़े खड़े ही जगन्माता के साथ बातचीत कर रहे हैं। कह रहे हैं, "माँ! पूजा गयी, जप गया। देखना माँ! कहीं जड़ न बना डालना। सेव्यसेवक-भाव में रखना माँ, जिससे बात कर सकूँ, तुम्हारा नाम-गुण-संकीर्तन और गान कर सकूँ। और शरीर में थोड़ा बल दो माँ! जिससे थोड़ा चल-फिर सकूँ, जहाँ पर तुम्हारी कथा होती हो, जहाँ पर तुम्हारे

भक्तगण हों, उन सब स्थानों में जा सकूँ।"

श्रीरामकृष्ण ने आज प्रातःकाल कालीमन्दिर में जाकर जगन्माता के श्रीचरणकमलों पर पुष्पांजलि अर्पण की है। वे फिर जगन्माता के साथ बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "माँ! आज सबेरे चरणों में दो फूल चढ़ाये। सोचा, अच्छा हुआ, फिर बाह्य पूजा की ओर मन जा रहा है! पर माँ, फिर ऐसा क्यों हुआ? फिर जड़ की तरह क्यों बना डाल रही हो?"

भाद्रपद कृष्णा सप्तमी। अभी तक चन्द्रमा का उदय नहीं हुआ। रात्रि तमसाच्छन्न है। श्रीरामकृष्ण अभी भावाविष्ट हैं, इसी स्थिति में अपने कमरे के छोटे तख्त पर बैठे। फिर जगन्माता के साथ बात कर रहे हैं।

अब सम्भवतः भक्तों के सम्बन्ध में माँ से कुछ कह रहे हैं। ईशान मुखोपाध्याय की बात कह रहे हैं। ईशान ने कहा था, 'मैं भाटपाड़ा में जाकर गायत्री का पुरश्चरण करूँगा।' श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा था कि कलियुग में वेदमत नहीं चलता; जीव अन्नगतप्राण है, आयु कम है, देहबुद्धि, विषयबुद्धि सम्पूर्ण नष्ट नहीं होती। इसीलिए ईशान को मातृभाव से तन्त्रमत के अनुसार साधना करने का उपदेश दिया था, और ईशान से कहा था, 'जो ब्रह्म हैं, वही माँ, वही आद्यशक्ति हैं।'

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर कह रहे हैं, "फिर गायत्री का पुरश्चरण! इस छत पर से उस छत पर कूदना! किसने उससे ऐसी बात कही है? अपने ही मन से कर रहा है। अच्छा, थोड़ा पुरश्चरण करेगा।"

(मास्टर के प्रति)—"अच्छा, मुझे यह सब क्या वायु के विकार से होता है अथवा भाव से ?"

मास्टर विस्मित होकर देख रहे हैं कि श्रीरामकृष्ण जगन्माता के साथ इस प्रकार बातचीत कर रहे हैं। वे विस्मित होकर देख रहे हैं, ईश्वर हमारे अति निकट, बाहर तथा भीतर हैं। अत्यन्त निकट हुए बिना श्रीरामकृष्ण धीरे धीरे उनके साथ बातचीत कैसे कर रहे हैं ?

परिच्छेद ५५

मास्टर के प्रति उपदेश

(१)

पण्डित और साधु में अन्तर। कलियुग में नारदीय भक्ति

आज बुधवार है; भाद्रपद की कृष्णा दशमी, २६ सितम्बर, १८८३ ई०। बुधवार को भक्तों का समागम कम होता है, क्योंकि सब अपने काम में लगे रहते हैं। प्रायः रविवार को समय मिलने पर भक्तगण श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आते हैं। मास्टर को स्कूल से आज डेढ़ बजे छुट्टी मिल गयी है। तीन बजे वे दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचे। इस समय श्रीरामकृष्ण के पास प्रायः राखाल और लाटू रहते हैं। आज दो घण्टे पहले किशोरी आये हुए हैं। कमरे के भीतर श्रीरामकृष्ण छोटे तख्त पर बैठे हुए हैं। मास्टर ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने कुशल-प्रश्न पूछकर नरेन्द्र की बात चलायी।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—क्यों जी, क्या नरेन्द्र से भेंट हुई थी? (सहास्य) नरेन्द्र ने कहा है, 'वे अब भी कालीमन्दिर जाया करते हैं; जब ठीक ज्ञान हो जायगा तब फिर वे कालीमन्दिर में नहीं जायेंगे।'

"कभी कभी वह यहाँ आता है, इसलिए उसके घरवाले बहुत नाराज हैं। उस दिन यहाँ गाड़ी पर चढ़कर आया था। गाड़ी का किराया सुरेन्द्र ने दिया था। इस पर नरेन्द्र की बुआ सुरेन्द्र के यहाँ लड़ने गयी थी।"

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र की बात कहते हुए उठे। बातचीत करते

हुए उत्तर-पूर्ववाले बरामदे में जाकर खड़े हुए। वहाँ हाजरा, किशोरी, राखाल आदि भक्तगण हैं। तीसरे पहर का समय है।

श्रीरामकृष्ण—वाह, तुम तो आज खूब आ गये! क्यों, स्कूल नहीं है क्या?

मास्टर—आज डेढ़ बजे छुट्टी हो गयी थी।

श्रीरामकृष्ण—इतनी जल्दी क्यों?

मास्टर—विद्यासागर स्कूल देखने गये थे। स्कूल विद्यासागर का है, इसीलिए उनके आने पर लड़कों को आनन्द मनाने के लिए छुट्टी दी जाती है।

श्रीरामकृष्ण—विद्यासागर सच बात क्यों नहीं कहता?

"सत्य बोलता रहे और परायी स्त्री को माता जाने, इन दो बातों से अगर राम न मिलें, तो तुलसीदास कहते हैं, मेरी बातों को झूठ समझो। सत्यनिष्ठ रहने से ही ईश्वर मिलते हैं। विद्यासागर ने उस दिन कहा था यहाँ आने के लिए, परन्तु फिर न आया।

"पण्डित और साधु में बड़ा अन्तर है। जो केवल पण्डित है, उसका मन कामिनी-कांचन पर है। साधु का मन श्रीभगवान् के पादपद्मों में रहता है। पण्डित कहता कुछ है और करता कुछ है। साधु की बात जाने दो। जिनका मन ईश्वर के चरणारविन्दों में लगा रहता है, उनके कर्म और उनकी बातें और ही होती हैं। काशी में मैंने एक नानकपन्थी लड़का साधु देखा था। उसकी आयु तुम्हारे इतनी होगी। मुझे 'प्रेमी साधु' कहता था। काशी में उनका मठ है। एक दिन मुझे वहाँ न्यौता देकर ले गया। महन्त को देखा जैसे एक गृहिणी। उससे मैंने पूछा, 'उपाय क्या है?' उसने कहा, 'कलियुग में नारदीय भक्ति चाहिए।' पाठ कर रहा था, पाठ के समाप्त होने पर कहा—'जले विष्णुः स्थले

विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके। सर्वं विष्णुमयं जगत्।' सब के अन्त में कहा, 'शान्तिः! शान्तिः! प्रशान्तिः!'

"एक दिन उसने गीतापाठ किया। हठ और दृढ़ता भी ऐसी कि विषयी आदमियों की ओर होकर न पढ़ता था। मेरी ओर होकर उसने पढ़ा। मथुरबाबू भी थे। उनकी ओर पीठ फेरकर पढ़ने लगा। उसी नानकपन्थी साधु ने कहा था, 'उपाय है नारदीय भक्ति'।"

मास्टर--वे साधु क्या वेदान्तवादी नहीं हैं?

श्रीरामकृष्ण--हाँ, वे लोग वेदान्तवादी हैं, परन्तु भक्तिमार्ग भी मानते हैं। बात यह है कि अब कलिकाल में वेदमत नहीं चलता। एक ने कहा था, 'मैं गायत्री का पुरश्चरण करूँगा।' मैंने कहा, 'क्यों?—कलि के लिए तो तन्त्रोक्त मत है। क्या तन्त्रोक्त मत से पुरश्चरण नहीं होता?'

"वैदिक कर्म बड़ा कठिन है। तिस पर फिर दासत्व करना। ऐसा भी लिखा है कि बारह साल या इसी तरह कुछ दिन दासता करते रहने पर मनुष्य दास ही बन जाता है। इतने दिनों तक जिनकी दासता की, उन्हीं की सत्ता उसमें आ जाती है। उनका रज, तम, जीवहिंसा, विलास, ये सब आ जाते हैं—उनकी सेवा करते हुए। केवल दासता ही नहीं, ऊपर से पेन्शन भी खाता है!

"एक वेदान्ती साधु आया था। मेघ देखकर नाचता था। आँधी और पानी देखकर उसे बड़ा आनन्द मिलता था। उसके ध्यान के समय अगर कोई उसके पास जाता था तो वह बहुत नाराज होता था। एक दिन मैं गया। जाने पर वह बहुत ही उकताया। वह सदा विचार करता था, 'ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या।' माया के कारण अनेक रूप दिखायी दे रहे हैं, इसी विचार से वह रोशनी के झाड़ की कलम लिए फिरता था। झाड़

की कलम से देखो तो कितने ही रंग दीख पड़ते हैं, परन्तु वास्तव में रंग कोई भी नहीं हैं। उसी तरह ब्रह्म के सिवाय और कुछ भी नहीं हैं, परन्तु माया और अहंकार के कारण अनेक रूप दिखायी दे रहे हैं। किसी चीज को वह एक बार से अधिक न देखता था, जिससे कहीं माया न लग जाय। आसक्ति न हो जाय। नहाते समय पक्षी को उड़ते हुए देखकर वह विचार करता था। हम दोनों एक साथ जंगल जाते थे। उसने जब यह सुना कि तालाब मुसलमानों का है तब उसमें से जल नहीं लिया। हलधारी ने उससे व्याकरण के प्रश्न किये; वह व्याकरण जानता था। व्यंजनवर्णों की बात हुई। तीन दिन यहाँ ठहरा था। एक दिन गंगाजी के किनारे पर शहनाई की आवाज सुनकर उसने कहा, जिसे ब्रह्मदर्शन होता है उसे इस तरह की आवाज सुनकर समाधि हो जाती है।"

(२)

दक्षिणेश्वर में गुरु श्रीरामकृष्ण। परमहंस-अवस्था

श्रीरामकृष्ण साधुओं की बात कहते हुए परमहंस की अवस्था बतलाने लगे। वही बालक की-सी चाल। मुँह पर हँसी जैसे एकदम फूट-फूटकर निकल रही है। कमर में कपड़ा नहीं, दिगम्बर; आँखें आनन्दसागर में तैरती हुई। श्रीरामकृष्ण फिर छोटे तख्त पर जा बैठे, फिर वही मन को मुग्ध कर देनेवाली बातें होने लगीं।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)—मैंने न्यांगटा (तोतापुरी) से वेदान्त सुना था। 'ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या है।' बाजीगर आकर कितने ही तमाशे दिखाता है, आम के पौधे में आम भी लग जाता है। परन्तु है यह सब तमाशा। तमाशा दिखानेवाला बाजीगर ही सत्य है।

मणि—जीवन जैसे एक लम्बी नींद है ! इतना ही समझता हूँ कि सब ठीक ठीक नहीं देख रहा हूँ । जिस मन से मैं आकाश को नहीं समझता, उसी मन से संसार को देख रहा हूँ न ? अतएव देखना किस तरह से ठीक होगा ?

श्रीरामकृष्ण—एक तरह और है । आकाश को हम लोग ठीक नहीं देख रहे, जान पड़ता है वह जमीन से मिला हुआ है । अतएव आदमी सत्य कैसे देखे ? भीतर विकार जो है ।

श्रीरामकृष्ण मधुर कण्ठ से गाने लगे ।

(भावार्थ)—"हे शंकरि ! यह कैसा विकार है ? तुम्हारी कृपा-औषधि मिलने पर ही यह दूर होगा।...."

"विकार तो है ही। देखो न, संसारी जीव आपस में लड़ते हैं, परन्तु जिस आधार पर लड़ते हैं वह बेजड़ है। लड़ाई भी कैसी ! तेरा यह हो, तेरा वह हो। कितनी चिल्लाहट और गालीगलौज !"

मणि—मैंने किशोरी से कहा था, छूँछे सन्दूक में है कुछ भी नही, परन्तु आदमी खींचातानी कर रहे हैं, रुपये हैं, यह समझकर।

"अच्छा, यह देह ही तो कुल अनर्थों का कारण है। यही सब देखकर ज्ञानी सोचते हैं, इस गिलाफ को छोड़ें तो जी बचे।"

श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिर की ओर जा रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण—क्यों ? इस संसार को धोखे की टट्टी कहा है तो इसे आनन्द की कुटिया भी तो कहा है ! देह रही भी तो क्या ? संसार आनन्द की कुटिया भी तो हो सकता है ।

मणि—निरवच्छिन्न आनन्द यहाँ कहाँ है ?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, यह ठीक है।

श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिर के सामने आये । माता को भूमिष्ठ

हो प्रणाम किया। मणि ने भी प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण काली-मन्दिर के सामने चबूतरे पर बिना किसी आसन के कालीमाता की ओर मुँह किये बैठे हुए हैं। केवल लाल धारीदार धोती पहने हैं। उसका कुछ हिस्सा पीठ पर पड़ा है और कुछ कन्धे पर। पीछे नाटमन्दिर का एक स्तम्भ है। पास ही मणि बैठे हैं।

मणि—यही अगर हुआ तो देहधारण की फिर क्या आवश्यकता है? देख तो यह रहा हूँ कि कुछ कर्मों का भोग करने के लिए ही देह धारण करना होता है। वह क्या कर रहा है वही जाने। बीच में हम लोग पिस रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—चना अगर विष्ठा पर पड़ जाय तो भी उससे चने का ही पौधा निकलता है।

मणि—फिर भी अष्ट-बन्धन तो हैं ही।

श्रीरामकृष्ण—अष्ट-बन्धन नहीं, अष्टपाश। हैं तो इससे क्या? उनकी कृपा होने पर एक क्षण में अष्टपाश छूट सकते हैं, जिस तरह कि हजार साल के अँधेरे कमरे में दीपक ले जाने पर एक क्षण में अंधेरा दूर हो जाता है, थोड़ा थोड़ा करके नहीं जाता। बाजीगर का एक खेल तुमने देखा है? कितनी ही गाँठ लगी रस्सी का एक छोर वह एक जगह बाँध देता है और दूसरा छोर अपने हाथ से पकड़े रहता है। उसने रस्सी को हिलाया नहीं कि सब ग्रन्थियाँ एक साथ खुल गयीं। परन्तु दूसरा आदमी चाहे लाख उपाय करे, उसे खोल नहीं सकता। श्रीगुरु की कृपा से सब ग्रन्थियाँ एक क्षण में ही खुल जाती हैं।

"अच्छा, केशव सेन इतना वदल कैसे गया?—बताओ तो। परन्तु यहाँ खूब आता था। यहीं से नमस्कार करना सीखा था। एक दिन मैंने कहा, साधुओं को इस तरह से नमस्कार नहीं करना

चाहिए। एक दिन ईशान के साथ मैं गाड़ी पर कलकत्ता जा रहा था। उसने मुझसे केशव सेन की सब बातें सुनीं। हरीश अच्छा कहता है—यहाँ से सब चेक पास करा लेने होंगे, तब बैंक में रुपये मिलेंगे।" (सब हंसते हैं।)

मणि निर्वाक् रहकर सब बातें सुन रहे हैं। उन्होंने समझा, गुरु के रूप में सच्चिदानन्द स्वयं चेक पास करते हैं।

श्रीरामकृष्ण—विचार न करना। उन्हें कौन जान सकता है? न्यांगटा कहता था, मैंने सुन रखा है, उन्हीं के एक अंश से यह ब्रह्माण्ड बना है।

"हाजरा में बड़ी विचारबुद्धि है। वह हिसाव करता है, इतने में संसार हुआ और इतना बाकी रह गया! उसका हिसाब सुनकर मेरा माथा ठनकने लगता है। मैं ज़ानता हूं, मैं कुछ नहीं जानता। कभी तो उन्हें अच्छा सोचता हूँ और कभी उन्हें बुरा मानता हूँ। उनको मैं क्या समझूंगा?"

मणि—जी हाँ, क्या कोई उन्हें समझ सकता है? जिसकी जैसी बुद्धि है, उतनी ही से वह सोचता है, मैं सब कुछ समझ गया। आप जैसा कहते हैं, एक चींटी चीनी के पहाड़ के पास गयी थी, उसका जब एक ही दाने से पेट भर गया तब उसने कहा, अब की बार आऊँगी तो पहाड़ का पहाड़ उठा ले जाऊँगी!

क्या ईश्वर को जाना जा सकता है? उपाय—शरणागति

श्रीरामकृष्ण—उन्हें कौन जान सकता है? मैं जानने की चेष्टा भी नहीं करता। मैं केवल माँ कहकर पुकारता हूँ। माँ चाहे जो करें। उनकी इच्छा होगी तो वे समझायेंगी और न इच्छा होगी तो न समझायेंगी। इससे क्या है? मेरा स्वभाव बिल्ली के बच्चे की तरह है। बिल्ली का बच्चा केवल 'मिऊँ मिऊँ' करके

पुकारता है। इसके बाद उसकी माँ जहाँ रखती है वहीं रहता है। कभी कण्डौरे में रखती है और कभी बाबूसाहब के बिस्तरे पर। छोटा बच्चा बस माँ को ही चाहता है। माता का कितना ऐश्वर्य है, वह नहीं जानता। जानना भी नहीं चाहता। वह जानता है, मेरे माँ है, मुझे क्या चिन्ता है? नौकरानी का लड़का भी जानता है, मेरे माँ है। बाबू के लड़के के साथ अगर लड़ाई हो जाती है तो वह कहता है, 'मैं अपनी माँ से कह दूँगा। मेरे माँ है कि नहीं?' मेरा भी सन्तान-भाव है।

श्रीरामकृष्ण अकस्मात् अपने को दिखाकर, अपनी छाती में हाथ लगाकर, मणि से कहते हैं—"अच्छा, इसमें कुछ है—तुम क्या कहते हो?"

मणि निर्वाक् भाव से श्रीरामकृष्ण को देख रहे हैं। शायद सोच रहे हैं—श्रीरामकृष्ण के हृदय में साक्षात् जगन्माता हैं। क्या जीवों के कल्याण के लिए माँ स्वयं देह धारण कर आयी हुई हैं?

(३)

साकार-निराकार। कर्तव्यबुद्धि

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में कालीमन्दिर के सामने चबूतरे पर बैठे हैं। कालीप्रतिमा में जगन्माता के दर्शन कर रहे हैं। पास ही मास्टर आदि भक्तगण बैठे हैं।

थोड़ी देर पहले श्रीरामकृष्ण ने कहा है, "ईश्वर के सम्बन्ध में अनुमान आदि लगाना व्यर्थ है। उनका ऐश्वर्य अनन्त है। बेचारा मनुष्य मुँह से क्या प्रकट कर सकेगा! एक चींटी ने चीनी के पहाड़ के पास जाकर चीनी का एक कण खाया। उसका पेट भर गया। तब वह सोचने लगी, 'अब की बार आऊँगी तो पूरे पहाड़ को अपने बिल में उठा ले जाऊँगी!'

"उन्हें क्या समझा जा सकता है ? इसीलिए मेरा बिल्ली के बच्चे का-सा भाव है । माँ जहाँ भी रख दे, मैं कुछ नहीं जानता। छोटे बच्चे नहीं जानते, माँ का कितना ऐश्वर्य है !"

श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिर के चबूतरे पर बैठे स्तुति कर रहे हैं,—"ओ माँ ! ओ माँ ओंकाररूपिणि ! माँ ! ये लोग कितना सब वर्णन करते हैं, माँ !—कुछ समझ नहीं सकता ! कुछ नहीं जानता हूँ, माँ ! शरणागत ! शरणागत ! केवल यही करो माँ ! जिससे तुम्हारे श्रीचरणकमलों में शुद्धा भक्ति हो ! अब और अपनी भुवनमोहिनी माया में मोहित न करो माँ ! शरणागत ! शरणागत !"

मन्दिर में आरती हो गयी । श्रीरामकृष्ण कमरे में छोटे तख्त पर बैठे हैं । महेन्द्र जमीन पर बैठे हैं ।

महेन्द्र पहले-पहल श्री केशव सेन के ब्राह्मसमाज में हमेशा जाया करते थे । श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के बाद फिर वहाँ नहीं जाते हैं । श्रीरामकृष्ण सदा जगन्माता के साथ वार्तालाप करते हैं यह देखकर वे बड़े विस्मित हुए हैं और उनकी सर्वधर्म-समन्वय की बात सुनकर तथा ईश्वर के लिए उनकी व्याकुलता को देखकर वे मुग्ध हो गये हैं ।

महेन्द्र लगभग दो वर्ष से श्रीरामकृष्ण के पास आया-जाया करते हैं और उनका दर्शन तथा कृपा प्राप्त कर रहे हैं । श्रीराम-कृष्ण उन्हें तथा अन्य भक्तों से सदा ही कहते हैं, "ईश्वर निराकार और फिर साकार भी हैं । भक्त के लिए वे देह धारण करते हैं ।" जो लोग निराकारवादी हैं उनसे वे कहते हैं, "तुम्हारा जो विश्वास है उसे ही रखो । परन्तु यह जान लेना कि उनके लिए सभी कुछ सम्भव है । साकार और निराकार ही क्या, वे और भी बहुत-कुछ

बन सकते हैं।"

श्रीरामकृष्ण (महेन्द्र के प्रति)–तुमने तो एक को पकड़ लिया है--निराकार!

महेन्द्र–जी हाँ, परन्तु जैसा कि आप कहते हैं, सभी सम्भव है। साकार भी सम्भव है।

श्रीरामकृष्ण–बहुत अच्छा, और यह भी जानो कि वे चैतन्य रूप में चराचर विश्व में व्याप्त हैं।

महेन्द्र–मैं समझता हूँ कि वे चेतन के भी चेतयिता हैं।

श्रीरामकृष्ण–अब उसी भाव में रहो। खींचतान करके भाव बदलने की आवश्यकता नहीं है। धीरे धीरे जान सकोगे कि वह चेतनता उन्हीं की चेतनता है। वे ही चैतन्यस्वरूप हैं।

"अच्छा, तुम्हारा धन-दौलत पर मोह है?"

महेन्द्र–जी नहीं! परन्तु हाँ, इतना अवश्य सोचता हूँ कि निश्चिन्त होने के लिए--निश्चिन्त होकर भगवान् का चिन्तन करने के लिए धन की आवश्यकता होती है।

श्रीरामकृष्ण–वह तो होगी ही!

महेन्द्र–क्या यह लोभ है? मैं तो ऐसा नहीं समझता।

श्रीरामकृष्ण–हाँ, ठीक है। नहीं तो तुम्हारे बच्चों को कौन देखेगा?

"यदि तुम्हें 'मैं अकर्ता हूँ' यह ज्ञान हो जाय तो फिर तुम्हारे लड़कों का क्या होगा?"

महेन्द्र–सुना है, कर्तव्य का बोध रहते ज्ञान नहीं होता। कर्तव्य मानो प्रखर सूर्य है।

श्रीरामकृष्ण–अब उसी भाव में रहो। इसके बाद जब यह कर्तव्यबुद्धि स्वयं ही चली जायगी तब फिर दूसरी बात है।

सभी थोड़ी देर चुप रहे।

महेन्द्र–केवल थोड़ा ही ज्ञानलाभ होने से तो संसार और भी कष्टप्रद है। यह तो ऐसा होता है मानो होशसहित मृत्यु। जैसे—हैजा!

श्रीरामकृष्ण–राम! राम!

सम्भवत: इस कथन से महेन्द्र का तात्पर्य यह है कि मृत्यु के समय होश रहने पर अत्यधिक यन्त्रणा का अनुभव होता है, जैसे हैजे में होता है। थोड़े ज्ञानवाले का सांसारिक जीवन बड़ा दु:खमय होता है; क्योंकि वह यह समझ गया है कि संसार भ्रमात्मक है। अविद्या का संसार मानो दावाग्नि के सदृश है। सम्भव है इसीलिए श्रीरामकृष्ण 'राम! राम!' कर रहे हैं!

महेन्द्र–और दूसरी श्रेणी के लोग, जो पूर्ण अज्ञानी हैं, वे मानो मियादी बुखार से पीड़ित हैं। वे मृत्यु के समय बेहोश हो जाते हैं और इससे उन्हें मृत्यु की यन्त्रणा का अनुभव नहीं होता।

श्रीरामकृष्ण–देखो न, धन रहने से भी क्या! जयगोपाल सेन कितने धनी हैं, परन्तु हैं दु:खी, लड़के उन्हें उतना नहीं मानते।

महेन्द्र–संसार में क्या केवल निर्धनता ही दु:ख है? इसके अतिरिक्त छ: रिपु भी हैं और फिर उनके ऊपर रोग-शोक।

श्रीरामकृष्ण–फिर मान-मर्यादा, लोकमान्य बनने की इच्छा। "अच्छा, मेरा क्या भाव है?"

महेन्द्र–नींद खुल जाने पर मनुष्य का जो भाव होता है वही। उसे स्वयं का होश आ जाता है। ईश्वर के साथ सदा योग है।

श्रीरामकृष्ण–तुम मुझे स्वप्न में देखते हो?

महेन्द्र–हाँ, कई बार!

श्रीरामकृष्ण–कैसा? कुछ उपदेश देते देखते हो?

महेन्द्र चुप रह गये ।

श्रीरामकृष्ण—जब जब में तुम्हें शिक्षा देता दिखायी दूं तो यही समझो कि स्वयं सच्चिदानन्द ही यह कार्य कर रहे हैं ।

इसके बाद महेन्द्र ने स्वप्न में जो कुछ देखा था सभी कह सुनाया । श्रीरामकृष्ण ने मन लगाकर सभी सुना ।

श्रीरामकृष्ण (महेन्द्र के प्रति)—यह सब बहुत अच्छा है । तुम और तर्क-विचार न लाओ ! तुम लोग शाक्त हो !

परिच्छेद ५६

अधर के मकान पर दुर्गापूजा-महोत्सव में

(१)

जगन्माता के साथ वार्तालाप

श्री अधर के मकान पर नवमी-पूजा के दिन दालान में श्रीरामकृष्ण खड़े हैं। सन्ध्या के बाद श्रीदुर्गामाई की आरती देख रहे हैं। अधर के घर पर दुर्गापूजा का महोत्सव है। इसलिए वे श्रीरामकृष्ण को निमन्त्रित करके लाये हैं।

आज बुधवार है। १० अक्टूबर १८८३ ई०। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ पधारे हैं। उनमें बलराम के पिता तथा अधर के मित्र स्कूल-इन्स्पेक्टर सारदाबाबू भी आये हैं। अधर ने पूजा के उपलक्ष्य में पड़ोसी तथा आत्मीयजनों को भी निमन्त्रण दिया है। वे भी आये हैं।

श्रीरामकृष्ण सध्या की आरती देखकर भावविभोर होकर पूजा के दालान में खड़े हैं। भावाविष्ट होकर माँ को गाना सुना रहे हैं।

अधर गृही भक्त हैं। और भी अनेक गृही भक्त उपस्थित हैं। वे सब त्रितापों से तापित हैं। सम्भव है इसीलिए श्रीरामकृष्ण सभी के मंगल के लिए जगन्माता की स्तुति कर रहे हैं।

(संगीत का भावार्थ)—"हे तारिणि! मुझे तारो। अब की बार शीघ्र तारो। हे माँ, जीवगण यम से भयभीत हो गये हैं। हे जगज्जननि! संसार को पालनेवाली! लोगों को मोहनेवाली जगज्जननि! तुमने यशोदा की कोख में जन्म लेकर हरि की

लीला में सहायता की थी; तुमने वृन्दावन में राधा बन व्रजवल्लभ के साथ विहार किया। रास रचकर रसमयी तुमने रासलीला का प्रकाश किया। हे माँ, तुम गिरिजा हो, गोपतनया हो, गोविन्द की मनमोहिनी हो, तुम सद्‌गति देनेवाली गंगा हो। हे गौरि, सारा विश्व तुम्हारा गुणगान गाता है। हे शिवे! हे सनातनि! सदानन्दमयी सर्वस्वरूपिणि! हे निर्गुणे, हे सगुणे! हे सदाशिव की प्रिये! तुम्हारी महिमा को कौन जानता है!"

श्रीरामकृष्ण अधर के मकान के दुमँजले पर बैठकघर में बैठे हैं। कमरे में अनेक आमन्त्रित व्यक्ति आये हैं।

बलराम के पिता और सारदाबाबू आदि पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण अभी भी भावविभोर हैं। आमन्त्रित व्यक्तियों को सम्बोधित कर कह रहे हैं, "मैंने भोजन कर लिया है; अब तुम लोग भी भोजन करो।"

अधर की पूजा और नैवेद्य को माँ ने ग्रहण किया है; क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण जगन्माता के आवेश में आकर कह रहे हैं, 'मैंने खा लिया है; अब तुम लोग भी प्रसाद पाओ'?

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर जगन्माता से कह रहे हैं, "माँ! मैं खाऊँ? या तुम खाओगी? माँ, कारणानन्दरूपिणी।"

क्या श्रीरामकृष्ण जगन्माता को और अपने को एक ही देख रहे हैं! जो माँ हैं, क्या वही स्वयं लोकशिक्षा के लिए पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुई हैं? क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण भाव के आवेश में कह रहे हैं, मैंने भोजन कर लिया है?

इसी प्रकार भाव के आवेश में देह के बीच षट्‌चक्र और उसमें माँ को देख रहे हैं। इसलिए फिर भावविभोर होकर गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"हे माँ हरमोहिनी, तूने संसार को भुलावे में डाल रखा है। मूलाधार महाकमल में तू वीणावादन करती हुई चित्तविनोदन करती है। महामन्त्र का अवलम्बन कर तू शरीर-रूपी यन्त्र के सुषुम्नादि तीन तारों में तीन गुणों के अनुसार तीन ग्रामों में संचरण करती है। मूलाधारचक्र में तू भैरव राग के रूप में अवस्थित है; स्वाधिष्ठानचक्र के षड्दल कमल में तू श्री राग तथा मणिपूरचक्र में मल्हार राग है। तू वसन्त राग के रूप में हृदयस्थ अनाहतचक्र में प्रकाशित होती है। तू विशुद्धचक्र में हिण्डोल तथा आज्ञाचक्र में कर्णाटक राग है। तान-मान-लय-सुर के सहित तू मन्द्र-मध्य-तार इन तीन सप्तकों का भेदन करती है। हे महामाया, तूने मोहपाश के द्वारा सब को अनायास बाँध लिया है। तत्त्वाकाश में तू मानो स्थिर सौदामिनी की तरह विराजमान है। 'नन्दकुमार' कहता है कि तेरे तत्त्व का निश्चय नहीं किया जा सकता। तीन गुणों के द्वारा तूने जीव की दृष्टि को आच्छादित कर रखा है।"

(भावार्थ)—"माँ के गूढ़ तत्त्वों को सोचते सोचते प्राणों पर आ बीती। जिसके नाम से कालभय नष्ट होता है, जिसके चरणों के नीचे महाकाल है, उसका काला रूप क्यों हुआ? काले रूप अनेक हैं, पर यह बड़ा आश्चर्यजनक काला रूप है, जिसे हृदय के बीच में रखने पर हृदयरूपी पद्म आलोकित हो जाता है। रूप में काली है, नाम में काली है, काले से भी अधिक काली है। जिसने इस रूप को देखा है, वह मोहित हो गया है, उसे दूसरा रूप अच्छा नहीं लगता। 'प्रसाद' आश्चर्य के साथ कहता है कि ऐसी लड़की कहाँ थी, जिसे बिना देखे, केवल कान से जिसका नाम सुनकर ही

मन जाकर उससे लिप्त हो गया !"

अभया की शरण में जाने से सभी भय दूर हो जाते हैं, सम्भव है इसीलिए वे भक्तों को अभयदान दे रहे हैं और गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"मैंने अभय पद में प्राणों को सौंप दिया है" इत्यादि।

श्री सारदाबाबू पुत्रशोक से अत्यन्त व्यथित हैं। इसलिए उनके मित्र अधर उन्हें श्रीरामकृष्ण के पास लाये हैं। वे गौरांग के भक्त हैं। उन्हें देखकर श्रीरामकृष्ण में श्रीगौरांग का उद्दीपन हुआ है। श्रीरामकृष्ण गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"मेरा अंग क्यों गौर हुआ ?" इत्यादि।

अब श्रीगौरांग के भाव में आविष्ट हो गाना गा रहे हैं। कह रहे हैं, सारदाबाबू यह गाना बहुत चाहते हैं।

(भावार्थ)—"भावनिधि गौरांग का भाव होगा नहीं तो क्या ? भाव में हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, गाते हैं। वन देखकर वृन्दावन समझते हैं। गंगा देख उसे यमुना मान लेते हैं। गौरांग सिसक-सिसककर रो रहे हैं। यद्यपि वे बाहर 'गौर' हैं तथापि भीतर वे 'कृष्ण' हैं।

(भावार्थ)—"माँ ! पड़ोसी लोग हल्ला मचाते हैं। मुझे गौर-कलंकिनी कहते हैं ? क्या यह कहने की बात है ? कहाँ कहूंगी ? ओ प्यारी सखि, लज्जा से मरी जाती हूँ। एक दिन श्रीवास के मकान में कीर्तन की धूम मची हुई थी; गौररूपी चन्द्रमा श्रीवास के आँगन पर लोटपोट हो रहा था। मैं एक कोने में खड़ी थी। एक ओर छिपी हुई थी। मैं बेहोश हो गयी। श्रीवास की धर्मपत्नी मुझे होश में लायी। एक दिन गौर नगरकीर्तन कर रहे थे; चाण्डाल, यवन आदि भी गौर के साथ थे। वे 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहते हुए

नदिया के बाजारों में से चले जा रहे थे। मैंने उनके साथ जाकर दो रक्तिम चरणों के दर्शन किये थे। एक दिन गंगातट पर घाट पर गौरांग प्रभु खड़े थे। मानो चन्द्र और सूर्य दोनों ही गौर के अंग में प्रकट हुए थे। गौर के रूप को देखकर शाक्त और शैव भूल गये। एकाएक मेरा घड़ा गिर पड़ा! दुष्ट ननदिया ने देख लिया था।"

बलराम के पिता वैष्णव हैं; सम्भव है इसीलिए अब श्रीरामकृष्ण गोपियों के दिव्य प्रेम का गाना गा रहे हैं।

(भावार्थ)—"सखि! श्याम को पा न सकी, तो फिर किस सुख से घर पर रहूँ? यदि श्याम मेरे सिर के केश होते तो हे सखि, मैं उसमें बकुल फूल पिरोकर यत्न के साथ वेणी बाँध लेती। श्याम यदि मेरे हाथ के कंगन होते, तो सदा बाँहों में लगे रहते। सखि, मैं कंगन हिलाकर, बाँह हिलाकर चली जाती। हे सखि! मैं श्यामरूपी कंगन को हाथ में पहनकर सड़कों पर से चली जाती। जिस समय श्याम अपनी बाँसुरी बजाता है, तो मैं यमुना में जल लेने आती हूँ। मैं भटकी हुई हरिणी की तरह इधर-उधर ताकती रहती हूँ।"

(२)

सर्वधर्म-समन्वय और श्रीरामकृष्ण

बलराम के पिता की उड़ीसा प्रान्त में भद्रक आदि कई स्थानों में जमींदारी है और वृन्दावन, पुरी, भद्रक आदि अनेक स्थानों में उनकी देवसेवा और अतिथिशालाएँ भी हैं। वे वृद्धावस्था में श्रीवृन्दावन में भगवान् श्यामसुन्दर के कुंज में उनकी सेवा में लगे रहते थे।

बलराम के पिताजी पुराने मत के वैष्णव हैं। अनेक वैष्णव भक्त शाक्त, शैव और वेदान्तवादियों के साथ सहानुभूति नहीं रखते हैं; कोई कोई उनसे द्वेष भी करते हैं। परन्तु श्रीरामकृष्ण इस प्रकार की संकीर्णता पसन्द नहीं करते। उनका कहना है कि

व्याकुलता रहने पर सभी पथों तथा सभी मतों से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है । अनेक वैष्णव भक्त बाहर से तो जप-जाप, पूजा-पाठ आदि करते हैं, परन्तु भगवान् को प्राप्त करने के लिए उनमें व्याकुलता नहीं है । सम्भव है इसीलिए श्रीरामकृष्ण बलराम के पिताजी को उपदेश दे रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति)--सोचा, क्यों एकांगी बनूँ ? मैंने भी वृन्दावन में वैष्णव वैरागी का भेष ग्रहण किया था । उस भाव में तीन दिन रहा । फिर दक्षिणेश्वर में राम-मन्त्र लिया था । लम्बा तिलक, गले में कण्ठी; फिर थोड़े दिनों के बाद सब कुछ हटा दिया

"एक आदमी के पास एक बर्तन था । लोग उसके पास कपड़ा रँगवाने के लिए जाते थे । बर्तन में एक रंग तैयार रहता । परन्तु जिसे जिस रंग की आवश्यकता होती, उस बर्तन में कपड़ा डुबाने से वह उसी रंग का हो जाता । यह देखकर एक व्यक्ति विस्मित होकर रंगवाले से कहता है कि तुम स्वयं जिस रंग से रँगे हो वही रंग मुझे दो !"

क्या इस उदाहरण द्वारा श्रीरामकृष्ण यही कह रहे हैं कि सभी धर्मों के लोग उनके पास आयेंगे और आत्मज्ञान प्राप्त करेंगे ?

श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं, "एक वृक्ष पर एक गिरगिट था ! एक व्यक्ति ने देखा हरा, दूसरे ने देखा काला और तीसरे ने पीला, इस प्रकार अलग अलग व्यक्ति अलग अलग रंग देख गये । बाद में वे आपस में विवाद कर रहे हैं । एक कहता है, वह जन्तु हरे रंग का है । दूसरा कहता है, नहीं लाल रंग का, कोई कहता है पीला, और इस प्रकार आपस में सब झगड़ रहे हैं । उस समय वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति बैठा था, सब मिलकर उसके पास गये । उसने कहा, 'मैं इस वृक्ष के नीचे रातदिन रहता हूँ, मैं जानता हूँ, यह बहुरुपिया

है। क्षण क्षण में रंग बदलता है, और फिर कभी कभी इसके कोई रंग नहीं रहता।' "

क्या श्रीरामकृष्ण यही कह रहे हैं कि ईश्वर सगुण है, भिन्न भिन्न रूप धारण करता है और फिर निर्गुण है, कोई रूप नहीं, वाक्य मन से परे है ? और वे स्वयं भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि सभी पथों से ईश्वर के माधुर्य का रस पीते हैं ?

श्रीरामकृष्ण (बलराम के पिता के प्रति)—और अधिक पुस्तकें न पढ़ो,परन्तु भक्तिशास्त्र का अध्ययन करो,जैसे श्रीचैतन्यचरितामृत।

राधाकृष्ण-लीला का अर्थ। रस और रसिक

"असल बात यह है कि उनसे प्रेम करना चाहिए, उनके माधुर्य का आस्वादन करना चाहिए। वे रस हैं और भक्त रसिक ; भक्त उस रस का पान करते हैं। वे पद्म हैं और भक्त भौंरा, भक्त पद्म का मधु पीता है।

"भक्त जिस प्रकार भगवान् के बिना नहीं रह सकता, भगवान् भी भक्त के बिना नहीं रह सकते ! उस समय भक्त रस बन जाता है और भगवान् बनते हैं रसिक; भक्त बनता है पद्म और भगवान् बनते हैं भौंरा ! वे अपने माधुर्य का आस्वादन करने के लिए दो बने हैं, इसीलिए राधाकृष्ण-लीला हुई।

"तीर्थ, गले में माला, नियम, ये सब पहले-पहल करने पड़ते हैं। वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर, भगवान् का दर्शन हो जाने पर बाहर का आडम्बर धीरे धीरे कम होता जाता है। उस समय उनका नाम लेकर रहना और स्मरण-मनन करना।

"सोलह रुपयों के पैसे अनेक होते हैं, परन्तु जब सोलह रुपये इकट्ठे किये जाते हैं, तो उतने अधिक नहीं दीखते। फिर उनके

बदले में जब गिन्नी§ बनायी तो कितना कम हो गया! फिर उसे बदल-कर यदि छोटासा हीरा लाओ तो लोगों को पता तक नहीं लगता।'

गले में माला, नियम आदि न रहने से वैष्णवगण आक्षेप करते हैं, क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं कि ईश्वरदर्शन के बाद माला, दीक्षा आदि का बन्धन उतना नहीं रह जाता ? वस्तु प्राप्त होने पर बाहर का काम कम हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण (बलराम के पिता के प्रति)—"कर्ताभजा सम्प्रदायवाले कहते हैं कि भक्त चार प्रकार के होते हैं। प्रवर्तक, साधक, सिद्ध और सिद्ध का सिद्ध। प्रवर्तक तिलक लगाते हैं, गले में माला धारण करते हैं और नियम पालन करते हैं। साधक—इनका उतना बाहर का आडम्बर नहीं रहता; उदाहरणार्थ, बाउल। सिद्ध—जिसका स्थिर विश्वास है कि ईश्वर हैं। सिद्ध के सिद्ध जैसे चैतन्यदेव, उन्होंने ईश्वर का दर्शन किया है और सदा उनसे वार्तालाप करते हैं। सिद्ध के सिद्ध को ही वे लोग साँई कहते हैं। साईं के बाद और कुछ नहीं रह जाता।

"साधक भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। सत्त्विक साधना गुप्त रूप से होती है। इस प्रकार का साधक साधन-भजन को छिपाता है। देखने से वह साधारण लोगों की तरह जान पड़ता है। मच्छरदानी के भीतर बैठा ध्यान करता है।

"राजसिक साधक बाहर का आडम्बर रखता है, गले में जपमाला, भेष, गेरुआ वस्त्र, रेशमी वस्त्र, सोने के दानेवाली जपमाला, मानो साइनबोर्ड लगाकर बैठना!"

वैष्णव भक्तों की वेदान्तमत पर अथवा शाक्तमत पर उतनी

§ उस समय एक गिन्नी का मूल्य सोलह रुपये था।

श्रद्धा नहीं है। श्रीरामकृष्ण बलराम के पिता को उस प्रकार के संकीर्ण भाव को त्यागने का उपदेश कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (बलराम के पिता आदि के प्रति)—जो भी धर्म हो, जो भी मत हो, सभी उसी एक ईश्वर को पुकार रहे हैं। इसलिए किसी धर्म अथवा मत के प्रति अश्रद्धा या घृणा नहीं करनी चाहिए। वेद उन्हें ही कह रहे हैं, सच्चिदानन्द ब्रह्म, भागवत आदि पुराण उन्हें ही कह रहे हैं, सच्चिदानन्द कृष्ण, और तन्त्र कह रहे हैं, सच्चिदानन्द शिव। वही एक सच्चिदानन्द हैं।

"वैष्णवों के अनेक सम्प्रदाय हैं। वेद जिन्हें ब्रह्म कहते हैं, वैष्णवों का एक दल उन्हें अलख-निरंजन कहता है। अलख अर्थात् जिन्हें लक्ष्य नहीं किया जा सकता, इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जा सकता। वे कहते हैं, राधा और कृष्ण अलख के दो बुलबुले हैं।

"वेदान्तमत में अवतार नहीं है। वेदान्तवादी कहते हैं, राम, कृष्ण,—ये सच्चिदानन्दरूपी समुद्र की दो लहरें हैं।

"एक के अतिरिक्त दो तो नहीं हैं, चाहे जिस नाम से कोई ईश्वर को पुकारे, यदि वह पुकार हार्दिक हो तो वह उसके पास अवश्य ही पहुँचेगी। व्याकुलता रहनी चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर होकर भक्तों से ये सब बातें कह रहे हैं। अब प्रकृतिस्थ हुए हैं और कह रहे हैं, "तुम बलराम के पिता हो ?"

सभी थोड़ी देर चुपचाप बैठे हैं, बलराम के वृद्ध पिता चुपचाप हरिनाम की माला जप रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर आदि के प्रति)—अच्छा, ये लोग इतना जप करते हैं, इतना तीर्थ करते हैं, फिर भी इनकी प्रगति क्यों नहीं होती ? मानो अठारह मास का इनका एक वर्ष होता है।

"हरीश से कहा, 'यदि व्याकुलता न रहे, तो फिर वाराणसी जाने की क्या आवश्यकता? व्याकुलता रहने पर यहीं पर वाराणसी है।

"इतना तीर्थ, इतना जप करते हैं, फिर भी कुछ क्यों नहीं होता? व्याकुलता नहीं है। व्याकुल होकर उन्हें पुकारने पर वे दर्शन देते हैं।

"नाटक के प्रारम्भ में रंगभूमि पर बड़ी गड़बड़ी मची रहती है। उस समय श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं होता। उसके बाद नारद ऋषि जिस समय व्याकुल होकर वृन्दावन में आकर वीणा बजाते हुए पुकारते हैं और कहते हैं, 'प्राण हे, गोविन्द मम जीवन'--उस समय कृष्ण और ठहर नहीं सकते, गोपालों के साथ सामने आ जाते हैं।"

परिच्छेद ५७

दक्षिणेश्वर में कार्तिकी पूर्णिमा

(१)

श्रीरामकृष्ण की अद्‌भुत स्थिति—नित्य-लीलायोग

आज मंगलवार, १६ अक्टूबर १८८३ ई०। बलराम के पिता दूसरे भक्तों के साथ उपस्थित हैं। बलराम के पिता परम वैष्णव हैं। हाथ में हरिनाम की माला रहती है, सदा जप करते रहते हैं।

कट्टर वैष्णवगण अन्य सम्प्रदाय के लोगों को उतना पसन्द नहीं करते। बलराम के पिता बीच बीच में श्रीरामकृष्ण का दर्शन करते हैं, उनका उन वैष्णवों का-सा भाव नहीं है।

श्रीरामकृष्ण—जिनका उदार भाव है वे सभी देवताओं को मानते हैं,—कृष्ण, काली, शिव, राम आदि।

बलराम के पिता—हाँ, जिस प्रकार एक पति, अलग अलग पोशाक में।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु निष्ठाभक्ति एक चीज है। गोपियाँ जब मथुरा में गयीं तो पगड़ी पहने हुए कृष्ण को देखकर उन्होंने घूँघट काढ़ लिया और कहा, 'यह कौन है! हमारे पीतवस्त्रधारी, मोहनचूड़ावाले श्रीकृष्ण कहाँ हैं?'

"हनुमान की भी निष्ठाभक्ति है। द्वापर युग में द्वारका में जब आये तो कृष्ण ने रुक्मिणी से कहा, 'हनुमान रामरूप न देखने से सन्तुष्ट न होगा।' इसलिए रामरूप में उन्हें दर्शन दिया!

"कौन जाने भाई, मेरी यही एक स्थिति है। मैं केवल नित्य से लीला में उतर आता हूँ और फिर लीला से नित्य में चला जाता हूँ।

"नित्य में पहुँचने का नाम है ब्रह्मज्ञान । बड़ा कठिन है। विषयबुद्धि एकदम नष्ट हुए बिना कुछ नहीं होता । हिमालय के घर जब भगवती ने जन्म लिया तो पिता को अनेक रूपों में दर्शन दिया । हिमालय ने उनसे कहा, 'मैं ब्रह्मदर्शन की इच्छा करता हूँ ।' तब भगवती ने कहा, 'पिताजी, यदि वैसी इच्छा हो तो सत्संग करना पड़ेगा । संसार से अलग होकर बीच बीच में निर्जन में साधुसंग कीजिये ।'

"उस एक से ही अनेक हुए हैं—नित्य से ही लीला है । एक ऐसी अवस्था है जिसमें 'अनेक' का बोध नहीं रहता और न 'एक' का ही; क्योंकि 'एक' के रहते ही 'अनेक' आ जाता है । वे तो उपमाओं से रहित हैं—उन्हें उपमा देकर समझाने का उपाय नहीं है ! अन्धकार और प्रकाश के मध्य में हैं । हम जिस प्रकाश को देखते हैं, ब्रह्म वह प्रकाश नहीं है—ब्रह्म यह जड़ आलोक नहीं है ।†

"फिर जब वे मेरे मन की अवस्था को बदल देते हैं—जिस समय लीला में मन को उतार लाते हैं—तब देखता हूँ ईश्वर, माया, जीव, जगत्—वे सब कुछ बने हुए हैं ।

"फिर कभी वे दिखाते हैं कि उन्होंने इस सब जीव-जगत् को बनाया है—जैसे मालिक और उसका बगीचा ।

"वे कर्ता हैं और उन्हीं का यह सब जीव-जगत् है, इसी का नाम है ज्ञान । और 'मैं करनेवाला हूँ', 'मैं गुरु हूँ', 'मैं पिता हूँ', इसी का नाम है अज्ञान । फिर मेरे हैं ये सब घर-द्वार, परिवार, धन, जन आदि—इसी का नाम है अज्ञान ।"

---

† ब्रह्म यह जड़ आलोक नहीं है—'तत् ज्योतिषां ज्योतिः ।' "तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यत् आत्मविदो विदुः ।" —मुण्डक उपनिषद्, २।२।९

बलराम के पिता--जी हाँ ।

श्रीरामकृष्ण--जब तक यह बुद्धि नहीं होती कि 'ईश्वर, तुम्हीं कर्ता हो' तब तक बारम्बार लौटकर आना ही होगा, बारम्बार जन्म लेना पड़ेगा । फिर जब यह ज्ञान हो जायगा कि तुम्हीं कर्ता हो, तब जन्म नहीं होगा ।

"जब तक 'तू ही, तू ही' न करोगे तब तक छुटकारा नहीं । आना-जाना, पुनर्जन्म होगा ही--मुक्ति न होगी । और 'मेरा मेरा' कहने से भी क्या होगा ? बाबू का मुनीम कहता है, 'यह हमारा बगीचा है, हमारी खाट, हमारी कुर्सी है ।' परन्तु बाबू जब उसे नौकरी से निकाल देते हैं तो अपनी आम की लकड़ी की छोटीसी सन्दूकची तक ले जाने का उसे अधिकार नहीं रहता ।

" 'मैं और मेरा' ने सत्य को छिपा रखा है--जानने नहीं देता!

अद्वैतज्ञान तथा चैतन्यदर्शन

"अद्वैत का ज्ञान हुए बिना चैतन्य का दर्शन नहीं होता । चैतन्य का दर्शन होने पर तब नित्यानन्द होता है । परमहंसस्थिति में यही नित्यानन्द है ।

"वेदान्तमत में अवतार नहीं है । इस मत में चैतन्यदेव अद्वैत के एक बुलबुला हैं ।

"चैतन्य का दर्शन कैसा ? दियासलाई जलाने से अँधेरे कमरे में, जिस प्रकार एकाएक रोशनी हो जाती है ।

भक्तिमत में अवतार मानते हैं । कर्ताभजा सम्प्रदाय की एक स्त्री मेरी स्थिति को देखकर कह गयी, 'बाबा, भीतर वस्तुप्राप्ति हुई है, उतना नाचना-कूदना नहीं, अंगूर के फ़ल को रुई पर यत्न से रखना होता है । पेट में बच्चा होने पर सास अपनी बहू का धीरे धीरे काम बन्द करा देती है । भगवान् के दर्शन का लक्षण

है, धीरे धीरे कर्मत्याग होना। यह मनुष्य (श्रीरामकृष्ण) 'नर-रत्न' है।'

"मेरे खाते समय वह कहती थी, 'बाबा, तुम खा रहे हो या किसी को खिला रहे हो ?'

"इस 'अहं'ज्ञान ने ही आवरण बनाकर रखा है। नरेन्द्र ने कहा था, यह 'मैं' जितना जायगा, 'उनका मैं' उतना ही आयगा। केदार कहता है, घड़े के भीतर जितनी ही अधिक मिट्टी रहेगी' अन्दर उतना ही जल कम रहेगा।

"कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'भाई, अष्टसिद्धियों में से एक भी सिद्धि के रहते तक मुझे न पाओगे। उससे थोड़ीसी शक्ति अवश्य मिल जाती है, पर बस केवल इतना ही। गुटिकासिद्धि,झाड़-फूंक, दवा देना इत्यादि से लोगों का कुछ थोड़ा-बहुत उपकार भर हो जाता है क्यों है न यही ?

"इसीलिए माँ से मैंने केवल शुद्धा भक्ति माँगी थी; सिद्धि नहीं माँगी।"

वलराम के पिता, वेणी पाल, मास्टर, मणि मल्लिक आदि से यह बात कहते कहते श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गये। बाह्य-ज्ञानशून्य होकर चित्र की तरह बैठे हैं।

समाधि भंग हो जाने के बाद श्रीरामकृष्ण गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"सखि! जिसके लिए पागल बनी उसे कहाँ पा सकी ?"

अब आपने रामलाल से गाना गाने के लिए कहा। वे गा रहे हैं। पहले ही गौरांग का संन्यास—

(भावार्थ)—"केशवभारती की कुटिया में मैंने क्या देखा—असाधारण ज्योतिवाली श्रीगौरांग की मूर्ति, जिसकी दोनों आँखों

से शत धाराओं से प्रेमवारि बह रहा है। गौर पागल हाथी की तरह प्रेम के आवेश में आकर नाचते हैं, गाते हैं; कभी भूमि पर लोटते हैं। आँसू बह रहे हैं। वे रोते हैं और हरिनाम उच्चारण करते हैं, उनका सिंह जैसा उच्च स्वर आकाश को भी भेद रहा है। फिर वे दाँतों में तिनका लेकर हाथ जोड़कर द्वार द्वार पर दास्यभाव द्वारा मुक्ति की प्रार्थना कर रहे हैं।"

चैतन्यदेव के इस 'पागल' प्रेमोन्माद-स्थिति के वर्णन के बाद श्रीरामकृष्ण के कहने पर रामलाल फिर गोपियों की उन्माद स्थिति का गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"रथचक्र को न पकड़ो, न पकड़ो, क्या रथ चक्र से चलता है? उस चक्र के चक्री हरि हैं, जिनके चक्र से जगत् चलता है।"

(भावार्थ)—"श्यामरूपी चन्द्र का दर्शन कर नवीन बादल की कहाँ गिनती है? हाथ में बंसरी और ओठों पर मुसकान लिये वह अपने रूप से जगत् को आलोकित कर रहा है।"

(२)

अछूतों की समस्या—अस्पृश्य जाति की हरिनाम से शुद्धि

हरिभक्ति होने पर फिर जाति का विचार नहीं रहता। श्रीरामकृष्ण मणि मल्लिक से कह रहे हैं, "तुम तुलसीदास की वह बात कहो तो।"

मणि मल्लिक—चातक की प्यास से छाती फटी जाती है—गंगा, यमुना, सरयू आदि कितनी नदियाँ और तालाब हैं, परन्तु वह कोई भी जल नहीं पीता, केवल स्वाति नक्षत्र की वर्षा के जल के लिए ही मुँह खोले रहता है!

श्रीरामकृष्ण—अर्थात् उनके चरणकमलों में भक्ति ही सार है

शेष सब मिथ्या ।

मणि मल्लिक–तुलसीदास की एक और बात––स्पर्शमणि से लगते ही, अष्टधातु सोना बन जाती है। उसी प्रकार सभी जातियाँ––चमार, चाण्डाल तक हरिनाम लेने पर शुद्ध हो जाती हैं। और वैसे तो 'बिना हरिनाम चार जात चमार' !

श्रीरामकृष्ण–जिस चमड़े की खाल छूनी भी नहीं चाहिए, उसी को पका लेने के बाद फिर देवमन्दिर में भी ले जाते हैं !

"ईश्वर के नाम से मनुष्य पवित्र होता है। इसीलिए नाम-संकीर्तन का अभ्यास करना चाहिए। मैंने यदु मल्लिक की माँ से कहा था, 'जब मृत्यु आयगी, तब यही संसार की चिन्ता होगी। परिवार, लड़के-लड़कियों की चिन्ता, मृत्युपत्र की चिन्ता––यही सब चिन्ताएँ आयेंगी; भगवान् की चिन्ता न आयगी। उपाय है उनके नाम का जप करना, नाम-कीर्तन का अभ्यास करना। यदि अभ्यास रहा, तो मृत्यु के समय में उन्हीं का नाम मुँह में आयगा। बिल्ली के पकड़ने पर चिड़िया की 'च्याँ, च्याँ' बोली ही निकलेगी। उस समय वह 'राम राम' 'हरे कृष्ण' न बोलेगी।'

"मृत्युसमय के लिए तैयार होना अच्छा है। अन्तिम दिनों में निर्जन में जाकर केवल ईश्वर का चिन्तन तथा उनका नाम जपना। हाथी को नहलाकर यदि हाथीखाने में ले जाया जाय तो फिर वह अपनी देह में मिट्टी-कीचड़ नहीं लगा सकता।"

बलराम के पिता, मणि मल्लिक, वेणी पाल ये अब वृद्ध हो गये हैं; क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण उनके कल्याण के लिए ये सब उपदेश दे रहे हैं ?

श्रीरामकृष्ण फिर भक्तों को सम्बोधित करके वातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण–एकान्त में उनका चिन्तन और नामस्मरण करने

के लिए क्यों कहता हूं ? संसार में रातदिन रहने पर अशान्ति होती है। देखो न, एक गज जमीन के लिए भाई भाई में मारकाट होती है।

"सिक्खों का कहना है कि जमीन, स्त्री और धन—इन्हीं तीनों के लिए इतनी गड़बड़ तथा अशान्ति होती है!

"तुम लोग संसार में हो तो इसमें भय क्या है ? राम ने जब संसार छोड़ने की बात कही, तो दशरथ चिन्तित होकर वशिष्ठ की शरण में गये। वशिष्ठ ने राम से कहा, 'राम, तुम क्यों संसार को छोड़ोगे ? मेरे साथ विचार करो, क्या संसार ईश्वर से अलग है ? क्या छोड़ोगे और क्या ग्रहण करोगे ? उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वे ईश्वर, माया, जीव, जगत् सभी रूप में प्रकट हो रहे हैं।' "

बलराम के पिता—बड़ा कठिन है।

श्रीरामकृष्ण—साधना के समय यह संसार धोखे की टट्टी है, फिर ज्ञान प्राप्त करने के बाद, उनके दर्शन के बाद, वही संसार —'आनन्द की कुटिया' है।

अवतार-पुरुष में ईश्वर का दर्शन। अवतार चैतन्यदेव

"वैष्णव-ग्रन्थ में कहा है, 'विश्वास से कृष्ण मिलते हैं, वे तर्क से बहुत दूर हैं।' केवल विश्वास!

"कृष्णकिशोर का क्या ही विश्वास है! वृन्दावन में कुएँ से एक नीच जाति के पुरुष ने जल निकाला; कृष्णकिशोर ने उससे कहा, 'तू बोल शिव'; उसके शिवनाम लेते ही उसने जल पी लिया। वह कहता था, 'ईश्वर का नाम लिया है, फिर भी धन आदि खर्च करके प्रायश्चित्त करना होगा ? कैसी बिड़म्बना है!'

"कृष्णकिशोर यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि लोग

अपने शारीरिक रोगों से छुटकारा पाने के लिए भगवान् को तुलसीदल चढ़ा रहे हैं।

"साधुदर्शन की बात पर हलधारी ने कहा था, 'और क्या देखने जाऊँ—पंचभूतों का पिंजरा !' कृष्णकिशोर ने क्रुद्ध होकर कहा, 'ऐसी बात हलधारी ने कही है ! क्या वह नहीं जानता कि साधुओं की देह चिन्मय होती है !'

"कालीबाड़ी के घाट पर हमसे कहा था, 'तुम लोग आशीर्वाद दो कि राम राम कहते मेरे दिन कट जायें !'

"मैं कृष्णकिशोर के मकान पर जब जाता था, तब मुझे देखते ही वह नाचने लगता था !

"श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा था, 'भाई, जहाँ पर ऊर्जित भक्ति देखोगे, जानो कि वहीं पर मैं हूँ ।'

"जैसे चैतन्यदेव; प्रेम से हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, गाते हैं। चैतन्यदेव अवतार हैं—उनके रूप में ईश्वर अवतीर्ण हुए हैं ।"

श्रीरामकृष्ण गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"भावनिधि श्रीगौरांग का भाव तो होगा ही, रे ! वे भावविभोर होकर हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, गाते हैं ! सिसक-सिसककर रोते हैं ।"

(३)

चित्तशुद्धि के बाद ईश्वरदर्शन

बलराम के पिता, मणि मल्लिक, वेणी पाल आदि बिदा ले रहे हैं ।

सायंकाल के बाद कंसारीपाड़ा की हरिसभा के भक्तगण आये हैं । उनके साथ श्रीरामकृष्ण मतवाले हाथी की तरह नृत्य कर रहे हैं । नृत्य के बाद भावविभोर होकर कह रहे हैं, "मैं कुछ दूर

अपने आप ही जाऊँगा ।"

किशोरी भावावस्था में चरणसेवा करने जा रहे हैं । श्रीराम-कृष्ण ने किसी को छूने नहीं दिया ।

सन्ध्या के बाद ईशान आये हैं । श्रीरामकृष्ण बैठे हैं—भाव-विभोर । थोड़ी देर बाद ईशान के साथ बात कर रहे हैं, ईशान की इच्छा है, गायत्री का पुरश्चरण करेंगे ।

श्रीरामकृष्ण (ईशान के प्रति)—तुम्हारे मन में जो है, वैसा ही करो, मन में और सन्देह तो नहीं रहा ?

ईशान—मैंने एक प्रकार प्रायश्चित्त की तरह संकल्प किया था ।

श्रीरामकृष्ण—इस पथ में (तन्त्रमार्ग में) क्या यह नहीं होता ? जो ब्रह्म है, वही शक्ति काली है । 'काली ही ब्रह्म है यह मर्म जानकर मैंने धर्माधर्म सब छोड़ दिया है ।'

ईशान—चण्डी-स्तोत्र में है, ब्रह्म ही आद्याशक्ति हैं । ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं ।

श्रीरामकृष्ण—यह मुँह से कहने से ही नहीं होगा । जब धारणा होगी तब ठीक होगा ।

"साधना के बाद चित्तशुद्धि होने पर यथार्थ ज्ञान होगा कि वे ही कर्ता हैं । वे ही मन-प्राण-बुद्धिरूप हैं । मैं केवल यन्त्ररूप हूँ ! 'तुम कीचड़ में हाथी को फँसा देते हो, लंगड़े से पहाड़ लँघवाते हो !'

"चित्तशुद्धि होने पर समझ में आयगा, पुरश्चरण आदि कर्म वे ही करवाते हैं । 'उनका काम वे ही करते हैं ; लोग कहते हैं, मैं करता हूँ ।'

"उनके दर्शन होने पर सभी सन्देह मिट जाते हैं। उस समय अनुकूल हवा बहती है। अनुकूल हवा बहने पर जिस प्रकार नाव का माँझी पाल उठाकर पतवार पकड़कर बैठा रहता है और तम्बाकू पीता है, उसी प्रकार भक्त निश्चिन्त हो जाता है।"

ईशान के चले जाने पर श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ एकान्त में बात कर रहे हैं; पूछ रहे हैं, "नरेन्द्र, राखाल, अधर, हाजरा, ये लोग तुम्हें कैसे लगते हैं, सरल हैं या नहीं? और मैं तुम्हें कैसा लगता हूं?" मास्टर कह रहे हैं, "आप सरल हैं, फिर गम्भीर भी! आपको समझना बहुत कठिन है!" श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं।

परिच्छेद ५८

ब्राह्मभक्तों के प्रति उपदेश

(१)

समाधि में

कार्तिक की कृष्णा एकादशी है, २६ नवम्बर १८८३ ई०। श्री मणिलाल मल्लिक के मकान में सिन्दूरिया-पट्टी ब्राह्मसमाज का अधिवेशन हुआ करता है। मकान चितपुर रास्ते पर है। समाज का अधिवेशन राजपथ के पास ही दुमंजले के सभागृह में हुआ करता है। आज समाज की वार्षिकी है; इसीलिए मणिलाल महोत्सव मना रहे हैं।

उपासनागृह आज आनन्दपूर्ण है, बाहर और भीतर हरे हरे पल्लवों, नाना प्रकार के फूलों और पुष्पमालाओं से सुशोभित हो रहा है। कमरे में भक्तगण बैठे हुए उपासना कब शुरू होगी इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कमरे के भीतर सब को जगह नहीं मिल पायी है, कई लोग पश्चिम ओरवाले छत पर टहल रहे हैं या जगह जगह पर रखी सुन्दर कुर्सियों पर बैठे हैं। बीच बीच में गृहस्वामी तथा उनके स्वजन आकर मधुर शब्दों से अभ्यागत भक्तों का स्वागत कर रहे हैं। शाम के पहले से ही ब्राह्मभक्तगण आने लगे हैं। उन्हें आज एक विशेष उत्साह है—वहाँ आज श्रीरामकृष्णदेव का शुभागमन होगा। केशव, विजय, शिवनाथ आदि ब्राह्मसमाज के भक्त नेताओं को श्रीरामकृष्णदेव बहुत प्यार करते थे। यही कारण है कि ब्राह्मभक्तों के वे इतने प्यारे हो गये थे।

वे भगवत्प्रेम में मस्त रहते हैं; उनका प्रेम, उनका प्रांजल विश्वास, ईश्वर के साथ बालक की तरह उनकी बातचीत, ईश्वर के लिए उनका व्याकुल होकर रोना, माता मानकर स्त्री-जाति की पूजा, उनका विषयप्रसंग-वर्जन, तैलधारावत् सदा ही ईश्वर-प्रसंग करते रहना, उनका सर्वधर्म-समन्वय और अन्य धर्मों के प्रति लेशमात्र भी द्वेषभाव का न रहना, भगवद्भक्तों के लिए उनका रोना, इन सब कारणों से ब्राह्मभक्तों का चित्त उनकी ओर आकर्षित हो चुका था; इसीलिए आज कितने ही भक्त बहुत दूर से उनके दर्शन के लिए आये हुए हैं।

उपासना के पूर्व श्रीरामकृष्ण विजयकृष्ण गोस्वामी और दूसरे ब्राह्मभक्तों के साथ प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप कर रहे हैं। समाजगृह में दीप जल चुका है, अब शीघ्र ही उपासना शुरू होगी।

श्रीरामकृष्ण बोले, "क्योंजी, क्या शिवनाथ न आयगा ?" एक ब्राह्मभक्त ने कहा, " जी नहीं, आज उनको कई काम हैं; आ न सकेंगे।"

श्रीरामकृष्ण—शिवनाथ को देखने से मुझे बड़ा आनन्द होता है। मानो भक्तिरस में डूबा हुआ है। और जिसे बहुत लोग मानते-जानते हैं उसमें ईश्वर की कुछ शक्ति अवश्य रहती है। परन्तु शिवनाथ में एक बहुत बड़ा दोष है—उसकी बात का कोई निश्चय नहीं रहता। मुझसे उसने कहा था, एक बार वहाँ (दक्षिणश्वर) जायेंगे, परन्तु फिर नहीं आया और न कोई खबर ही भेजी; यह अच्छा नहीं है। एक यह भी कहा है कि सत्य बोलना कलिकाल की तपस्या है। दृढ़ता के साथ सत्य को पकड़े रहने से ईश्वरलाभ होता है। सत्य की दृढ़ता के न रहने से क्रमशः सब

नष्ट हो जाता है। यही सोचकर मैं अगर कभी कह डालता हूँ, मुझे शौच को जाना है, फिर शौच को जाने की आवश्यकता न भी रहे, तो भी एक बार गड़वा लेकर झाऊतल्ले की ओर जाता हूँ। यही भय लगा रहता है कि कहीं सत्य की दृढ़ता न खो जाय। इस अवस्था के बाद हाथ में फूल लेकर माँ से मैंने कहा था, 'माँ, यह लो तुम अपना ज्ञान, यह लो अपना अज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो माँ; यह लो अपना भला, यह लो अपना बुरा, मुझे शुद्धा भक्ति दो माँ; यह लो अपना पुण्य, यह लो अपना पाप, मुझे शुद्धा भक्ति दो।' जब यह सब मैंने कहा था, तब यह बात नहीं कह सका कि माँ, यह लो अपना सत्य, यह लो अपना असत्य। माँ को सब कुछ तो दे सका, परन्तु सत्य न दे सका।

ब्राह्मसमाज की पद्धति के अनुसार उपासना होने लगी। आचार्यजी वेदी पर बैठ गये। उद्बोधन-मन्त्र के बाद आचार्यजी परब्रह्म को लक्ष्य करके वेदोक्त महामन्त्रों का उच्चारण करने लगे। ब्राह्मभक्तगण स्वर मिलाकर प्राचीन आर्यऋषियों के मुख से निकले हुए, उनकी पवित्र रसनाओं द्वारा उच्चारित नामों का कीर्तन करने लगे; कहने लगे—"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनन्द-रूपममृतं यद्विभाति,शान्तम् शिवमद्वैतम् शुद्धमपापविद्धम्।" प्रणव-संयुक्त यह ध्वनि भक्तों के हृदयाकाश में प्रतिध्वनित होने लगी। अनेकों के अन्तस्तल में वासना का निर्वाण-सा हो गया। चित्त बहुत-कुछ स्थिर और ध्यानोन्मुख होने लगा। सब की आँखें मुंदी हुई हैं—थोड़ी देर के लिए सब कोई वेदोक्त सगुण ब्रह्म का चिन्तन करने लगे।

श्रीरामकृष्णदेव भावमग्न हैं। निःस्पन्द, स्थिरदृष्टि, निर्वाक्, चित्रपुत्तलिका की तरह बैठे हुए हैं। आत्मापक्षी न जाने कहाँ

आनन्दपूर्वक विहार कर रहा है, शरीर शून्य मन्दिर-सा पड़ा हुआ है।'

समाधि के कुछ समय बाद श्रीरामकृष्णदेव आँखें खोलकर चारों ओर देख रहे हैं। देखा, सभा के सभी मनुष्य आँखें बन्द किये हुए हैं। तब श्रीरामकृष्णदेव 'ब्रह्म' 'ब्रह्म' कहकर एकाएक खड़े हो गये। उपासना के बाद ब्राह्मभक्त-मण्डली मृदंग और करताल लेकर संकीर्तन करने लगी। प्रेम और आनंद में मग्न होकर श्रीरामकृष्ण भी उनके साथ मिल गये और नृत्य करने लगे। सब लोग मुग्ध होकर वह नृत्य देख रहे हैं। विजय और दूसरे भक्त भी उन्हें घेरकर नाच रहे हैं। कितने लोग तो यह दृश्य देखकर ही कीर्तन का आनन्द लेते हुए संसार को भूल गये—नामामृत पीकर थोड़ी देर के लिए विषय का आनन्द भूल गये—विषयसुख का स्वाद कटु जान पड़ने लगा।

कीर्तन हो जाने पर सब ने आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण क्या कहते हैं, यह सुनने के लिए सब लोग उन्हें घेरकर बैठे।

(२)

गृहस्थों के प्रति उपदेश

ब्राह्मभक्त-मण्डली को सम्बोधित करके श्रीरामकृष्ण ने कहा —"निर्लिप्त होकर संसार में रहना कठिन है। प्रताप ने कहा था, 'महाराज, हमारा वह मत है जो राजर्षि जनक का था; जनक निर्लिप्त होकर संसार में रहते थे, वैसा ही हम लोग भी करेंगे।' मैंने कहा, 'सोचने ही से क्या कोई जनक हो सकता है? राजर्षि जनक को कितनी तपस्या करने के बाद ज्ञानलाभ हुआ था! नतमस्तक और ऊर्ध्वपद होकर उग्र तपस्या में कितना काल व्यतीत करने के बाद वे संसार में लौटे थे!'

"परन्तु क्या संसारियों के लिए उपाय नहीं है? —हाँ,

अवश्य है। कुछ दिन एकान्त में साधना करनी पड़ती है, तब भक्ति होती है, तब ज्ञान होता है; इसके बाद जाकर संसार में रहो, फिर कोई दोष नहीं। जब निर्जन में साधना करोगे, उस समय संसार से बिलकुल अलग रहो; तब स्त्री, पुत्र, कन्या, माता, पिता, भाई, बहन, आत्मीय, कुटुम्ब कोई भी पास न रहे; निर्जन में साधना करते समय सोचो, हमारे कोई नहीं है, ईश्वर ही हमारे सर्वस्व हैं। और रो-रोकर उनके पास ज्ञान और भक्ति की प्रार्थना करो।

"यदि कहो, कितने दिन संसार छोड़कर निर्जन में रहें? तो इसके लिए यदि एक दिन भी इस तरह रह सको तो वह अच्छा; तीन दिन रहो तो और अच्छा है; अथवा बारह दिन, महीने-भर, तीन महीने, सालभर—जो जितने दिन रह सके। ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके संसार में रहने से फिर अधिक भय नहीं रहता।

"हाथों में तेल लगाकर कटहल काटने से फिर हाथों में उसका दूध नहीं चिपकता। छुई-छुऔवल खेलो तो पार छू लेने से फिर डर नहीं रहता। एक बार पारस पत्थर को छूकर सोना बन जाओ, फिर हजार वर्ष तक मिट्टी के नीचे गड़े रहने पर भी जब मिट्टी से निकाले जाओगे, तो सोना का सोना ही रहोगे।

"मन दूध की तरह है। उस मन को अगर संसाररूपी जल में रखो तो दूध पानी में मिल जायगा; इसीलिए दूध को निर्जन में दही बनाकर उससे मक्खन निकाला जाता है। जब निर्जन में साधना करके मनरूपी दूध से ज्ञानभक्ति-रूपी मक्खन निकाला गया, तब वह मक्खन अनायास ही संसार-रूपी पानी में रखा जा सकता है। वह मक्खन कभी संसार-रूपी जल से मिल नहीं सकता—संसार-जल पर निर्लिप्त होकर उतराता रहता है।"

(३)

श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी की निर्जन में साधना

श्रीयुत विजय अभी अभी गया से लौटे हैं। वहाँ बहुत दिनों तक निर्जन में रहकर वे साधुओं से मिलते रहे थे। इस समय उन्होंने भगवा धारण कर लिया है। उनकी अवस्था बड़ी ही सुन्दर है; जान पड़ता है, सदा ही अन्तर्मुख रहते हैं। श्रीरामकृष्णदेव के पास सिर झुकाये हुए हैं, जैसे मग्न होकर कुछ सोचते हों।

विजय को देखते ही श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "विजय, क्या तुमने घर ढूँढ़ लिया ?

"देखो, दो साधु विचरण करते हुए एक शहर में आ पहुँचे। आश्चर्यचकित होकर उनमें से एक शहर, बाजार, दूकानें और इमारतें देख रहा था, इसी समय दूसरे से उसकी भेंट हो गयी। तब दूसरे साधु ने कहा, 'तुम दंग होकर शहर देख रहे हो; तुम्हारा डेरा-डण्डा कहाँ है ?' पहले साधु ने कहा, 'मैं पहले घर की खोज करके, डेरा-डण्डा रख, ताला लगाकर, निश्चिन्त होकर निकला हूं, अब शहर का रंग-ढंग देख रहा हूँ।' इसीलिए तुमसे मैं पूछ रहा हूँ, क्या तुमने घर ढूँढ़ लिया ? (मास्टर आदि से) देखो, इतने दिनों तक विजय का फौआरा दबा हुआ था, अब खुल गया है।

निष्काम कर्म। संन्यासी के लिए वासनात्याग

(विजय से)– "देखो, शिवनाथ बड़ी उलझन में है। अखबार में लिखना पड़ता है, और भी बहुतसे काम उसे करने पड़ते हैं। विषयकर्म ही से अशान्ति होती है, कितनी चिन्ताएँ आ इकट्ठी होती हैं।

"श्रीमद्भागवत में है, अवधूत ने चौबीस गुरुओं में चील को भी एक गुरु बनाया था। एक जगह धीवर मछली मार रहे थे, एक चील झपटकर एक मछली ले गयी, परन्तु मछली को देखकर करीब एक हजार कौए उसके पीछे लग गये, और साथ ही कांव-काँव करके बड़ा हल्ला मचाना शुरू कर दिया। मछली को लेकर चील जिस तरफ जाती, कौए भी उसके पीछे पीछे उसी तरफ जाते। चील दक्षिण की ओर गयी, तब कौए भी उसी ओर गये। जब वह उत्तर की तरफ गयी, तब वे भी उसी ओर गये। इसी तरह पूर्व और पश्चिम की ओर भी चील चक्कर काटने लगी। अन्त में, घबराहट के मारे उसके चक्कर लगाते हुए मछली उससे छूटकर जमीन पर गिर पड़ी। तब वे कौए चील को छोड़ मछली की ओर उड़े। चील तब निश्चिन्त होकर एक पेड़ की डाल पर जा बैठी। बैठी हुई सोचने लगी, 'कुल बखेड़े की जड़ यही मछली थी; अब वह मेरे पास नहीं है इसीलिए मैं निश्चिन्त हूँ।'

"अवधूत ने चील से यह शिक्षा प्राप्त की कि जब तक मछली साथ रहेगी अर्थात् वासना रहेगी, तब तक कर्म भी रहेगा, और कर्म के कारण चिन्ता और अशान्ति भी रहेगी। वासना का त्याग होने से ही कर्मों का क्षय हो जाता है और शान्ति मिलती है।

"परन्तु निष्काम कर्म अच्छा है। उससे अशान्ति नहीं होती। पर निष्काम कर्म करना बड़ा कठिन है। मनुष्य सोचता है कि मैं निष्काम कर्म कर रहा हूँ परन्तु कहाँ से कामना निकल पड़ती है, यह समझ में नहीं आता। यदि पहले की साधना अधिक हो तो उसके बल से कोई कोई निष्काम कर्म कर सकते हैं। ईश्वर-दर्शन के बाद निष्काम कर्म अनायास ही किये जा सकते हैं।

ईश्वरदर्शन के बाद प्राय: कर्म छूट जाते हैं। दो-एक मनुष्य (नारदादि) लोकशिक्षा के लिए कर्म करते हैं।

संन्यासी को संचय न करना चाहिए। प्रेम का फलस्वरूप कर्मत्याग

"अवधूत की एक आचार्या और थी—मधुमक्खी। मधुमक्खी बड़े परिश्रम से कितने ही दिनों में मधु-संचय करती है, परन्तु उस मधु का भोग वह स्वयं नहीं कर पाती। छत्ता कोई दूसरा ही आकर तोड़ ले जाता है। मधुमक्खी से अवधूत को यह शिक्षा मिली कि संचय न करना चाहिए। साधु-सन्तों को सोलहों आने ईश्वर पर अवलम्बित रहना चाहिए। उन्हें संचय न करना चाहिए।

"यह संसारियों के लिए नहीं है। संसारी को संसार का भरण-पोषण करना पड़ता है। इसीलिए उन्हें संचय की आवश्यकता होती है। पक्षी और सन्त संचयी नहीं होते, परन्तु चिड़ियाँ बच्चे देने पर संचय करती हैं—चोंच में दबाकर बच्चे के लिए खाना ले आती हैं।

"देखो विजय, साधु के साथ अगर बोरिया-बधना रहे—कपड़े की पन्द्रह गिरहवाली गठरी रहे, तो उस पर विश्वास न करना। मैंने वटतल्ले में ऐसे साधु देखे थे। दो-तीन बैठे हुए थे, कोई दाल के कंकड़ चुन रहा था, कोई कपड़ा सी रहा था और कोई बड़े आदमी के घर के भण्डारे की गप्प लड़ा रहा था, 'अरे उस बाबू ने लाखों रुपये खर्च किये, साधुओं को खूब खिलाया—पूड़ी, जलेबी, पेड़ा, बरफी, मालपुआ, बहुतसी चीजें तैयार करायीं'।" (सब हँसते हैं।)

विजय—जी हाँ, गया में इस तरह के साधु मुझे भी देखने को मिले हैं। गया के साधु लोटावाले होते हैं। (सब हँसते हैं।)

श्रीरामकृष्ण (विजय के प्रति)– ईश्वर पर जब प्रेम हो जाता है तब कर्म आप ही आप छूट जाते हैं। ईश्वर जिनसे कर्म कराते हैं, वे करते रहें। अब तुम्हारा समय हो गया है; अब सब छोड़कर तुम कहो, 'मन ! तू देख और मैं देखूँ, कोई दूसरा न देखे'।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण उस अतुलनीय कण्ठ से माधुरी बरसाते हुए गाने लगे—

(भावार्थ)– "आदरणीय श्यामा माँ को यत्नपूर्वक हृदय में धारण करो। मन ! तू देख और मैं देखूँ; कोई दूसरा न देखने पाये। कामादि को धोखा देकर, मन ! आ, निर्जन में उसे देखें, साथ रसना को भी रखेंगे ताकि वह 'माँ माँ' कहकर पुकारती रहे ! कुमन्त्रणाएँ देनेवाली जितनी कुरुचियाँ हैं उन्हें पास भी न फटकने देना। ज्ञाननयन को पहरेदार रखो, वह सतर्क रहे।"-

श्रीरामकृष्ण (विजय के प्रति)–भगवान् की शरण में जाकर अब लज्जा, भय, यह सब छोड़ो। मैं अगर भगवत्कीर्तन में नाचूँ तो लोग मुझे क्या कहेंगे, यह सब भाव छोड़ो।

"लज्जा, घृणा और भय, इन तीनों में किसी के रहते ईश्वर नहीं मिलते। लज्जा, घृणा, भय, जाति-अभिमान, गुप्त रखने की इच्छा, ये सब पाश हैं। इन सब के चले जाने से जीव की मुक्ति होती है।

"पाशों में जो बँधा हुआ है वह जीव है और उनसे जो मुक्त है वह शिव है। भगवत्प्रेम दुर्लभ वस्तु है। पहले-पहल, पति के प्रति पत्नी की जैसी निष्ठा होती है वैसी ही यदि ईश्वर के प्रति हो तो ही भक्ति होती है। शुद्धा भक्ति का होना बड़ा कठिन है। भक्ति द्वारा मन और प्राण ईश्वर में लय हो जाते हैं।

"इसके बाद भाव होता है। भाव में मनुष्य निर्वाक् हो जाता

है। वायु स्थिर हो जाती है। कुम्भक आप ही आप होता है। जैसे बन्दूक दागते समय गोली चलानेवाला मनुष्य निर्वाक् हो जाता है और उसकी वायु स्थिर हो जाती है।

"प्रेम का होना बड़ी दूर की बात है। प्रेम चैतन्यदेव को हुआ था। ईश्वर पर जब प्रेम होता है, तब वाहर की चीजें भूल जाती हैं। संसार भूल जाता है। अपना शरीर जो इतना प्यारा है, वह भी भूल जाता है।"

यह कहकर श्रीरामकृष्णदेव फिर गाने लगे---

(भावार्थ)--"नहीं मालूम, कब वह दिन होगा जब हरिनाम कहते हुए मेरी आँखों से धारा बह चलेगी, संसार-वासना दूर हो जायगी, शरीर पुलकित हो जायगा!"

(४)

भाव, कुम्भक तथा ईश्वरदर्शन

ऐसी बातचीत हो रही है, ठीक इसी समय कुछ और निमन्त्रित ब्राह्मभक्त आकर उपस्थित हुए। उनमें कुछ तो पण्डित थे और कुछ उच्चपदाधिकारी राजकर्मचारी। उनमें एक श्री रजनीनाथ राय भी थे।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "भाव के होने पर वायु स्थिर हो जाती है। अर्जुन ने जब लक्ष्यभेद किया, तब उनकी दृष्टि मछली की आँख पर ही थी--किसी दूसरी ओर नहीं। यहाँ तक कि आँख के सिवाय कोई दूसरा अंग उन्हें दीख ही नहीं पड़ा। ऐसी अवस्था में वायु स्थिर होती है, कुम्भक होता है।

"ईश्वरदर्शन का एक लक्षण यह है कि भीतर से महावायु घर घराती हुई सिर की ओर जाती है; तब समाधि होती है, भगवान् के दर्शन होते हैं।

कोरा पाण्डित्य मिथ्या है। ऐश्वर्य, वैभव, मान, पद सब मिथ्या है।

"जो पण्डित मात्र हैं किन्तु ईश्वर पर जिनकी भक्ति नहीं है उनकी बातें उलझनदार होती हैं। सामाध्यायी नाम के एक पण्डित ने कहा था, 'ईश्वर नीरस है, तुम लोग अपनी भक्ति और प्रेम के द्वारा उसे सरस कर लो।' जिन्हें वेदों ने 'रसस्वरूप' कहा है, उन्हें नीरस बतलाता है! इससे ज्ञात होता है कि वह मनुष्य नहीं जानता ईश्वर कौनसी वस्तु है; इसीलिए उसकी बातें इतनी उलझनदार हैं।

"एक ने कहा था, मेरे मामा के यहाँ घोड़ों की एक बड़ी गोशाला है! उसकी इस बात से समझना चाहिए कि घोड़ा एक भी नहीं है; क्योंकि घोड़े कभी गोशाला में नहीं रहते। (सब हँसते हैं।)

"किसी को ऐश्वर्य का--वैभव, सम्मान, पद आदि का--अहंकार होता है। यह सब दो दिन के लिए है। साथ कुछ भी न जायगा। एक गीत में है--

(गीत का आशय)--- 'ऐ मन सोच ले, कोई किसी का नहीं है। तू इस संसार में वृथा ही मारा मारा फिरता है। मायाजाल में फँसकर दक्षिणाकाली को भूल न जाना। जिसके लिए तू इतना सोचता है, क्या वह तेरे साथ भी जायगा? तेरी वही प्रेयसी, जब तू मर जायगा तब तेरी लाश से अमंगल की शंका करके घर में पानी का छिड़काव करेगी। यह सोचना कि मुझे लोग मालिक जो कहते हैं, वह सिर्फ दो ही दिन के लिए है। जब कालाकाल के मालिक आ जाते हैं तब पहले के वही मालिक श्मशानघाट में फेंक दिये जाते हैं।'

"और धन का अहंकार भी न करना चाहिए अगर कहो, मैं

धनी हूँ। तो धनी भी एक-एक से बढ़कर हैं। सन्ध्या के बाद जब जुगनू उड़ता है, तब वह सोचता है, इस संसार को प्रकाश मैं दे रहा हूँ। परन्तु तारे ज्यों ही उगते हैं कि उसका अहंकार चला जाता है। तब तारे सोचने लगे, हमीं लोग संसार को प्रकाश देते हैं। कुछ देर बाद चन्द्रोदय हुआ। तब तारे लज्जा से म्लान हो गये। चन्द्रदेव सोचने लगे. मेरे ही आलोक से संसार हँस रहा है, संसार को प्रकाश मैं देता हूँ। देखते ही देखते सूर्य उगे, चन्द्र मलिन होकर ऐसे छिपे कि फिर दीख भी न पड़े।

"धनी मनुष्य अगर यह सब सोचे तो धन का अहंकार न हो।"

उत्सव के कारण मणिलाल ने खान-पान का बहुत बड़ा आयोजन किया था। उन्होंने यत्नपूर्वक श्रीरामकृष्ण और समवेत भक्तमण्डली को भोजन कराया। जब सब लोग घर लौटे, तब रात बहुत हो गयी थी, परन्तु किसी को कोई कष्ट नहीं हुआ।

परिच्छेद ५९

केशव सेन के मकान पर

(१)

कमल-कुटीर के सामने--पश्यति तव पन्थानम्

कार्तिक की कृष्णा चतुर्दशी, २८ नवम्बर १८८३, दिन बुधवार है। आज एक भक्त † कमल-कुटीर (Lily Cottage) के पूर्ववाले रास्ते पर टहल रहे हैं, जैसे व्याकुल हो किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों।

कमल-कुटीर के उत्तर की तरफ मंगलबाड़ी है। वहाँ बहुतसे ब्राह्मभक्त रहते हैं। कमल-कुटीर में केशव रहते हैं। उनकी पीड़ा बढ़ गयी है। कितने ही लोग कहते हैं, अब की बार शायद वे न बचेंगे।

श्रीरामकृष्ण केशव को बहुत प्यार करते हैं, आज इन्हें देखने के लिए आनेवाले हैं। वे दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर से आ रहे हैं। इसीलिए भक्तलोग उनकी बाट जोह रहे हैं।

कमल-कुटीर सर्क्यूलर रोड के पश्चिम ओर है। इसीलिए भक्त महोदय रास्ते में हो टहल रहे हैं। वे दो बजे दिन से प्रतीक्षा कर रहे हैं। कितने ही लोग जाते हैं, वे उन्हें देख भर लेते हैं।

रास्ते के पूर्व ओर विक्टोरिया कालेज है। यहाँ केशव के समाज की बहुतसी ब्राह्म महिलाएँ ओर उनकी कन्याएँ पढ़ती हैं। रास्ते से कालेज का बहुतसा भाग दिखायी पड़ता है। कालेज के उत्तर की ओर एक बड़ा उद्यानगृह है, उसमें कोई अंग्रेज सज्जन रहते हैं। भक्त महोदय बड़ी देर से देख रहे हैं कि उनके यहाँ कोई

---

† ग्रन्थकार स्वयं

विपत्ति आयी है। थोड़ी देर बाद काले कपड़े पहने कोचवान मृत-देह ले जानेवाली गाड़ी ले आये। करीब डेढ़-दो घण्टों से यह सब तैयारी चल रही है।

यह मर्त्यधाम छोड़कर कोई चला गया है इसीलिए यह तैयारी हो रही थी। भक्त सोच रहे हैं—कहाँ? देह को त्यागकर मनुष्य कहाँ जाता है?

उत्तर से दक्षिण की ओर कितनी ही गाड़ियाँ आ रही हैं। भक्त एक एक बार देख रहे हैं—वे आ रहे हैं या नहीं।

शाम हो आयी, पाँच बज गये। इसी समय श्रीरामकृष्ण की गाड़ी भी आ पहुंची। साथ लाटू तथा दो-एक भक्त और भी हैं। राखाल भी आये हैं।

केशव के घर के आदमी आकर श्रीरामकृष्ण को अपने साथ ऊपर ले गये। बैठकखाने के दक्षिण ओरवाले बरामदे में एक पलंग रखा हुआ था। उसी पर श्रीरामकृष्ण को उन्होंने बैठाया।

(२)

समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण। जगन्माता के साथ वार्तालाप

श्रीरामकृष्ण बड़ी देर से बैठे हुए हैं। आप केशव को देखने के लिए अधीर हो रहे हैं। केशव के शिष्यगण विनीत भाव से कह रहे हैं कि वे अभी थोड़ा विश्राम कर रहे हैं, थोड़ी ही देर में आनेवाले हैं।

केशव की पीड़ा इतनी बढ़ी हुई है कि दशा संकटापन्न हो रही है। इसीलिए उनकी शिष्यमण्डली और घरवाले इतनी सावधानी से काम कर रहे हैं। परन्तु श्रीरामकृष्ण केशव को देखने के लिए उत्तरोत्तर अधीर हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (केशव के शिष्यों से)—क्यों जी, उनके आने की

क्या आवश्यकता है ? मैं ही क्यों न भीतर चला जाऊँ ?

प्रसन्न (विनयपूर्वक)– अब वे थोड़ी ही देर में आते हैं।

श्रीरामकृष्ण–जाओ, तुम्हीं लोग ऐसा कर रहे हो। मैं भीतर जाता हूँ।

प्रसन्न श्रीरामकृष्ण को बातों में बहलाने के इरादे से केशव की बातें कह रहे हैं।

प्रसन्न–उनकी अवस्था एक दूसरे ही प्रकार की हो गयी है। आपकी ही तरह माँ के साथ बातचीत करते हैं। माँ जो कुछ कहती हैं, उसे सुनकर कभी हँसते हैं और कभी रोते हैं।

केशव जगन्माता के साथ बातचीत करते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, यह सुनते ही श्रीरामकृष्ण भावावेश में आ गये। देखते ही देखते समाधिस्थ हो गये।

श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हैं। जाड़े का समय है, हरी बनात का कुर्ता पहने हुए हैं। ऊपर से एक शाल डाले हुए हैं। उन्नत देह, दृष्टि स्थिर हो रही है। बिलकुल ही मग्न हैं। बड़ी देर तक यह अवस्था रही। समाधि छूटती ही नहीं।

सन्ध्या हो आयी। श्रीरामकृष्ण कुछ प्रकृतिस्थ हुए। पास के बैठकखाने में दीप जलाया जा चुका है। श्रीरामकृष्ण को उसी कमरे में बिठाने की चेष्टा की जा रही है।

बड़ी कठिनाई से लोग उन्हें बैठकखाने के कमरे में ले गये।

कमरे में बहुतसी चीजें हैं––कोच, टेबिल, कुर्सी, गैसबत्ती आदि। श्रीरामकृष्ण को लोगों ने एक कोच पर ले जाकर बैठाया।

कोच पर बैठते ही श्रीरामकृष्ण फिर बाह्यज्ञान-रहित भावाविष्ट हो गये।

कोच पर दृष्टि डालकर आवेश में मानो कुछ कह रहे हैं,—

"पहले इन सब चीजों की आवश्यकता थी, अब क्या आवश्यकता है ?" (राखाल को देखकर) "राखाल, तू भी आया है ?"

कहते ही कहते फिर न जाने क्या देख रहे हैं। कहते हैं— "यह लो, माँ आ गयीं। और अब बनारसी साड़ी पहनकर क्या दिखलाती हो ! माँ, गोलमाल न करो, बैठो—बैठो भी।"

श्रीरामकृष्ण पर महाभाव का नशा चढ़ा हुआ है। कमरे में प्रकाश भर रहा है। ब्राह्मभक्त चारों ओर से घेरे हुए हैं। लाटू, राखाल, मास्टर आदि पास बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण भावावस्था में आप ही आप कह रहे हैं—

"देह और आत्मा। देह बनी है और बिगड़ भी जायगी; आत्मा अमर है। जैसे सुपारी—पकी सुपारी छिलके से अलग रहती है; कच्ची अवस्था में फल और छिलके को अलग अलग करना बड़ा कठिन है। उनके दर्शन करने पर, उन्हें प्राप्त करने पर देहबुद्धि दूर हो जाती है। तब समझ में आ जाता है कि आत्मा पृथक् है और देह भी।"

केशव कमरे में आ रहे हैं। पूर्व ओर के द्वार से आ रहे हैं। जिन लोगों ने उन्हें ब्राह्मसमाज-मन्दिर में अथवा 'टाउन-हाल में देखा था, वे उनकी अस्थि-चर्मावशिष्ट मूर्ति देखकर चकित हो गये। केशव खड़े नहीं हो सकते, दीवार के सहारे आगे बढ़ रहे हैं। बहुत कष्ट करके कोच के सामने आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण इतने ही में कोच से उतरकर नीचे बैठे। केशव श्रीरामकृष्ण के दर्शन पाकर भूमिष्ठ हो बड़ी देर तक उन्हें प्रणाम करते रहे। प्रणाम करके उठकर बैठ गये। श्रीरामकृष्ण अब भी भावावेश में हैं। आप ही आप कुछ कह रहे हैं। श्रीरामकृष्ण माता के साथ बातचीत कर रहे हैं।

(३)

ब्रह्म और शक्ति अभेद। नरलीला। सिद्ध और साधक में भेद

अब केशव ने उच्च स्वर से कहा, "मैं आया—मैं आया।" यह कहकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण का बायाँ हाथ पकड़ लिया और उसी हाथ पर अपना हाथ फेरने लगे। श्रीरामकृष्ण भावावेश में पूरे मतवाले हो गये हैं; आप ही आप कितनी ही बातें कर रहे हैं। भक्तगण निर्वाक् होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—जब तक उपाधि है, तभी तक अनेक का बोध हो सकता है, जैसे केशव, प्रसन्न, अमृत—ये सब। पूर्ण ज्ञान होने पर एकमात्र चैतन्य का ही बोध होता है।

"पूर्ण ज्ञान होने पर मनुष्य देखता है, वही एकमात्र चैतन्य यह जीव-प्रपंच, ये चौबीसों तत्त्व बने हैं।

"परन्तु शक्ति की विशेषता पायी जाती है। यह सच है कि सब कुछ वे ही बने हैं, परन्तु कहीं तो उनकी शक्ति का प्रकाश अधिक है और कहीं कम।

"विद्यासागर ने कहा था, क्या ईश्वर ने किसी को अधिक शक्ति और किसी को कम शक्ति दी है? मैंने कहा, अगर ऐसा न होता तो एक आदमी पचास आदमियों को हराता कैसे?—और तुम्हें ही फिर क्यों हम लोग देखने आते?

"वे जिस आधार में अपनी लीला का विकास दिखलाते हैं, वहाँ शक्ति की विशेषता रहती है।

"जमींदार सब जगह पर रहते हैं। परन्तु उन्हें लोग किसी खास बैठकखाने में अक्सर बैठते हुए देखते हैं। ईश्वर का बैठकखाना भक्तों का हृदय है। वहाँ अपनी लीला दिखाना उन्हें अधिक पसन्द है। वहाँ उनकी विशेष शक्ति अवतीर्ण होती है।

"इसका लक्षण क्या है? जहाँ कार्य की अधिकता है वहाँ शक्ति का विशेष प्रकाश है।

"यह आद्याशक्ति और परब्रह्म दोनों अभेद हैं। एक को छोड़ दूसरे का चिन्तन नहीं किया जा सकता। जैसे ज्योति और मणि। मणि को छोड़ मणि की ज्योति के बारे में सोचा नहीं जा सकता और न ज्योति को अलग करके मणि के बारे में ही सोचा जा सकता है। जैसे सर्प और उसकी वक्रगति। न सर्प को छोड़ उसकी तिर्यग्-गति सोची जा सकती है और न तिर्यग्-गति को छोड़ सर्प को।

"आद्याशक्ति ने ही इस जीव-प्रपंच, इस चतुर्विंशति तत्त्व का स्वरूप धारण किया है—अनुलोम और विलोम। राखाल,नरेन्द्र तथा और और लड़कों के लिए क्यों मैं इतना सोच-विचार किया करता हूँ? हाजरा ने कहा, तुम उन लोगों के लिए इतना सोचते क्यों हो, ईश्वर-चिन्तन फिर कब करोगे? (केशव तथा दूसरों का मुसकराना)

"तब मुझे बड़ी चिन्ता हुई। मैंने कहा, माँ यह क्या हुआ! हाजरा कहता है, उन लोगों के लिए क्यों सोचते रहते हो? फिर मैंने भोलानाथ से पूछा। उसने कहा, इसका उदाहरण महाभारत में है। समाधिस्थ मनुष्य समाधि से उतरकर ठहरे कहाँ? वह इसीलिए सतोगुणी मनुष्यों को लेकर रहता है। महाभारत का यह उदाहरण जब मिला तब जी में जी आया। (सब हँसते हैं।)

"हाजरा का दोष नहीं है। साधक अवस्था में सम्पूर्ण मन 'नेति' 'नेति' करके उन्हें दे देना पड़ता है। सिद्ध-अवस्था की बात दूसरी है। उन्हें प्राप्त कर लेने पर अनुलोम और विलोम एक से प्रतीत होते हैं। मट्ठा अलग करने पर जब मक्खन मिलता है तब जान पड़ता है कि मट्ठे का ही मक्खन है और मक्खन का ही मट्ठा। तब ठीक ठीक समझ में आता है कि सब कुछ वे

ही हुए हैं। कहीं उनका अधिक प्रकाश है, कहीं कम।

"भावसमुद्र उमड़ने पर स्थल में भी एक बाँस पानी हो जाता है। पहले नदी से होकर समुद्र में जाते समय बहुत-कुछ चक्कर लगाकर जाना पड़ता है, और जब बाढ़ आती है तब सूखी जमीन पर भी एक बाँस पानी हो जाता है। तब नाव सीधे चलाकर लोग जगह पर पहुँच जाते हैं। फिर चक्कर मारकर नहीं जाना पड़ता। इसी तरह धान कट जाने पर मेंड़ से चक्कर काटकर नहीं आना पड़ता। सीधे एक रास्ते से निकल जाओ।

"उन्हें प्राप्त कर लेने पर फिर सभी वस्तुओं में उनके दर्शन होते हैं। मनुष्य के भीतर उनका अधिक प्रकाश है। मनुष्यों में सतोगुणी भक्तों में उनका और अधिक प्रकाश रहता है—जिनमें कामिनी और कांचन के भोग की बिलकुल ही इच्छा नहीं रहती। (सब स्तब्ध हैं।) समाधिस्थ मनुष्य जब उतरता है तब भला वह कहाँ ठहरे?—किस पर अपना मन रमाये? कामिनी और कांचन का त्याग करनेवाले सतोगुणी शुद्ध भक्तों की आवश्यकता उन्हें इसीलिए होती है। नहीं तो फिर वे क्या लेकर रहें?

"जो ब्रह्म हैं, वे ही आद्याशक्ति भी हैं। जब वे निष्क्रिय हैं, तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं, पुरुष कहते हैं। जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय ये सब करते हैं, तब उन्हें शक्ति कहते हैं, प्रकृति कहते हैं। पुरुष और प्रकृति। जो पुरुष हैं, वे ही प्रकृति भी हैं। आनन्दमय और आनन्दमयी।

"जिसे पुरुष-ज्ञान है, उसे स्त्री-ज्ञान भी है। जिसे पिता का बोध है, उसे माता का भी बोध है। (केशव हँसते हैं।)

"जिसे अँधेरे का ज्ञान है, उसे उजाले का भी ज्ञान है। जिसे रात का ज्ञान है, उसे दिन का भी ज्ञान है। जिसे सुख का ज्ञान

है, उसे दुःख का भी। यह बात समझे ?"

केशव (सहास्य)– जी हाँ, समझा।

श्रीरामकृष्ण–माँ ! कौनसी माँ ? जगत् की माँ—जिन्होंने जगत् की सृष्टि की; जो उसका पालन कर रही हैं; जो अपनी सन्तानों की सदा रक्षा करती हैं; और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—जो जो कुछ चाहता है, उसे वहीं देती हैं। जो उनकी यथार्थ सन्तान है, वह उन्हें छोड़कर नहीं रह सकती। उसकी माता ही सब कुछ जानती हैं। वह तो बस खाता है, खेलता है, और घूमता है। इसके सिवाय वह और कुछ नहीं जानता।

केशव–जी हाँ।

(४)

ब्राह्मसमाज और ईश्वर का ऐश्वर्य-वर्णन।

त्रिगुणातीत भक्त

वार्तालाप करते हुए श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हो गये हैं। केशव के साथ हँसते हुए बातचीत कर रहे हैं। कमरे भर के लोग एकाग्र चित्त से उनकी सब बातें सुनते और उन्हें देखते हैं। सभी निर्वाक् हैं कि 'तुम कैसे हो' आदि व्यावहारिक बातें तो होती ही नहीं, केवल भगवत्-प्रसंग छिड़ा हुआ है।

श्रीरामकृष्ण (केशव से)–ब्राह्मभक्त इतनी महिमा क्यों गाया करते हैं ? 'हे ईश्वर, तुमने चन्द्र की सृष्टि की, सूर्य को पैदा किया, नक्षत्र बनाये'—इन सब बातों की क्या आवश्यकता है ? बहुतसे लोग बगीचे की ही प्रशंसा करते हैं; पर मालिक से कितने लोग मिलना चाहते हैं ? बगीचा बड़ा है या मालिक ?

"शराब पी चुकने पर कलवार की दूकान में कितने मन शराब है, इसकी जाँच-पड़ताल से हमारा क्या काम ? हमारा तो मतलब

एक ही बोतल से निकल जाता है।

"नरेन्द्र को देखकर मैंने कभी नहीं पूछा, तेरे पिता का क्या नाम है ? तेरे पिता की कितनी कोठियाँ हैं ?

"कारण जानते हो ? मनुष्य स्वयं ऐश्वर्य का आदर करता है, इसलिए वह समझता है कि ईश्वर भी उसका आदर करते हैं। सोचता है, उनके ऐश्वर्य की प्रशंसा करने पर वे प्रसन्न होंगे। शम्भु ने कहा था, 'अब तो इस समय यही आशीर्वाद दीजिये जिससे यह ऐश्वर्य उनके पादपद्मों में अर्पित करके मरूँ।' मैंने कहा, 'यह तुम्हारे लिए ही ऐश्वर्य है; उन्हें तुम क्या दे सकते हो! उनके लिए यह सब काठ और मिट्टी के बराबर है।'

"जब विष्णुघर के कुल गहने चुरा लिये गय तब मैं और मथुरबाबू, दोनों श्रीठाकुरजी को देखने के लिए गये। मथुरबाबू ने कहा, 'चलो महाराज,तुममें कोई शक्ति नहीं है। तुम्हारी देह से कुल गहने निकाल लिये गये और तुम कुछ न कर सके!' मैंने उससे कहा, 'यह तुम्हारी कैसी बात है! तुम जिसके सामने गहने गहने चिल्लाते हो, उनके लिए ये सब मिट्टी के ढेले हैं। लक्ष्मी जिनकी शक्ति हैं, क्या वे तुम्हारे चोरी गये इन कुछ रुपयों के लिए परेशान होंगे ! ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।'

"क्या ईश्वर ऐश्वर्य के भी वश हैं ? वे तो भक्ति के वश हैं। जानते हो, वे क्या चाहते हैं ? वे रुपया नहीं चाहते—भाव, प्रेम, भक्ति, विवेक, वैराग्य, यह सब चाहते हैं।

"जिसका जैसा भाव होता है, वह ईश्वर को वैसा ही देखता है। जो तमोगुणी भक्त है, वह देखता है कि माँ बकरा खाती हैं वह बकरे की बलि भी देता है। रजोगुणी भक्त नाना प्रकार के व्यंजन और अन्न-पकवान चढ़ाता है। सतोगुणी भक्त की पूजा

में आडम्बर नहीं होता। उसकी पूजा लोग समझ भी नहीं पाते। फूल नहीं मिलते तो वह बिल्वपत्र और गंगाजल से ही पूजा कर लेता है। थोड़ेसे चावलों या दो बताशों का ही भोग लगा देता है। कभी कभी खीर पकाकर ही ठाकुरजी को निवेदित कर देता है।

"एक और है--त्रिगुणातीत भक्त। उसका स्वभाव बालकों जैसा होता है। ईश्वर का नाम लेना ही उसकी पूजा है। वह बस उनका नाम ही जपता रहता है।"

(५)

केशव के साथ वार्तालाप। ईश्वर के अस्पताल में आत्मा की रोगचिकित्सा

श्रीरामकृष्ण (केशव के प्रति सहास्य)--तुम्हें बीमारी हुई इसका अर्थ है। शरीर के भीतर कितने ही भावों का उदयास्त हो चुका है; इसीलिए ऐसा हुआ है। जब भाव होता है, तब कुछ समझ में नहीं आता, बहुत दिनों के बाद शरीर पर झोका लगता हैं। मैंने देखा है, बड़ा जहाज जब गंगा से चला जाता है, तब कुछ भी मालूम नहीं होता, परन्तु थोड़ी ही देर बाद देखा कि किनारों पर लहरें जोरों से थपेड़े जमा रही हैं, और पानी में उथल-पुथल मच जाती है। कभी कभी तो किनारों का कुछ अंश भी धँसकर पानी में गिर जाता है।

"किसी कुटिया में घुसकर हाथी उसे हिला-डुलाकर तहस-नहस कर देता है। भावरूपी हाथी जब देहरूपी कमरे में घुसता है, तो उसे डाँवाडोल कर देता है।

"इससे क्या होता है, जानते हो? आग लगने पर कुछ चीजों को वह जलाकर खाक कर देती है; एक महा ऊधम मचा देती

है। ज्ञानाग्नि पहले काम, क्रोध आदि रिपुओं को जलाती है, फिर अहंबुद्धि को। इसके बाद एक बहुत बड़ी उथल-पुथल मचा देती है।

"तुम सोचते हो कि बस, सब मामला तय है। परन्तु जब तक रोग की कुछ कसर रहेगी, तब तक वे तुम्हें नहीं छोड़ सकते। अगर तुम अस्पताल में नाम लिखाओ तो फिर तुम्हें चले आने का अधिकार नहीं है। जब तक रोग में कोई त्रुटि पायी जायगी, तब तक डाक्टर साहब तुम्हें आने नहीं देंगे। तुमने नाम क्यों लिखाया?" (सब हँसते हैं।)

केशव अस्पताल की बात सुनकर बार बार हँस रहे हैं। हँसी रोक नहीं सकते; रह-रहकर फिर हँस रहे हैं। श्रीरामकृष्ण पुनः वार्तालाप करने लगे।

श्रीरामकृष्ण (केशव से)—हृदू कहता था, न तो मैंने ऐसा भाव देखा है, और न ऐसा रोग! उस समय मैं बहुत बीमार था। क्षण क्षण में दस्त होते थे और बहुत अधिक मात्रा में। सिर पर जान पड़ता था दो लाख चींटियाँ काट रही हैं। परन्तु ईश्वरीय प्रसंग दिनरात जारी रहता था! नाटागढ़ का राम कविराज देखने के लिए आया। उसने देखा कि मैं बैठा हुआ विचार कर रहा हूँ। तब उसने कहा, 'क्या यह पागल है? दो हाड़ लेकर विचार कर रहा है!'

(केशव से)—'उनकी इच्छा। माँ, सब तुम्हारी ही इच्छा है।

"'ऐ तारा, तुम इच्छामयी हो, सब तुम्हारी ही इच्छा है। माँ, कर्म तुम्हारे हैं, करती भी तुम्हीं हो, परन्तु मनुष्य कहते हैं, मैं करता हूँ।'

"सर्दी लगाने के उद्देश्य से माली बसरा-गुलाब को छाँटकर उसकी जड़ खोल देता है। सर्दी लगने से पेड़ अच्छी तरह उगता

है। शायद इसीलिए वह तुम्हारी जड़ खोल रही है। (श्रीरामकृष्ण और केशव हँसते हैं।) जान पड़ता है, अगली वार एक वड़ी घटना होनेवाली है।

"जब कभी तुम बीमार पड़ जाते हो तव मुझे वड़ी घबराहट होती है। पहली वार भी जब तुम बीमार पड़े थे, तब रात के पिछले पहर मैं रोया करता था। कहता था, माँ, केशव को अगर कुछ हो गया तो फिर किससे बातचीत करूँगा! तब कलकत्ता आने पर मैंने सिद्धेश्वरी को नारियल और चीनी चढ़ायी थी। माँ के पास मनौती मानी थी जिससे बीमारी अच्छी हो जाय।"

केशव पर श्रीरामकृष्ण के इस अकृत्रिम स्नेह और उनके लिए उनकी व्याकुलता की वात को लोग निर्वाक् होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु इस बार उतना नहीं हुआ। मैं सच कहूँगा। हाँ, दो-तीन दिन कुछ थोड़ा कलेजा मसोसा करता था।

केशव जिस पूर्ववाले द्वार से बैठकखाने में आये थे, उसी द्वार के पास केशव की पूजनीय माता खड़ी हैं। वहीं से उमानाथ जरा ऊँचे स्वर में श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं, "माँ आपको प्रणाम कर रही हैं।"

श्रीरामकृष्ण हँसने लगे। उमानाथ कहते हैं, "माँ कह रही हैं, ऐसा आशीर्वाद दीजिये जिससे केशव की बीमारी अच्छी हो जाय।" श्रीरामकृष्ण ने कहा, "माँ आनन्दमयी को पुकारो, दुःख वही दूर कर सकती हैं।" श्रीरामकृष्ण केशव से कहने लगे—

"घर के भीतर इतना न रहा करो। पुत्र-कन्याओं के बीच में रहने से और डूबोगे, ईश्वरीय चर्चा होने पर और अच्छे रहोगे।"

गम्भीर भाव से ये बातें कहकर श्रीरामकृष्ण फिर बालक की तरह हँसने लगे। केशव से कह रहे हैं, "देखूँ, तुम्हारा हाथ देखूँ।"

बालक की तरह हाथ लेकर मानो तौल रहे हैं। अन्त में कहने लगे, "नहीं, तुम्हारा हाथ हलका है, खलों का हाथ भारी होता है।" (लोग हँसते हैं।)

उमानाथ दरवाजे से फिर कहने लगे, "माँ कह रही हैं—केशव को आशीर्वाद दीजिये।"

श्रीरामकृष्ण (गम्भीर स्वरों में)—मेरी क्या शक्ति है! वे ही आशीर्वाद देंगी। 'माँ, अपना काम तुम करती हो, लोग कहते हैं, मैं कर रहा हूँ।'

"ईश्वर दो बार हँसते हैं। एक बार उस समय हँसते हैं जब दो भाई जमीन बाँटते हैं, और रस्सी से नापकर कहते हैं, 'इस ओर की मेरी है और उस ओर की तुम्हारी।' ईश्वर यह सोचकर हँसते हैं कि संसार तो है मेरा और ये लोग थोड़ीसी मिट्टी लेकर इस ओर की मेरी, उस ओर की तुम्हारी कर रहे हैं।

"फिर ईश्वर एक बार और हँसते हैं। बच्चे की बीमारी बढ़ी हुई है। उसकी माँ रो रही है। वैद्य आकर कह रहा है, 'डरने की क्या बात है, माँ! मैं अच्छा कर दूँगा।' वैद्य नहीं जानता कि ईश्वर यदि मारना चाहें तो किसकी शक्ति है जो अच्छा कर सके?" (सब सन्न हो रहे।)

ठीक इसी समय केशव बड़ी देर तक खाँसते रहे। वह खाँसी रुकती ही न थी। खाँसने की आवाज से सब को कष्ट हो रहा है। बड़ी देर तक बहुत कुछ कष्ट झेलते रहने के बाद खाँसी कुछ बन्द हुई। केशव से अब और नहीं रहा जाता। श्रीरामकृष्ण को उन्होंने भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। प्रणाम करके बड़े कष्ट से दीवार टेक-टेककर उसी द्वार से अपने कमरे में फिर चले गये।

(६)

ब्राह्मसमाज और वेदोल्लिखित देवता । गुरुपन नीच बुद्धि

श्रीरामकृष्ण कुछ मिष्टान्न ग्रहण करके जायेंगे । केशव के बड़े लड़के उनके पास आकर बैठे।

अमृत ने कहा, "यह केशव का बड़ा लड़का है । आप आशीर्वाद दीजिये । यह क्या ! सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दीजिये ।"

श्रीरामकृष्ण ने कहा, "मुझे आशीर्वाद न देना चाहिए ।" यह कहकर मुसकराते हुए बच्चे की देह पर हाथ फेरने लगे ।

अमृत (हँसते हुए)–अच्छा, तो देह पर हाथ फेरिये । (सब हँसते हैं ।)

श्रीरामकृष्ण अमृत आदि ब्राह्मभक्तों से केशव की बातचीत करने लगे ।

श्रीरामकृष्ण (अमृत आदि से)–बीमारी अच्छी हो—ये सब बातें मैं नहीं कह सकता । यह शक्ति मैं माँ से चाहता भी नहीं। मैं माँ से यही कहता हूँ, माँ, मुझे शुद्ध भक्ति दो ।

'ये (केशव) क्या कुछ कम आदमी हैं ? जो लोग रुपये चाहते हैं, वे भी इन्हें मानते हैं और साधु भी । दयानन्द को देखा, वे बगीचे में ठहरे हुए थे । 'केशव सेन—केशव सेन' कहकर छटपटा रहे थे कि कब केशव आये । उस दिन शायद केशव के वहाँ आने की बात थी ।

"दयानन्द बंगला भाषा को कहते थे—'गौड़ाण्ड भाषा ।'

"ये (केशव) शायद होम और देवता नहीं मानते थे । इसीलिए वे कहते थे, 'ईश्वर ने इतनी चीजें तो तैयार कीं, और देवता नहीं तैयार कर सके ?' "

श्रीरामकृष्ण केशव के शिष्यों से केशव की प्रशंसा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—केशव की हीनबुद्धि नहीं है। इन्होंने बहुतों से कहा है, 'जो कुछ सन्देह हो, वहाँ * जाकर पूछ लो।' मेरा भी यही स्वभाव है। मैं कहता हूँ, ये कोटि गुण और बढ़ें। मैं मान लेकर क्या करूँगा ?

"ये बड़े आदमी हैं। जो लोग धन चाहते हैं, वे भी इन्हें मानते हैं और साधु भी मानते हैं।"

श्रीरामकृष्ण कुछ मिष्टान्न ग्रहण करके अब गाड़ी पर चढ़नेवाले हैं। ब्राह्मभक्त उन्हें चढ़ाने के लिए जा रहे हैं।

जीन से उतरते समय श्रीरामकृष्ण ने देखा, नीचे उजाला नहीं है। तब अमृत आदि भक्तों से उन्होंने कहा, "इन सब स्थानों में अच्छा प्रकाश चाहिए, नहीं तो गरीबी आ घेरती है। ऐसा अब फिर कभी न हो।"

श्रीरामकृष्ण एक-दो भक्तों को साथ लेकर उसी रात को कालीमन्दिर की ओर चल पड़े।

(७)

जयगोपाल सेन के घर में शुभागमन।

केशव को देखकर दक्षिणेश्वर लौटते समय रात में सात बजे के बाद श्रीरामकृष्ण माथाघसागली में श्रीजयगोपाल के घर पर आये।

भक्तगण न जाने क्या विचार कर रहे हैं। वे सोच रहे हैं, 'श्रीरामकृष्ण दिनरात ईश्वरप्रेम में मस्त रहते हैं। विवाह तो किया है, परन्तु धर्मपत्नी से सांसारिक कोई सम्बन्ध नहीं रखते; बल्कि उन पर भक्ति रखते हैं, उनकी पूजा करते हैं, उनके साथ

---

* श्रीरामकृष्ण के पास

केवल ईश्वरीय प्रसंग किया करते हैं; सदा भगवद्गीत गाते, परमात्मा की पूजा करते तथा ध्यान करते हैं; किसी से कोई मायिक सम्बन्ध रखते ही नहीं। उनके लिए ईश्वर ही यथार्थ वस्तु हैं और शेष सब असार पदार्थ। रुपया, धातुद्रव्य, लोटा, कटोरा यह कुछ छू भी नहीं सकते। स्त्रियों को भी नहीं छू सकते। अगर कभी छू लेते हैं तो जहाँ छू जाता है वहाँ सींगी मछली के काँटे के चुभ जाने के समान पीड़ा होने लगती है। रुपया या सोना अगर हाथ पर रख दिया जाता है तो कलाई मुरक जाती है, अवस्था विकृत हो जाती हैं, साँस रुक जाती है। जब वह धातु हटा ली जाती है, तब वे अपनी सच्ची अवस्था को प्राप्त होते हैं—तब उनकी साँस फिर चलने लगती है।'

भक्तगण कितनी ही बातों का विचार कर रहे हैं! 'क्या संसार छोड़ देना होगा? पढ़ाई-लिखाई करने की अब क्या आवश्यकता है? यदि विवाह ही न किया जाय तो फिर नौकरी क्यों करनी पड़ेगी? क्या माता-पिता को छोड़ देना होगा? मैंने तो विवाह कर लिया है, मेरे सन्तान भी हो चुकी है; मुझे तो परिवार का पालन-पोषण करना होगा; मेरा क्या हाल होगा? मेरी भी इच्छा होती है कि मैं दिनरात ईश्वर के प्रेम में मग्न रहूँ! श्रीरामकृष्ण को देख मुझे लगता है कि मैं क्या कर रहा हूँ! ये तो दिनरात तेल की धार के सदृश निरन्तर ईश्वरचिन्तन कर रहे हैं, और मैं दिनरात विषयचिन्ता करता हुआ घूम रहा हूँ। एकमात्र इनके दर्शन ही मेघ से घिरे हुए आकाश में बीच बीच में चमक जानेवाली विद्युत्-ज्योति के समान हैं। अब इस जीवन-समस्या को कैसे सुलझाया जाय?

'इन्होंने तो स्वयं कर दिखाया! फिर अब भी सन्देह क्यों?

'क्या संसार सचमुच बालू की भीत को तरह क्षणभंगुर है ? मैं इसे छोड़ क्यों नहीं पा रहा हूँ ? शायद मुझमें शक्ति कम है। यदि ईश्वर पर वैसा तीव्र प्रेम हो जाय तो फिर कोई हिसाब नहीं रह जाता। जब गंगा में बाढ़ आकर पानी वेग से बहने लगता है तब उसे कौन रोक सकता है ? जिस प्रेम का उदय होने के कारण श्रीगौरांग कौपीन धारण कर संन्यासी बन गये, जिस प्रेम के कारण ईसा मसीह अन्य सब चिन्ताएँ भूलकर वनवासी हुए तथा प्रेममय पिता के मुँह की ओर ताकते हुए शरीर छोड़ दिया, जिस प्रेम के कारण राजवैभव त्यागकर बुद्धदेव वैरागी बने उस प्रेम का एक बिन्दु भी यदि प्राप्त हो जाय तो यह अनित्य संसार कहाँ पड़ा रह जाय!

'अच्छा, जो दुर्बल हैं, जिनमें प्रेम उदित नहीं हुआ, जो संसारी जीव हैं, जिनके पैर माया की जंजीर से बँधे हुए हैं, उनका क्या उपाय हो ? जो हो, मैं इन प्रेममय वैरागी महापुरुष का संग न छोड़ूंगा। देखूं, ये क्या कहते हैं!'

भक्तगण इसी प्रकार की कल्पनाएँ कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण जयगोपाल, के बैठकखाने में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं, सामने जयगोपाल उनके आत्मीय तथा पड़ोसी आदि हैं। एक पड़ोसी वार्तालाप करने के लिए पहले ही से तैयार थे। वही अग्रणी होकर कुछ पूछने लगे। जयगोपाल के भाई वैकुण्ठ भी हैं।

गृहस्थाश्रम तथा श्रीरामकृष्ण

वैकुण्ठ—हम संसारी मनुष्य हैं, हमारे लिए कुछ कहिये।

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर को जानकर, एक हाथ उनके पैरों पर रखकर दूसरे हाथ से संसार का काम करो।

वैकुण्ठ—महाराज, संसार क्या मिथ्या है ?

श्रीरामकृष्ण—जब तक उनका ज्ञान नहीं होता, तब तक मिथ्या है। तब मनुष्य उन्हें भूलकर 'मेरा मेरा' कहता रहता है—माया में फँसकर, कामिनी-कांचन में मुग्ध होकर और भी डूब जाता है। माया में मनुष्य ऐसा अज्ञानी हो जाता है कि भागने का रास्ता रहने पर भी नहीं भाग सकता। एक गाना है—

(भावार्थ)—" 'महामाया की कैसी विचित्र माया है! कैसे भ्रम में उन्होंने डाल रखा है! उनकी माया में ब्रह्मा और विष्णु भी अचेत हो रहे हैं, तो जीव बेचारा भला क्या जान सकता है? मछली जाल में पकड़ी जाती है, परन्तु आने-जाने की राह रहने पर भी वह उससे भाग नहीं सकती। रेशम के कीड़े रेशम की गोटियाँ बनाते हैं; वे चाहें तो उसे काटकर उससे निकल सकते हैं, परन्तु महामाया के प्रभाव से वे इस तरह बद्ध हैं कि अपनी बनायी हुई गोटियों में ही अपनी जान दे देते हैं।'

"तुम लोग तो स्वयं भी देख रहे हो कि संसार अनित्य है। देखो न, कितने आदमी आये और गये। कितने पैदा हुए और कितनों ने देह छोड़ी। संसार अभी अभी तो है और थोड़ी ही देर में नहीं! अनित्य! जिन्हें लेकर इतना 'मेरा' 'मेरा' कर रहे हो, आँखें बन्द करते ही कहीं कुछ नहीं है। है कोई नहीं, फिर भी नाती की बाँह पकड़े बैठे हैं—उसके लिए वाराणसी नहीं जा सकते! कहते हैं—मेरे लाल का क्या होगा? आने जाने की राह है, फिर भी मछली भाग नहीं सकती। रेशम के कीड़े अपनी बनायी गोटियों में ही अपनी जान दे देते हैं। इस प्रकार का संसार मिथ्या है, अनित्य है।"

पड़ोसी—महाराज, एक हाथ ईश्वर में और दूसरा संसार में क्यों रखें? अगर संसार अनित्य है, तो एक हाथ भी संसार में क्यों रखें?

श्रीरामकृष्ण—उन्हें जानकर संसार में रहने से संसार अनित्य नहीं रह जाता। एक गाना सुनो।

(गीत का मर्म)—"ऐ मन, तू खेती का काम नहीं जानता। ऐसी मनुष्यदेहरूपी जमीन पड़ी ही रह गयी! अगर तू काश्तकारी करता तो इसमें सोना फल सकता था। पहले तू उसमें कालीनाम का घेरा लगा दे, इस तरह फसल नष्ट न हो सकेगी। वह मुक्तकेशी का बड़ा ही दृढ़ घेरा है, उसके पास यम की भी हिम्मत नहीं जो कदम बढ़ा सके। आज या शताब्दी भर के बाद यह ज़मीन बेदखल हो जायगी, क्या यह तू नहीं जानता? अतएव अब तू लगन लगाकर उसे जोतकर फसल क्यों नहीं तैयार कर लेता? गुरुप्रदत्त बीज डालकर भक्तिवारि से खेत सींचता जा। अगर तू अकेला यह काम न कर सके तो 'रामप्रसाद' को भी अपने साथ ले ले।"

गृहस्थाश्रम में ईश्वरलाभ। उपाय

श्रीरामकृष्ण— गाना सुना? 'कालीनाम का घेरा लगा दो, इससे फसल नष्ट न होगी।' ईश्वर की शरण में जाओ, सब कुछ पाओगे। 'वह मुक्तकेशी माँ का बड़ा ही मजबूत घेरा है, उसके अन्दर यमराज पैर नहीं बढ़ा सकते।' बड़ा ही मजबूत घेरा है। उन्हें अगर प्राप्त कर सको तो फिर संसार असार न प्रतीत होगा। जिसने उन्हें जान लिया है, वह देखता है, जीव-जगत सब वही बने हैं! बच्चों को खिलाओ तो यह जानकर कि गोपाल को खिला रहे हो। पिता और माता को ईश्वर और जगन्माता देखो और उनकी सेवा करो। उन्हें जानकर संसार में रहने से ब्याही हुई स्त्री से फिर सांसारिक सम्बन्ध नहीं रह जाता। दोनों ही भक्त हो जाते हैं, केवल ईश्वरीय बातचीत

करते हैं, ईश्वरीय प्रसंग लेकर रहते हैं, तथा भक्तों की सेवा करते हैं। सर्वभूतों में वे हैं, अतएव दोनों उन्हीं की सेवा करते हैं।

पड़ोसी—महाराज ऐसे स्त्री-पुरुष दीख क्यों नहीं पड़ते ?

श्रीरामकृष्ण—दीख पड़ते हैं, परन्तु बहुत कम। विषयी मनुष्य उन्हें पहचान नहीं पाते। परन्तु ऐसा तभी होता है, जब दोनों ही भले हों। जब दोनों ही ईश्वरप्रेम-प्राप्त हों तभी ऐसा हो सकता है। इसके लिए परमात्मा की विशेष कृपा चाहिए। नहीं तो सदा ही अनमेल रहता है। एक को अलग हो जाना पड़ता है। अगर मेल न हुआ तो बड़ा कष्ट होता है। स्त्री दिनरात कोसती रहती है, 'बाबूजी ने क्यों यहाँ मेरा विवाह किया ? न मुझे ही कुछ खाने को मिला, न बच्चों को ही; न मुझे ही कुछ पहनने को मिला, न बच्चों को ही मैं कुछ पहना सकी। एक गहना भी तो नहीं है ! तुमने मुझे क्या सुख में रखा है ! आँखें मूँदकर ईश्वर ईश्वर कर रहे हैं। यह सब पागलपन छोड़ो।'

भक्त—ये सब बाधाएँ तो हैं ही, ऊपर से कभी कभी यह भी होता है कि लड़के कहना ही नहीं मानते। इस पर और भी कितनी ही आपदाएँ हैं। महाराज, तो फिर उपाय क्या है ?

श्रीरामकृष्ण—संसार में रहकर साधना करना बड़ा कठिन है। बड़ी बाधाएँ हैं। ये सब तुम्हें बतलाने की जरूरत नहीं है—रोग, शोक, दारिद्र्य, उस पर पत्नी से अनबन, लड़के अवाध्य मूर्ख और गँवार।

'परन्तु उपाय है। कभी कभी एकान्त में जाकर उनसे प्रार्थना करनी पड़ती है, उन्हें पाने के लिए चेष्टा करनी पड़ती है।"

पड़ोसी—घर से निकल जाना होगा ?

श्रीरामकृष्ण—एकदम नहीं। जब अवकाश हो तब निर्जन में

जाकर एक-दो दिन रहो—परन्तु संसार से कोई सम्बन्ध न रहे, किसी विषयी मनुष्य के साथ किसी सांसारिक विषय की चर्चा न करनी पड़े। या तो निर्जन में रहो या सत्संग करो।

पड़ोसी—सत्संग के लिए साधु-महात्मा की पहचान कैसे हो ?

श्रीरामकृष्ण—जिनका मन, जिनका जीवन, जिनकी अन्तरात्मा ईश्वर में लीन हो गयी है, वही महात्मा हैं। जिन्होंने कामिनी और कांचन का त्याग कर दिया है, वही महात्मा हैं। जो महात्मा हैं, वे स्त्रियों को संसार की दृष्टि से नहीं देखते। यदि स्त्रियों के पास वे कभी जाते हैं तो उन्हें मातृवत् देखते हैं और उनकी पूजा करते हैं। साधु-महात्मा सदा ईश्वर का ही चिन्तन करते हैं। ईश्वरीय प्रसंग के सिवाय और कोई बात उनके मुंह से नहीं निकलती। और सर्वभूतों में ईश्वर का ही वास है यह जानकर वे सब की सेवा करते हैं। संक्षेप में यही साधुओं के लक्षण हैं।

पड़ोसी—क्या बराबर एकान्त में रहना होगा ?

श्रीरामकृष्ण—फुटपाथ के पेड़ तुमने देखे हैं ? जब तक वे पौधे रहते हैं तब तक चारों ओर से उन्हें घेर रखना पड़ता है। नहीं तो बकरे और चौपाये उन्हें चर जाते हैं। जब पेड़ मोटे हो जाते हैं तब उन्हें घेरने की जरूरत नहीं रहती। तब हाथी बांध देने पर भी पेड़ नहीं टूट सकता। तैयार पेड़ अगर बना ले सको तो फिर क्या चिन्ता है—क्या भय है ? विवेक लाभ करने की चेष्टा पहले करो। तेल लगाकर कटहल काटो, उससे दूध नहीं चिपक सकता।

पड़ोसी—विवेक किसे कहते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—ईश्वर सत् है और सब असत्—इस विचार का नाम विवेक है। सत् का अर्थ नित्य, और असत् का अनित्य है।

जिसे विवेक हो गया है वह जानता है, ईश्वर ही वस्तु हैं, और सब अवस्तु है। विवेक के उदय होने पर ईश्वर को जानने की इच्छा होती है। असत् को प्यार करने पर—जैसे देहसुख, लोक-सम्मान, धन, इन्हें प्यार करने पर—सत्स्वरूप ईश्वर को जानने की इच्छा नहीं होती। सत्-असत् विचार के आने पर ईश्वर की ढूंढ़-तलाश की ओर मन जाता है।

"सुनो यह एक गाना सुनो।—

(भावार्थ)—" 'मन ! आ घूमने चलें। काली-कल्पतरु के नीचे, ऐ मन, चारों फल तुझे पड़े हुए मिलेंगे। प्रवृत्ति और निवृत्ति तेरी स्त्रियाँ हैं; इनमें से निवृत्ति को अपने साथ लेना। उसके आत्मज विवेक से तत्त्व की बातें पूछ लेना। शुचि-अशुचि को लेकर दिव्य घर में तू कब सोयेगा ? उन दोनों सौतों में जब प्रीति होगी, तभी तू श्यामा माँ को पायगा। तेरे पिता माता ये जो अहंकार और अविद्या हैं, इन्हें दूर कर देना। अगर कभी मोहगर्त में तू खिचकर गिर जाय तो धैर्य का खूंटा पकड़ रहना। धर्माधर्मरूपी दोनों बकरों को एक तुच्छ खूंटे में बाँध रखना। अगर ये निषेध न मानें तो ज्ञान-खड्ग लेकर इनकी बलि दे देना। पहली पत्नी की सन्तान को दूर से समझा देना। अगर यह तेरे प्रबोध-वाक्यों पर ध्यान न दे तो उसे ज्ञान-सिन्धु में डुबा देना। 'प्रसाद' कहता है, इस तरह का जब तू बन जायगा, तभी तू काल के पास उत्तर दे सकेगा और ऐ प्यारे, तभी तू सच्चा मन बन सकेगा।'

"मन में निवृत्ति के आने पर विवेक होता है। विवेक के होने पर ही तत्त्व की बात हृदय में पैदा होती है। तभी काली-कल्पतरु के नीचे घूमने के लिए मन जाना चाहता है। उस पेड़ के नीचे जाने पर, ईश्वर के पास जाने पर, चारों फल— धर्म,

अर्थ, काम और मोक्ष——पड़े हुए मिलेंगे, अनायास मिल जायेंगे। उन्हें पा जाने पर, धर्म, अर्थ, काम, जो कुछ संसारियों को चाहिए, वह भी मिलता है——अगर कोई चाहे।

पड़ोसी—तो फिर संसार को माया क्यों कहते हैं?

विशिष्टाद्वैतवाद और श्रीरामकृष्ण।

श्रीरामकृष्ण—जब तक ईश्वर नहीं मिलते तब तक 'नेति' 'नेति' करके त्याग करना पड़ता है। उन्हें जिन लोगों ने पा लिया है, वे जानते हैं कि वे ही सब कुछ हुए हैं। तब बोध हो जाता है——ईश्वर ही माया और जीव-जगत् हैं। जीव-जगत् भी वही हैं। अगर किसी बेल का खोपड़ा, गूदा और बीज अलग कर दिये जायें, और कोई कहे, देखो तो जरा बेल तौल में कितना था, तो क्या तुम खोपड़ा और बीज अलग करके सिर्फ गूदा तौल पर रखोगे या तौलते समय खोपड़ा और बीज भी साथ ले लोगे? एक साथ लेने पर ही तुम कह सकोगे, बेल तौल में कितना था। खोपड़ा मानो संसार है, और बीज मानो जीव। विचार के समय तुमने जीव और संसार को अनात्मा कहा था, अवस्तु कहा था। विचार करते समय गूदा ही सार, तथा खोपड़ा और बीज असार जान पड़े थे। विचार हो जाने पर, सब मिलकर एक जान पड़ता है। और यह प्रतीत होता है कि जिस सत्ता का गूदा है, उसी से बेल का खोपड़ा और बीज भी तैयार हुआ है। बेल को समझने चलो तो सब कुछ समझ में आ जाता है।

"अनुलोम और विलोम। मट्ठे ही का मक्खन है, और मक्खन ही का मट्ठा। अगर मट्ठा तैयार हो गया हो तो मक्खन भी हो गया है। यदि मक्खन हो गया हो तो मट्ठा भी हो गया है। आत्मा अगर रहे तो अनात्मा भी है।

"जिनकी नित्यता है, लीला भी उन्हीं की है। जिनकी लीला है, उन्हीं की नित्यता भी है। जो ईश्वर के रूप से प्रकट होते हैं, वही जीव-जगत् भी हुए हैं। जिसने जान लिया है, वह देखता है कि वही सब कुछ हुए हैं---बाप, माँ, बच्चा, पड़ोसी, जीव-जन्तु, भला-बुरा, शुद्ध-अशुद्ध सब कुछ।"

पापबोध

पड़ोसी--तो पाप-पुण्य नहीं है ?

श्रीरामकृष्ण--है भी और नहीं भी है। वे यदि अहंतत्त्व रख देते हैं तो भेदबुद्धि भी रख देते हैं, पाप-पुण्य का ज्ञान भी रख देते हैं। वे एक-दो मनुष्यों का अहंकार बिलकुल पोंछ डालते हैं--वे पाप पुण्य, भले-बुरे के परे चले जाते हैं। ईश्वरदर्शन जब तक नहीं होता तब तक भेदबुद्धि और भले-बुरे का ज्ञान रहता ही है, तुम मुँह से कह सकते हो, 'हमारे लिए पाप और पुण्य बराबर हैं, वे जैसा कराते हैं वैसा ही करता हूँ', परन्तु हृदय से यही जानते हो कि यह सब एक कहावत मात्र है; बुरा काम करने से छाती धड़कने लगेगी। ईश्वरदर्शन के बाद भी अगर उनकी इच्छा होती है तो वे 'दास मैं' रख देते हैं। उस अवस्था में भक्त कहता है, मैं दास हूँ, तुम प्रभु हो। ईश्वरीय प्रसंग, ईश्वरीय कर्म, ये सब उस भक्त को रुचिकर होते हैं; ईश्वर-विमुख मनुष्य उसे अच्छा नहीं लगता; उसको ईश्वरीय कर्मों के सिवा दूसरे कार्य नहीं सुहाते। इतने ही से बात सिद्ध हो जाती है कि ऐसे भक्तों में भी वे भेदबुद्धि रख छोड़ते है।

पड़ोसी--महाराज, आप कहते हैं ईश्वर को जानकर संसार करो। क्या उन्हें कोई जान सकता है ?

श्रीरामकृष्ण--उन्हें इन्द्रियों द्वारा अथवा इस मन के द्वारा कोई

जान नहीं सकता। जिस मन में विषय-वासना नहीं उस शुद्ध मन के द्वारा ही मनुष्य उन्हें जान सकता है।

पड़ोसी—ईश्वर को कौन जान सकता है?

श्रीरामकृष्ण— ठीक, ठीक उन्हें कौन जान सकता है? हमारे लिए जितना जानने की जरूरत है, उतना होने ही से हो गया। हमें कुएँभर पानी की क्या जरूरत है? हमारे लिए तो लोटाभर पानी पर्याप्त है। एक चींटी चीनी के पहाड़ के पास गयी थी। सब पहाड़ लेकर भला क्या करेगी? उसके छकने के लिए तो दो-एक दाने ही बहुत हैं।

पड़ोसी—हमें जैसा विकार है, इससे लोटाभर पानी से क्या होता है? इच्छा होती है, ईश्वर को सोलहों आने समझ लें।

संसारविकार की दवा—'मामेकं शरणं व्रज'

श्रीरामकृष्ण—यह ठीक है; परन्तु विकार की दवा भी तो है।

पड़ोसी—महाराज, वह कौनसी दवा है?

श्रीरामकृष्ण—साधुओं का संग, उनका नामगुण-कीर्तन, उनसे सर्वदा प्रार्थना करना। मैंने कहा था—माँ, मैं ज्ञान नहीं चाहता; यह लो अपना ज्ञान और यह लो अपना अज्ञान; माँ, मुझे अपने चरणकमलों में केवल शुद्धा भक्ति दो। मैं और कुछ नहीं चाहता।

"जैसा रोग होता है, उसकी दवा भी वैसी ही होती है। गीता में उन्होंने कहा है, 'हे अर्जुन, तुम मेरी शरण लो, तुम्हें मैं सब तरह के पापों से मुक्त कर दूंगा।' उनकी शरण में जाओ; वे सुबुद्धि देंगे, वे सब भार ले लेंगे। तब सब तरह के विकार दूर हट जायेंगे। इस बुद्धि से क्या कोई उन्हें समझ सकता है? सेर

भर के लोटे में क्या कभी चार सेर दूध रह सकता है ? और बिना उनके समझाये क्या उन्हें कोई समझ सकता है ? इसीलिए कहता हूँ उनकी शरण में जाओ--उनकी जो इच्छा हो, वे करें। वे इच्छामय हैं। मनुष्य की क्या शक्ति है ?"

परिच्छेद ६०

दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ

(१)

भक्तियोग, समाधितत्त्व और महाप्रभु की अवस्थाएँ। हठयोग और राजयोग

९ दिसम्बर १८८३, रविवार, अगहन शुक्ला दशमी, दिन के दो बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के उसी छोटे तख्त पर बैठे हुए भक्तों के साथ भगवच्चर्चा कर रहे हैं। अधर, मनोमोहन ठनठनिया के शिवचन्द्र, राखाल, मास्टर, हरीश आदि कितने ही भक्त बैठे हुए हैं। हाजरा भी उस समय वहीं रहते थे। श्रीरामकृष्ण महाप्रभु की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों के प्रति)—चैतन्यदेव को तीन अवस्थाएँ होती थीं। बाह्यदशा,—तब, स्थूल और सूक्ष्म में उनका मन रहता था। अर्धबाह्यदशा,—तब कारण-शरीर में, कारणानन्द में चला जाता था। अन्तर्दशा,—तब महाकारण में मन लीन हो जाता था।

"वेदान्त के पंचकोष के साथ इसका यथार्थ मेल है। स्थूल-शरीर अर्थात् अन्नमय और प्राणमय कोष। सूक्ष्म-शरीर अर्थात् मनोमय और विज्ञानमय कोष। कारण-शरीर अर्थात् आनन्दमय कोष। महाकारण पचकोषों से परे है। महाकारण में जब मन लीन होता था तब वे समाधि-मग्न हो जाते थे। इसी का नाम निर्विकल्प अथवा जड़-समाधि है।

"चैतन्यदेव को जब बाह्यदशा होती थी तब वे नामसंकीर्तन

करते थे। अर्धबाह्यदशा में भक्तों के साथ नृत्य करते थे। अन्तर्दशा में समाधिस्थ हो जाते थे।

मास्टर (स्वगत)—क्या श्रीरामकृष्ण इस प्रकार अपनी स्वयं की अवस्थाओं की ओर ही संकेत कर रहे हैं? चैतन्यदेव की भी ऐसी ही अवस्थाएँ होती थीं!

श्रीरामकृष्ण—श्रीचैतन्य भक्ति के अवतार थे। वे जीवों को भक्ति की शिक्षा देने के लिए आये थे। उन पर भक्ति हुई तो सब कुछ हो गया। फिर हठयोग की कोई आवश्यकता नहीं।

एक भक्त—जी, हठयोग कैसा है?

श्रीरामकृष्ण—हठयोग में शरीर की ओर मन ज्यादा देना पड़ता है। अन्तर-प्रक्षालन के लिए हठयोगी बाँस की नली पर गुदा-स्थापन करता है। लिंग के द्वारा दूध-घी खींचता रहता है। जिह्वा-सिद्धि का अभ्यास करता है। आसन साधकर कभी कभी शून्य पर चढ़ जाता है। ये सब कार्य वायु के हैं। तमाशा दिखाते हुए किसी ने तालु के अन्दर जीभ घुसेड़ दी थी। बस, उसका शरीर स्थिर हो गया। लोगों ने सोचा, यह मर गया। कितने ही वर्ष वह कब्र में मिट्टी के नीचे पड़ा रहा। कालान्तर में वह कब्र धँस गयी। तब एकाएक उसे चेत हुआ। चेतना के होते ही वह चिल्ला उठा—यह देखो कलाबाजी! यह देखो गिरहंबाजी! (सब हँसते हैं।) यह सब साँस की करामात है।

"वेदान्तवादी हठयोग नहीं मानते।

"हठयोग और राजयोग। राजयोग में मन के द्वारा योग होता है। भक्ति के द्वारा, विचार के द्वारा भी योग होता है। यही योग अच्छा है। हठयोग अच्छा नहीं, क्योंकि कलि में प्राण अन्न के अधीन है।"

(२)

श्रीरामकृष्ण की तपस्या । श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त और भविष्यत् महातीर्थ । मूर्तिदर्शन

श्रीरामकृष्ण नौबतखाने की बगलवाली राह पर खड़े हुए देख रहे हैं---मणि नौबतखाने के बरामदे में एक ओर बैठे हुए घेरे की आड़ में किसी गहन चिन्ता में डूबे हुए हैं। क्या वे ईश्वर का चिन्तन कर रहे हैं ? श्रीरामकृष्ण झाऊतल्ले की ओर गये थे। मुँह धोकर वहीं जाकर खड़े हुए।

श्रीरामकृष्ण--क्यों जी, यहाँ बैठे हुए हो ! तुम्हारा काम जल्दी होगा। कुछ ही दिन करने से कोई कहेगा---'यह, यह करो।'

चौंककर वे श्रीरामकृष्ण की ओर ताकते रह गये। अभी तक आसन भी नहीं छोड़ा।

श्रीरामकृष्ण--तुम्हारा समय हो आया है। जब तक अण्डों के फोड़ने का समय नहीं होता, तब तक चिड़िया अण्डे नहीं फोड़ती। जो मार्ग तुम्हें बतलाया गया है, वही तुम्हारे लिए ठीक है।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने फिर से मार्ग बतला दिया।

श्रीरामकृष्ण--यह नहीं कि सभी को तपस्या अधिक करनी पड़े। परन्तु मुझे तो बड़ा ही कष्ट उठाना पड़ा था। मिट्टी के टीले पर सिर रखकर पड़ा रहता था। न जानें कहाँ दिन पार हो जाता था। केवल 'माँ, माँ' कहकर पुकारता था और रोता था।

मणि श्रीरामकृष्ण के पास लगभग दो साल से आ रहे हैं। वे अंग्रेजी पढ़े हुए हैं। श्रीरामकृष्ण कभी कभी उन्हें इंग्लिश मैन कहकर पुकारते थे। उन्होंने कालेज में अध्ययन किया है। विवाह भी किया है।

केशव और दूसरे पण्डितों के व्याख्यान सुनने और अंग्रेजी दर्शन और विज्ञान पढ़ने में उनका खूब जी लगता है। परन्तु जब से वे श्रीरामकृष्ण के पास आये, तब से यूरोपीय पण्डितों के ग्रन्थ और अंग्रेजी अथवा दूसरी भाषाओं के व्याख्यान उन्हें अलोने जान पड़ने लगे। अब दिनरात केवल श्रीरामकृष्ण को देखना और उन्हीं की बातें सुनना चाहते हैं।

आजकल श्रीरामकृष्ण की एक बात वे सदा सोचते रहते हैं। श्रीरामकृष्ण ने कहा है, 'साधना करने से मनुष्य ईश्वर को देख सकता है।' उन्होंने यह भी कहा है, 'ईश्वरदर्शन ही मनुष्यजीवन का उद्देश्य है।'

श्रीरामकृष्ण—कुछ दिन करने से ही कोई कहेगा—'यह, यह करो।' तुम एकादशी का व्रत करना। तुम लोग अपने आदमी हो, आत्मीय हो। नहीं तो तुम इतना क्यों आओगे? कीर्तन सुनते सुनते राखाल को मैंने देखा था, वह व्रजमण्डल के भीतर था। नरेन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा है। और हीरानन्द। उसका कैसा बालकों का सा भाव है! उसका भाव कैसा मधुर है! उसे भी देखने को जी चाहता है।

"मैंने श्रीगौरांग के सांगोपांगों को देखा था; भाव में नहीं, इन्हीं आँखों से! पहले ऐसी अवस्था थी कि सादी दृष्टि से सब दर्शन होते थे! अब तो भाव में होते हैं।

"सादी दृष्टि से श्रीगौरांग के सब सांगोपांगों को देखा था। उसमें शायद तुम्हें भी देखा था। और शायद बलराम को भी।

"किसी को देखकर झट उठकर क्यों खड़ा हो जाता हूँ, जानते हो? आत्मीयों को दीर्घकाल के बाद देखने से ऐसा ही होता है।

"माँ से रो-रोकर कहता था, माँ, भक्तों के लिए मेरा जी निकल रहा है; उन्हें शीघ्र मेरे पास ला दे। जो कुछ मैं सोचता था, वही होता था।

"पंचवटी में मैंने तुलसीकानन बनाया था, जप-ध्यान करने के लिए। बड़ी इच्छा हुई कि चारों ओर से बाँस की कमानियों का घेरा लगा दूँ। इसके बाद ही देखा, ज्वार में बहकर कुछ कमानियों का गट्ठा और कुछ रस्सी ठीक पंचवटी के सामने आकर लग गयी है। ठाकुरबाड़ी में एक कहार रहता था। आनन्द से नाचते हुए उसने आकर यह खबर सुनायी।

"जब यह अवस्था हुई तब और पूजा न कर सका। कहा माँ, मुझे कौन देखेगा ? माँ, मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है कि अपना भार खुद ले सकूँ। और तुम्हारी बात सुनने को जी चाहता है; भक्तों के खिलाने की इच्छा होती है; सामने पड़ जाने पर किसी को कुछ देने की भी इच्छा होती है। माँ, यह सब किस तरह होगा ? माँ, तुम एक बड़ा आदमी मेरी सहायता के लिए दो। इसीलिए तो मथुरबाबू ने इतनी सेवा की !

"और भी कहा था, माँ, मेरे तो अब सन्तान होगी नहीं, परन्तु इच्छा होती है कि एक शुद्ध भक्त बालक सदा मेरे साथ रहे। इसी तरह का एक बालक मुझे दो। इसीलिए तो राखाल आया। जो जो आत्मीय हैं, उनमें कोई अंश है और कोई कला।"

श्रीरामकृष्ण फिर पंचवटी की ओर जा रहे हैं। केवल मास्टर साथ हैं, और कोई नहीं। श्रीरामकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक उनसे विविध वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–देखो, मैंने एक दिन कालीमन्दिर से पंचवटी तक एक अद्भुत मूर्ति देखी ! इस पर तुम्हारा

विश्वास होता है ?

मास्टर आश्चर्य में आकर निर्वाक् हो रहे।

वे पंचवटी की शाखा से दो-चार पत्ते तोड़कर अपनी जेब में रख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—यह डाल गिर गयी है, देखते हो ? मैं इसके नीचे बैठता था।

मास्टर—मैं इसकी एक छोटीसी डाल तोड़ ले गया हूँ। उसे घर में रख दिया है।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)— क्यों ?

मास्टर—देखने से आनन्द होता है। सब समाप्त हो जाने पर यही जगह महातीर्थ होगी।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—किस तरह का तीर्थ ? क्या पानी-हाटी की तरह का ?

पानीहाटी में बड़े समारोह के साथ राघव पण्डित का महोत्सव होता है। श्रीरामकृष्ण प्रायः हर साल यह महोत्सव देखने जाया करते हैं और संकीर्तन के बीच में प्रेम और आनन्द से नृत्य किया करते हैं, मानो भक्तों की पुकार सुनकर श्रीगौरांग स्थिर नहीं रह सकते—संकीर्तन में स्वयं जाकर अपनी प्रेममूर्ति के दर्शन कराते हैं।

(३)

हरिकथा-प्रसंग

सन्ध्या हो गयी। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटे तख्त पर बैठे हुए जगन्माता का चिन्तन कर रहे हैं। क्रमशः मन्दिर में देवताओं की आरती होने लगी। शंख और घण्टे बजने लगे। मास्टर आज रात को यहीं रहेंगे।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से 'भक्तमाल' पढ़कर सुनाने के लिए कहा। मास्टर पढ़ रहे हैं।†

"जयमल नाम के एक शुद्धचित्त राजा थ। भगवान् श्रीकृष्ण पर उनकी अचल प्रीति थी। नवधा भक्ति के यजन में वे इतने दृढनिष्ठ थे कि पत्थर पर खिची हुई रेखा की तरह उसका ह्रास न हो पाता था। वे जिस विग्रह का पूजन करते थे उसका नाम श्यामलसुन्दर था। श्यामलसुन्दर को छोड़ वे और अन्य किसी देवी-देवता को मानो जानते ही न थे उन्हीं पर उनका चित्त लगा रहता था। सदा दृढ़ नियमों से वे दस दण्ड दिन चढ़ते तक उस मूर्ति की पूजा किया करते थे। अपने पूजन में वे इतने दृढ़निश्चय थे कि चाहे राज्य और धन का नाश हो जाय, चाहे वज्रपात हो, तथापि पूजा के समय किसी दूसरी ओर ध्यान न देते थे।

"इस बात की खबर उनके एक दूसरे प्रतिस्पर्धी राजा के पास पहुँची। उसने सोचा, यह तो शत्रु को पराजित करने का एक उत्तम उपाय हाथ आया। जिस समय राजा जयमल पूजन के लिए बैठे थे उसी समय उसने उनके राज्य पर आक्रमण कर युद्ध की घोषणा कर दी। राजा की आज्ञा बिना सेना युद्ध नहीं कर सकती। अत: राजा जयमल की सेना उनकी आज्ञा की राह देखती रही। तब तक शत्रुओं ने उनका किला घेर लिया। तथापि इन्होंने उस समय युद्ध की ओर ध्यान ही नहीं दिया, निरुद्वेग होकर पूजन करते रहे। इनकी माता सिर पटकती हुई पास आकर उच्च स्वर से रोदन करने लगी। विलाप करते हुए उसने कहा कि अब जल्दी

---

† यह बंगला का भक्तमाल है। छन्दोबद्ध है। यहाँ इसका हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

उठो, नहीं तो सब कुछ चला जायगा; तुम तो ऐसे हो कि तुम्हारा इधर ध्यान ही नहीं है—शत्रु चढ़ आया—अब किला तोड़ना ही चाहता है। महाराज जयमल ने कहा, 'माता! तुम क्यों दुःख कर रही हो? जिसने यह राज-पाट दिया है, वह अगर छीन ले तो हमारा इसमें क्या! और अगर वह हमारी रक्षा करे, तो वह शक्ति किसमें है जो हमसे ले सके? अतएव हम लोगों का उद्यम तो व्यर्थ ही है।'

'इधर श्यामलसुन्दर ने घोड़े पर सवार हो अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध की तैयारी कर दी। अकेले ही भक्त के शत्रुओं का संहार करके घोड़े को अपने मन्दिर के पास बाँधकर श्यामलसुन्दर जहाँ के तहाँ हो रहे।

"पूजा-अर्चना समाप्त होने पर राजा जयमल बाहर आकर देखते हैं कि सामने उनका घोड़ा पसीने से तर हो हाँफता खड़ा है। वे पूछने लगे, 'मेरे घोड़े पर कौन सवार हुआ और इसे यहाँ बाँध गया?' सभी कहने लगे कि यह तो हम कुछ भी नहीं जानते। राजा के मन में सन्देह हुआ और यही सोचते हुए वे सेनासहित युद्धभूमि की ओर बढ़े। जाकर उन्होंने देखा कि सारी शत्रुसेना रणभूमि में लोट रही है— केवल शत्रुपक्ष का राजा भर बचा है। विस्मित होकर राजा जयमल इसका कारण पूछने लगे। इतने में वह प्रतिस्पर्धी राजा उनके समीप आया और हाथ जोड़कर विनती करने लगा। वह बोला, 'आपके एक सिपाही ने अकेले ही इतना आश्चर्यजनक युद्ध किया कि उनके सामने कोई टिक न सका। वह अवश्य ही त्रिलोकविजयी है। महाराज, मैं आपका धन या राज्य नहीं चाहता। बल्कि आप चलकर मेरा भी राज्य ले लें। परन्तु मुझे आप इतना बताइये कि वह साँवला सिपाही कौन था। केवल एक बार

दर्शन देकर उसने मेरा मन हर लिया है।"

"जयमल को समझने में देर न लगी कि यह सब श्यामल-सुन्दरजी का ही खेल है। यह मर्म जानते ही प्रतिद्वन्द्वी राजा जयमल के चरण पकड़कर स्तव करने लगे और कहने लगे कि जिनके कारण मुझ पर कृष्ण की कृपा हुई उन आपके चरणों में मैं शरण लेता हूँ—कृपा कीजिये कि वह श्यामल सिपाही मेरा स्वीकार करे।"

पाठ समाप्त होने के बाद श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—इन बातों पर तुम्हारा विश्वास होता है ?—घोड़े पर सवार होकर उन्होंने सेनानाश किया था; इन सब बातों पर ?

मास्टर—भक्त ने व्याकुल होकर उन्हें पुकारा था। इस पर विश्वास होता है। श्रीभगवान् को उसने ठीक ठीक सवार करते देखा था या नहीं, यह सब समझ में नहीं आता। वे सवार होकर आ सकते हैं, परन्तु उन लोगों ने उन्हें ठीक ठीक देखा था या नहीं, इस पर विश्वास नहीं जमता।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—पुस्तक में भक्तों की अच्छी कथाएं लिखी हैं, परन्तु हैं सब एक ही ढर्रे की। जिनका दूसरा मत है, उनकी निन्दा लिखी है।

दूसरे दिन सुबह को बगीचे में खड़े हुए श्रीरामकृष्ण वार्तालाप कर रहे हैं। मणि कहते हैं, "तो मैं यहाँ आकर रहूँगा।"

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, तुम लोग जो इतना आया करते हो, इसके क्या मानी है ? साधु को लोग ज्यादा से ज्यादा एक बार

आकर देख जाते हैं। तुम इतना आते हो—— इसके क्या मानी है?

मणि तो चकित हो गये। श्रीरामकृष्ण स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देने लगे।

श्रीरामकृष्ण (मणि से) —अन्तरंग न होते तो क्या आते? अन्तरंग अर्थात् आत्मीय, अपना आदमी——जैसे, पिता, पुत्र, भाई, बहन। सब बातें मैं नहीं कहता। नहीं तो फिर क्यों आओगे?

"शुकदेव ब्रह्मज्ञान पाने के लिए जनक के पास गये थे। जनक ने कहा, 'पहले दक्षिणा दो।' शुकदेव ने कहा, 'जब तक उपदेश नहीं मिल जाता, तब तक कैसे दक्षिणा दूँ?' जनक ने हँसते हुए कहा, 'तुम्हें ब्रह्मज्ञान हो जाने पर फिर गुरु और शिष्य का भेद थोड़े ही रह जायगा? इसीलिए हमने पहले दक्षिणा की बात कही'।"

(४)

सेवक की विचारतरंगें

शुक्लपक्ष है। चांद निकला है। मणि कालीमन्दिर के उद्यान के रास्ते पर टहल रहे हैं। रास्ते के एक ओर श्रीरामकृष्ण का कमरा, नौबतखाना, बकुलतला और पंचवटी है—दूसरी ओर ज्योत्स्नापूर्ण भागीरथी बह रही हैं।

मणि मन ही मन कह रहे हैं— "क्या सचमुच ही ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं? श्रीरामकृष्ण तो ऐसा कहते हैं। उन्होंने कहा कि थोड़ी साधना करते ही कोई आकर बता देगा, 'ऐसा ऐसा करो।' अर्थात् उन्होंने थोड़ी साधना करने के लिए कहा। अच्छा, मेरा तो विवाह हो चुका है, लड़के-बच्चे भी हुए हैं, क्या इतने पर भी ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है? (थोड़ा सोचकर) अवश्य ही किया जा सकता है, नहीं तो ये वैसा क्यों

कहते ? उनकी कृपा होने से क्यों न होगा ?

"सामने यह जगत् दिखायी दे रहा है— ये सूर्य, चन्द्र, तारे, जीव, चौबीस तत्त्व—ये सब कैसे उत्पन्न हुए, इनका करतार कौन है, मैं उनका कौन हूँ, यह न जानने पर जीवन ही व्यर्थ है।

"श्रीरामकृष्ण पुरुषश्रेष्ठ हैं। ऐसे महापुरुष मैंने जीवन में आज तक नहीं देखे। इन्होंने अवश्य ही ईश्वर को देखा है। अन्यथा, ये 'माँ माँ' कहते हुए दिनरात किसके साथ बात-चीत करते रहते हैं! अन्यथा, ईश्वर पर इनका इतना प्रेम कैसे हो सकता है! इतना प्रेम कि एकदम बाह्यज्ञानरहित हो जाते हैं! समाधिमग्न जड़वत् हो जाते हैं! फिर कभी प्रेम में मतवाले होकर हँसते, रोते, नाचते और गाते हैं।"

परिच्छेद ६१

दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ

(१)

अध्यात्मरामायण

आज अगहन की पूर्णिमा और संक्रान्ति हैं। दिन शुक्रवार १४ दिसम्बर १८८३ । दिन के नौ बजे होंगे । श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के दरवाजे के पास दक्षिण-पूर्व के बरामदे में खड़े हैं। पास ही रामलाल खड़े हैं। राखाल और लाटू भी कहीं इधर-उधर पास ही थे। मणि ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण ने कहा, "आ गये, अच्छा हुआ। आज दिन भी अच्छा है।" मणि कुछ दिन श्रीरामकृष्ण के पास रहेंगे। साधना करेंगे। श्रीरामकृष्ण ने कहा है, "थोड़ी साधना करते ही कोई आकर तुम्हें बता देगा, ऐसा ऐसा करो।"

श्रीरामकृष्ण ने इनसे कहा है, "यहाँ अतिथिशाला का अन्न तुम्हारे लिए रोज खाना उचित नहीं। यह साधुओं और कंगालों के लिए है। तुम अपना भोजन पकाने के लिए एक आदमी ले आना।" इसीलिए उनके साथ एक आदमी भी आया है।

उनका भोजन कहाँ पकाया जायगा, इसकी व्यवस्था कर दी गयी। वे दूध पीयेंगे, इसके लिए श्रीरामकृष्ण ने रामलाल को अहीर से कह देने को कहा।

रामलाल 'अध्यात्मरामायण' पढ़ रहे हैं और श्रीरामकृष्ण सुन रहे हैं। मणि भी बैठे हुए सुन रहे हैं—

'श्रीरामचन्द्रजी सीताजी से विवाह करके अयोध्या लौट रहे,

हैं। रास्ते में परशुराम से भेंट हुई। श्रीरामचन्द्र ने शिव का धनुष तोड़ डाला है, यह सुनकर परशुराम रास्ते में बड़ा गुलगपाड़ा मचाने लगे। मारे भय के दशरथ के होश ही उड़ गये। परशुराम ने एक दूसरा धनुष राम को देकर उस पर उन्हें गुण चढ़ा देने के लिए कहा। राम ने कुछ मुसकराकर बायें हाथ से धनुष लेकर गुण चढ़ाकर उसमें टंकार किया। शरासन में शरयोजना करके परशुराम से उन्होंने कहा, अब यह बाण कहाँ छोड़ूँ—कहो। परशुराम का दर्प चूर्ण हो गया। वे श्रीरामचन्द्र को परब्रह्म कह-कर उनकी स्तुति करने लगे।"

परशुराम की स्तुति सुनते ही सुनते श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो गया। रह-रहकर, 'राम राम' नाम का मधुर स्वर में उच्चारण कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (रामलाल से)– जरा गुह-निषाद की कथा तो सुनाओ। रामलाल 'भक्तमाल' से सुनाते रहे—

"श्रीरामचन्द्र जब पिता की सत्यरक्षा के लिए वन गये थे, तब उन्हें देखकर निषादराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके नेत्रों से अश्रु की धारा बहने लगी; गला रुँध आया और वे काठ की बनी पुतली की तरह निःस्पन्द होकर अनिमेष दृष्टि से एकटक देखते रहे। धीरे धीरे उन्होंने श्रीरामचन्द्र के पास जाकर कहा, 'आप हमारे घर चलें।' श्रीरामचन्द्र उन्हें मित्र कहकर भर बाँह भेंटे। निषाद ने आत्मसमर्पण करते हुए कहा, 'आप मेरे मित्र हुए तो मैं भी आपको अपने प्राणों के साथ अपनी देह समर्पित करता हूँ। आप ही मेरे प्राण, धन, राज्य हैं आप ही मेरी भक्ति मुक्ति हैं, आप मेरे सर्वस्व हैं। आपके चरणों में मैं देहसमर्पण करता हूँ।'

"श्रीरामचन्द्र चौदह साल वन में रहेंगे और जटा-वल्कल

धारण करेंगे, यह सुनकर निषादराज ने भी जटा-वल्कल धारण कर लिया। फल-मूल छोड़कर अन्य कोई भोजन उन्होंने नहीं किया। चौदह साल के बाद भी श्रीरामचन्द्र नहीं आ रहे हैं यह देखकर गुह अग्निप्रवेश करने जा रहे थे। इसी समय हनुमानजी ने आकर संवाद दिया। संवाद पाकर गुह आनन्दसागर में मग्न हो गये। श्रीरामचन्द्र और सीतामाई पुष्पक विमान पर आकर उपस्थित हो गये।

तीव्र वैराग्य तथा संसारत्याग

"भक्तवत्सल रामचन्द्र ने प्रिय भक्त गुह को देखते ही दृढ़ आलिंगन में बाँध हृदय से लगा लिया। दोनों की देह आँसुओं से तर हो गयी। निषादराज गुह धन्य हो गये। चारों ओर उनका जयजयकार होने लगा।"

भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण थोड़ा आराम कर रहे हैं। मास्टर पास बैठे हुए हैं। इसी समय श्याम डाक्टर तथा और भी कुछ आदमी आये। श्रीरामकृष्ण उठकर बैठ गये और बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण--बात यह नहीं कि कर्म बराबर करते ही जाना पड़े। ईश्वरलाभ हो जाने पर कर्म फिर नहीं रह जाते। फल होने पर फूल आप ही झड़ जाते हैं।

"जिसे ईश्वरप्राप्ति हो जाती है उसके लिए सन्ध्यादि कर्म नहीं रह जाते। सन्ध्या गायत्री में लीन हो जाती है; तब गायत्री जपने से ही काम हो जाता है। और गायत्री का लय ओंकार में हो जाता है; तब गायत्री जपने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। तब केवल 'ॐ' कहने से ही हो जाता है। सन्ध्यादि कर्म कब तक है! --जब तक हरिनाम या रामनाम में पुलक न हो, अश्रुधारा न बहे। धन के लिए या मुकदमा जीतने के लिए पूजा आदि कर्म

करना अच्छा नहीं।"

एक भक्त–धन की चेष्टा तो, मैं देखता हूँ, सभी करते हैं। केशव सेन को ही देखिये, किस तरह महाराजा के साथ उन्होंने अपनी लड़की का विवाह किया।

श्रीरामकृष्ण–केशव की बात दूसरी है। जो यथार्थ भक्त है वह अगर चेष्टा न भी करे तो भी ईश्वर उसके लिए सब कुछ जुटा देते हैं। जो ठीक ठीक राजा का लड़का है वह मुशाहरा पाता है। वकील आदि की बात मैं नहीं कहता—जो मेहनत करके, दूसरों की दासता करके रुपया कमाते हैं। मैं कहता हूँ, ठीक राजा का लड़का। जिसे कोई कामना नहीं है वह रुपया-पैसा नहीं चाहता; रुपया उसके पास आप ही आता है। गीता में है—यदृच्छालाभ।

"जो सद्ब्राह्मण है, जिसे कोई कामना नहीं है, वह चमार के यहाँ का भी सीधा ले सकता है। 'यदृच्छालाभ'। वह कामना नहीं करता, उसके पास प्राप्ति आप ही आती है।"

एक भक्त–अच्छा महाराज, संसार में किस तरह रहना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण–पाँकाल मछली की तरह रहना चाहिए। संसार से दूर निर्जन में जाकर कभी कभी ईश्वरचिन्तन करने पर उनमें भक्ति होती है। तब निर्लिप्त होकर संसार में रह सकोगे। पाँकाल मछली कीच के भीतर रहती है, फिर भी कीच उसकी देह में नहीं लगता। इस तरह का आदमी अनासक्त होकर संसार में रहता है।

श्रीरामकृष्ण देख रहे हैं, मणि एकाग्र चित्त से उनकी सब बातें सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मणि को देखकर)—तीव्र वैराग्य होने से लोग ईश्वर को पाते हैं। जिसे तीव्र वैराग्य होता है, उसे जान पड़ता है, संसार दावाग्नि की तरह है—जल रहा है! वह स्त्री और पुत्र को कुएँ के सदृश देखता है। इस तरह का वैराग्य जब होता है तब घर-द्वार आप ही छूट जाता है। केवल अनासक्त होकर संसार में रहना उसके लिए पर्याप्त नहीं है। कामिनी-कांचन यही माया है। माया को अगर पहचान सको तो वह आप लज्जा से भाग खड़ी होगी। एक आदमी बाघ की खाल ओढ़कर भय दिखा रहा है। जिसे भय दिखा रहा है उसने कहा, मैं तुझे पहचानता हूँ, तू तो 'हिरुआ' है। तब वह हँसकर चला गया—और किसी दूसरे को भय दिखाने लगा।

"जितनी स्त्रियाँ हैं सब शक्तिरूपिणी हैं। वही आदिशक्ति स्त्री का रूप धारण किये हुए है। अध्यात्मरामायण में है—नारदादि राम का स्तव करते हैं, 'हे राम, जितने पुरुष हैं सब आप हैं और प्रकृति के जितने रूप हैं सब सीता हैं। तुम इन्द्र हो, सीता इन्द्राणी; तुम शिव हो, सीता शिवानी; तुम नर हो, सीता नारी; अधिक और क्या कहूँ—जहाँ पुरुष है वहाँ तुम हो, जहाँ स्त्रियाँ हैं वहाँ सीता।'

त्याग और प्रारब्ध। वामाचार-साधन का निषेध

(भक्तों से) "मन में लाने से ही त्याग नहीं किया जा सकता। प्रारब्ध, संस्कार, ये सभी हैं। एक राजा से किसी योगी ने कहा, तुम मेरे पास बैठकर परमात्मा का चिन्तन करो।' राजा ने उत्तर दिया, 'यह मुझसे न होगा। मैं यहाँ रह सकता हूँ; परन्तु मुझे अब भी भोग करना है। इस वन में अगर रहूँगा तो आश्चर्य नहीं कि इस वन में भी एक राज्य हो जाय। मेरा भोग

अभी बाकी है ।'

"नटवर पाँजा जब बच्चा था, इस बगीचे में जानवर चराता था । परन्तु उसके भाग्य में बहुत बड़ा भोग था; इसीलिए तो इस समय अण्डी का कारखाना खोलकर इतना रुपया इकट्ठा किया है । आलमबाजार में अण्डी का रोजगार खूब चला रहा है ।

"एक मत में है, स्त्री लेकर साधना करना । 'कर्ताभजा' सम्प्रदाय की स्त्रियों के बीच में एक बार एक आदमी मुझे ले गया था । वे सब मेरे पास आकर बैठ गयीं । मैं जब उन्हें 'माँ माँ' कहने लगा तब वे आपस में कहने लगीं, ये प्रवर्तक हैं, अभी 'घाट' की पहचान इनको नहीं हुई ! उन लोगों के मत में कच्ची अवस्था को प्रवर्तक कहते हैं, उसके बाद साधक, उसके बाद सिद्ध और फिर सिद्ध का सिद्ध ।

"एक स्त्री वैष्णवचरण के पास जाकर बैठी । वैष्णवचरण से पूछने पर उन्होंने कहा, इसका बालिका-भाव है ।

"स्त्री-भाव से शीघ्र पतन होता है । मातृभाव शुद्ध भाव है ।"

कांसारीपाड़ा के भक्तगण उठ पड़े । कहा, तो अब हम लोग चलें; कालीमाई तथा और देवों के दर्शन करेंगे ।

(२)

श्रीरामकृष्ण और प्रतिमापूजा । व्याकुलता और ईश्वरलाभ

मणि पंचवटी और कालीमन्दिर के विभिन्न स्थानों में अकेले घूम रहे हैं । श्रीरामकृष्ण ने कहा है, 'थोड़ी साधना करने पर ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ।' क्या मणि यही सोच रहे हैं ?

फिर श्रीरामकृष्ण ने तीव्र वैराग्य की बात कही और कहा कि माया को पहचान लेने पर वह भाग खड़ी होती है । मणि यही सब सोच रहे हैं ।

पिछला पहर है, साढ़े तीन बजे का समय होगा। मणि फिर आकर श्रीरामकृष्ण के कमरे में बैठे हैं। ब्राउटन इन्स्टिट्यूशन से एक शिक्षक कुछ छात्रों को साथ लेकर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आये हुए हैं। श्रीरामकृष्ण उनसे वार्तालाप कर रहे हैं। शिक्षक महाशय बीच बीच में एक एक प्रश्न कर रहे हैं। बातचीत मूर्ति-पूजन क सम्बन्ध में हो रही है।

श्रीरामकृष्ण (शिक्षक से)—मूर्तिपूजन में दोष क्या है ? वेदान्त में है, जहाँ 'अस्ति, भाति और प्रिय' है, वहीं उनका प्रकाश है, इसलिए उनके सिवाय और किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।

"और देखो, छोटी छोटी लड़कियाँ कितने दिन गुड़िया लेकर खेलती हैं ? जितने दिन तक उनका विवाह नहीं होता और जितने दिन तक वे पति-सहवास नहीं करतीं। विवाह हो जाने पर गुड़ियाँ-गुड्डों को उठाकर सन्दूक में रख देती हैं। ईश्वरलाभ हो जाने पर फिर मूर्तिपूजन की क्या आवश्यकता है ?"

मणि की ओर देखकर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"अनुराग होने पर ईश्वर मिलते हैं। खूब व्याकुलता होनी चाहिए। खूब व्याकुलता होने पर सम्पूर्ण मन उन्हें अर्पित हो जाता है।

"एक आदमी के एक लड़की थी। बहुत कम आयु में लड़की विधवा हो गयी थी। पति का मुख उसने कभी न देखा था। दूसरी स्त्रियों के पतियों को आते-जाते वह देखती थी। उसने एक दिन कहा, 'पिताजी, मेरा पति कहाँ है ?' उसके पिता ने कहा 'गोविन्दजी तेरे पति हैं। उन्हें पुकारने पर वे तुझे दर्शन देंगे।' यह सुनकर वह लड़की द्वार बन्द करके गोविन्द को पुकारती और रोती थी। वह कहती थी—'गोविन्द ! तुम आओ, मुझे दर्शन दो, तुम क्यों नहीं आते ?' छोटी लड़की का यह रोना

सुनकर गोविन्दजी स्थिर न रह सके। उसे उन्होंने दर्शन दिये।

"बालक जैसा विश्वास। बालक माँ को देखने के लिए जिस तरह व्याकुल होता है वैसी व्याकुलता चाहिए। इस व्याकुलता के होने पर समझना चाहिए कि अरुणोदय हुआ। इसके बाद सूर्योदय होगा ही। इस व्याकुलता के बाद ही ईश्वरदर्शन होता है।

"जटिल बालक की कथा आती है। वह पाठशाला जाता था। कुछ जंगल की राह से पाठशाला जाना पड़ता था; इसलिए वह डरता था। उसने अपनी माँ से यह कहा। माता ने कहा, 'डर क्या है? तू मधुसूदन को पुकारना।' बच्चे ने पूछा, 'मधुसूदन कौन है?' माता ने कहा, 'मधुसूदन तेरे दादा होते हैं।' जब अकेले में जाते समय वह डरा, तब एक आवाज लगायी—'मधुसूदन दादा!' कहीं कोई न आया। तब वह, 'कहाँ हो मधुसूदन दादा! जल्दी आओ, मुझे बड़ा डर लग रहा है' कहकर जोर जोर से पुकारते हुए रोने लगा। मधुसूदन न रह सके। आकर कहा, 'यह हैं हम, तुझे भय क्या है?' यह कहकर उसे साथ लेकर वे पाठशाला के रास्ते तक छोड़ आये, और कहा, 'तू जब बुलायेगा तभी मैं दौड़ा जाऊँगा, भय क्या है?' यही बालक का विश्वास है! यही व्याकुलता है!

"एक ब्राह्मण के यहाँ भगवान् की सेवा होती थी। एक दिन किसी काम से उसे किसी दूसरी जगह जाना पड़ा। वह अपने छोटे बच्चे से कह गया, 'आज श्रीठाकुरजी का भोग लगाना, उन्हें खिलाना।' बच्चे ने ठाकुरजी का भोग लगाया, परन्तु ठाकुरजी चुपचाप बैठे ही रहे। न बोले और न कुछ खाया ही। बच्चे ने बड़ी देर तक बैठे बैठे देखा कि ठाकुरजी नहीं उठते। उसे दृढ़ विश्वास था कि ठाकुरजी आकर आसन पर बैठकर भोजन करेंगे।

वह बार बार कहने लगा, 'ठाकुरजी, आओ, भोग पा लो, बड़ी देर हो गयी, अब और मुझसे बैठा नहीं जाता।' ठाकुरजी क्यों उत्तर देने लगे ? तब बच्चे ने रोना शुरू कर दिया; कहने लगा, 'ठाकुरजी, पिताजी तुम्हें खिलाने के लिए कह गये हैं, तुम क्यों नहीं आओगे ? क्यों मेरे पास नहीं खाओगे ?' व्याकुल होकर ज्यों ही कुछ देर तक वह रोया कि ठाकुरजी हँसते हँसते आकर हाजिर हो गये और आसन पर बैठकर भोग पाने लगे। ठाकुरजी को खिलाकर जब वह ठाकुरघर से निकला, तब घरवालों ने कहा, 'भोग हो गया तो वह सब उतार ले आ।' बच्चे ने कहा, 'हाँ, हो गया; ठाकुरजी ने सब भोग खा लिया।' उन लोगों ने कहा, 'अरे, यह तू क्या कहता है !' बच्चे ने सरलतापूर्वक कहा, 'क्यों खा तो गये हैं ठाकुरजी सब।' तब घरवालों ने ठाकुरघर में जाकर देखा तो छक्के छूट गये।"

सन्ध्या होने को अभी देर है। श्रीरामकृष्ण नौबतखाने के दक्षिण ओर खड़े हुए मणि के साथ बातचीत कर रहे हैं। सामने गंगा है। जाड़े का समय है। श्रीरामकृष्ण ऊनी कपड़ा पहने हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– पंचवटीवाले घर में सोओगे ?

मणि – क्या ये लोग नौबतखाने के ऊपर का कमरा न देंगे ?

श्रीरामकृष्ण खजांची से मणि की बात कहेंगे। रहने के लिए एक कमरा ठीक कर देंगे। मणि को नौबतखाने के ऊपर का कमरा पसन्द आया है। वे हैं भी कविता प्रिय मनुष्य। नौबतखान से आकाश, गंगा, चाँदनी, फूलों के पेड़, ये सब दीख पड़ते हैं।

श्रीरामकृष्ण–देंगे क्यों नहीं ? मैं पंचवटीवाला घर इसलिए कह रहा हूँ कि वहाँ बहुत रामनाम और ईश्वरचिन्तन किया गया है।

(३)

जीवन का अन्तिम लक्ष्य--ईश्वर से प्रेम

श्रीरामकृष्ण के कमरे में धूप दिया गया है । उसी छोटे तख्त पर बैठे हुए श्रीरामकृष्ण ईश्वरचिन्तन कर रहे हैं । मणि जमीन पर बैठे हुए हैं । राखाल, लाटू, रामलाल ये भी कमरे के अन्दर हैं।

श्रीरामकृष्ण मणि से कह रहे हैं,—"बात है उन पर भक्ति करना—उन्हें प्यार करना ।" फिर उन्होंने रामलाल से गाने के लिए कहा । रामलाल मधुर कण्ठ से गाने लगे । श्रीरामकृष्ण हर गाने का पहला चरण कह दे रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण के कहने पर रामलाल पहले श्रीगौरांग का संन्यास गा रहे हैं ।

(भावार्थ)—"केशवभारती के कुटीर में मैंने कैसी अपूर्वज्योति गौरांगमूर्ति देखी ! उनके दोनों नेत्रों में शत धाराओं से होकर प्रेम बह रहा है । मत्त मातंग के सदृश श्रीगौरांग कभी तो प्रेमावेश में नाचते हुए गाते हैं, कभी धूल में लोटते हैं, कभी आँसुओं में बहते हैं । वे रोते हुए हरि को पुकार रहे हैं। उनका उच्च स्वर स्वर्ग और मर्त्यलोक को भी हिला रहा है । कभी वे दाँतों में तृण दबाकर, हाथ जोड़, बार बार दासता से मुक्त कर देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं । अपने घुँघराले बालों को मुंड़ाकर उन्होंने योगी का वेश धारण किया है । उनकी भक्ति और प्रेमावेश को देखकर जी रो उठता है । जीवों के दुःख से दुःखी होकर, सर्वस्व त्यागकर वे प्रेम प्रदान करने के लिए आये हैं । 'प्रेमदास' की यही अभिलाषा है कि वह श्रीचैतन्यदेव के चरणों का दास होकर उनके साथ दर दर घूमे ।"

रामलाल ने फिर एक गाना गाया । इसमें श्रीगौरांगदेव की

माता शची का विलाप है।

इसके बाद श्रीरामकृष्ण के आदेशानुसार रामलाल ने कुछ और गाने गाये।

श्रीरामकृष्ण रामलाल से फिर 'गौरांग और नित्यानन्द' वाला गाना गाने के लिए कह रहे हैं। इस बार रामलाल के साथ श्रीरामकृष्ण भी गा रहे हैं।

(भावार्थ)—"हे प्रभु श्रीगौरांग और नित्यानन्द, तुम दोनों भाई बड़े ही दयालु हो! यही सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। मैं काशी गया था। वहाँ विश्वेश्वरजी ने मुझसे कहा है, वे परब्रह्म इस समय शचीदेवी के घर में हैं। हे परब्रह्म! मैंने तुम्हें पहचान लिया है। मैं कितनी ही जगह गया, परन्तु इस तरह के दयासागर और कहीं मेरी दृष्टि में नहीं पड़े। तुम दोनों व्रजमण्डल में कृष्ण बलराम थे। अब नदिया में आकर श्रीगौरांग और नित्यानन्द हुए हो! तुम्हारी व्रज की क्रीड़ा थी दौड़धूप और अब यहाँ नदिया में तुम्हारी क्रीड़ा है धूल में लोटपोट हो जाना। व्रज में तुम्हारी क्रीड़ा जोर् जोर की किलकारियाँ थीं और आज नदिया में तुम्हारी क्रीड़ा है,हरिनाम-कीर्तन। तुम्हारे सब और अंग तो छिप गये हैं, परन्तु दोनों बंकिम नेत्र अब भी हैं। तुम्हारा पतितपावन नाम सुनकर मेरे हृदय में बहुत बड़ा भरोसा हो गया है। मैं बड़ी आशा से यहाँ दौड़ा हुआ आया हूँ। तुम अपने चरणों की शीतल छाया में मुझे स्थान दो। जगाई और मधाई जैसे पाखण्डी भी तर गये हैं; प्रभो, यही भरोसा मुझे भी है। मैंने सुना है, तुम दोनों चाण्डालों को भी हृदय से लगा लेते हो, हृदय से लगाकर हरिनाम-कीर्तन करते हो।"

निर्जन में भक्तों की साधना

रात बहुत हो चुकी है। नौबतखाने के ऊपरवाले कमरे में मणि

अकेले बैठे हुए हैं। आज अगहन की पूर्णिमा है। आकाश, गंगा कालीमन्दिर, मन्दिरों के शिखर, उद्यानपथ, पंचवटी—सभी चन्द्रालोक से आलोकित हैं। मणि एकाकी श्रीरामकृष्ण का चिन्तन कर रहे हैं।

रात के करीब तीन बज गये। मणि उठे और उत्तराभिमुख हो पंचवटी की ओर जाने लगे। श्रीरामकृष्ण ने पंचवटी की बात कही है। नौबतखाना अब अच्छा नहीं लग रहा है। मणि ने पंचवटीवाले घर में रहने का निश्चय किया।

चारों ओर नीरवता है। रात के ग्यारह बजे गंगा में ज्वार आया था। बीच बीच में पानी की आवाज सुनायी दे रही है। मणि पंचवटी की ओर बढ़ने लगे। इतने में उन्हें दूर से एक आवाज सुनायी पड़ी। मानो कोई पंचवटी के वृक्षमण्डप के भीतर से आर्त स्वर से पुकार रहा है— 'कहाँ हो दादा मधुसूदन!'

आज पूर्णिमा होने के कारण वटवृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं को भेदकर चन्द्र की किरणें प्रकाशित हो रही हैं।

कुछ और अग्रसर होकर मणि ने दूर से देखा कि पंचवटी में श्रीरामकृष्ण के एक भक्त बैठे हुए निर्जन में एकाकी पुकार रहे हैं —'कहाँ हो दादा मधुसूदन!' मणि निःस्तब्ध हो देखते रहे।

परिच्छेद ६२

दक्षिणेश्वर में अंतरंग भक्तों के साथ

प्रह्लादचरित्र-श्रवण तथा भावावेश । स्त्रीसंग-निन्दा

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में उसी पूर्वपरिचित कमरें में फर्श पर बैठे हुए प्रल्हाद-चरित्र सुन रहे हैं । दिन के आठ बजे होंगे। रामलाल 'भक्तमाल' ग्रन्थ से प्रह्लाद-चरित्र पढ़ रहे हैं ।

आज शनिवार, अगहन की कृष्णा प्रतिपदा है, १५ दिसम्बर १८८३ ई० । मणि दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण की पदच्छाया में ही रहते हैं । वे भी श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए प्रह्लाद-चरित्र सुन रहे हैं । कमरे में राखाल,लाटू, हरीश भी हैं,—कोई बैठे हुए सुन रहे हैं, कोई आना-जाना कर रहे हैं । हाजरा बरामदे में हैं ।

श्रीरामकृष्ण प्रह्लाद—चरित्र की कथा सुनते सुनते भावावेश में आ रहे हैं । जब हिरण्यकशिपु का वध हुआ, तब नृसिंह की रुद्र मूर्ति देख और उनका सिंहनाद सुनकर ब्रह्मादि देवताओं ने प्रलय की आशंका से प्रह्लाद को ही उनके पास भेजा दिया । प्रह्लाद बालक की तरह स्तव कर रहे हैं । भक्तवत्सल नृसिंह बड़े प्रेम से प्रह्लाद की देह पर जीभ फिरा रहे हैं । 'अहा ! भक्त पर कैसा प्यार है ।' कहते कहते श्रीरामकृष्ण भावसमाधि में लीन हो गये । देह निःस्पन्द हो गयी है, आँखों की कोरों में प्रेमाश्रु दिखायी पड़ रहे हैं । भाव का उपशम हो जाने पर श्रीरामकृष्ण उसी छोटे तख्त पर जा बैठे । मणि फर्श पर उनके चरणों के पास बैठे । श्रीरामकृष्ण उनसे बातचीत कर रहे हैं । ईश्वर के मार्ग पर रहकर जो लोग स्त्रीसंग करते हैं, उनके प्रति श्रीरामकृष्ण घृणा और क्रोध प्रकट कर रहे है ।

श्रीरामकृष्ण—लाज भी नहीं आती—लड़के हो गये फिर भी स्त्रीसंग ! घृणा भी नहीं होती,—पशुओं का-सा व्यवहार ! लार, खून, मल, मूत्र— इन पर घृणा भी नहीं होती ! जो ईश्वर के पादपद्मों की चिन्ता करता है, उसे परम सुन्दरी स्त्री भी चिता-भस्म के समान जान पड़ती है। जो शरीर नहीं रहेगा, जिसके भीतर कृमि, क्लेद, श्लेष्मा— सब तरह की नापाक चीजें भरी हुई हैं, उसी को लेकर आनन्द ! लज्जा भी नहीं आती !

मणि चुपचाप सिर झुकाये हुए हैं। श्रीरामकृष्ण फिर कहने लगे—"उनके प्रेम का एक बिन्दु भी यदि किसी को मिल गया तो कामिनी-कांचन अत्यन्त तुच्छ जान पड़ते हैं। जब मिश्री का शरबत मिल जाता है, तब गुड़ का शरबत नहीं सुहाता। व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करने पर, उनके नामगुण का सदा कीर्तन करने पर, क्रमशः उन पर वैसा ही प्यार हो जाता है।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण प्रेमोन्मत्त हो कमरे के भीतर नाचते हुए टहलने और गाने लगे—

(भावार्थ)—"सुरधुनी के तट पर कौन हरिनाम ले रहा है? शायद प्रेमदाता नित्यानन्द आये हैं। उनके बिना प्राण कैसे शीतल हों?"

करीब दस बजे होंगे। रामलाल ने कालीमन्दिर की नित्यपूजा समाप्त कर दी है। श्रीरामकृष्ण माता के दर्शन करने के लिए कालीमन्दिर जा रहे हैं। साथ मणि भी हैं। मन्दिर में प्रवेश कर श्रीरामकृष्ण आसन पर बैठ गये। माता के चरणों पर दो-एक फूल उन्होंने अर्पित किये। अपने मस्तक पर फूल रखकर ध्यान कर रहे हैं। अब गीत गाकर माता की स्तुति करने लगे—

"हे शंकरि, मैंने सुना है तुम्हारा नाम भवहरा भी है। इसीलिए, माँ, मैंने तुम्हें अपना भार दे दिया है, —तुम तारो चाहे न तारो।"...

श्रीरामकृष्ण कालीमन्दिर से लौटकर अपने कमरे के दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में बैठे। दिन के दस बजे का समय होगा। अब भी देवताओं का भोग या भोग-आरती नहीं हुई। माता काली और श्रीराधाकान्त के प्रसादी फल-मूल आदि से कुछ लेकर श्रीरामकृष्ण ने थोड़ा जलपान किया। राखाल आदि भक्तों को भी थोड़ा थोड़ा प्रसाद मिल चुका है।

श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए राखाल स्माइल की 'सेल्फ-हेल्प (Smile's Self-help) पढ़ रहे हैं— लार्ड अर्स्किन (Lor Erskine) के सम्बन्ध में।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)–इसमें क्या लिखा है?

मास्टर–साहब फल की आकांक्षा न करके कर्तव्य-कर्म करते थे—यही लिखा है। निष्काम कर्म।

श्रीरामकृष्ण–तब तो अच्छा है। परन्तु पूर्ण ज्ञान का लक्षण है कि एक भी पुस्तक साथ न रहेगी। जैसे शुकदेव—उनका सब कुछ जिह्वा पर।

"पुस्तकों और शास्त्रों में शक्कर के साथ बालू भी मिली हुई है। साधु शक्कर भरका हिस्सा ले लेता है, बालू छोड़ देता है। साधु सार पदार्थ लेता है।"

वैष्णवचरण कीर्तनिया (कीर्तन गानेवाले) आये हुए हैं; उन्होंने 'सुबोल-मिलन' नाम का कीर्तन गाकर सुनाया।

कुछ देर बाद रामलाल ने थाली में श्रीरामकृष्ण के लिए प्रसाद ला दिया। प्रसाद पाकर श्रीरामकृष्ण थोड़ा विश्राम

करने लगे।

रात में मणि नौबतखाने में सोये। श्रीमाताजी जब श्रीराम-कृष्ण की सेवा के लिए आती थीं तब इसी नौबतखाने में रहती थीं। कुछ मास हुए वे कामारपुकुर गयी हैं।

परिच्छेद ६३

ईश्वरदर्शन के उपाय

(१)

श्रीरामकृष्ण मणि के साथ पश्चिमवाले गोल बरामदे में बैठे हैं। सामने दक्षिणवाहिनी भागीरथी है। पास ही कनेर, बेला, जूही, गुलाब, कृष्णचूड़ा आदि अनेक प्रकार के फूले हुए पेड़ हैं। दिन के दस बजे होंगे।

आज रविवार, अगहन की कृष्णा द्वितीया है--१६ दिसम्बर १८८३।

श्रीरामकृष्ण मणि को देख रहे हैं और गा रहे हैं--

(भावार्थ)- "माँ तारा, मुझे तारना होगा, मैं शरणागत हूँ। पिंजड़े के पक्षी जैसी मेरी दशा हो रही है। मैंने असंख्य अपराध किये हैं। मैं ज्ञानहीन हूँ। मैं माया में मोहित हुआ व्यर्थ भटकता फिर रहा हूँ। बछड़ा खो जाने पर गाय की जो दशा होती है, वही दशा मेरी भी है।"

श्रीरामकृष्ण-- क्यों ?--पिंजड़े की चिड़िया की तरह क्यों होगे ? छि: !"

कहते ही कहते भावावेश में आ गये। शरीर, मन, सब स्थिर है; आँखों से धारा बह चली है।

कुछ देर बाद कह रहे हैं, "माँ, सीता की तरह कर दो। बिल्कुल सब भूल गयी हैं--देह का ख्याल नहीं; हाथ, पैर, स्तन, योनि --किसी का होश नहीं! एकमात्र चिन्ता--'राम कहाँ !' "

किस तरह व्याकुल होने पर ईश्वरलाभ होता है, मणि को

इसकी शिक्षा देने के लिए ही मानो श्रीरामकृष्ण के मन में सीता का उद्दीपन हुआ था। सीता राममयजीविता थीं,---श्रीरामचन्द्र की चिन्ता में ही वे पागल हो रही थीं,---इतनी प्रिय वस्तु जो देह है उसे भी वे भूल गयी थीं !

दिन के तीसरे प्रहर के चार बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ उसी कमरे में बैठे हुए हैं। जनाई के मुखर्जीबाबू आये हुए हैं,---ये श्री प्राणकृष्ण के आत्मीय हैं। उनके साथ एक शास्त्रज्ञ ब्राह्म मित्र हैं। मणि, राखाल, लाटू, हरीश, योगीन्द्र आदि भक्त भी हैं।

योगीन्द्र दक्षिणेश्वर के सावर्ण चौधरियों के यहाँ के हैं। ये आजकल प्रायः रोज दिन ढलने पर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आते हैं और रात को चले जाते हैं। योगीन्द्र ने अभी विवाह नहीं किया।

मुखर्जी (प्रणाम करके)--आपके दर्शन से बड़ा आनन्द हुआ।

श्रीरामकृष्ण--वे सभी के भीतर हैं, वही सोना सब के भीतर है, कहीं प्रकाश अधिक है। संसार में उस सोने पर बहुत मिट्टी पड़ी रहती है।

मुखर्जी (सहास्य)--महाराज, ऐहिक और पारमार्थिक में अन्तर क्या है ?

श्रीरामकृष्ण--साधना के समय 'नेति' 'नेति' करके त्याग करना पड़ता है। उन्हें पा लेने पर समझ में आता है, सब कुछ वही हुए हैं।

"जब श्रीरामचन्द्र को वैराग्य हुआ, तब दशरथ को बड़ी चिन्ता हुई। वे वशिष्ठजी की शरण में गये, जिससे राम संसार का त्याग न करें। वशिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्र के पास जाकर देखा,

वे विमनस्क हुए बैठे हैं—अन्तर तीव्र वैराग्य से भरा हुआ है। वशिष्ठजी ने कहा, 'राम, तुम संसार का त्याग क्यों करोगे? संसार क्या कोई उनसे अलग वस्तु है? मेरे साथ विचार करो।' राम ने देखा, संसार भी उसी परब्रह्म से हुआ है, इसलिए चुपचाप बैठे रहे।

"जैसे जिस चीज से मट्ठा होता है, उसी से मक्खन भी होता है। अतएव मट्ठे का ही मक्खन और मक्खन का ही मट्ठा कहना चाहिए। बड़ी कठिनाइयों से मक्खन उठा लेने पर (अर्थात् ब्रह्मज्ञान होने पर) देखोगे, मक्खन रहने से मट्ठा भी है; जहाँ मक्खन है वहीं मट्ठा है। ब्रह्म है, इस ज्ञान के रहने से जीव, जगत्, चतुर्विंशति तत्त्व भी हैं।

"ब्रह्म क्या वस्तु है, यह कोई मुँह से नहीं कह सकता। सब वस्तुएँ जूठी हो गयी हैं, (अर्थात् मुँह से कही जा चुकी हैं) परन्तु ब्रह्म क्या है, यह कोई मुँह से नहीं कह सका, इसीलिए वह जूठा नहीं हुआ। यह बात मैंने विद्यासागर से कही थी। विद्यासागर सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

"विषयबुद्धि का लेशमात्र रहते भी यह ब्रह्मज्ञान नहीं होता। कामिनी-कांचन का भाव जब मन में बिलकुल न रहेगा, तब होगा। पार्वतीजी ने पर्वतराज से कहा, 'पिताजी, अगर आप ब्रह्मज्ञान चाहते हैं तो साधुओं का संग कीजिये।' "

क्या श्रीरामकृष्ण के कहने का तात्पर्य यही है कि मनुष्य चाहे संसारी हो या संन्यासी, कामिनी-कांचन में मग्न रहने पर उसे ब्रह्मज्ञान नहीं होता?

श्रीरामकृष्ण फिर मुखर्जी से कह रहे हैं—

"तुम्हारे धन-सम्पत्ति है फिर भी तुम ईश्वर को भी पुकारते

हो, यह बहुत अच्छा है। गीता में है—जो लोग योगभ्रष्ट हो जाते हैं वही भक्त होकर धनी के घर जन्म लेते हैं।"

मुखर्जी (अपने मित्र से सहास्य)—"शुचीनां श्रीमतां गेहे योग-भ्रष्टोऽभिजायते।"

श्रीरामकृष्ण—वे चाहें तो ज्ञानी को संसार में भी रख सकते हैं। उन्हीं की इच्छा से यह जीव-प्रपंच हुआ है। वे इच्छामय हैं।

मुखर्जी (सहास्य)—उनकी फिर कैसी इच्छा ? क्या उन्हें भी कोई अभाव है ?

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—इसमें दोष ही क्या है ? पानी स्थिर रहे तो भी वह पानी है और तरंगें उठने पर भी वह पानी ही है।

"साँप चुपचाप कुण्डली बाँधकर बैठा रहे, तो भी वह साँप है और तिर्यग्-गति हो टेढ़ा-मेढ़ा रेंगने से भी वह साँप ही है।

"बाबू जब चुपचाप बैठे रहते हैं, तब वे जो मनुष्य हैं, वही मनुष्य वे उस समय भी हैं जब वे काम करते हैं।

"जीव-प्रपंच को अलग कैसे कर सकते हो ? इस तरह वजन तो घट जायगा ! बेल के बीज और खोपड़ा निकाल देने से पूरे बेल का वजन ठीक नहीं उतरता।

"ब्रह्म निर्लिप्त है। सुगन्ध और दुर्गन्ध वायु से मिलती है, परन्तु वायु निर्लिप्त है। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। उसी आद्या-शक्ति से जीव-प्रपंच बना है।"

मुखर्जी—योगभ्रष्ट क्यों होते हैं ?

श्रीरामकृष्ण—कहते हैं न 'जब मैं गर्भ में था तब योग में था, पृथ्वी पर गिरते ही मिट्टी खायी। धाई ने तो मेरा नार काटा; पर यह माया की बेड़ी कैसे काटूं ?'

"कामिनी-कांचन ही माया है। मन से इन दोनों के जाते ही

योग होता है। आत्मा—परमात्मा—चुम्बक पत्थर है, जीवात्मा एक सूई है—उनके खींच लेने ही से योग हो गया। परन्तु सूई में अगर मिट्टी लगी हुई हो, तो चुम्बक नहीं खींचता—मिट्टी साफ कर देने से फिर खींचता है। कामिनी-कांचन मिट्टी है, इसे साफ करना चाहिए।"

मुखर्जी–यह किस तरह साफ हो?

श्रीरामकृष्ण–उनके लिए व्याकुल होकर रोओ। वही जल मिट्टी पर गिरने से मिट्टी धुल जायगी। जब खूब साफ हो जायगी तब चुम्बक खींच लेगा। योग तभी होगा।

मुखर्जी–अहा! कैसी बात है!

श्रीरामकृष्ण–उनके लिए रो सकने पर उनके दर्शन होते हैं—समाधि होनी है। योग में सिद्ध होने से ही समाधि होती है। रोने से कुम्भक आप ही आप होता है।— उसके बाद समाधि।

"एक उपाय और है—ध्यान। सहस्रार कमल (मस्तक) में विशेष रूप से शिव का अधिष्ठान है— उसका ध्यान। शरीर आधार है और मन-बुद्धि जल। इस पानी पर उस सच्चिदानन्द सूर्य का बिम्ब गिरता है! उसी बिम्बसूर्य का ध्यान करते करते उनकी कृपा से यथार्थ सूर्य के भी दर्शन होते हैं।

साधुसंग करो और आम-मुखतारी दे दो

"परन्तु संसारी मनुष्यों के लिए तो सदा ही साधुसंग की आवश्यकता है। यह सभी के लिए आवश्यक है; संन्यासियों के लिए भी। परन्तु संसारियों के लिए यह विशेषकर आवश्यक है। उन्हें रोग लगा ही हुआ है—कामिनी-कांचन में सदा ही रहना पड़ता है।"

मुखर्जी–जी हाँ, रोग लगा ही हुआ है।

श्रीरामकृष्ण–उन्हें आम-मुखतारी दे दो—वे जो चाहे सो करें। तुम बिल्ली के बच्चे की तरह उन्हें पुकारते भर रहो—व्याकुल होकर। उसकी माँ उसे चाहे जहाँ रखे—वह कुछ भी नहीं जानता;—कभी बिस्तर पर रखती है तो कभी रसोईघर में !

मुखर्जी–गीता आदि शास्त्र पढ़ना अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण–केवल पढ़ने-सुनने से क्या होगा ? किसी ने दूध का नाम मात्र सुना है, किसी ने दूध देखा है और किसी ने दूध पिया है। ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं और उनसे वार्तालाप भी किया जा सकता है।

"पहले प्रवर्तक है—वह पढ़ता-सुनता है। उसके बाद साधक हैं,—उन्हें पुकारता है, ध्यान-चिन्तन और नामगुण-कीर्तन करता है। इसके बाद सिद्ध—उसे हृदय में उनका अनुभव हुआ है, उनके दर्शन हुए हैं। इसके बाद है सिद्ध का सिद्ध—जैसे चैतन्य-देव की अवस्था—कभी वात्सल्य और कभी मधुर भाव।"

मणि, राखाल, योगीन्द्र, लाटू आदि भक्तगण ये सब देवदुर्लभ तत्त्वपूर्ण कथाएँ आश्चर्यचकित होकर सुन रहे हैं।

अब मुखर्जी और उनके साथवाले विदा होंगे। वे सब प्रणाम करके उठ खड़े हुए। श्रीरामकृष्ण भी, शायद उन्हें सम्मान दिखाने के उद्देश्य से खड़े हो गये।

मुखर्जी (सहास्य)–आपके लिए उठना और बैठना !

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)–उठने और बैठने में हानि क्या है ? पानी स्थिर होने पर भी पानी है और हिलने-डुलने पर भी पानी ही है। आँधी में जूठी पत्तल, हवा चाहे जिस ओर उड़ा ले जाय। मैं यन्त्र हूँ, वे यन्त्री हैं।

(२)

श्रीरामकृष्ण का दर्शन और वेदान्ततत्त्वों की गूढ़ व्याख्या

जनाई के मुखर्जी चले गये। मणि सोच रहे हैं, वेदान्तदर्शन के मत से सब स्वप्नवत् है। तो क्या जीव, जगत्, मैं--यह सब मिथ्या है?

मणि ने थोड़ा-बहुत वेदान्त पढ़ा है। फिर जिनके विचार मानो वेदान्त की ही अस्फुट प्रतिध्वनि है, उन कान्ट, हेगेल आदि जर्मन पण्डितों के भी कुछ ग्रन्थ पढ़े हैं। परन्तु श्रीरामकृष्ण ने दुर्बल मानव की तरह विचार के द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, उन्हें तो स्वयं जगज्जननी ने सब कुछ दर्शन करा दिया है। मणि इसी के बारे में सोच रहे हैं।

कुछ ही देर बाद श्रीरामकृष्ण मणि के साथ अकेले पश्चिम-वाले गोल बारामदे में बातचीत कर रहे हैं। सामने गंगाजी कलकल नाद करती हुई दक्षिण की ओर बह रही हैं। शीत ऋतु है। नैर्ऋत्य दिशा में सूर्यनारायण अभी भी दिखायी दे रहे हैं। जिनका जीवन वेदमय है, जिनके श्रीमुख से निकली वाणी वेदान्तवाक्य है, जिनके श्रीमुख से स्वयं भगवान् ही बोलते हैं' जिनके वचनरूपी अमृत से वेद, वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का निर्माण हुआ है, वही अहेतुककृपासिन्धु पुरुष गुरुरूप धारण कर वार्तालाप कर रहे हैं।

मणि—क्या संसार मिथ्या है?

श्रीरामकृष्ण—मिथ्या क्यों है? वह सब विचार की बात है।

"पहले-पहल 'नेति' 'नेति' विचार करते समय, वे न जीव हैं, न जगत् हैं, न चौबीस तत्त्व हैं, ऐसा हो जाता है,—यह सब स्वप्नवत् हो जाता है। इसके बाद अनुलोम विलोम होता है, तब

वही जीव-जगत् हुए हैं, यह ज्ञान हो जाता है।

"तुम एक-एक करके सीढ़ियों से छत पर गये। परन्तु जब तक तुम्हें छत का ज्ञान है, तब तक सीढ़ियों का ज्ञान भी है। जिसे ऊँचे का ज्ञान है उसे नीचे का भी ज्ञान है।

"फिर छत पर चढ़कर तुमने देखा, जिस चीज से छत बनी हुई है—ईंट, चूना, मसाला—उसी चीज से सीढ़ियाँ भी बनी हैं।

"और जैसे बेल की बात कही थी।

"जिसका 'अटल' है, उसका 'टल' भी है।

"'मैं' नहीं जाने का। 'मैं-घट'-जब तक है, तब तक जीव-प्रपंच भी है। उन्हें प्राप्त कर लेने पर देखा जाता है, जीव-प्रपंच वही हुए हैं।—केवल विचार से ही नहीं होता।

"शिव की दो अवस्थाएँ हैं। जब वे समाधिस्थ हैं—महायोग में बैठे हुए हैं—तब आत्माराम हैं। फिर जब उस अवस्था से उतर आते हैं—थोड़ासा 'मैं' रहता है—तब 'राम राम' कहकर नृत्य करते हैं।"

क्या शिव की अवस्था का वर्णन कर श्रीरामकृष्ण अपनी ही अवस्था सूचित कर रहे हैं?

शाम हो गयी है। श्रीरामकृष्ण जगन्माता का नाम और उनका चिन्तन कर रहे हैं। भक्तगण भी निर्जन में जाकर अपना अपना ध्यान-जप करने लगे। इधर कालीमाई के मन्दिर में, श्रीराधाकान्तजी के मन्दिर में और बारहों शिवालयों में आरती होने लगी।

आज कृष्णपक्ष की द्वितीया है। सन्ध्या के कुछ समय बाद चन्द्रोदय हुआ। वह चाँदनी, मन्दिरशीर्ष, चारों ओर के पेड़-पौधे और मन्दिर के पश्चिम ओर भागीरथी के वक्षःस्थल पर पड़कर अपूर्व शोभा धारण कर रही है। इस समय उसी पूर्वपरिचित

कमरे में श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। फर्श पर मणि बैठे हुए हैं। शाम होते होते वेदान्त के सम्बन्ध की जो बात मणि ने उठायी थी उसी के बारे में श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)—संसार मिथ्या क्यों होने लगा ? यह सब विचार की बात है। उनके दर्शन हो जाने पर ही समझ में आता है कि जीव-प्रपंच सब वही हुए हैं।

"मुझे माँ ने कालीमन्दिर में दिखलाया कि माँ ही सब कुछ हुई हैं। दिखाया, सब चिन्मय है। प्रतिमा चिन्मय है! वेदी चिन्मय है! अर्घ्यपात्र चिन्मय है! चौखट, संगमर्मर पत्थर—सब कुछ चिन्मय है!

"मन्दिर के भीतर मैंने देखा, सब मानो रस से सराबोर हैं—सच्चिदानन्द-रस से।

"कालीमन्दिर के सामने एक दुष्ट आदमी को देखा—परन्तु उसके भीतर भी उनकी शक्ति जाज्वल्यमान देखी!

"इसीलिए तो मैंने बिल्ली को उनके भोग की पूड़ियाँ खिलायी थीं। देखा, माँ ही सब कुछ हुई हैं।—बिल्ली भी। तब खजांची ने मथुरबाबू को लिखा कि भट्टाचार्य महाशय भोग की पूड़ियाँ बिल्लियों को खिलाते हैं। मथुरबाबू मेरी अवस्था समझते थे। चिट्ठी के उत्तर में उन्होंने लिखा, 'वे जो कुछ करें, उसमें कुछ बाधा न देना।'

"उन्हें पा जाने पर यह सब ठीक ठीक दीख पड़ता है; वही जीव, जगत्, चौबीसों तत्त्व—यह सब हुए हैं।

"परन्तु, यदि वे 'मैं' को बिलकुल मिटा दें, तब क्या होता है, यह मुँह से नहीं कहा जा सकता। जैसे रामप्रसाद ने कहा है—'तब तुम अच्छी हो या मैं अच्छा हूँ यह तुम्हीं समझोगी।'

"वह अवस्था भी मुझे कभी कभी होती है।

"विचार करने से एक तरह का दर्शन होता है और जब वे दिखा देते हैं तब एक दूसरे तरह का।"

परिच्छेद ६४

जीवनोद्देश्य——ईश्वरदर्शन

दूसरे दिन सोमवार, १७ दिसम्बर १८८३, सबेरे आठ बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण उसी कमरे में बैठे हुए हैं। राखाल, लाटू आदि भक्त भी हैं। मणि फर्श पर बैठे हैं। मधु डाक्टर भी आये हुए हैं। वे श्रीरामकृष्ण के पास उसी छोटी खाट पर बैठे हैं। मधु डाक्टर वयोवृद्ध हैं——श्रीरामकृष्ण को कोई बीमारी होने पर प्रायः ये आकर देख जाया करते हैं। स्वभाव के बड़े रसिक हैं।

श्रीरामकृष्ण--बात है सच्चिदानन्द पर प्रेम। कैसा प्रेम? ——ईश्वर को किस तरह प्यार करना चाहिए? गौरी पण्डित कहता था, राम को जानना हो तो सीता की तरह होना चाहिए; भगवान् को जानन के लिए भगवती की तरह होना चाहिए। भगवती ने शिव के लिए जैसी कठोर तपस्या की थी, वैसी ही तपस्या करनी चाहिए। पुरुष को जानने का अभिप्राय हो तो प्रकृतिभाव का आश्रय लेना पड़ता है--सखीभाव, दासीभाव, मातृभाव।

"मैंने सीतामूर्ति के दर्शन किये थे। देखा, सब मन राम में ही लगा हुआ है। योनि, हाथ, पैर, कपड़े-लत्ते, किसी पर दृष्टि नहीं है। मानो जीवन ही राममय है ——राम के बिना रहे, राम को बिना पाये, जी नहीं सकती।"

मणि– जी हाँ, जैसे पगली!

श्रीरामकृष्ण–उन्मादिनी!——अहा! ईश्वर को प्राप्त करना हो तो पागल होना पड़ता है।

"कामिनी-कांचन पर मन के रहने से नहीं होता। कामिनी के साथ रमण---इसमें क्या सुख है? ईश्वरदर्शन होने पर रमण-सुख से करोड़गुना आनन्द होता है। गौरी कहता था, महाभाव होने पर शरीर के सब छिद्र---रोमकूप भी---महायोनि हो जाते हैं। एक-एक छिद्र में आत्मा के साथ आत्मा का रमण-सुख होता है!

"व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। गुरु के श्रीमुख से सुन लेना चाहिए कि वे क्या करने से मिलेंगे।

"गुरु तभी मार्ग बतला सकेंगे जब वे स्वयं पूर्णज्ञानी होंगे। पूर्णज्ञान होने पर वासना चली जाती है। पाँच वर्ष के बालक का-सा स्वभाव हो जाता है। दत्तात्रेय और जड़भरत, ये बाल-स्वभाव के थे।"

मणि-- जी हाँ, इनके बारे में लोगों को ज्ञात है, पर इनके अलावा और भी कितने ही ज्ञानी इनकी तरह के हो गये होंगे।

श्रीरामकृष्ण--हाँ, ज्ञानी की सब वासना चली जाती है।---जो कुछ रह जाती है, उसमें कोई हानि नहीं होती। पारस पत्थर के छू जाने पर तलवार सोने की हो जाती है, फिर उस तलवार से हिंसा का काम नहीं होता। इसी तरह ज्ञानी में कामक्रोध का आकार मात्र रहता है,---नाममात्र---उससे कोई अनर्थ नहीं होता।

मणि--आप जैसा कहा करते हैं, ज्ञानी तीनों गुणों से परे हो जाता है। सत्त्व, रज, और तम---किसी गुण के वश में वह नहीं रहता। ये तीनों गुण डकैत हैं।

श्रीरामकृष्ण--इस बात की धारणा करनी चाहिए।

मणि-- पूर्णज्ञानी संसार में शायद तीन-चार मनुष्यों से अधिक न होंगे।

श्रीरामकृष्ण—क्यों? पश्चिम के मठों में तो बहुतसे साधुसंन्यासी दीख पड़ते हैं।

मणि—जी, इस तरह का संन्यासी तो मैं भी हो जाऊं!

इस बात पर श्रीरामकृष्ण कुछ देर तक मणि की ओर देखते रहे।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)—क्या? सब त्यागकर?

मणि—माया के बिना गये क्या होगा? माया को जीत न पाया तो केवल संन्यासी होकर क्या होगा?

सब लोग कुछ समय तक चुप रहे।

त्रिगुणातीत भक्त बालक के समान

मणि—अच्छा त्रिगुणातीत भक्ति किसे कहते हैं?

श्रीरामकृष्ण—उस भक्ति के होने पर भक्त सब चिन्मय देखता है। चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम—भक्त भी चिन्मय—सब चिन्मय! ऐसी भक्ति कम लोगों की होती है।

डाक्टर मधु (सहास्य)—त्रिगुणातीत भक्ति, अर्थात् भक्त किसी गुण के वश नहीं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—हाँ, जैसे पाँच साल का लड़का—किसी गुण के वश नहीं।

दोपहर को, भोजन के बाद, श्रीरामकृष्ण थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। श्री मणिलाल मल्लिक ने आकर प्रणाम किया; फिर जमीन पर बैठ गये। मणि भी जमीन पर बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण लेटे लेटे ही मणि मल्लिक के साथ बीच बीच में एक एक बात कह रहे हैं।

मणि मल्लिक—आप केशव सेन को देखने गये थे?

श्रीरामकृष्ण—हाँ। अब वे कैसे हैं?

मणि मल्लिक–रोग कुछ घटता हुआ नहीं दीख पड़ता।

श्रीरामकृष्ण–मैंने देखा, बड़ा राजसिक है। मुझे बड़ी देर तक बैठा रखा, तब भेंट हुई।

श्रीरामकृष्ण उठकर बैठ गये और भक्तों के साथ बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)–मैं 'राम राम' कहकर पागल हो गया था। संन्यासी के देवता रामलला को लेकर घूमता फिरता था—उसे नहलाता था, खिलाता था, सुलाता था। जहाँ कहीं जाता, साथ ले जाता था। 'रामलला' 'रामलला' कहकर पागल हो गया था।

परिच्छेद ६५

भक्तों के साथ

(१)

श्रीकृष्णभक्ति

श्रीरामकृष्ण सदा ही समाधिमग्न रहते हैं; केवल राखाल आदि भक्तों की शिक्षा के लिए उन्हें लेकर व्यस्त रहते हैं—जिससे उन्हें चैतन्य प्राप्त हो।

वे अपने कमरे के पश्चिमवाले बरामदे में बैठे हैं। प्रातःकाल का समय, मंगलवार, १८ दिसम्बर १८८३ ई०। स्वर्गीय देवेन्द्र-नाथ ठाकुर की भक्ति और वैराग्य की बात पर वे उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। राखाल आदि बालक भक्तों से वे कह रहे हैं,—"वे सज्जन व्यक्ति हैं। परन्तु जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश न कर बचपन से ही शुकदेव आदि की तरह दिनरात ईश्वर का चिन्तन करते हैं, कौमार अवस्था में वैराग्यवान् हैं, वे धन्य हैं।

"गृहस्थ को कोई न कोई कामना-वासना रहती ही है, यद्यपि उसमें कभी कभी भक्ति—अच्छी भक्ति—दिखायी देती है। मथुरबाबू न जाने किस एक मुकदमे में फँस गये थे; मन्दिर में माँ काली के पास आकर मुझसे कहते हैं, 'बाबा, माँ को यह अर्घ्य दीजिये न!' मैंने उदार मन से दिया। परन्तु कैसा विश्वास है कि मेरे देने से ही ठीक होगा।

"रति की माँ की इधर कितनी भक्ति है! अक्सर आकर कितनी सेवा-टहल करती है! रति की माँ वैष्णव है। कुछ दिनों के बाद ज्योंही देखा कि मैं माँ काली का प्रसाद खाता हूँ—त्योंही

उसने आना बन्द कर दिया। कैसा एकांगी दृष्टिकोण है! लोगों को पहले-पहल देखने से पहचाना नहीं जाता।"

श्रीरामकृष्ण कमरे के भीतर पूर्व की ओर के दरवाजे के पास बैठे हैं। जाड़े का समय। बदन पर एक ऊनी चद्दर है। एकाएक सूर्य देखते ही समाधिमग्न हो गये। आँखें स्थिर! बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं।

क्या यही गायत्रीमन्त्र की सार्थकता है--'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'?

बहुत देर बाद समाधि भंग हुई। राखाल, हाजरा, मास्टर आदि पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण (हाजरा के प्रति)--समाधि या भाव-अवस्था की प्रेरणा प्रेम से ही होती है। श्यामबाजार में नटवर गोस्वामी के मकान पर कीर्तन हो रहा था--श्रीकृष्ण और गोपियों का दर्शन कर मैं समाधिमग्न हो गया! ऐसा लगा कि मेरा लिंगशरीर (सूक्ष्मशरीर) श्रीकृष्ण के पैरों के पीछे पीछे जा रहा है।

"जोड़ासाँकू हरिसभा में उसी प्रकार कीर्तन के समय समाधिस्थ होकर बाह्यशून्य हो गया था। उस दिन देहत्याग की सम्भावना थी!"

श्रीरामकृष्ण स्नान करने गये। स्नान के बाद उसी गोपीप्रेम की ही बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मणि आदि के प्रति)-"गोपियों के केवल उस आकर्षण को लेना चाहिए। इस प्रकार के गाने गाया करो--

(भावार्थ)-"सखि, वह वन कितनी दूर है, जहाँ मेरे श्यामसुन्दर हैं। मैं तो और चल नहीं सकती।"

(भावार्थ)-"सखि, जिस घर में कृष्णनाम लेना कठिन है उस

घर में तो मैं किसी भी तरह नहीं जाऊँगी !"

(२)

यदु मल्लिक के मकान पर

श्रीरामकृष्ण ने राखाल के लिए सिद्धेश्वरी के नाम पर कच्चे नारियल और चीनी की मन्नत की है। मणि से कह रहे हैं, "तुम नारियल और चीनी का दाम दोगे !"

दोपहर के बाद श्रीरामकृष्ण राखाल, मणि आदि के साथ कलकत्ते के श्रीसिद्धेश्वरी-मन्दिर की ओर गाड़ी पर सवार होकर आ रहे हैं। रास्ते में सिमुलियाबाजार से कच्चा नारियल और चीनी खरीदी गयी।

मन्दिर में आकर भक्तों से कह रहे हैं, "एक नारियल फोड़कर चीनी मिलाकर माँ को अर्पण करो।"

जिस समय मन्दिर में आ पहुँचे, उस समय पुजारी लोग मित्रों के साथ माँ काली के सामने ताश खेल रहे थे। यह देखकर श्री-रामकृष्ण भक्तों से कह रहे हैं, "देखा, ऐसे स्थानों में भी ताश ! यहाँ पर तो ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए!"

अब श्रीरामकृष्ण यदु मल्लिक के घर पर पधारे हैं। उनके पास अनेक बाबू लोग बैठे हुए हैं।

यदुबाबू कह रहे हैं, "पधारिये, पधारिये।" आपस में कुशल-प्रश्न के बाद श्रीरामकृष्ण बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (हँसकर)—तुम इतने चापलूसों को क्यों रखते हो ?

यदु (हंसते हुए)—इसलिए कि आप उनका उद्धार करें। (सभी हंसने लगे।)

श्रीरामकृष्ण-चापलूस लोग समझते हैं कि बाबू उन्हें खुले हाथ धन दे देंगे; परन्तु बाबू से धन निकालना बड़ा कठिन काम है।

एक सियार एक बैल को देख उसका फिर साथ न छोड़े। बैल चरता फिरता है, सियार भी साथ साथ है। सियार ने समझा कि बैल का जो अण्डकोष लटक रहा है, वह कभी न कभी गिरेगा और उसे वह खायेगा! बैल कभी सोता है तो वह भी उसके पास ही लेटकर सो जाता है और जब बैल उठकर घूम-फिरकर चरता है तो वह भी साथ साथ रहता है। कितने ही दिन इसी प्रकार बीते, परन्तु वह कोष न गिरा, तब सियार निराश होकर चला गया! (सभी हँसनें लगे।) इन चापलूसों की ऐसी ही दशा है!

यदुबाबू और उनकी माँ ने श्रीरामकृष्ण तथा भक्तों को जलपान कराया।

परिच्छेद ६६

बिल्ववृक्ष और पंचवटी के नीचे

(१)

निराकार साधना

श्रीरामकृष्ण बेल के पेड़ के पास खड़े हुए मणि से बातचीत कर रहे हैं। दिन के नौ बजे होंगे।

आज बुधवार है, १९ दिसम्बर १८८३ अगहन की कृष्णा पंचमी है।

इस बेल के पेड़ के नीचे श्रीरामकृष्ण नें साधना की थी। यह स्थान अत्यन्त निर्जन है। इसके उत्तर तरफ बारूदखाना और चारदीवार है। पश्चिम तरफ झाऊ के पेड़, जो हवा के झोकों से हृदय में उदासीनता भर देनेवाली सनसनाहट पैदा करते हैं। आगे हैं भागीरथी। दक्षिण की ओर पंचवटी दिखायी पड़ रही है। चारों ओर इतने पेड़-पत्ते हैं कि देवालय पूर्ण तरह से दिखायी नहीं आते।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)—पर कामिनी-कांचन का त्याग किये बिना कुछ होने का नहीं।

मणि—क्यों ? वशिष्ठदेव ने तो श्रीरामचन्द्र से कहा था —‚राम, संसार अगर ईश्वर से अलग हो तो संसार का त्याग कर सकते हो।'

श्रीरामकृष्ण (जरा हँसकर)—वह रावणवध के लिए कहा था। इसीलिए राम को संसार में रहना पड़ा और विवाह भी करना पड़ा।

मणि काठ की मूर्ति की तरह चुपचाप खड़े रहे।

श्रीरामकृष्ण यह कहकर अपने कमरे में लौट जाने के लिए पंचवटी की ओर जाने लगे।

पंचवटी के नीचे आप मणि से फिर वार्तालाप करने लगे। दस बजे का समय होगा।

मणि—अच्छा, क्या निराकार की साधना नहीं होती?

श्रीरामकृष्ण—होती क्यों नहीं? वह रास्ता बड़ा कठिन है। पहले के ऋषि कठिन तपस्या करके तब कहीं ब्रह्मवस्तु का अनुभव कर पाते थे। ऋषियों को कितनी मेहनत करनी पड़ती थी!—अपनी कुटिया से सुबह को निकल जाते थे। दिनभर तपस्या करके सन्ध्या के बाद लौटते थे। तब आकर कुछ फल-मूल खाते थे।

"इस साधना में विषयबुद्धि का लेशमात्र रहते सफलता न होगी। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श—ये सब विषय मन में जब बिलकुल न रह जायें, तब मन शुद्ध होता है। वह शुद्ध मन जो कुछ है, शुद्ध आत्मा भी वही है। मन में कामिनी-कांचन बिलकुल न रह जायें।

"तब एक और अवस्था होती है—'ईश्वर ही कर्ता हैं, मैं अकर्ता हूँ।' 'मेरे बिना काम नहीं चल सकता' ऐसा भाव तब बिलकुल नहीं रहता—सुख में भी और दुःख में भी।

"किसी मठ के साधु को दुष्टों ने मारा था। मार खाकर वह बेहोश हो गया। चेतना आने पर जब उससे पूछा गया, 'तुम्हें कौन दूध पिला रहा है?' तब उसने कहा था, 'जिन्होंने मुझे मारा था वे ही मुझे अब दूध पिला रहे हैं।'"

मणि—जी हाँ, यह जानता हूँ।

स्थित-समाधि और उन्मना-समाधि

श्रीरामकृष्ण—नहीं, सिर्फ जानने से ही न होगा,—धारणा भी होनी चाहिए।

"विषयचिन्तन मन को समाधिस्थ नहीं होने देता। विषयबुद्धि का पूरी तरह त्याग होने पर स्थित-समाधि हो जाती है। मेरी देह स्थित-समाधि में छूट सकती है, परन्तु मुझमें भक्ति और भक्तों के साथ कुछ रहने की वासना है। इसीलिए देह पर भी कुछ दृष्टि है।

"एक और है—उन्मना-समाधि। फैले हुए मन को एकाएक समेट लेना। यह तुम समझे?"

मणि—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—फैले हुए मन को एकाएक समेट लेना, यह समाधि देर तक नहीं रहती। विषय-वासनाएँ आकर समाधिभंग कर देती हैं—योगी का योग भंग हो जाता है।

"उस देश में दीवार के भीतर बिल में नेवला रहता है। बिल में जब रहता है, खूब आराम से रहता है। कोई कोई उसकी पूँछ में ईंट बाँध देते हैं; तब ईंट के कारण वह बिल से निकल पड़ता है। जब जब वह बिल के भीतर जाकर आराम से बैठने की चेष्टा करता है, तब तब ईंट के प्रभाव से बिल से निकल आना पड़ता है। विषयवासना भी ऐसी ही है, योगी को योगभ्रष्ट कर देती है।

"विषयी मनुष्यों की कभी कभी समाधि की अवस्था हो सकती है। सूर्योदय होने पर कमल खिल जाता है, परन्तु सूर्य मेघों से ढक जाने पर फिर वह मुँद जाता है। विषय मेघ हैं।"

मणि—साधना करने पर क्या ज्ञान और भक्ति दोनों ही नहीं हो सकते?

श्रीरामकृष्ण—भक्ति लेकर रहने पर दोनों ही होते हैं। जरूरत होने पर वही ब्रह्मज्ञान देते हैं। खूब ऊँचा आधार हुआ तो एक साथ दोनों हो सकते हैं। ईश्वरकोटियों का होता है,—जैसे

चैतन्यदेव का। जीवकोटियों की अलग बात है।

"आलोक (ज्योति) पाँच प्रकार के हैं। दीपक का प्रकाश, भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नि का प्रकाश, चन्द्रमा का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश तथा चन्द्र और सूर्य का सम्मिलित प्रकाश। भक्ति है चन्द्रमा और ज्ञान है सूर्य।

"कभी कभी आकाश में सूर्यास्त होने से पहले ही चन्द्र का उदय हो जाता है, अवतार आदि में भक्तिरूपी चन्द्रमा तथा ज्ञानरूपी सूर्य एकाधार में देखे जाते हैं।

"क्या इच्छा करने से ही सभी को एक ही समय ज्ञान और भक्ति दोनों प्राप्त होते हैं? आधारों की भी विशेषता है। कोई बाँस अधिक पोला रहता है और कोई कम पोला। सभी आधारों में ईश्वर की धारणा थोड़े ही होती है। सेर भर के लोट में क्या दो सेर दूध आ सकता है?

मणि—क्यों, उनकी कृपा से! यदि वे कृपा करें तब तो सूई के छेद से ऊँट भी पार हो सकता है।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु कृपा क्या यों ही होती है? भिखारी यदि एक पैसा माँगे तो दिया जा सकता है। परन्तु एकदम यदि रेल का भाड़ा माँग बैठे तो?

मणि चुपचाप खड़े हैं, श्रीरामकृष्ण भी चुप हैं। एकाएक बोल उठे, "हाँ अवश्य, किसी किसी पर उनकी कृपा होने से हो सकता है, दोनों बातें हो सकती हैं।"

प्रणाम करके मणि बेलतला की ओर जा रहे हैं।

बेलतला से लौटने में दोपहरी हो गयी। विलम्ब देखकर श्रीरामकृष्ण बेलतला की ओर आ रहे हैं। मणि दरी, आसन, जल का लोटा लेकर लौट रहे हैं। पंचवटी के पास श्रीरामकृष्ण

के साथ साक्षात्कार हुआ। उन्होंने उसी समय भूमिष्ठ होकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण (मणि के प्रति)—मैं जा रहा था, तुम्हें खोजने के लिए। सोचा दिन इतना चढ़ आया, कहीं दीवार फाँदकर भाग तो नहीं गया! तुम्हारी आँखें उस समय जिस प्रकार देखी थीं उससे सोचा, कहीं नारायण शास्त्री की तरह भाग तो नहीं गया! उसके बाद फिर सोचा, नहीं वह भागेगा नहीं, वह काफी सोच-समझकर काम करता है।

(२)

भीष्मदेव की कथा। योग कब सिद्ध होता ह

फिर रात को श्रीरामकृष्ण मणि के साथ बातें कर रहे हैं। राखाल, लाटू, हरीश आदि हैं।

श्रीरामकृष्ण (मणि के प्रति)—अच्छा कोई कोई कृष्णलीला की आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं। तुम्हारी क्या राय है?

मणि—विभिन्न मतों के रहने से भी क्या हानि है? भीष्मदेव की कहानी आपने कही है। शरशय्या पर देहत्याग के समय उन्होंने कहा था, 'मैं रो क्यों रहा हूँ? वेदना के लिए नहीं। पर जब सोचता हूँ कि साक्षात् नारायण अर्जुन के सारथि बने थे, परन्तु फिर भी पाण्डवों को इतनी विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं, तब लगता है कि उनकी लीला कुछ भी समझ नहीं सका, इसीलिए रो रहा हूँ।'

"फिर हनुमान की कथा आपने सुनायी है। हनुमान कहा करते थे, 'मैं वार, तिथि, नक्षत्र आदि कुछ भी नहीं जानता, मैं केवल एक राम का चिन्तन करता हूँ।'

"आपने तो कहा है, दो चीजों के सिवाय और कुछ भी नहीं

है, ब्रह्म और शक्ति। और आपने यह भी कहा है, ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) होने पर वे दोनों एक ही जान पड़ते हैं। 'एकमेवाद्वितीयम्।'

श्रीरामकृष्ण–हाँ, ठीक! वस्तु प्राप्त करना है सो काँटेदार जंगल में से जाकर लो या अच्छे रास्ते से जाकर लो।

"अनेकानेक मत अवश्य हैं। नागा* कहा करता था, मत-मतान्तर के कारण साधुसेवा न हुई। एक स्थान पर भण्डारा हो रहा था। अनेक साधु-सम्प्रदाय थे! सभी कहते हैं हमारी सेवा पहले हो, उसके बाद दूसरे सम्प्रदायों की। कुछ भी निश्चित न हो सका। अन्त में सभी चले गये और वेश्याओं को खिलाया गया!"

मणि–तोतापुरी महान् व्यक्ति थे।

श्रीरामकृष्ण–हाजरा कहते हैं मामूली। नहीं भाई, वादविवाद से कोई काम नहीं, सभी कहते हैं, 'मेरी घड़ी ठीक चल रही है।'

"देखो, नारायण शास्त्री को प्रबल वैराग्य हुआ था। उतना बड़ा पण्डित—स्त्री को छोड़कर लापता हो गया। मन से कामिनी-कांचन का सम्पूर्ण त्याग करने से तब योग सिद्ध होता है। किसी किसी में योगी के लक्षण दिखते हैं।

"तुम्हें षट्चक्र के बारे में कुछ बता दूं। योगी षट्चक्र को भेद कर उनकी कृपा से उनका दर्शन करते हैं। षट्चक्र सुना है, न?"

मणि–वेदान्त-मत में सप्तभूमि।

श्रीरामकृष्ण–वेदान्त-मत नहीं, वेद-मत! षट्चक्र क्या है जानते हो? सूक्ष्म देह के भीतर ये सब पद्म हैं—योगीगण उन्हें देख सकते हैं। जैसे मोम के बने वृक्ष के फल, पत्ते।

* तोतापुरी

मणि—जी हाँ, योगीगण देख सकते हैं । एक पुस्तक में लिखा है—एक प्रकार की कांच होती है, जिसके भीतर से देखने पर बहुत छोटी चीजें भी बड़ी दिखती हैं । इसी प्रकार योग द्वारा वे सब सूक्ष्म पद्म देखे जाते हैं ।

श्रीरामकृष्ण ने पंचवटी के कमरे में रहने के लिए कहा है । मणि उसी कमरे में रात बिताते हैं । प्रातःकाल उस कमरे में अकेले गा रहे हैं—

(भावार्थ)—"हे गौर, मैं साधन-भजनहीन हूँ । मै हीन-दीन हूँ, मुझे छूकर पवित्र कर दो ! हे गौर, तुम्हारे श्रीचरणों का लाभ होगा, इसी आशा में मेरे दिन बीत गये । हे गौर,तुम्हारे श्रीचरण तो अभी तक नहीं पा सका !"

एकाएक खिड़की की ओर ताककर देखते हैं, श्रीरामकृष्ण खड़े हैं । "मैं हीन दीन हूँ, मुझे छूकर पवित्र कर दो" यह वाक्य सुनकर श्रीरामकृष्ण की आँखो में आंसू आ गये ।

फिर दुसरा गाना हो रहा है—

(भावार्थ)—"मैं शंख का कुण्डल पहनकर गेरुआ वस्त्र पहनूंगी । मैं योगिनी के वेष में उसी देश में जाऊंगी जहाँ मेरे निर्दय हरि हैं ।"

श्रीरामकृष्ण राखाल के साथ घूम रहे हैं ।

(३)

'डुबकी लगाओ'

शुक्रवार, २१ दिसम्बर १८८३ । प्रातःकाल श्रीरामकृष्ण अकेले बेल के पेड़ के नीचे मणि के साथ वार्तालाप कर रहे हैं । साधना के सम्बन्ध में अनेक गुप्त बातें तथा कामिनी-कांचन के त्याग की बातें हो रही हैं । फिर कभी कभी मन ही गुरु बन जाता है—ये सब बातें बता रहे हैं ।

भोजन के बाद पंचवटी में आये हैं— वे सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं। पंचवटी में दो-तीन वैष्णव बाबाजी आये हैं— एक बाउल साधु भी हैं।

तीसरे पहर एक नानकपन्थी साधु आये हैं। हरीश, राखाल भी हैं। साधु निरकारवादी हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें साकार का भी चिन्तन करने के लिए कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण साधु से कह रहे हैं, "डुबकी लगाओ; ऊपर ऊपर तैरने से रत्न नहीं मिलते। ईश्वर निराकार हैं तथा साकार भी; साकार का चिन्तन करने से शीघ्र भक्ति प्राप्त होती है। तब फिर निराकार का चिन्तन किया जा सकता है। — जिस प्रकार चिट्ठी को पढ़कर फेंक देते हैं, और उसके बाद उसमें लिखे अनुसार काम करते हैं।"

परिच्छेद ६७

दक्षिणेश्वर में बलराम के पिता आदि के साथ

(१)

'बढ़े चलो।' अवतार-तत्त्व

शनिवार, २२ दिसम्बर १८८३ ई०, सबेरे नौ बजे का समय होगा। बलराम के पिता आये हैं। राखाल, हरीश, मास्टर, लाटू यहाँ पर निवास कर रहे हैं। श्यामपुकुर के देवेन्द्र घोष आये हैं। श्रीरामकृष्ण दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में भक्तों के साथ बैठे हैं।

एक भक्त पूछ रहे हैं—भक्ति कैसे हो?

श्रीरामकृष्ण (बलराम के पिता आदि भक्तों के प्रति)– बढ़े चलो। सात फाटकों के बाद राजा विराजमान हैं। सब फाटक पार हो जाने पर ही तो राजा को देख सकोगे।

"मैंने चानक में अन्नपूर्णा की स्थापना के समय द्वारकाबाबू से कहा था, बड़े तालाब में गम्भीर जल में बड़ी बड़ी मछलियाँ हैं। बंसी में लगाकर चारा डालो, उसकी सुगन्ध से बड़ी बड़ी मछलियाँ आ जायेंगी। कभी कभी उछल-कूद भी करेंगी। प्रेमभक्ति मानो चारा!

"ईश्वर नरलीला करते हैं। मनुष्य रूप में वे अवतीर्ण होते हैं, जिस प्रकार श्रीकृष्ण, श्रीरामचन्द्र, श्रीचैतन्यदेव। मैंने केशव सेन से कहा था कि मनुष्य में ईश्वर का अधिक प्रकाश है। मैदान में छोटे छोटे गड्ढे रहते हैं; उन गड्ढों के भीतर मछली, केकड़े रहते हैं। मछली, केकड़े खोजना हो तो उन गड्ढों के भीतर खोजना होता है। ईश्वर को खोजना हो तो अवतारों के भीतर

खोजना चाहिए।

"उस साढ़े तीन हाथ की मानवदेह में जगन्माता अवतीर्ण होती हैं। गीत में कहा है—

(भावार्थ)—"'श्यामा माँ ने कैसी कल बनायी है। साढ़े तीन हाथ की कल के भीतर कितने ही तमाशे दिखा रही है। स्वयं कल के भीतर रहकर वह रस्सी पकड़कर उसे घूमाती है। कल कहती है कि मैं अपने आप ही घूम रही हूँ। वह नहीं जानती कि उसे कौन घूमा रहा है।'

"परन्तु ईश्वर को जानना हो, अवतार को पहचानना हो तो साधना की आवश्यकता है। तालाब मे बड़ी बड़ी मछलियाँ हैं, उनके लिए चारा डालना पड़ता है। दूध में मक्खन है, उसे मन्थन करना पड़ता है। राई में तेल है, उसे पेरना पड़ता है। मेहदी से हाथ लाल होता है, उसे पीसना पड़ता है।"

भक्त (श्रीरामकृष्ण के प्रति)—अच्छा, वे साकार हैं या निराकार?

श्रीरामकृष्ण—ठहरो, पहले कलकत्ता तो जाओ, तभी तो जानोगे कि कहाँ है किले का मैदान, कहाँ एशियाटिक सोसायटी है और कहाँ बंगाल बैंक है।

"खड़दा ब्राह्मण-मुहल्ले में जाने के लिए पहले तो खड़दा पहुँचना ही होगा!

"निराकार साधना होगी क्यों नहीं? परन्तु बड़ी कठिन है। कामिनी-कांचन का त्याग हुए बिना नहीं होता! बाहर त्याग, फिर भीतर त्याग! विषयबुद्धि का लवलेश रहते काम नहीं बनेगा।

"साकार की साधना सरल है— परन्तु उतनी सरल भी नहीं है।

"निराकार साधना, ज्ञानयोग की साधना की चर्चा भक्तों के पास नहीं करनी चाहिए। बड़ी कठिनाई से उसे थोड़ीसी भक्ति प्राप्त हो रही है; उसके पास यह कहने से कि सब कुछ स्वप्नतुल्य है, उसकी भक्ति की हानि होती है।

"कबीरदास निराकारवादी थे। शिव, काली, कृष्ण को नहीं मानते थे। वे कहते थे, काली चावल-केला खाती है, कृष्ण गोपियों के हथेली बजाने पर बन्दर की तरह नाचते थे। (सभी हँस पड़े।)

"निराकार साधक मानो पहले दशभुजा का दर्शन करते हैं, उसके बाद चतुर्भुज का, उसके बाद द्विभुज गोपाल का और अन्त में अखण्ड ज्योति का दर्शन कर उसी में लीन होते हैं।

"कहा जाता है, दत्तात्रेय, जड़भरत ब्रह्मदर्शन के बाद नहीं लौटे।

"कहते हैं कि शुकदेव ने उस ब्रह्मसमुद्र की एक बूँद मात्र का आस्वादन किया था। समुद्र की तरंगों की उछल-कूद देखी थी, गर्जना सुनी थी, परन्तु समुद्र में डूबे न थे।

"एक ब्रह्मचारी ने कहा था, बद्रीकेदार के उस पार जाने से शरीर नहीं रहता। उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के बाद फिर शरीर नहीं रहता। इक्कीस दिनों में मृत्यु हो जाती है।

"दीवाल के उस पार अनन्त मैदान है। चार मित्रों ने दीवाल के उस पार क्या है, यह देखने की चेष्टा की। एक-एक व्यक्ति दीवाल पर चढ़ता है; उस मैदान को देखकर 'हो हो' करके हंसता हुआ दूसरी ओर कूद जाता है। तीन व्यक्तियों ने कोई खबर न दी। सिर्फ एक ने खबर दी। ब्रह्मज्ञान के बाद भी उसका शरीर रहा, लोकशिक्षा के लिए—जैसे अवतार आदि का।

"हिमालय के घर में पार्वती ने जन्मग्रहण किया, और अपने

अनेक रूप पिता को दिखाने लगीं। हिमालय ने कहा, 'बेटी, ये सब रूप तो देखे। परन्तु तुम्हारा एक ब्रह्मस्वरूप है---उसे एकबार दिखा दो।' पार्वती ने कहा, 'पिताजी, यदि तुम ब्रह्म-ज्ञान चाहते हो तो संसार छोड़कर सत्संग करना पड़ेगा।'

"पर हिमालय किसी भी तरह संसार नहीं छोड़ते थे। तब पार्वतीजी ने एक बार अपना ब्रह्मस्वरूप दिखाया। देखते ही गिरिराज एकदम मूर्छित हो गये।

भक्तियोग

"यह जो कुछ कहा, सब तर्क-विचार की बातें हैं। 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' यही विचार है। सब स्वप्न की तरह है! बड़ा कठिन मार्ग है। इस पथ में उनकी लीला स्वप्न जैसी मिथ्या बन जाती है। फिर 'मैं' भी उड़ जाता है। इस पथ में अवतार भी नहीं माना जाता। बड़ा कठिन है। ये सब विचार की बातें भक्तों को अधिक सुननी नहीं चाहिए।

"इसीलिए ईश्वर अवतीर्ण होकर भक्ति का उपदेश देते हैं---शरणागत होने के लिए कहते हैं। भक्ति से, उनकी कृपा से सभी कुछ हो जाता है---ज्ञान, विज्ञान सब कुछ होता है।

"वे लीला कर रहे हैं---वे भक्त के अधीन हैं। 'माँ भक्त की भक्तिरूपी रस्सी से स्वयं बँधी हुई हैं।'

"ईश्वर कभी चुम्बक बनते हैं, भक्त सूई होता है। फिर कभी भक्त चुम्बक और वे सूई होते हैं। भक्त उन्हें खींच लेते हैं---वे भक्तवत्सल, भक्ताधीन हैं।

"एक मत यह है कि यशोदा तथा अन्य गोपीगण पूर्वजन्म में निराकारवादी थीं। उससे उनकी तृप्ति न हुई, इसीलिए उन्होंने वृन्दावनलीला में श्रीकृष्ण को लेकर आनन्द किया। श्रीकृष्ण ने

एक दिन कहा, 'तुम्हें नित्यधाम का दर्शन कराऊँगा, चलो, यमुना में स्नान करने चलें !' ज्योंही उन्होंने डुबकी लगायी—एकदम गोलोक का दर्शन ! फिर उसके बाद अखण्ड ज्योति का दर्शन ! तब यशोदा बोलीं, 'कृष्ण, ये सब और अधिक देखना नहीं चाहती, अब तेरे उसी मानवरूप का दर्शन करूँगी, तुझे गोदी में लूँगी, खिलाऊँगी !!'

"इसीलिए अवतार में उनका अधिक प्रकाश है। अवतार का शरीर रहते उनकी पूजा-सेवा करनी चाहिए। 'वह जो कोठरी के भीतर चोर-कोठरी है, भोर होते ही वह उसमें छिप जायगा रे।'

"अवतार को सभी लोग नहीं पहचान सकते। देहधारण करने पर रोग, शोक, क्षुधा, तृष्णा, सभी कुछ होता है, ऐसा लगता है मानो वे हमारी ही तरह हैं ! राम सीता के शोध में रोये थे—'पंचभूत के फन्दे में पड़कर ब्रह्म भी रोते हैं।'

"पुराण में कहा है, हिरण्याक्ष-वध के बाद वराह-अवतार बच्चों को लेकर रहने लगे—उन्हें स्तनपान करा रहे थे। (सभी हँसे।) स्वधाम में जाने का नाम तक नहीं। अन्त में शिव ने आकर त्रिशूल द्वारा उनके शरीर का विनाश किया, तब वे हँसते हुए स्वधाम में पधारे।"

(२)

गोपियों का प्रेम

तीसरा प्रहर है। भवनाथ आये हैं। कमरे में राखाल, मास्टर, हरीश आदि हैं।

श्रीरामकृष्ण (भवनाथ के प्रति)—अवतार पर प्रेम होने से ही हो गया। अहा, गोपियों का कैसा प्रेम था !

यह कहकर आप गोपियों के भाव में गाना गा रहे हैं—

(१) (भावार्थ)–"श्याम तुम प्राणों के प्राण हो...।"

(२) (भावार्थ)–"सखि, मैं घर बिलकुल नहीं जाऊँगी...।"

(३) (भावार्थ)– "उस दिन, जिस समय तुम वन जा रहे थे, मैं द्वार पर खड़ी थी। प्रिय, इच्छा होती है, गोपाल बनकर तुम्हारा भार अपने सिर पर उठा लूं!..."

श्रीरामकृष्ण– रास के बीच में जिस समय श्रीकृष्ण छिप गये, गोपिकाएँ एकदम पागल बन गयीं। एक वृक्ष को देखकर कहती हैं, 'तुम कोई तपस्वी होगे! श्रीकृष्ण को तुमने अवश्य ही देखा होगा! नहीं तो समाधिमग्न होकर क्यों खड़े हो?' तृणों से ढकी हुई पृथ्वी को देखकर कहती हैं, 'हे पृथ्वी, तुमने अवश्य ही उनके दर्शन किये हैं; नहीं तो तुम्हारे रोंगटे क्यों खड़े हुए हैं? अवश्य ही तुमने उनके स्पर्शसुख का उपभोग किया होगा! फिर माधवी-लता को देखकर कहती हैं, 'हे माधवी, मुझे माधव ला दे!' गोपियों का कैसा प्रेमोन्माद है!

"जब अक्रूर आये और श्रीकृष्ण तथा बलराम मथुरा जाने के लिए रथ पर बैठे, तो गोपीगण रथ के पहिये पकड़कर कहने लगीं, जाने नहीं देंगे।"

इतना कहकर श्रीरामकृष्ण फिर गाना गा रहे हैं—

(भावार्थ)– "रथचक्र को न पकड़ो, न पकड़ो, क्या रथ चक्र से चलता है? इस चक्र के चक्री हरि हैं, जिनके चक्र से जगत् चलता है।"

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—" 'क्या रथ चक्र से चलता है'—ये बातें मुझे बहुत ही हृदयस्पर्शी लगती हैं। 'जिस चक्र से ब्रह्माण्ड घूमता है!' 'रथी की आज्ञा से सारथि चलता है!' "

परिच्छेद ६८

दक्षिणेश्वर में गुरुरूपी श्रीरामकृष्ण

(१)

समाधि में। ईश्वरदर्शन और परमहंस-अवस्था

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में राखाल, लाटू, मणि, हरीश आदि भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। दिन के नौ बजे का समय होगा। रविवार, २३ दिसम्बर १८८३। अगहन की कृष्णा नवमी है।

मणि को गुरुदेव के यहाँ रहते आज दस दिन पूरे हो जायेंगे।

श्री मनोमोहन कोन्नगर से आज सुबह आये हैं। श्रीरामकृष्ण के दर्शन और कुछ विश्राम करके आप कलकत्ता जायेंगे। हाजरा भी श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हैं। नीलकण्ठ के देश के एक वैष्णव आज श्रीरामकृष्ण को गाना सुना रहे हैं। वैष्णव ने पहले नीलकण्ठ का गाना गाया—

(भावार्थ)— "श्रीगौरांग की सुन्दर देह तप्त-कांचन के समान है। वे नव-नटवर ही हो रहे हैं। परन्तु वे इस बार दूसरे ही स्वरूप से, अपने पहले के चिह्नों को छिपाकर नदिया में अवतीर्ण हुए हैं। कलिकाल का घोर अन्धकार दूर करने के लिए तथा उन्नत और उज्ज्वल प्रेमरस प्रकट करने के लिए तुम इस बार श्रीकृष्णावतार की नीली देह को महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधा की तप्त-कांचन जैसी उज्ज्वल देह से ढककर आये हो। तुम महाभाव में समारूढ़ हो, सात्त्विकादि तुममें लीन हो जाते हैं। उस भावास्वाद के लिए तुम जगलों में रोते फिरते हो। इससे प्रेम की बाढ़ हो

आती है। तुम नवीन संन्यासी हो, अच्छे तीर्थों की खोज में रहते हो, कभी तुम नीलाचल और कभी वाराणसी जाते हो, अयाचकों को भी तुम प्रेम का दान करते हो, तुम्हारे इस कार्य में जातिभेद नहीं है।"

एक दूसरा गाना उन्होंने मानसपूजा के सम्बन्ध में गाया।

श्रीरामकृष्ण (हाजरा के प्रति)–यह गाना कैसा कैसा लगा।

हाजरा–यह साधक का नहीं है,––ज्ञानदीपक, ज्ञानप्रतिमा!

श्रीरामकृष्ण–मुझे तो कैसा कैसा लगा!

"पहले के गाने कैसे ठीक ठीक होते थे! पंचवटी में नागा के पास मैंने एक गाना गाया था––'जीवनसंग्राम के लिए तू तैयार हो जा, लड़ाई का सामान लेकर काल तेरे घर में प्रवेश कर रहा है।' एक और गाना––'ऐ श्यामा, दोष किसी का नहीं है, मैं अपने ही हाथों द्वारा खोदे हुए गढ़े के पानी में डूबता हूँ।'

"नागा इतना ज्ञानी था, परन्तु इनका अर्थ विना समझे ही रोने लगा था।

"इन सब गानों में कैसी यथार्थ बात है––'नरकान्तकारी श्रीकान्त की चिन्ता करो, फिर तुम्हें भयंकर काल का भी भय न रह जायगा।'

"पद्मलोचन मेरे मुंह से रामप्रसाद का गाना सुनकर रोने लगा। पर था वह कितना विद्वान्!"

भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण कुछ विश्राम कर रहे हैं। जमीन पर मणि बैठे हुए हैं। नौबतखाने में शहनाई का वाद्य सुनते हुए श्रीरामकृष्ण आनन्द कर रहे हैं।

फिर मणि को समझाने लगे, ब्रह्म ही जीव-जगत् हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण–किसी ने कहा, अमुक स्थान पर हरिनाम नहीं

है। उसके कहते ही मैंने देखा, वही सब जीव हुए हैं। मानो पानी के असंख्य बुलबुले—असंख्य जलबिम्ब !

"उस देश से बर्दवान आते आते दौड़कर एक बार मैदान की ओर चला गया—यह देखने के लिए कि यहाँ के जीव किस तरह खाते हैं और रहते हैं ! जाकर देखा, मैदान में चींटियाँ रेंग रही हैं ! सभी जगह चैतन्यमय है !"

हाजरा कमरे में आकर जमीन पर बैठ गये।

श्रीरामकृष्ण—अनेक प्रकार के फूल—तह के तह पँखुड़ियाँ—यह भी देखा !—छोटा बिम्ब और बड़ा बिम्ब।

ईश्वरीय रूप-दर्शन की ये सब बातें कहते कहते श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो रहे हैं। कह रहे हैं, "मैं हुआ हूँ ! मैं आया हूँ !"

यह बात कहकर ही एकदम समाधिस्थ हो गये। सब कुछ स्थिर हो गया।

बड़ी देर तक समाधि के आनन्द में मग्न रह लेने पर कुछ होश आ रहा है।

अब बालक की तरह हँस रहे हैं, हँस-हँसकर कमरे में टहल रहे हैं।

अद्‌भुत दर्शन के बाद आँखों से जैसे आनन्द-ज्योति निकलती है, श्रीरामकृष्ण की आँखों का भाव वैसा ही हो गया। सहास्य मुख, शून्य दृष्टि।

श्रीरामकृष्ण टहलते हुए कह रहे हैं—

"बटतल्ले के परमहंस को देखा था, इसी तरह हँसकर चल रहा था !—वही स्वरूप मेरा भी हो गया क्या ?"

इस तरह टहलकर श्रीरामकृष्ण अपने छोटे तख्त पर जा बैठे और जगन्माता से बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"खैर,मैं जानना भी नहीं चाहता ! माँ, तुम्हारे पादपद्मों में मेरी शुद्धा भक्ति बनी रहे ।"

(मणि से)—"क्षोभ और वासना के जाने से ही यह अवस्था होती है ।"

फिर माँ से कहने लगे—"माँ, पूजा तो तुमने उठा दी, परन्तु देखो, मेरी सब वासनाएँ चली न जायें ! माँ, परमहंस तो बालक है—बालक को माँ चाहिए या नहीं ? इसलिए तुम मेरी माँ हो, मैं तुम्हारा बच्चा । माँ का बच्चा माँ को छोड़कर कैसे रहे ?"

श्रीरामकृष्ण ऐसे स्वर से बातचीत कर रहे हैं कि पत्थर भी पिघल जाय । फिर माँ से कह रहे हैं—"केवल अद्वैत-ज्ञान ! थू थू ! जब तक 'मैं' रखा है, तब तक 'तुम' हो । परमहंस तो बालक है; बालक को माँ चाहिए या नहीं ?"

मणि आश्चर्यचकित होकर श्रीरामकृष्ण की यह देवदुर्लभ अवस्था देख रहे हैं । वे सोच रहे हैं—'श्रीरामकृष्ण अहेतुक दया-सिन्धु हैं । मुझमें विश्वास उत्पन्न हो, चैतन्य जागृत हो और जीवों को शिक्षा प्राप्त हो, इसीलिए गुरुरूपी श्रीरामकृष्ण की यह परमहंस अवस्था है !'

मणि और भी सोचते हैं—'श्रीरामकृष्ण कहते हैं, अद्वैत—चैतन्य—नित्यानन्द । अद्वैतज्ञान होने पर चैतन्य प्राप्त होता है, तभी नित्यानन्द का लाभ होता है । श्रीरामकृष्ण की केवल अद्वैत-ज्ञान की नहीं—नित्यानन्द की अवस्था है । जगदम्बा के प्रेम में सदा विभोर हैं—मतवाले से !

हाजरा श्रीरामकृष्ण की यह अवस्था देख हाथ जोड़कर कहने लगे—"धन्य है ! धन्य है !"

श्रीरामकृष्ण हाजरा से कह रहे हैं—"तुम्हें विश्वास कहाँ है ?

तुम तो यहाँ उसी तरह हो जैसे जटिला और कुटिला व्रज में थीं,—लीला की पुष्टि के लिए।"

तीसरा प्रहर हुआ। मणि अकेले देवालय के निकट निर्जन में टहल रहे हैं और श्रीरामकृष्ण की इस अद्‌भुत अवस्था के बारे में सोच रहे हैं। सोच रहे हैं—'श्रीरामकृष्ण ने ऐसा क्यों कहा कि क्षोभ और वासना के जाने से ही यह अवस्था होती है? ये गुरुरूपी श्रीरामकृष्ण कौन हैं? क्या भगवान् स्वयं ही हमारे लिए देहधारण कर आये हैं? श्रीरामकृष्ण तो कहते हैं कि ईश्वरकोटि-अवतार आदि के अलावा दूसरा कोई जड़समाधि, निर्विकल्प समाधि से लौट नहीं आ सकता!'

परिच्छेद ६९

जगद्गुरु श्रीरामकृष्ण

(१)

गूढ़ बातें

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षि नारदस्तथा ।

असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।। (गीता १०।१३)

दूसरे दिन श्रीरामकृष्ण झाऊतल्ले में मणि के साथ एकान्त में बातचीत कर रहे हैं। सोमवार, २४ दिसम्बर १८८३। अगहन की कृष्णा दशमी। सुबह के आठ बजे होंगे।

आज मणि का प्रभु के सत्संग में वास करने का ग्यारहवाँ दिन है। शीत ऋतु है। पूर्व गगन में सूर्यनारायण अभी अभी उदित हुए हैं। झाऊतल्ले के पश्चिम ओर गंगाजी बह रही हैं। इस समय वे उत्तरवाहिनी हैं। ज्वार आयी है। चारों ओर वृक्ष और लताएँ हैं। थोड़ी ही दूर पर श्रीरामकृष्ण की साधना का स्थान---वह बिल्ववृक्ष---दिखायी दे रहा है। श्रीरामकृष्ण पूर्वाभिमुख हो वार्तालाप कर रहे हैं। मणि उत्तराभिमुख हो विनयपूर्वक सुन रहे हैं। श्रीरामकृष्ण की दाहिनी ओर पंचवटी और हंस-पुष्करिणी है। सूर्य के प्रकाश में मानो जग बिहँस रहा है। श्रीरामकृष्ण ब्रह्मज्ञान की बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण--निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है।

"नागा उपदेश देता था; सच्चिदानन्द ब्रह्म कैसे हैं---जैसे अनन्त सागर है, ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें, पानी ही पानी है। वह कारणसलिल है---स्थिर पानी है। कार्य के होने पर उसमें

तरंगें उठने लगीं। सृष्टि, स्थिति और प्रलय यही कार्य है।

"फिर कहता था, विचार जहाँ पहुँचकर रुक जाय, वही ब्रह्म है। जैसे कपूर जलाने पर उसका सर्वांश जल जाता है, जरा भी राख नहीं रह जाती।

"ब्रह्म मन और वचन के परे है। नमक का पुतला समुद्र की थाह लेने गया था। लौटकर उसने खबर नहीं दी। समुद्र में गल गया।

"ऋषियों ने राम से कहा था,—'राम, भरद्वाजादि तुम्हें अवतार कह सकते हैं, परन्तु हम लोग नहीं कहते। हम लोग शब्द-ब्रह्म की उपासना करते हैं। हम मनुष्य-स्वरूप को नहीं चाहते।' राम कुछ हंसकर प्रसन्न हो उनकी पूजा लेकर चले गये।

"परन्तु नित्यता जिनकी है, लीला भी उन्हीं की है। जैसे छत और सीढ़ियाँ।

"ईश्वरलीला, देवलीला, नरलीला, जगत्-लीला। नरलीला में ही अवतार होता है। नरलीला कैसी है, जानते हो? जैसे बड़ी छत का पानी नल से जोर-शोर से गिर रहा हो। वही सच्चिदानन्द हैं—उन्हीं की शक्ति एक रास्ते से—नल के भीतर से आ रही है। केवल भरद्वाजादि बारह ऋषियों ने ही राम को पहचाना था कि ये अवतारी पुरुष हैं। अवतारी पुरुषों को सभी पहचान नहीं सकते।"

श्रीरामकृष्ण (मणि से)—वे अवतीर्ण होकर भक्ति की शिक्षा देते हैं। अच्छा, मुझे तुम क्या समझते हो?

"मेरे पिता गया गये थे। वहाँ रघुवीर ने स्वप्न दिखलाया, मैं तेरा पुत्र बनकर जन्म लूँगा। पिता ने स्वप्न देखकर कहा, देव, मैं दरिद्र ब्राह्मण हूं, मैं तुम्हारी सेवा कैसे करूँगा? रघुवीर

दे कहा, सेवा हो जायगी।

"दीदी—हृदय की माँ—पुष्प-चन्दन लेकर मेरे पैर पूजती थी। एक दिन उसके सिर पर पैर रखकर (माता ने) कहा, तेरी वाराणसी में ही मृत्यु होगी।

"मथुर बाबू ने कहा, 'बाबा, तुम्हारे भीतर और कुछ नहीं है, वही ईश्वर हैं। देह तो आवरण मात्र है, जैसे बाहर कद्दू का आकार है, परन्तु भीतर गूदा, बीज, कुछ भी नहीं है। तुम्हें देखा, मानो घूँघट डालकर कोई चला जा रहा है।'

"पहले ही से मुझे सब दिखा दिया जाता है। बटतल्ले में मैंने गौरांग के संकीर्तन का दल देखा था। उसमें शायद बलराम को देखा था और तुम्हें भी शायद देखा था।

"मैंने गौरांग का भाव जानना चाहा था। उसनें दिखाया उस देश में—श्यामबाजार में। पेड़ पर और चारदीवार पर आदमी ही आदमी—दिनरात साथ साथ आदमी! सात दि शौच के लिए जाना भी मुश्किल हो गया! तब मैंने कहा, माँ, बस, अब रहने दो। इसीलिए अब भाव शान्त है।

"एक बार और आना होगा। इसीलिए पार्षदों को सब ज्ञान मैं नहीं देता। (हँसते हुए) तुम्हें अगर सब ज्ञान दे दं, तो फिर तुम लोग सहज ही मेरे पास क्यों आओगे?

"तुम्हें मैं पहचान गया, तुम्हारा चैतन्य-भागवत पढ़ना सुनकर। तुम अपने आदमी हो। एक ही सत्ता है, जैसे पिता और पुत्र। यहाँ सब आ रहे हैं, जैसे कल्मी की बेल,—एक जगह पकड़कर खींचने से सब आ जाता है। परस्पर सब आत्मीय हैं, जैसे भाई-भाई। राखाल, हरीश आदि जगन्नाथ-दर्शन के लिए पुरी गये हैं, और तुम भी गये हो, तो क्या कभी ठहराव अलग अलग

हो सकता है ?

"जब तक यहाँ तुम नहीं आये तब तक तुम भूले हुए थे, अब अपने को पहचान सकोगे। वे गुरु के रूप में आकर जता देते हैं।

"नागे ने बाघ और बकरी की कहानी कही थी। एक बाघिन बकरियों के झुण्ड पर टूट पड़ी। किसी बहेलिये ने दूर से उसे देखकर मार डाला। उसके पेट में बच्चा था, वह पैदा हो गया। वह बच्चा बकरियों के बीच में बढ़ने लगा। पहले बच्चा बकरियों का दूध पीता था। इसके बाद जब कुछ बड़ा हुआ तब घास चरने लगा और बकरियों की तरह 'में में' करने लगा। धीरे धीरे वह बहुत बड़ा हो गया पर तब भी वह घास ही चरता और 'में में' करता। कोई जानवर जब आक्रमण करता, तब बकरों की तरह डरकर भागता! एक दिन एक भयंकर बाघ बकरियों पर टूट पड़ा। उसने आश्चर्य में आकर देखा, उनमें एक बाघ भी घास चर रहा है और उसे देखकर बकरियों के साथ साथ वह भी दौड़कर भागा। तब बकरियों से कुछ छेड़छाड़ न करके घास चरनेवाले उस बाघ को ही उसने पकड़ा। वह 'में में' करने लगा और भागने की कोशिश करता गया। तब बाघ उसे पानी के किनारे खींचकर ले गया और उससे कहा, 'इस पानी में अपना मुँह देख। हण्डी की तरह मेरा मुँह जितना बड़ा है, उतना ही बड़ा तेरा भी है।' फिर उसके मुँह में थोड़ासा मांस खोंस दिया। पहले वह किसी तरह खाता ही न था, फिर कुछ स्वाद पाकर खाने लगा। तब बाघ ने कहा, 'तू बकरियों के बीच में था और उन्हीं की तरह घास खाता था! धिक्कार है तुझे!' तब उसे बड़ी लज्जा हुई।

"घास खाना है कामिनी-कांचन लेकर रहना। बकरियों की

तरह 'में में' करना और भागना है—सामान्य जीवों की तरह आचरण करना। बाघ के साथ जाना है—गुरु, जिन्होंने ज्ञान की आँखें खोल दीं, उनकी शरणागत होना, उन्हें ही आत्मीय समझना। अपना सच्चा मुँह देखना है—अपने स्वरूप को पहचानना।"

श्रीरामकृष्ण खड़े हो गये। चारों ओर सन्नाटा है। सिर्फ झाऊ के पेड़ों की सनसनाहट और गंगाजी की कलकल-ध्वनि सुन पड़ रही है। वे रेलिंग पार करके पंचवटी के भीतर से अपने कमरे की ओर मणि से बातचीत करते हुए जा रहे हैं। मणि मन्त्रमुग्ध की तरह पीछे पीछे जा रहे हैं।

पंचवटी में आकर, जहाँ उसकी एक डाल टूटी पड़ी है, वहीं खड़े होकर, पूर्वास्य हो, बरगद के मूल पर बँधे हुए चबूतरे पर सिर टेककर प्रणाम किया। यह स्थान उनकी साधना का स्थान है। यहाँ पर उन्होंने व्याकुल होकर कितना क्रन्दन किया है कितने ही ईश्वरी रूपों के दर्शन किये हैं, और माता के साथ कितनी बातें की हैं! क्या इसीलिए जब वे यहाँ आते हैं तो प्रणाम करते हैं?"

बकुलतल्ला होकर वे नौबतखाने के निकट आये। मणि साथ ही हैं।

नौबतखाने के पास आकर हाजरा को देखा। श्रीरामकृष्ण उनसे कह रहे हैं—"अधिक न खाते जाना और बाह्य शुद्धि की ओर इतना ध्यान देना छोड़ दो। जिन्हें बेकार यह धुन सवार रहती है उन्हें ज्ञान नहीं होता। आचार उतना ही चाहिए जितने की जरूरत है। बहुत ज्यादा अच्छा नहीं।" श्रीरामकृष्ण ने अपने कमरे में पहुँचकर आसन ग्रहण किया।

(२)

प्रेमाभक्ति और श्रीवृन्दावनलीला । अवतार तथा नरलीला

भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण जरा विश्राम कर रहे हैं । बड़े दिन की छुट्टी लग गयी है । कलकत्ते से सुरेन्द्र, राम आदि भक्त-गण धीरे धीरे आ रहे हैं ।

दिन के एक बजे का समय होगा । मणि अकेले झाऊतल्ले में टहल रहे हैं । इसी समय रेलिंग के पास खड़े होकर हरीश उच्च स्वर से मणि को पुकारकर कह रहे हैं--"आपको बुलाते हैं, शिव-संहिता पढ़ी जायगी ।"

शिवसंहिता में योग की बातें हैं--षट्चक्रों की बात है ।

मणि श्रीरामकृष्ण के कमरे में आकर प्रणाम करके बैठे । श्रीरामकृष्ण छोटे तख्त पर तथा भक्तगण जमीन पर बैठे हुए हैं । इस समय शिवसंहिता का पाठ नहीं हुआ । श्रीरामकृष्ण स्वयं ही बातचीत कर रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण--गोपियों की प्रेमाभक्ति थी । प्रेमाभक्ति में दो बातें रहती हैं । -- 'अहंता' और 'ममता' । यदि मैं श्रीकृष्ण की सेवा न करूँ तो उनकी तबीयत बिगड़ जायगी--यह अहंता है । इसमें ईश्वरबोध नहीं रहता ।

"ममता है 'मेरा मेरा' करना । गोपियों की ममता इतनी बढ़ी हुई थी कि कहीं पैरों में जरासी चोट न लग जाय, इसलिए उनका सूक्ष्मशरीर श्रीकृष्ण के श्रीचरणों के नीचे रहता था ।

"यशोदा ने कहा, 'तुम्हारे चिन्तामणि श्रीकृष्ण को मैं नहीं जानती ।--मेरा तो वह गोपाल ही है ।' उधर गोपियाँ भी कहती हैं, 'कहाँ हैं मेरे प्राणवल्लभ--हृदयवल्लभ!' ईश्वरबोध उनमें नहीं था ।

"जैसे छोटे छोटे लड़के, मैंने देखा है, कहते हैं, 'मेरे बाबा'। यदि कोई कहता है, 'नहीं, तेरे बाबा नहीं हैं' तो वे कहते हैं, 'क्यों नहीं—मेरे बाबा तो हैं।'

"नरलीला करते समय अवतारी पुरुषों को ठीक आदमी की तरह आचरण करना पड़ता है,—इसीलिए उन्हें पहचानना मुश्किल हो जाता है। नररूप धारण किया है तो प्राकृत नरों की तरह ही आचरण करेंगे। वही भूख-प्यास, रोग-शोक, वही भय—सब प्राकृत मनुष्यों की तरह। श्रीरामचन्द्र सीताजी के वियोग में रोये थे। गोपाल ने नन्द की जूतियाँ सिर पर ढोयी थीं—पीढ़ा ढोया था।

"थियेटर में साधु बनते हैं तो साधुओं का-सा ही व्यवहार करते हैं—जो राजा बनता है, उसकी तरह व्यवहार नहीं करते। जो कुछ बनते हैं वैसा ही अभिनय भी करते हैं।

"कोई बहुरुपिया साधु बना था,—त्यागी साधु। स्वाँग उसने ठीक बनाकर दिखलाया था, इसलिए बाबुओं ने उसे एक रुपया देना चाहा। उसने न लिया, 'ऊँहूँ' कहकर चला गया। देह और हाथ-पैर धोकर अपने सहज स्वरूप में जब आया तब उसने रुपया माँगा। बाबुओं ने कहा, 'अभी तो तुमने कहा, रुपया न लेंगे और चले गये, अब रुपया लेने कैसे आये?' उसने कहा, 'तब मैं साधु बना हुआ था, उस समय रुपया कैसे ले सकता था!'

"इसी तरह ईश्वर जब मनुष्य बनते हैं, तब ठीक मनुष्य की तरह व्यवहार करते हैं।

"वृन्दावन जाने पर कितने ही लीला के स्थान दीख पड़ते हैं।"

सुरेन्द्र—हम लोग छुट्टी में गये थे। वहाँ मँगते इतने हैं कि 'पैसा दीजिये', 'पैसा दीजिये' की रट लगा देते हैं। 'दीजिये

दीजिये' करने लगे—पण्डे भी और दूसरे भी। उनसे मैंने कहा, हम कल कलकत्ता जायेंगे; यह कहकर उसी दिन वहाँ से नौ-दो-ग्यारह!

श्रीरामकृष्ण—यह क्या है? कल जायेंगे कहकर आज ही भागना! छिः!

सुरेन्द्र (लज्जित होकर)—उन लोगों में भी कहीं कहीं साधुओं को देखा था। निर्जन में बैठे हुए साधन-भजन कर रहे थे।

श्रीरामकृष्ण—साधुओं को कुछ दिया?

सुरेन्द्र—जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण—यह अच्छा काम नहीं किया। साधु-भक्तों को कुछ दिया जाता है। जिनके पास धन है, उन्हें उस तरह के आदमी को सामने पड़ने पर कुछ देना चाहिए।

"मैं भी वृन्दावन गया था, मथुरबाबू के साथ। ज्योंही मथुरा का ध्रुवघाट मैंने देखा कि उसी समय दर्शन हुआ, वसुदेव श्रीकृष्ण को गोद में लेकर यमुना पार कर रहे हैं।

"फिर शाम को यमुना के तट पर टहल रहा था। बालू पर छोटे छोटे झोपड़े थे, बेर के पेड़ बहुत थे। गोधूलि का समय था, गौएँ चरागाह से लौट रही थीं। देखा, उतरकर यमुना पार कर रही हैं। इसके बाद कुछ चरवाहे गौओं को लेकर पार होने लगे। ज्योंही यह देखा कि 'कृष्ण कहाँ है?' कहकर बेहोश हो गया।

"श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड के दर्शन करने की इच्छा हुई थी। पालकी पर मुझे मथुरबाबू ने भेज दिया। रास्ता बहुत दूर है। पालकी के भीतर पूड़ियाँ और जलेबियाँ रख दी गयी थीं। मैदान पार करते समय यह सोचकर रोने लगा, 'वे सब स्थान तो हैं, पर कृष्ण, तू ही नहीं है!—यह वही भूमि है जहाँ तू गौएँ चराता था।'

"हृदय रास्ते में साथ साथ पीछे आ रहा था। मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। कहारों को खड़े होने के लिए भी न कह सका।

"श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड में जाकर देखा, साधुओं ने एक-एक झोपड़ी-सी बना रखी है,—उसी के भीतर पीठ फेरकर साधन-भजन कर रहे हैं। पीठ इसलिए फेर बैठे हैं कि कहीं लोगों पर उनकी दृष्टि न जाय। द्वादशवन देखने लायक है।

"बाँकेबिहारी को देखकर मुझे भाव हो गया था; मैं उन्हें पकड़ने चला था। गोविन्दजी को दुबारा देखने की इच्छा नहीं हुई। मथुरा में जाकर राखाल-कृष्ण का स्वप्न देखा था। हृदय और मथुरबाबू ने भी देखा था।"

(सुरेन्द्र से)—"तुम्हारे योग भी है और भोग भी है।

"ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि। ब्रह्मर्षि जैसे शुकदेव—एक भी पुस्तक पास नहीं है। देवर्षि जैसे नारद। राजर्षि जैसे जनक—निष्काम कर्म करते हैं।

"देवीभक्त धर्म और मोक्ष दोनों पाता है तथा अर्थ और काम का भी भोग करता है।

"तुम्हें एक दिन मैंने देवीपुत्र देखा था। तुम्हारे दोनों हैं, योग और भोग। नहीं तो तुम्हारा चेहरा सूखा हुआ होता।

"सर्वत्यागी का चेहरा सूखा हुआ होता है। एक देवीभक्त को घाट पर मैंने देखा था। भोजन करते हुए ही वह देवीपूजा कर रहा था। उसका सन्तान-भाव था।

"परन्तु अधिक धन होना अच्छा नहीं। यदु मल्लिक को इस

समय देखा, डूब गया है। अधिक धन हो गया है न!

"नवीन नियोगी के भी योग-भोग दोनों हैं। दुर्गापूजा के समय मैंने देखा, पिता-पुत्र दोनों चँवर डुला रहे थे।"

सुरेन्द्र—अच्छा महाराज, ध्यान क्यों नहीं होता?

श्रीरामकृष्ण—स्मरण-मनन तो है न?

सुरेन्द्र—जी हाँ, 'माँ माँ' कहता हुआ सो जाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण—बहुत अच्छा है, स्मरण-मनन रहने से ही हुआ।

श्रीरामकृष्ण ने सुरेन्द्र का भार ले लिया है; अब उन्हें चिन्ता किस बात की?

(३)

श्रीरामकृष्ण और योगशिक्षा। शिवसंहिता

सन्ध्या के बाद श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। मणि भी भक्तों के साथ जमीन पर बैठे हैं। योग के सम्बन्ध में, षट्चक्रों के सम्बन्ध में बातचीत हो रही है। ये सब बातें शिवसंहिता में हैं।

श्रीरामकृष्ण—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—सुषुम्ना के भीतर सब पद्म हैं—सभी चिन्मय। जैसे मोम का पेड़,—डाल, पत्ते, फल,—सब मोम के। मूलाधार पद्म में कुण्डलिनी-शक्ति है। वह पद्म चतुर्दल है। जो आद्याशक्ति हैं, वही कुण्डलिनी के रूप में सब की देह में विराजमान हैं—जैसे सोता हुआ साँप कुण्डलाकार पड़ा रहता है। 'प्रसुप्तभुजगाकारा आधारपद्मवासिनी।' (मणि से) भक्तियोग से कुलकुण्डलिनी शीघ्र जागृत होती है। इसके बिना जागृत हुए ईश्वर के दर्शन नहीं होते। तुम एकाग्रता के साथ निर्जन में गाया करना—

" 'जागो माँ कुलकुण्डलिनी! तुम नित्यानन्द-स्वरूपिणी!
प्रसुप्तभुजगाकारा आधारपद्मवासिनी!'

"गाना गाकर ही रामप्रसाद सिद्ध हुए थे। व्याकुल होकर गाना गाने पर ईश्वरदर्शन होते हैं।"

मणि–जी हाँ, यह सब एक बार करने से ही मन का खेद मिट जाता है।

श्रीरामकृष्ण–अहा! खेद मिट जाता है––सत्य है।

"योग के सम्बन्ध की दो-चार बातें तुम्हें बतला देनी चाहिए।

"बात यह है कि अण्डे के भीतर बच्चा जब तक बड़ा नहीं हो जाता तब तक चिड़िया उसे नहीं फोड़ती।

"परन्तु कुछ साधना करनी चाहिए। गुरु ही सब कुछ करते हैं, परन्तु अन्त में कुछ साधना भी करा लेते हैं। बड़े पेड़ को काटते समय जब लगभग काटना समाप्त हो जाता है तो कुछ हटकर खड़ा हुआ जाता है। पेड़ फिर आप ही हरहराकर टूट जाता है।

"जब नाली काटकर पानी लाया जाता है, और जब वह समय आता है कि थोड़ासा ही काटने से नहर के साथ नाली का योग हो जाय, तब नाली काटनेवाला कुछ हटकर खड़ा हो जाता है। तब मिट्टी भीगकर धंस जाती है और नहर का पानी हर-हराकर नाली में घुस पड़ता है।

"अहंकार, उपाधि, इन सब का त्याग होने के साथ ही ईश्वर के दर्शन होते हैं। मैं पण्डित हूँ, मैं अमुक का पुत्र हूँ, मैं धनी हूँ, मैं मानी हूँ, इन सब उपाधियों को त्याग देने से ही ईश्वर के दर्शन होते हैं।

"ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य–– संसार अनित्य है–– इसे विवेक कहते हैं। विवेक के हुए बिना उपदेशों का ग्रहण नहीं होता।

"साधना करते करते ही उनकी कृपा से लोग सिद्ध होते हैं। कुछ परिश्रम भी करना चाहिए। इसके बाद दर्शन और आनन्द।

'अमुक स्थान पर सोने का घड़ा गड़ा हुआ है, यह सुनते ही मनुष्य दौड़ पड़ता है और खोदने लग जाता है। खोदते खोदते सिर से पसीना निकल जाता है। बहुत देर तक खोदने के बाद कहीं कुदार में ठनकार आती है। तब कुदार फेंककर वह देखने लगता है कि घड़ा निकला या नहीं ? घड़ा अगर दीख पड़ा तब तो उसके आनन्द का पारावार नहीं रह जाता---वह नाचने लगता है।

"घड़ा बाहर लाकर उसमें से मुहरें निकालकर वह गिनता है। तब कितना आनन्द होता है! दर्शन, स्पर्श और सम्भोग---क्यों ?"

मणि--जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप हो रहे। फिर कहने लगे---

"जो मेरे अपने आदमी हैं, उन्हें डाँटने पर भी वे आयेंगे।

"अहा! नरेन्द्र का कैसा स्वभाव है! माँ काली को पहले उसके जी में जो आता था वही कहता था। मैंने चिढ़कर एक दिन कहा था 'मूर्ख, तू अब यहाँ न आना।' तब वह धीरे धीरे जाकर कुछ काम करने लगा। जो अपना आदमी है, उसको तिरस्कार करने पर भी वह नाराज नहीं होता---क्यों ?"

मणि--जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण--नरेन्द्र स्वतःसिद्ध है। निराकार पर उसकी निष्ठा है।

मणि (सहास्य)--जब आता है तब एक महाभारत रच लात है।

श्रीरामकृष्ण आनन्द से हँसते हुए कहते हैं---"हाँ सच है।"

(४)

दूसरे दिन मंगलवार, २५ दिसम्बर, कृष्णपक्ष की एकादशी है। दिन के ग्यारह बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण ने अभी भोजन नहीं किया। मणि और राखाल आदि भक्त श्रीरामकृष्ण के कमरे में बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)–एकादशी करना अच्छा है। इससे मन बहुत पवित्र होता है और ईश्वर पर भक्ति होती है, समझे ?

मणि–जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण–धान की लाही और दूध—यही खाओगे, क्यों ?

परिच्छेद ७०

रामचन्द्र दत्त के बगीचे में

आज बुधवार है, २६ दिसम्बर १८८३ ई०। श्रीरामकृष्ण रामबाबू का नया बगीचा देखने जा रहे हैं।

रामबाबू श्रीरामकृष्ण को साक्षात् अवतार जानकर उनकी पूजा करते हैं। वे प्रायः दक्षिणेश्वर में आते हैं और श्रीरामकृष्ण के दर्शन तथा उनकी पूजा करते हैं। सुरेन्द्र के बगीचे के पास उन्होंने नया बगीचा तैयार किया है। इसी बगीचे को देखने के लिए श्रीरामकृष्ण जा रहे हैं।

गाड़ी में मणिलाल मल्लिक, मास्टर तथा अन्य दो-एक भक्त हैं। मणिलाल मल्लिक ब्राह्म समाज के हैं। ब्राह्म भक्तगण अवतार नहीं मानते हैं।

श्रीरामकृष्ण (मणिलाल के प्रति)—उनका ध्यान करना हो तो पहले उनके उपाधिशून्य स्वरूप का ध्यान करने की चेष्टा करनी चाहिए। वे उपाधियों से शून्य, वाक्य और मन से परे हैं। परन्तु इस ध्यान द्वारा सिद्धि प्राप्त करना बहुत ही कठिन है।

"वे मनुष्य में अवतीर्ण होते हैं, उस समय ध्यान करने की विशेष सुविधा होती है। मनुष्य के बीच में नारायण हैं। देह आवरण है, मानो लालटेन के भीतर बत्ती जल रही है, या मानो काँच में से भीतर की बहुमूल्य वस्तुएँ दिखायी दे रही हैं।"

गाड़ी से उतरकर श्रीरामकृष्ण बगीचे में पहुँचे। राम तथा अन्य भक्तों के साथ पहले तुलसी-कानन देखने के लिए जा रहे हैं।

तुलसी-कानन देखकर श्रीरामकृष्ण खड़े होकर कह रहे हैं:

"वाह, सुन्दर स्थान है यह ! यहाँ पर ईश्वर का चिन्तन अच्छा होता है ।"

श्रीरामकृष्ण अब तालाब के दक्षिणवाले कमरे में आकर बैठे । रामबाबू ने थाली में अनार, सन्तरा तथा कुछ मिठाई लाकर उन्हें दी । श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ आनन्द करते हुए फल आदि ग्रहण कर रहे हैं ।

कुछ देर बाद सारे बगीचे में घूम रहे हैं ।

अब पास ही सुरेन्द्र के बगीचे में जा रहे हैं । थोड़ी देर पैदल जाकर गाड़ी में बैठेंगे । गाड़ी से सुरेन्द्र के बगीचे में जायेंगे ।

भक्तों के साथ पैदल जाते हुए श्रीरामकृष्ण ने देखा कि पास-वाले बगीचे में एक वृक्ष के नीचे एक साधु अकेले खटिया पर बैठे हैं । देखते ही वे साधु के पास पहुँचे और आनन्द के साथ उनसे हिन्दी में वार्तालाप करने लगे ।

श्रीरामकृष्ण (साधु के प्रति)—आप किस सम्प्रदाय के हैं— गिरि या पुरी, कोई उपाधि है क्या ?

साधु—लोग मुझे परमहंस कहते हैं ।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, अच्छा । शिवोऽहम्—यह अच्छा है । परन्तु एक बात है । यह सृष्टि, स्थिति और प्रलय सभी कुछ हो रहा है, उन्हीं की शक्ति से । यह आद्याशक्ति और ब्रह्म अभिन्न हैं । ब्रह्म को छोड़कर शक्ति नहीं होती । जिस प्रकार जल को छोड़कर लहर नहीं होती, वाद्य को छोड़कर वादन नहीं होता ।

"जब तक उन्होंने इस लीला में रखा है, तब तक द्वैत ज्ञान होता है । शक्ति को मानने से ही ब्रह्म को मानना पड़ता है; जिस प्रकार रात्रि का ज्ञान रहने से ही दिन का ज्ञान होता है ! ज्ञान की समझ रहने से ही अज्ञान की समझ होती है ।

"और एक स्थिति में वे दिखाते हैं कि ब्रह्म ज्ञान तथा अज्ञान से परें हैं, मुँह से कुछ कहा नहीं जाता। जो है सो है।"

इस प्रकार कुछ वार्तालाप होने के बाद श्रीरामकृष्ण गाड़ी की ओर जा रहे हैं। साधु भी उन्हें गाड़ी तक पहुँचा देने के लिए साथ साथ आ रहे हैं। मानो श्रीरामकृष्ण उनके कितने दिनों के परिचित हैं, साधु की बाँह में बाँह डालकर वे गाड़ी की ओर जा रहे हैं।

साधु उन्हें गाड़ी पर चढ़ाकर अपने स्थान पर आ गये।

अब श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र के बगीचे में आये हैं। भक्तों के साथ बैठकर साधु की ही बात शुरू की!

श्रीरामकृष्ण—ये साधु अच्छे हैं। (राम के प्रति) जब तुम आओगे तो इस साधु को दक्षिणेश्वर के बगीचे में ले आना।

"ये साधु बहुत अच्छ हैं। एक गाने में कहा है—सरल हुए बिना सरल को पहचाना नहीं जाता।

"निराकारवादी—अच्छा ही है। वे ही निराकार और साकार हुए हैं,—और भी कितने ही कुछ हैं। जिनका नित्य है, उन्हीं की लीला है। वही जो वाणी व मन से परे हैं, नाना रूप धारण करके अवतीर्ण होकर काम कर रहे हैं। उसी 'ॐ' से 'ॐ शिव' 'ॐ काली' व 'ॐ कृष्ण' हुए हैं। निमन्त्रण में मालिक ने एक छोटे लड़के को भेज दिया है—उसका कितना मान है, क्योंकि वह अमुक का नाती या पोता है।"

सुरेन्द्र के बगीचे में भी कुछ जलपान करके श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर की ओर भक्तों के साथ जा रहे हैं।

———

परिच्छेद ७१

ईशान मुखोपाध्याय के मकान पर

(१)

कर्मयोग। क्या चिरकाल तक कर्म करना पड़ेगा?

दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में आरती का मधुर शब्द सुनायी दे रहा है। उसी के साथ प्रभाती-राग से मन्दिर की शहनाई बज रही है। श्रीरामकृष्ण उठकर मधुर स्वर से नामोच्चारण कर रहे हैं। कमरे में जिन जिन देवियों और देवताओं के चित्र टँगे हुए थे, एक-एक करके उन्हें प्रणाम किया। फिर पश्चिमवाले गोल बरामदे में जाकर भागीरथी के दर्शन किये और प्रणाम किया। भक्तों में भी कोई कोई वहाँ हैं। उन लोगों ने प्रातःकृत्य समाप्त करके क्रमशः श्रीरामकृष्ण को आकर प्रणाम किया।

राखाल श्रीरामकृष्ण के साथ इस समय यहीं हैं। बाबूराम पिछली रात को आये हैं। मणि श्रीरामकृष्ण के पास आज चौदह दिन से हैं।

आज बृहस्पतिवार है, अगहन की कृष्णा त्रयोदशी, २७ दिसम्बर १८८३ ई०। आज सबेरे ही स्नानादि समाप्त करके श्रीरामकृष्ण कलकत्ता जाने की तैयारी कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण ने मणि को बुलाकर कहा, "आज ईशान के यहाँ जाने के लिए कह गये हैं। बाबूराम जायगा और तुम भी हमारे साथ चलना।" मणि जाने के लिए तैयार होने लगे।

जाड़े का समय है। सुबह आठ बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण को ले जाने के लिए नौबतखाने के पास गाड़ी आकर खड़ी हुई। चारों ओर फूल के पेड़ हैं, सामने भागीरथी। सब

दिशाएँ प्रसन्न जान पड़ती हैं। श्रीरामकृष्ण ने देवताओं के चित्रों के पास खड़े होकर प्रणाम किया। फिर माता का नाम लेते हुए यात्रा करने के लिए गाड़ी पर बैठ गये। साथ बाबूराम और मणि हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण की बनात, बनात की बनी हुई कान ढकनेवाली टोपी और मसाले की थैली साथ ले ली है, क्योंकि जाड़े का समय है, सन्ध्या होने पर श्रीरामकृष्ण बनात ओढ़ेंगे।

श्रीरामकृष्ण का मुखमण्डल प्रसन्न है। सब रास्ता आनन्द से पार कर रहे हैं। दिन के नौ बजे होंगे। गाड़ी कलकत्ते में आकर श्यामबाजार से होकर मछुआ-बाजार में आकर खड़ी हुई। मणि ईशान का घर जानते थे। चौराहे पर गाड़ी फिराकर ईशान के घर के सामने खड़ी करने के लिए कहा।

ईशान आत्मीयों के साथ आदरपूर्वक सहास्यमुख श्रीरामकृष्ण की अभ्यर्थना कर उन्हें नीचेवाले बैठकखाने में ले गये। श्रीराम-कृष्ण ने भक्तों के साथ आसन ग्रहण किया।

कुशल-प्रश्न हो जाने के बाद श्रीरामकृष्ण ईशान के पुत्र श्रीश के साथ बातचीत करने लगे। श्रीश एम. ए., बी. एल. पास करके अलीपुर में वकालत कर रहे हैं। एण्ट्रेंस और एफ. ए. की परीक्षाओं में विश्वविद्यालय में उनका प्रथम स्थान आया था। इस समय उनकी आयु लगभग तीस वर्ष की होगी। जैसा पाण्डित्य है, वैसा ही विनय भी है। लोग उन्हें देखकर यह समझ लेते हैं कि ये कुछ नहीं जानते। हाथ जोड़कर श्रीश ने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। मणि ने श्रीरामकृष्ण को उनका परिचय दिया और कहा, "ऐसी शान्त प्रकृति का मनुष्य दीख नहीं पड़ता।"

श्रीरामकृष्ण (श्रीश के प्रति)—क्यों जी, तुम क्या करते हो ?

श्रीश—जी, मैं अलीपुर जा रहा हूँ, वकालत करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण (मणि से)–ऐसा आदमी और वकालत !

(श्रीश से)—"अच्छा, तुम्हें कुछ पूछना है ?—संसार में अनासक्त होकर रहना, क्यों ?"

श्रीश–परन्तु कार्य के निर्वाह के लिए संसार में कितने ही अनुचित काम करने पड़ते हैं। कोई पापकर्म कर रहा है, कोई पुण्यकर्म। यह सब क्या पहले के कर्मों का फल है ? क्या यह करते ही रहना होगा ?

श्रीरामकृष्ण–कम कब तक हैं ?—जब तक उन्हें प्राप्त न कर सको। उन्हें प्राप्त कर लेने पर सब चले जाते हैं। तब पाप-पुण्य के पार जाया जाता है।

"फल आ जाने पर फूल चला जाता है। फूल दीख पड़ता है फल होने के लिए।

"सन्ध्यादि कर्म कितने दिन के लिए ?—जितने दिन तक ईश्वर का नाम स्मरण करते हुए रोमांच न हो आये, आँखों में आँसू न आ जायं। ये सब अवस्थाएँ ईश्वर-प्राप्ति के लक्षण हैं, ईश्वर पर शुद्धा-भक्ति प्राप्त करने के लक्षण हैं।

"उन्हें जान लेने पर मनुष्य पाप और पुण्य दोनों के परे चला जाता है। रामप्रसाद ने कहा है, भुक्ति और मुक्ति को मैं मस्तक पर धारण करता हूँ; और काली ब्रह्म हैं, यह मर्म जानकर धर्माधर्म को मैंने छोड़ ही दिया है।

"उनकी ओर जितना बढ़ोगे, उतना ही वे कर्म घटा देंगे। गृहस्थ की बहू गर्भवती होने पर उसकी सास धीरे धीरे उसका काम घटा देती है। जब दसवाँ महीना होता है तब बिलकुल काम घटा दिया जाता है। बच्चा हो जाने पर वह उसी को लेकर व्यस्त रहती है, उसी को लेकर आनन्द करती है।"

श्रीश—संसार में रहते हुए उनकी ओर जाना बड़ा कठिन है।

अभ्यास-योग और निर्जन में साधना

श्रीरामकृष्ण—क्यों ? अभ्यास-योग है। उस देश में बढ़ई की औरतें चिउड़ा बेचती हैं। वे कितनी ओर ध्यान देकर कितने काम सम्हालती हैं, सुनो। एक तो ढेंकी चल रही है, हाथ से वह धान सरका रही है, और एक हाथ से बच्चे को गोद में लेकर दूध पिला रही है। ऊपर के जो खरीदार आते हैं, उनसे मोल-तोल कर रही है, इधर ढेंकी का काम भी चल रहा है। खरीदार से कहती है, 'तो तुम्हारे ऊपर जो बाकी पैसे हैं, वे सब दे जाना, तब और चीज ले जाना।' देखो, लड़के को दूध पिलाना, ढेंकी चल रही है उसमें धान सरकाना और कूटे हुए धान निकालना, और इधर खरीदार के साथ बातचीत करना, ये सब एक साथ कर रही है। इसे ही अभ्यासयोग कहते हैं; परन्तु उसका पन्द्रह आना मन ढेंकी पर लगा हुआ है; क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि ढेंकी हाथ पर गिर जाय; और एक आना मन लड़के को दूध पिलाने और खरीदार से बातचीत करने में है। इसी तरह जो लोग संसार में हैं उन्हें पन्द्रह आना मन ईश्वर को देना चाहिए। न देने से सर्वनाश हो जायगा—काल के हाथ पड़ना होगा। और एक आने से दूसरे काम करो।

"ज्ञान हो जाने पर संसार में रहा जा सकता है, परन्तु पहले तो ज्ञानलाभ करना चाहिए। संसार-रूपी जल में मन-रूपी दूध रखने पर दोनों मिल जायेंगे। इसलिए मन-रूपी दूध का दही बनाकर निर्जन में उसे मथकर, उससे मक्खन निकालकर, तब उसे संसार-रूपी पानी में रखना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि साधना चाहिए। पहली अवस्था में निर्जन में रहना जरूरी है।

पीपल का पेड़ जब छोटा रहता है, तब उसके चारों ओर घेरा लगाना पड़ता हैं; नहीं तो बकरे और गौएँ उसे चर जाती हैं। परन्तु उसकी पेड़ी मोटी हो जाने पर घेरा खोल दिया जा सकता है। तब तो हाथी बाँध देने पर भी उस पेड़ का कुछ नहीं बिगड़ता।

"इसीलिए प्रथम अवस्था में कभी कभी निर्जन में जाना पड़ता है। साधना आवश्यक है। भात खाओगे—बैठे बैठे कह रहे हो लकड़ी में आग है और उसी आग से चावल पकता है। इस तरह कहने से ही क्या भात तैयार हो जायगा ? एक और लकड़ी ले आकर दोनों को रगड़ना चाहिए; आग तभी तैयार होगी।

"भंग खाने से नशा होता है, आनन्द होता है। न तुमने खाया, न कुछ किया—बैठे बैठे केवल 'भंग भंग' कर रहे हो ! क्या इससे कभी नशा या आनन्द होता है ?

मनुष्यजीवन का उद्देश्य—'दूध पियो'

"पढ़ना-लिखना चाहे लाख सीखो, ईश्वर पर भक्ति हुए बिना—उन्हें प्राप्त करने की इच्छा हुए बिना—सब मिथ्या है। केवल पण्डित है, परन्तु यदि विवेक-वैराग्य नहीं है, तो उसकी दृष्टि कामिनी-कांचन पर अवश्य रहेगी। गीध बहुत ऊँचे उड़ते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि मरघट पर ही रहती है।

"जिस विद्या के प्राप्त करने पर मनुष्य उन्हें पा सकता है, वही यथार्थ विद्या है, और सब मिथ्या है। अच्छा, ईश्वर के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है ?"

श्रीश—जी, इतना बोध हुआ है कि कोई एक ज्ञानमय पुरुष हैं। उनकी सृष्टि देखने पर उनके ज्ञान का परिचय मिलता है। एक बात कहता हूँ—जिन देशों में जाड़ा ज्यादा होता है, वहाँ मछलियों और दूसरे जल-जन्तुओं को बचा रखने के लिए ईश्वर ने

यह कुशलता दिखायी है कि जितना ही अधिक जाड़ा पड़ता है उतना ही पानी सिमटता जाता है, परन्तु आश्चर्य यह है कि बर्फ बनने से पहले ही पानी कुछ हलका हो जाता है, और उस समय पानी का फैलाव ज्यादा हो जाता है। तालाब के पानी में वहाँ जाड़े में मछलियाँ अनायास ही रह सकती हैं। पानी के ऊपरी हिस्से में बर्फ जम गयी है, परन्तु नीचे के हिस्से में ज्यों का त्यों पानी बना रहता है। अगर खूब ठण्डी हवा चलती है, तो वह हवा बर्फ पर ही लगती है, नीचे का पानी गरम रहता है।

श्रीरामकृष्ण—वे हैं यह बात संसार देखने से ही मालूम हो जाती है। परन्तु उनके सम्बन्ध में कुछ सुनना एक बात है, उन्हें देखना और बात, और उनसे वार्तालाप करना और बात है। किसी ने दूध की बात सुनी है, किसी ने दूध देखा है, और किसी ने दूध पिया है! आनन्द तो देखने से होगा, पर पीने से देह सबल होगी, तभी तो लोग हृष्टपुष्ट होंगे। ईश्वर के दर्शन जब होंगे, तभी तो शान्ति होगी। जब उनसे वार्तालाप होगा, तभी तो आनन्द होगा और शक्ति बढ़ेगी।

श्रीश—उन्हें पुकारने का अवसर मिलता ही नहीं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—यह ठीक है; समय हुए बिना कुछ नहीं होता। किसी लड़के ने सोने के पहले अपनी माँ से कहा था, 'माँ, जब मुझे टट्टी की इच्छा हो, तब उठा देना।' उसकी माँ ने कहा, 'बेटा, टट्टी की इच्छा तुम्हें स्वयं उठायेगी, मुझे उठाना न होगा।'

"जिसे जो कुछ देना चाहिए, यह उनका पहले से ही ठीक किया हुआ है। घर की एक पुरखिन अपनी बहुओं को एक बर्तन से नापकर चावल बनाने के लिए देती थी, पर उतना चावल

उन लोगों के लिए कम पड़ता था। एक दिन वह नापनें-वाला बर्तन फूट गया; इससे बहुएँ बहुत खुश हुईं। पर उस पुरखिन ने कहा, 'तुम्हारे नाचने-कूदने या खुशी मनाने से क्या हुआ; मैं चावल अपनी मुट्ठी से नाप सकती हूँ, मुझे अन्दाज मालूम है!'

(श्रीश से)—"क्या करोगे, पूछते हो? उनके श्रीचरणों में सब कुछ समर्पित कर दो, उन्हें आम मुखत्यारी दे दो! वे जो कुछ अच्छा समझें, करें। बड़े आदमी पर अगर भार दे दिया जाय, तो वह कभी बुराई नहीं कर सकता।

"साधना की भी आवश्यकता है। परन्तु साधक दो तरह के होते हैं। एक तरह के साधकों का स्वभाव बन्दर के बच्चे जैसा होता है, दूसरे तरह के साधक का बिल्ली के बच्चे जैसा। बन्दर का बच्चा किसी तरह खुद अपनी माँ को पकड़े रहता है। इसी तरह कोई साधक सोचते हैं, हमें इतना जप करना चाहिए, इतनी देर तक ध्यान करना चाहिए, इतनी तपस्या करनी चाहिए, तब कहीं ईश्वर मिलेंगे। इस तरह के साधक अपने प्रयत्न से ईश्वर-प्राप्ति की आशा रखते हैं।

"परन्तु बिल्ली का बच्चा खुद अपनी माँ को नहीं पकड़ सकता। वह पड़ा हुआ बस 'मीऊँ मीऊँ' करके पुकारता है। उसकी माँ चाहे जो करे। उसकी माँ कभी उसे बिस्तर पर ले जाती है, कभी छत पर लकड़ी की आड़ में रख देती है, और कभी उसे मुँह में दबाकर यहाँ-वहाँ रखती फिरती है। वह स्वयं अपनी माँ को पकड़ना नहीं जानता। इसी तरह कोई कोई साधक स्वयं हिसाब करके साधन-भजन नहीं कर सकते कि इतना जप करूँगा, इतना ध्यान करूँगा। वह केवल व्याकुल होकर रो-रोकर

उन्हें पुकारता है। उसका रोना सुनकर वे फिर रह नहीं सकते। आकर दर्शन देते हैं।"

(२)

ईश्वर कर्ता हैं, तथापि कर्मों के लिए जीव उत्तरदायी है।

दिन चढ़ आया है। घर के मालिक ने भोजन के लिए घर में कच्ची रसोई का सामान तैयार कराया है। वे बड़े व्यस्त हैं। वे घर के भीतर जाकर भोजन का प्रबन्ध कर रहे हैं।

दिन बहुत हो गया है, इसीलिए श्रीरामकृष्ण भोजन के लिए जल्दी कर रहे हैं। वे उसी कमरे में टहल रहे हैं। मुख पर प्रसन्नता झलक रही है। कभी कभी केशव कीर्तनिया से वार्तालाप कर रहे हैं।

केशव कीर्तनिया—वही करण और वही कारण हैं; दुर्योधन ने कहा था, 'त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।'

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—हाँ, वही सब कराते हैं; यह ठीक है। कर्ता वही हैं, मनुष्य तो यन्त्र-स्वरूप है।

"और यह भी ठीक है कि कर्मफल भी है। मिर्चा और मिर्च खाने पर पेट जलता रहेगा। पाप करने से उसका फल अवश्य भोगना होगा।

"जिसे सिद्धि हो गयी है, जिसने ईश्वर को पा लिया है, वह फिर पाप नहीं कर सकता। उसके पैर बेताल नहीं पड़ते। जिसका सधा हुआ गला है, उसके स्वर में सा रे ग म बिगड़ने नहीं पाता।"

भोजन तैयार है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ मकान के भीतर गये और उन्होंने आसन ग्रहण किया। ब्राह्मण का मकान

है; व्यंजन कई तरह के तैयार कराये गये हैं, ऊपर से अनेक प्रकार की मिठाइयाँ भी लायी गयी हैं।

दिन के तीन बजे का समय होगा। भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण ईशान के बैठकखाने में आकर बैठें। पास में श्रीश और मास्टर बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण श्रीश के साथ फिर बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारा क्या भाव है? सोऽहं या सेव्य-सेवक?

"संसारियों के लिए सेव्य-सेवक का भाव बहुत अच्छा है। सब सांसारिक काम तो कर रहे हैं, ऐसी अवस्था में 'मैं वही हूँ' यह भाव कैसे आ सकता है? जो कहता है, 'मैं वही हूँ,' उसके लिए तो संसार स्वप्नवत् है; उसका अपना शरीर और मन भी स्वप्नवत् है, उसका 'मैं' भी स्वप्नवत् हैं; अतएव संसार का काम वह नहीं कर सकता। इसीलिए सेव्य-सेवक भाव, दास-भाव बहुत अच्छा है।

"दास-भाव हनुमान का था। श्रीराम से हनुमान ने कहा था, 'राम, कभी तो मैं सोचता हूँ, तुम पूर्ण हो––मैं अंश हूँ, तुम प्रभु हो––मैं दास हूँ, और जब तत्त्व का ज्ञान हो जाता है. तब देखता हूँ, मैं ही तुम हूँ, और तुम्हीं मैं हो।'

"तत्त्वज्ञान के समय सोऽहम् हो सकता है, परन्तु वह दूर की बात है।"

श्रीश– जी हाँ, दास-भाव से आदमी निश्चिन्त हो सकता है। प्रभु पर सब कुछ निर्भर है। कुत्ता बड़ा स्वामिभक्त है, इसीलिए स्वामी पर सब भार देकर वह निश्चिन्त रहता है।

साकार निराकार––नाममाहात्म्य

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, तुम्हें साकार ज्यादा पसन्द है या

निराकार ? बात यह है कि जो निराकार है, वही साकार भी है। भक्त की आँखों को वे साकार रूप से दर्शन देते हैं। जैसे अनन्त जलराशि, महासमुद्र, जिसका न ओर है न छोर; उसी जल में कहीं कहीं बर्फ जम गयी है; ज्यादा ठण्डक पहुँचने पर पानी जमकर बर्फ हो जाता है। उसी तरह भक्ति-हिम द्वारा साकार रूप के दर्शन होते हैं। फिर जिस तरह सूर्योदय होने पर बर्फ गल जाती है—ज्यों का त्यों पानी हो जाता है, उसी तरह ज्ञान-मार्ग या विचार-मार्ग से होकर जाने पर साकार रूप के दर्शन नहीं होते। फिर तो सब निराकार ही निराकार दीख पड़ता है। ज्ञान-सूर्योदय होने पर साकार बर्फ गल जाती है।

"परन्तु देखो, जिसकी निराकार सत्ता है, उसी की साकार भी है।"

शाम होने को है। श्रीरामकृष्ण उठे। अब दक्षिणेश्वर को लौटने-वाले हैं। बैठकखाने के दक्षिण ओर जो बरामदा है, उसी पर खड़े होकर ईशान से बातचीत कर रहे हैं। वहीं कोई कह रहे हैं, "यह तो मैं नहीं देखता कि ईश्वर का नाम लेने से प्रत्येक समय फल होता है।"

ईशान ने कहा, "यह क्या ? बट का बीज कितना छोटा होता है, परन्तु उसके भीतर कितना बड़ा पेड़ छिपा रहता है ! पर वह पेड़ देर से दिखायी देता है।"

श्रीरामकृष्ण—हाँ हाँ, फल देर से होता है।

ईशान का मकान उनके ससुर स्वर्गीय श्री क्षेत्रनाथ चटर्जी के मकान के पूर्व ओर है। दोनों मकानों में आने-जाने का रास्ता है। श्रीरामकृष्ण चटर्जी महाशय के मकान के फाटक के पास आकर खड़े हुए। ईशान अपने बन्धु-बान्धवों को साथ

लेकर श्रीरामकृष्ण को गाडी पर चढ़ाने के लिए आयें हैं।

श्रीरामकृष्ण ईशान से कह रहे हैं, "तुम संसार में ठीक 'पाँकाल' मछली की तरह हो। वह रहती तो है तालाब के बीच में, पर उसकी देह में कीच छू नहीं जाती।

"माया के इस संसार में विद्या और अविद्या दोनों ही हैं। परमहंस वह हैं, जो हंस की तरह दूध और पानी के एक साथ रहने पर भी पानी छोड़कर दूध निकाल लेता है; चींटी की तरह बालू और चीनी के मिले रहने पर भी बालू में से चीनी निकाल ले सकता है।"

(३)

समन्वय और निष्ठा-भक्ति। अपराध और ईश्वर-कोटि

शाम हो गयी है। श्रीरामकृष्ण भक्त रामचन्द्र के घर आये हुए हैं। यहाँ से होकर दक्षिणेश्वर जायेंगे।

रामचन्द्र के बैठकखाने को आलोकित करते हुए भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। श्री महेन्द्र गोस्वामी से बातचीत कर रहे हैं। गोस्वामीजी उसी मोहल्ले में रहते हैं। श्रीरामकृष्ण इन्हें प्यार करते हैं। जब श्रीरामकृष्ण रामचन्द्र के यहाँ आते हैं तब गोस्वामीजी आकर इनसे मिल जाया करते हैं।

श्रीरामकृष्ण– वैष्णव, शाक्त सब के पहुँचने की जगह एक है; परन्तु मार्ग और और हैं। जो सच्चे वैष्णव हैं, वे शक्ति की निन्दा नहीं करते।

गोस्वामी (सहास्य)–हर-पार्वती हमारे माँ-बाप हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)– Thank You (थैंक यू) —माँ-बाप हैं।

गोस्वामी–इसके सिवाय किसी की निन्दा करने से, खास-

कर वैष्णवों की निन्दा से, अपराध होता है—वैष्णवापराध। सब अपराधों की क्षमा है, परन्तु वैष्णवापराध की क्षमा नहीं है।

श्रीरामकृष्ण–अपराध सब को नहीं होता। जो ईश्वरकोटि हैं, उनको अपराध नहीं होता। जैसे श्रीचैतन्यसदृश अवतारी पुरुषों को।

"बच्चा अगर बाप का हाथ पकड़कर चलता हो, तो वह गड्ढे में गिर सकता है, परन्तु अगर बाप बच्चे का हाथ पकड़े हुए हो तो बच्चा कभी नहीं गिर सकता।

"सुनो, मैंने माँ से शुद्धा-भक्ति की प्रार्थना की थी। माँ से कहा था, 'यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म; मुझे शुद्धा-भक्ति दो। यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि, मुझे शुद्धा-भक्ति दो। माँ, यह लो अपना पाप, यह लो अपना पुण्य, मुझे शुद्धा-भक्ति दो।' "

गोस्वामी–जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण–सब भक्तों को नमस्कार करना। परन्तु 'निष्ठा-भक्ति' भी है। सब को प्रणाम तो करना, परन्तु हृदय का उमड़ता हुआ प्यार एक ही पर हो। इसी का नाम निष्ठा है।

"राम-रूप के सिवाय और कोई रूप हनुमान को न भाता था। गोपियों की इतनी निष्ठा थी कि उन्होंने द्वारका में पगड़ी-वाले श्रीकृष्ण को देखना ही न चाहा।

"स्त्री अपने देवर-जेठ आदि को पैर धोने के लिए पानी और बैठने को आसन आदि देकर सेवा करती है; परन्तु पति की जैसी सेवा करती है, वैसी वह किसी दूसरे की नहीं करती। पति के साथ उसका सम्बन्ध कुछ दूसरा है।"

रामचन्द्र ने कुछ मिठाइयाँ देकर श्रीरामकृष्ण की पूजा की।

अब वे दक्षिणेश्वर जानेवाले हैं। मणि से उन्होंने बनात लेकर शरीर ढक लिया और टोपी पहन ली। अब भक्तों के साथ वे गाडी पर चढ़ने लगे। रामचन्द्र आदि भक्त उन्हें चढा रहे हैं, मणि भी गाडी पर बैठे, वे भी दक्षिणेश्वर लौट जायेंगे।

परिच्छेद ७२

ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में वार्तालाप

(१)

श्रीरामकृष्ण गाडी पर बैठ रहे हैं। कालीमाता के दर्शन के लिए कालीघाट जायेंगे। श्री अधर सेन के घर होकर जायेंगे। वहाँ से अधर भी साथ जायेंगे। आज शनिवार, अमावस्यां है। २९ दिसम्बर, १८८३। दिन के एक बजे का समय होगा।

गाडी उनके कमरे के उत्तर के तरफ के बरामदे के पास आकर खडी है। मणि गाडी के द्वार के पास आकर खडे हुए।

मणि (श्रीरामकृष्ण से)—क्या मैं भी चलूं ?

श्रीरामकृष्ण—क्यों ?

मणि—एक बार कलकत्ते के मकान से होकर आता।

श्रीरामकृष्ण (चिन्तित होकर)—फिर जाओगे ? क्यों ? यहाँ अच्छे तो हो।

मणि घर लौटेंगे, कुछ घण्टों के लिए; परन्तु श्रीरामकृष्ण की इसके लिए सम्मति नहीं है।

(२)

आज रविवार, ३० दिसम्बर, पूस की शुक्ला प्रतिपदा है। दिन के तीन बजे होंगें। मणि पेड़ के नीचे अकेले टहल रहे हैं। एक भक्त ने आकर कहा, "प्रभु बुलाते हैं।" कमरे में श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। मणि ने जाकर प्रणाम किया और जमीन पर भक्तों के बीच बैठ गये।

कलकत्ते से राम, केदार आदि भक्त आये हुए हैं। उनके साथ एक वेदान्तवादी साधु भी आये हैं। श्रीरामकृष्ण जिस दिन

रामचन्द्र का बगीचा देखने गये थे उस दिन उस साधु से भेंट हुई थी। साधू पासवाले बगीचे में एक पेड़ के नीचे अकेले एक चारपाई पर बैठे हुए थे। राम आज श्रीरामकृष्ण की आज्ञा से उस साधु को अपने साथ लेते आये हैं। साधु ने भी श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की थी।

श्रीरामकृष्ण उस साधु के साथ आनन्दपूर्वक वार्तालाप कर रहे हैं। उन्होंने अपने पास छोटे तख्त पर साधु को बैठाया है। बातचीत हिन्दी में हो रही है।

श्रीरामकृष्ण—यह सब तुम्हें कैसा जान पडता है?

साधू—यह सब स्वप्नवत् है।

श्रीरामकृष्ण—ब्रह्म सत्य और संसार मिथ्या, यही न? अच्छा जी, ब्रह्म कैसा है?

साधु—शब्द ही ब्रह्म है। अनाहत शब्द।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु शब्द का प्रतिपाद्य भी तो एक है। क्यों जी?

साधु—वही वाच्य है और वही वाचक भी है।

यह बात सुनते ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। चित्रवत् स्थिर बैठे हुए है। साधु और भक्तगण आश्चर्यचकित होकर श्रीरामकृष्ण की यह समाधि-अवस्था देख रहे हैं। केदार साधु से कह रहे हैं, "यह देखिये, इसे समाधि कहते हैं।"

साधु ने ग्रन्थों में ही समाधि की बात पढी थी। समाधि कैसे होती है, यह उन्होंने कभी नहीं देखा था।

श्रीरामकृष्ण धीरे धीरे अपनी प्राकृत अवस्था में आ रहे हैं। अभी जगन्माता के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। कहते हैं—'माँ' अच्छा हो जाऊँ, बेहोश न कर देना। साधु के साथ सच्चिदानन्द की बातें करूँगा। सच्चिदानन्द की बातें करते हुए आनन्द

मनाऊँगा।"

साधु निर्वाक् होकर देख रहे हैं और ये सब बातें सुन रहे हैं। अब श्रीरामकृष्ण साधु से बातचीत करने लगे। कहते हैं—अब तुम 'सोऽहम्' उड़ा दो। अब 'हम और तुम' लेकर विलास करें।

जब तक 'हम' और 'तुम' यह भाव है, तब तक माँ भी है। आओ, उन्हें लेकर आनन्द किया जाय। श्रीरामकृष्ण के कथन का शायद यही मर्म है।

कुछ देर इस तरह बातचीत हो जाने के बाद श्रीरामकृष्ण पंचवटी में टहलने चले गये। राम, केदार, मास्टर आदि उनके साथ हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—साधु को तुमने कैसा देखा?

केदार—उसका शुष्क ज्ञान है। अभी उसने हण्डी चढ़ायी भर है—अभी चावल नहीं चढ़ाये गये।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, यह ठीक है। परन्तु है त्यागी। जिसने संसार को त्याग दिया है, वह बहुत-कुछ आगे बढ़ गया है।

"साधु अभी प्रवर्तक है। उन्हें अगर कोई प्राप्त न कर सका, तो उसका कुछ भी नहीं हुआ। जब उनके प्रेम में मस्त हुआ जाता है, तब और कुछ नहीं सुहाता। तब तो—'आदरणीय श्यामा माँ को बडे यत्न से हृदय में धारण किये रहो। मन! तू देख और मैं देखूं, और कोई न देखने पाये।'"

केदार श्रीरामकृष्ण के भाव के अनुरूप एक गीत गाते हैं—

(भावार्थ)—"सखि, मन की बात कैसे कहूँ? कहने की मनाई है। दर्द को समझनेवाले के बिना प्राण कैसे बच सकेंगे! जो मन का मीत होता है वह देखते ही पहचान में आ जाता है। वह विरला ही होता है।..."

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में लौट आये हैं। चार बजे का समय है।--कालीमन्दिर खुल गया। श्रीरामकृष्ण साधु को लेकर कालीमन्दिर जा रहे हैं। मणि भी साथ हैं।

कालीमन्दिर में प्रवेश कर श्रीरामकृष्ण भक्तिपूर्वक माता को प्रणाम कर रहे हैं। साधु भी हाथ जोड़कर सिर झुका माता को बारम्बार प्रणाम कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—क्यों जी, दर्शन कैसे हुए?

साधु (भक्तिभाव से)—काली प्रधान है।

श्रीरामकृष्ण—काली और ब्रह्म दोनों अभेद हैं। क्यों जी?

साधु—जब तक बहिर्मुख है तब तक काली को मानना होगा। जब तक बहिर्मुख है तब तक भले बुरे दोनों भाव हैं—तब तक एक प्रिय और दूसरा त्याज्य, यह भाव है ही।

"देखिये न, नाम और रूप ये सब तो मिथ्या ही हैं, परन्तु जब तक मैं बहिर्मुख हूँ तब तक मुझे स्त्रियों को त्याज्य समझना चाहिए। और उपदेश के लिए 'यह अच्छा है, यह बुरा है' यह भाव रखना चाहिए—नहीं तो भ्रष्टाचार फैलेगा।"

श्रीरामकृष्ण साधु के साथ बातचीत करते हुए कमरे में लौटे।

श्रीरामकृष्ण—देखा, साधु ने कालीमन्दिर में प्रणाम किया।

मणि—जी हाँ।

(३)

दूसरे दिन सोमवार, ३१ दिसम्बर है। दिन का तीसरा प्रहर, चार बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ कमरे में बैठे हुए हैं। बलराम, मणि, राखाल, लाटू, हरीश आदि भक्त भी हैं। श्रीरामकृष्ण मणि और बलराम से कह रहे हैं—

"हलधारी का ज्ञानियों जैसा भाव था। वह अध्यात्मरामायण,

उपनिषद्---यही सब दिनरात पढ़ता था। इधर साकार की बातों से मुंह फेरता था। मैंने जब कंगालों के भोजन कर जाने पर उनकी पत्तलों से थोड़ा थोड़ा अन्न लेकर खाया, तब उसने कहा, 'तेरे लड़कों का विवाह कैसे होगा?' मैंने कहा, 'क्यों रे साला, मेरे लड़के-बच्चे भी होंगे! आग लगे तेरे गीता और वेदान्त पढ़ने में!' देखो न, इधर तो कहता है---संसार मिथ्या है; और फिर विष्णुमन्दिर में नाक सिकोड़कर ध्यान!"

शाम हो गयी है। बलराम आदि भक्त कलकत्ता चले गये हैं। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में बैठे हुए माता का चिन्तन कर रहे हैं। कुछ देर बाद मन्दिर में आरती का मधुर शब्द सुनायी पड़ने लगा।

रात के आठ बज चुके हैं। श्रीरामकृष्ण भाव में आकर मधुर स्वर से माता के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। मणि जमीन पर बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण मधुर कण्ठ से नामोच्चारण कर रहे हैं---"हरि ॐ! हरि ॐ! हरि ॐ!"

माँ से कह रहे हैं--- "माँ! ब्रह्मज्ञान देकर मुझे बेहोश न कर रखना। मैं ब्रह्मज्ञान नहीं चाहता माँ! मैं आनन्द करूँगा। विलास करूँगा!"

फिर कहते हैं---"माँ, मैं वेदान्त नहीं जानता---जानना भी नहीं चाहता! माँ, तुझे पाने पर वेद-वेदान्त कितने नीचे पडे रहते हैं!"

"अरे कृष्ण! मैं तुझे कहूँगा, 'यह ले---खा ले---बच्चे!' कृष्ण! कहूँगा, 'तू मेरे ही लिए देहधारण करके आया है।'"

प्रथम भाग समाप्त

कुछ संग्राहच ग्रन्थ

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग : स्वामी सारदानन्द

"प्रस्तुत पुस्तक विश्व के नवीनतम ईश्वरावतार भगवान श्रीरामकृष्णदेव की केवल जीवन-आख्यायिका ही नहीं, वरन इस दिव्य जीवन के आलोक में किया हुआ संसार के विभिन्न धर्मसम्प्रदायों तथा मतमतान्तरों का एक अध्ययन भी है।"

श्रीरामकृष्णलीलामृत : पं. द्वारकानाथ तिवारी

भगवान श्रीरामकृष्णदेव का सम्पूर्ण जीवनचरित

माँ सारदा : स्वामी अपूर्वानन्द

"माँ सारदा मानो भारत की मूर्तिमती नारी-आत्मा हैं — दैवी मातृत्व की जीती-जागती प्रतिमा हैं। वे एक ही आधार में आदर्श पत्नी, आदर्श संन्यासिनी और आदर्श गुरु हैं।"

श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ : स्वामी अपूर्वानन्द

भगवान श्रीरामकृष्णदेव एवं श्रीसारदादेवी की एकत्र रूप में अत्यन्त आकर्षक ढंग से लिखी हुई जीवनी।

विवेकानन्द-चरित : श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार

यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं है।...

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जीवनी

श्रीसारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
—(स्वामी अपूर्वानन्द)
माँ की स्नेहछाया में
—(स्वामी सारदेशानन्द)
श्रीरामकृष्णभक्तमालिका
—(स्वामी गम्भीरानन्द) भाग १
भाग २
स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
—(स्वामी अपूर्वानन्द)
स्वामी शिवानन्द—(स्वामी शिवतत्त्वानन्द)
शिवानन्द-स्मृतिसंग्रह भाग १
भाग २
भाग ३
स्वामी विज्ञानानन्द — (स्वामी विश्वाश्रयानन्द)
साधु नागमहाशय — (शरच्चन्द्र चक्रवर्ती)
आचार्य शंकर — (स्वामी अपूर्वानन्द)

धर्म-दर्शन-अध्यात्म

श्रीरामकृष्णवचनामृत — श्री 'म'
अनुवादक : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
अमृतवाणी
(श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों का बृहत् संग्रह)
भगवान रामकृष्ण : धर्म तथा संघ
ध्यान, धर्म तथा साधना
—(स्वामी ब्रह्मानन्द)
आनन्दधाम की ओर—(स्वामी शिवानन्द)
अध्यात्ममार्गप्रदीप—(स्वामी तुरीयानन्द)
गीतातत्त्व—(स्वामी सारदानन्द)
भारत में शक्तिपूजा—(स्वामी सारदानन्द)
वेदान्त : सिद्धान्त और व्यवहार
—(स्वामी सारदानन्द)
परमार्थ-प्रसंग — (स्वामी विरजानन्द)
धर्मजीवन तथा साधना
—(स्वामी यतीश्वरानन्द)
श्रीरामकृष्णपूजापद्धति
स्तवनांजलि (मूलमात्रम्)
भजनांजलि
श्रीमद्भगवद्गीता (हिन्दी अर्थसहित)
नारदभक्तिसूत्र (हिन्दी टीकासहित)
श्रीरामनामसंकीर्तनम् (हिन्दी अनुवादसहित)

उपदेशमाला (पॉकेट साईज)

श्रीरामचन्द्र की वाणी
भगवान श्रीकृष्ण की वाणी
भगवान बुद्ध की वाणी
श्रीशंकराचार्य की वाणी
गुरुनानक की वाणी
ईसामसीह की वाणी
मुहम्मद पैगम्बर की वाणी
श्रीरामकृष्णदेव की वाणी
श्रीसारदादेवी की वाणी
स्वामी विवेकानन्द की वाणी
श्रीरामकृष्ण-उपदेश

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर—४४००१२

स्वामी विवेकानन्दकृत साहित्य

ज्ञानयोग
राजयोग
प्रेमयोग
कर्मयोग
भक्तियोग
ज्ञानयोग पर प्रवचन
सरल राजयोग
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीतां
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)
वेदान्त
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त
आत्मतत्त्व
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग
विवेकानन्दजी के संग में
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में
धर्मविज्ञान
धर्मतत्त्व
धर्मरहस्य
हिन्दूधर्म
हिन्दूधर्म के पक्ष में
शिकागो वक्तृता
मरणोत्तर जीवन

कुछ संग्राह्य जीवनीग्रन्थ

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन भागों में) — स्वामी सारदानन्द
श्रीरामकृष्णलीलामृत — न. रा. परांजपे
श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश — स्वामी अपूर्वानन्द
माँ सारदा — स्वामी अपूर्वानन्द
श्रीसारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
— स्वामी अपूर्वानन्द
विवेकानन्द-चरित — सत्येन्द्रनाथ मजूमदार
स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
— स्वामी अपूर्वानन्द
स्वामी शिवानन्द — स्वामी शिवतत्त्वानन्द
स्वामी विज्ञानानन्द — स्वामी विश्वाश्रयानन्द
साधु नागमहाशय — शरच्चन्द्र चक्रवर्ती
आचार्य शंकर — स्वामी अपूर्वानन्द
श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका (दो भागों मे) — स्वामी गम्भीरानन्द